

बालू की लहरें

सरस्वती सरन
"कैफ"

बालू की लहरें

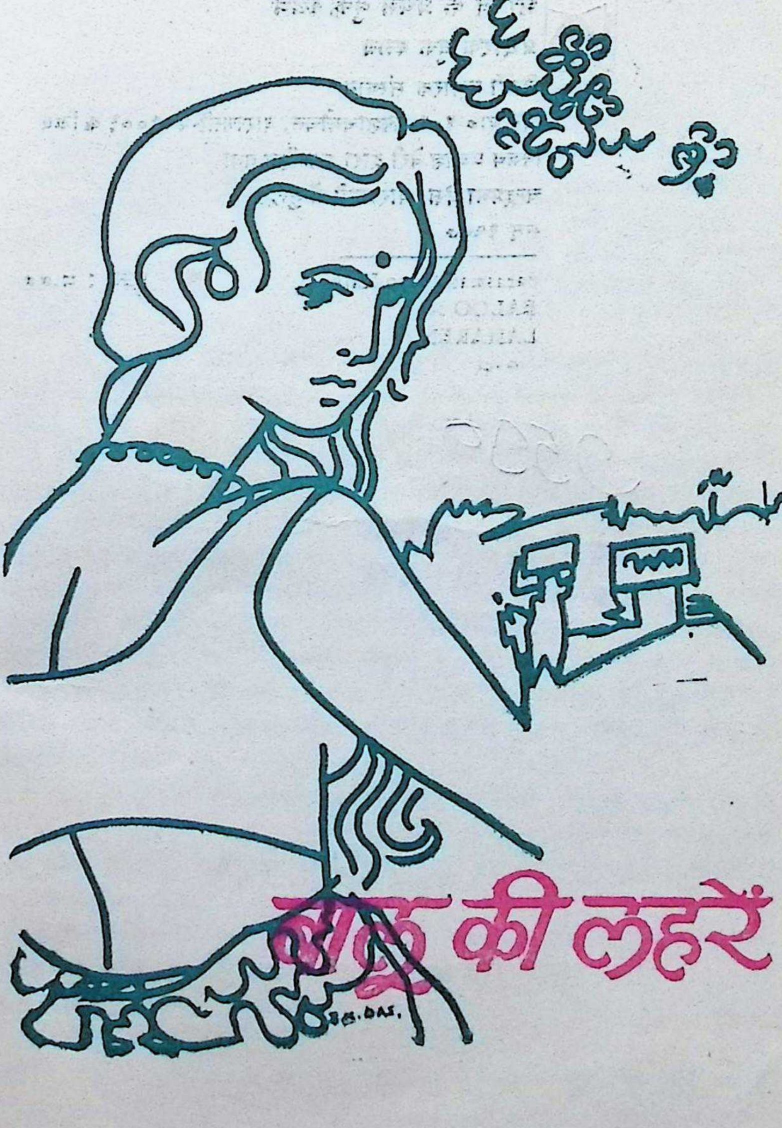
सरस्वती सरन कैफ

सरस्वती सरन कैफ

श्री कैफ का जन्म उ० प्र० के मैनपुरी जिले में सन् १९२२ में हुआ था। पत्रकारिता को 'मिशन' एवं 'प्रोफेसन' दोनों रूपों में स्वीकार करनेवाले कैफ की देन हिन्दी साहित्य को कई रूपों में है। मीर, सौदा, दर्द, नजीर अकबराबादी, जौक, दाग, चकबस्त आदि उर्दू के लब्ध-प्रतिष्ठ कवियों के हिन्दी संकलनों का सम्पादन, अंग्रेजी की प्रख्यात कथाकृतियों का हिन्दी में अनुवाद और अनेक मौलिक कहानियों और उपन्यासों की रचना कर आपने पर्याप्त यश अर्जित किया है। ऊँची नीची राहें तथा भूख और तृप्ति आपकी हिन्दी की मौलिक बहुचर्चित कथाकृतियां हैं। भूख और तृप्ति उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत है। संप्रति आप चंडीगढ़ से प्रकाशित 'दि ट्रिब्यून' में कार्यरत हैं।

संपर्क सूत्र–
'दि ट्रिब्यून'
चण्डीगढ़

प्रचारक बुक क्लब
हिन्दी प्रचारक संस्थान
पो० बा० १०६, पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१००१



लहू की लहरें

भारत के प्रथम बुक क्लब
प्रचारक बुक क्लब
हिन्दी प्रचारक संस्थान
पो० बा० १०६, पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१००१ के लिए
विजय प्रकाश बेरी द्वारा प्रकाशित तथा
चन्द्रप्रभा प्रेस, वाराणसी में मुद्रित
सन् १९७७

Saraswati Saran Kaif
BALOO KI
LAHAREN
Novel

मूल्य : ८.००

१

"येस"……यूनिवर्सल प्राविजन्स……जी हाँ मैं ही बोल रहा हूँ……अच्छा पाण्डेयजी, नमस्कार, खैरियत तो है ?……भई, आज तो मामला बड़ा गड़बड़ है, दुकान का बहुत जरूरी काम पड़ा है……अरे साहब 'इम्पार्टेन्स' तो आप लोगों की है, मैं तो आप लोगों का छोटा सेवक हूँ……अच्छा ! शकुन्तला जी आ रही हैं, तब तो जरूर आऊँगा। उनके दर्शन की तो बड़ी इच्छा है……अरे इसमें कृपा की क्या बात है, मैं गाड़ी लेकर आप के यहाँ पहुँचता हूँ, वे आप ही के यहाँ ही तो हैं ?……बस अभी पन्द्रह मिनट में, आप लोग तैयार रहिये…… नमस्कार।'

श्री पुरुषोतम लाल खन्ना ने हँसते हुए टैलीफोन रख दिया। शॉप असिस्टेंट सक्सेना के जान में जान आई। 'बॉस' आज तीन घण्टे से सारे मातहतों पर बिगड़े हुए थे, कारण केवल यह था कि ओवल्टीन के दामों में अचानक ही पचास पैसे की वृद्धि हो गई थी और खन्नाजी को चेक अप करने पर मालूम हुआ कि उनके स्टॉक में केवल पाँच ही डिब्बे हैं। अगर इस वक्त सौ डिब्बे भी स्टॉक में होते, तो बैठे-बिठाये पचास रुपये सीधे हो जाते। यह ठीक है कि दो हफ्ते पहले उन्होंने यह कहकर ओवल्टीन का आर्डर देने को मना कर दिया था कि इसका मार्केट डाउन जा रहा है, लेकिन अब तो नुकसान हो ही गया था और इसकी झुँझलाहट भी किसी न किसी पर निकलनी थी इसलिए शॉप असिस्टेंट, सेल्समैनों, यहाँ तक कि एक-आध छोटे-मोटे ग्राहकों पर भी वह बरस पड़े थे। भगवान भला करे शकुन्तला जी का, जिन्होंने ऐन मौके पर मालिक का मूड ठीक कर दिया, वरना आज न जाने कितनी बातें और सुननी पड़ती, शायद एक आध की नौकरी भी जाती।

खन्नाजी ने शॉप असिस्टेंट से कहा, "देखो सक्सेना, मैं एक जरूरी काम से जा रहा हूँ। तुम इन लोगों (तात्पर्य सेल्समैनों से था) जरा निगाह रखना, तुम इन लोगों से बहुत नरमी से बर्ताव करते हो, सब सर चढ़ रहे हैं। बिल्टियाँ छुड़ाने के लिए रामसेवक को भेज दिया है न ? और देखो, रजिस्टर वगैरह सब होशियारी से रखना, यह इनकम टैक्स वाले किसी वक्त भी आ पड़ेंगे। मिसेज, मुल्ला की चिट आयी है, चार बजे तक उनके यहाँ सामान पहुँच जाय। और कोइ बात ?"

शामत के मारे असिस्टेंट ने मालिक के मूड का जरूरत से ज्यादा फायदा उठाना चाहा। धीरे से बोला, "यह लोग दशहरे के लिए कुछ ऐडवांस चाहते है। कहिये तो……।"

"जी नहीं," खन्नाजी का क्रोध भड़क उठा, "किसी को कुछ देने की जरूरत नहीं।" सक्सेना सकपका कर चुप हो गया। खन्नाजी इस समय अधिक क्रोध करने के मूड में नहीं थे। धीरे से बोले, "तुम्हें जरूरत हो तो कुछ ले लेना। ड्राइवर से कहो गाड़ी तैयार रखे।"

चलने के पहले खन्ना साहब ने अपनी दुकान का एक और राउण्ड लिया और मातहतों को हलकी-फुलकी डाँट-डपट करके गाड़ी में जा बैठे। दस मिनट में गाड़ी श्री कृष्णदत्त पाण्डेय के बँगले पर पहुँच गई। पाण्डेयजी अपनी छात्रा और नवोदित रेडियो गायिका कुमारी शकुन्तला गुप्त के साथ उनकी प्रतीक्षा ही में थे। कुमारी जी से परिचय होने पर खन्ना साहब ने अपने तोंद युक्त भारी भरकम शरीर को झुकाकर यथासम्भव हाथ जोड़े, प्रत्युत्तर में अभिवादन करते समय शकुन्तला जी की देह-लता हजार जगह से बल खा गई, अलसायी सी आँखें चमक उठीं, होठों पर मादक मुस्कान खेल गई, वातावरण खिल उठा।

"आपकी स्वर-लहरियों से तो रेडियो की कृपा से पहले से भी परिचय रहा है, किन्तु दर्शन का सौभाग्य आज ही प्राप्त हुआ। ही ही ही।" उत्तर में एक बार फिर वही मादक मुस्कान।

सांस्कृतिक केन्द्र की कार्यकारिणी के पूर्व घोषित समय से आधा घण्टा अधिक हो गया था, इसलिए केवल पन्द्रह मिनट के तकल्लुफ के बाद सब लोग कार में जा बैठे। खन्नाजी सौजन्यवश स्वयं ही ड्राइवर की बगल में बैठना चाहते थे। लेकिन पाण्डेयजी ने भी कच्ची गोलियाँ नहीं खेली थीं, चौवन-पचपन वर्ष के खुर्राट थे। उन्हें खन्नाजी से सांस्कृतिक समारोह के लिए दो हजार रुपया वसूल करने थे (वादा तो खन्नाजी पहले ही कर चुके थे), इसलिए वे मना करते-करते ड्राइवर की बगल में जा बैठे। बैक सीट का तीन चौथाई खन्नाजी ने और एक चौथाई शकुन्तला जी ने घेर लिया। कार तेजी से वैरिस्टर मुखर्जी की कोठी की ओर चल पड़ी।

कार्यकारिणी के सदस्य काफी देर से जमा थे और अपने अध्यक्ष पाण्डेय जी की प्रतीक्षा मे हँसी-मजाक करके समय काट रहे थे। किन्तु समिति का उपमन्त्री आशीष मुखर्जी इस टोले-पोलेपन पर बहुत झुँझलाया मालूम हो रहा था। कार की आवाज सुनकर वह बाहर आया और पाण्डेय जी को शकुन्तला जी तथा खन्ना जी के साथ दखकर और जल गया। ये लोग कार से अच्छी तरह उतर भी

न पाये थे कि बोल पड़ा, "पाण्डेय जी ! आप लोग ही पंकचुएलिटी का ऐसा आदर्श रखेंगे तो कैसे काम चलेगा। साढ़े तीन का साढ़े चार बजनेवाला है।"

खन्ना जी और शकुन्तला जी दोनों को यह स्वागत बुरा लगा, लेकिन बात तो गलत नहीं थी, इसलिए चुप रहे। पाण्डेय जी को क्रोध आता ही नहीं था—मतलब यह कि उचित समय ही पर आता था। आशीष जैसे प्रभावशाली कलाकार को नाराज करने का सवाल ही नहीं उठता था। उन्होंने हँसकर कहा, "अरे भाई गलती हो गयी, सजा दे लेना। बिगड़ते क्यों हो !"

आशीष की भड़ास निकलने का अवसर नहीं मिला। बेचारा हँसकर चुप हो गया।

कारवाई शुरू हुई। एजेंडा (कार्यसूची) था—आनेवाले विशाल सांस्कृतिक समारोह का संगठन और कार्य-विवरण। मन्त्री महोदय श्री उपाध्याय तो बेचारे 'सीदे सादे' अध्यापक थे, जिनका उद्देश्य अपने सांस्कृतिक जीवन को विस्तृत करके अपने पद को अक्षुण्ण करने के अलावा और कुछ न था, इसलिए वे तो 'जैसी पंचों की राय वैसी मेरी राय' पर अमल करते थे। लेकिन पाण्डेय जी को असली परेशानी इस उपमन्त्री से थी, जो हर बात में खुरपेंच निकाल दिया करता था। मुश्किल यह थी कि उसका सहयोग अपरिहार्य था, क्योंकि एक तो वह नगर का सबसे कलाकार माना जाता था, दूसरे एक प्रतिष्ठित बैरिस्टर का पुत्र होने के नाते उसकी अभिजात वर्ग में अच्छी पैठ थी और सीधी-सी बात है कि अभिजात वर्ग की उपेक्षा करके कोई सांस्कृतिक समारोह नहीं हो सकता।

बैठक शुरू होने पर पाण्डेय जी ने यह खुशखबरी दी कि उन्होंने शिक्षामन्त्री को समारोह के उद्घाटन के लिए राजी कर लिया है। लेकिन अब यह जिम्मेदारी आ पड़ी है कि 'शरदोत्सव' का प्रोग्राम काफी बड़ा और रोचक रखा जाय। उन्होंने यह भी सुझाव रखा कि शास्त्रीय संगीत और नृत्य के अतिरिक्त कार्यक्रम में सुगम संगीत और हलके-फुलके नृत्यों को रखा जाय और एक-आध प्रहसन भी हो; क्योंकि श्रोताओं और दर्शकों में तो शास्त्रीय रुचि के लोग कम ही होते हैं।

आशीष का जी और जल गया। उसे शकुन्तला गुप्त की फिल्मी रुचि से वैसे भी चिढ़ थी और यहाँ उन्हें ही कार्यक्रम में प्रमुखता देने की तैयारी हो रही थी। उसने आपत्ति की, "यह बात तो अच्छी है कि सबकी रुचि का कार्यक्रम रहे। किन्तु हमारे पास इतने साधन कहाँ हैं, समय भी नहीं है। 'इम्प्रेक्टीकेबिल' बात मालूम....।"

शकुन्तला जी को बोलने का मौका मिला। बोली, "इसमें 'इम्प्रेक्टी केबिल'

क्या है ? आर्टिस्टों की कोई कमी है ? आशीष जी को शायद बंगाली आर्टिस्टों के अलावा और किसी का पता नहीं है। आर्टिस्टों का जिम्मा मैं लेती हूँ।"

"और रुपये का इंतजाम कौन करेगा ?" आशीष ने व्यंग्यपूर्ण मुस्कान के साथ पूछा।

पाण्डेय जी ने कहा, "तुम कुछ चिन्ता न करो आशीष ! भगवान की दया से सब काम हो जायेगा। मैंने अंदाजा लगा लिया है। लगभग चार हजार में अच्छी तरह काम चल जायेगा।"

"लेकिन चार हजार तो बहुत होता है।" कई आवाजें एक साथ उठीं।

"कुछ ज्यादा नहीं होता। हम लोग इतना बड़ा उत्सव कर रहे हैं, इसे देखते हुए चार हजार तो क्या दस हजार भी कम है। क्यों खन्ना जी ! आप की क्या राय है ?" पाण्डेय जी बोले।

"कोई ऐसी मुश्किल बात तो नहीं है, हो जाना चाहिए।" खन्ना जी पहली बार बोले।

आशीष गर्मी में बोला, "चाहिए की बात नहीं है साहब, हमलोग जान लगाकर भी कोशिश करेंगे, तो हजार-बारह सौ से ज्यादा जमा नहीं कर सकते। रुपए मिलने का पक्का बन्दोबस्त हो, तभी आगे का कार्यक्रम निश्चित किया जाय। वरना बेकार की.....।"

खन्ना जी कुछ रोब के साथ बोले, "आप लोग कार्यक्रम निश्चित कीजिए। दो हजार मेरी ओर से रहे। आप लोगों को रुपये के लिए भटकने की जरूरत नहीं है। काम तो समय पर होना ही चाहिए। अच्छा पाण्डेय जी, अब मुझे आज्ञा दीजिए। चेक कल भेज दूँगा।"

लेकिन, इतना बड़ा दान अकेले ही देनेवाले को इस तरह कैसे जाने दिया जा सकता था। खन्ना जी को रुकना ही पड़ा। आशीष और उसके नवयुवक साथी चित हो गये। कार्यकारिणी ने कई निर्णय लिये—खन्ना जी को केन्द्र का उप-सभापति बनाया गया, शकुन्तला जी के सुझाव पर लोकगीत और लोकनृत्य के भी कुछ कार्यक्रम बढ़ाये गये। रंगमंच के अनुभवी आशीष को स्पष्ट दिखायी दे रहा था कि सारे कार्यक्रम ठीक तरह किये जायें तो कम-से-कम बारह घंटे लगेंगे। एक रात तो किसी तरह इसके लिए काफी नहीं हो सकती, फिर इतने बड़े आयोजन का प्रबंध कौन करेगा। उसने एक बार हलके से अपनी यह शंका प्रकट भी की, लेकिन पाण्डेय जी की चिरपरिचित, 'चिन्ता न करो, सब हो जायेगा" शब्दों ने उसको जबान बन्द कर दी।

बैठक के उपरान्त चाय आयी। खन्ना जी को चाय पीने की इच्छा न थी, इसलिए उन्होंने चाय नहीं पी। आशीष के साथियों की भौंवें तन-सी गई, लेकिन किसी ने कुछ न कहा। कोई कहता भी क्या।

इसके बाद के आठ दिनों का—यानी जबतक शरदोत्सव की रात नहीं आयी—इतिहास कुछ विचित्र-सा है। आशीष और उसके साथियों ने अपना नेतृत्व समाप्त होने पर भी कार्यक्रम को सफल बनाने का भरसक प्रयत्न किया। करते भी क्यों नहीं? शहर भर में शरदोत्सव की चर्चा थी और कला तथा संस्कृति में रुचि रखनेवाले इन्हीं लोगों से उसके बारे में पूछा करते थे। लेकिन मुश्किल यह थी कि अब इन्हीं लोगों को मालूम न हो पाता था कि क्या हो रहा है और क्या होनेवाला है। आमद-खर्च का हिसाब-किताब अब किसी अज्ञात कारण से मन्त्री महोदय इनसे छुपाने लगे। सीटिंग, लाइट, लाउडस्पीकर, नाश्ता पानी, स्टेज, परदे, सेट आदि का क्या प्रबन्ध हो रहा है, इसके बारे में मन्त्री महोदय अध्यक्ष पर बात टाल देते थे और अध्यक्ष महोदय अपना पुराना शस्त्र काम में लाते—"सब हो रहा है, सब हो जायेगा।"

आशीष काफी सुलझा हुआ आदमी था। पाण्डेय जी की इस चाल से वह परिचित हो चुका था कि वे नगर के सांस्कृतिक जीवन में उसकी अपरिहार्यता का विश्वास उठाना चाहते थे। वह इस झमेले से बाइज्जत बच निकलना चाहता था। लेकिन उसके साथियों में इतना धैर्य नहीं था। वे इस कमीनेपन पर उत्तेजित हो उठते थे, लेकिन आशीष उन्हें समझाबुझा कर ठंडा कर देता था, उसे विश्वास था कि समारोह के बाद वह सब मामला ठीक कर लेगा और पहले खन्ना जी और बाद में पाण्डेय जी का भी आधार खो देगा। शकुन्तला जी तो हैं ही किस गिनती में?

यहां शकुन्तला जी का भी कुछ परिचय दे देना जरूरी मालूम होता है। उनका कद पाँच फीट ढाई इंच, कमर की नाप लगभग पच्चीस इंच और रंग गेहुएँ और सांवले के बीच का था। उसका अंदाज यही समझ लीजिए कि एम० ए० फाइनल में थीं। आँखें बड़ी-बड़ी और 'अमिय हलाहल मद' भरी थीं, बाकी नाक-नक्शा वैसा ही था, जैसा उत्तर प्रदेश की औसत लड़की का होना चाहिए। हावभाव, चालढाल, लहजा वगैरा नरगिस और निम्मी के बीच का समझ लीजिए। बाप गोरखपुर में लकड़ी के एक बड़े व्यापारी थे। वीमेंस हॉस्टल में रहकर शिक्षा प्राप्त कर रही थीं। पाण्डेय जी की कृपापात्र थीं और उन्हीं की कृपा के कारण प्रीवियस में इतने अच्छे नम्बरों से पास हुई थीं कि इस कृपा के कायम रहने पर फाइनल में फर्स्ट क्लास में आने की आशा विश्वास की सीमा को छू सकती थी। इसी कृपा के परिणामस्वरूप रेडियोवालों से परिचय

हो गया था और अक्सर हलके-फुलके गानों के प्रोग्राम दिया करती थीं। इरादा साधारण लड़कियों की तरह शादी करके घर-गृहस्थी के चक्कर मे पड़ने का बिल्कुल ही नहीं था। आशीष से कुछ नाराज थीं, क्योंकि उसने इनकी लाख खुशामद पर भी इन्हें पहले सांस्कृतिक केन्द्र के मंच पर लाना मंजूर नहीं किया था। हाँ, इस समारोह के लिए पाण्डेय जी के कहने पर—पाण्डेय जी को हिन्दी के प्रमुख नाटककार होने की हैसियत से उपेक्षा भी नहीं की जा सकती थी—शकुन्तला जी को कार्यकारिणी में रख लिया गया था, लेकिन आशीष उन्हें अधिक बोलने नहीं देता था।

शरदोत्सव के दिन भी शाम को चार बजे तक आशीष और उसके मित्र पाण्डेय जी के आदेशों पर गवर्नमेंट हाउस (जहाँ पर राज्य के शिक्षा मन्त्री ठहरे हुए थे) और सांस्कृतिक केन्द्र के कार्यालय के चक्कर लगाते रहे। उन्हें मंच पर ध्यान देने की फुर्सत तभी मिली, जब पाण्डेय जी तथा अन्य गण्यमान नागरिक मन्त्री महोदय को दी गई चाय पार्टी में लग गये। किन्तु मंच का हाल देखकर इन लोगों के हाथों के तोते उड़ गये। समारोह सात बजे से आरम्भ होनेवाला था, पाँच बज चुके थे और यहाँ यह हाल था कि बिजली वाले ने अभी तार लगाना ही शुरू किया था, स्टेज का कहीं पता नहीं था, फर्नीचर आ तो गया था, लेकिन हॉल के पीछे पहाड़ की तरह पड़ा हुआ था।

लेकिन आशीष की प्रबन्ध कुशलता ऐसे ही अवसरों पर देखते बनती थी। उसने दो घण्टे के अन्दर ही दौड़-धूप करके जल्दी-जल्दी कुछ-न-कुछ प्रबन्ध कर दिया। सिर्फ कुर्सियाँ काफी बेतरतीबी से लगीं, कतारों के बीच निकलने की भी ठीक तरह स जगह न रही।

चाय पार्टी ढाई घण्टे तक चली। इसके बाद मन्त्री महोदय उद्घाटन के लिए पधारे। पाण्डेय जी ने माइक पर मन्त्री जी के स्वागत भाषण में बीस-पच्चीस मिनट तक उनकी प्रशस्ति की।

अब मौका पाकर आशीष ने उपाध्याय जी से कार्यक्रम पूछा, तो उन्होंने जो लिखित कार्यक्रम दिया, उसे देखकर आशीष को दूसरा धक्का लगा। उसके द्वारा आयोजित लगभग सभी कार्यक्रमों को काट दिया गया था। परेशानी यह थी कि उसने शास्त्रीय नृत्य और संगीत के कार्यक्रमों के लिए नगर के कुछ प्रतिष्ठित कलाकारों लो बुला लिया था। उसने पूछताछ की तो उपाध्याय जी बड़े भोलेपन से बोले, "कार्यक्रम बहुत बढ़ रहा था, इसलिए पाण्डेय जी ने कुछ पूर्व निश्चित 'आइटेम्स' को काट दिया है। बात यह है कि शुरू में इस बात का अन्दाजा नहीं था कि इतनी देर तक......।"

आशीष अब अपने को न सँभाल सका, "पाण्डेय जी के बाप को भी तमीज है कि क्या रखना चाहिए और क्या काटना चाहिए। तमाम कूड़ा भर लिया और अच्छे 'आइटेम्स' काट दिये। वे होते कौन हैं काटने वाले? इतने बड़े-बड़े कलाकार आकर बैठे हैं, उन्हें क्या मूर्ख समझ लिया था?"

उपाध्याय जी खुद भी प्रोफेसर थे, अपने पुराने गुरु का यह अपमान उन्हें बर्दाश्त न हुआ। बिगड कर बोले, "आपके दिमाग में बहुत गर्मी है आशीष जी! आपके कलाकारों को बुलाया किसने·······"।

"मैंने बुलाया है, और कार्यकारिणी के निर्माण के अनुसार बुलाया है। आप लोगों ने इन सांस्कृतिक कार्यक्रमों को घर की खेती समझ लिया है?" आशीष की आवाज तेज हो गई।

"भई, मैं कुछ नहीं जानता। जो कुछ किया है, पाण्डेयजी ने किया है, उन्हीं से पूछो।" कहकर उपाध्याय जी दफ्तर की ओर लपके। उन्हें अपनी रिपोर्ट पढ-कर सुनानी थी और सारे कागजात अभी दफ्तर ही में रखे थे। आशीष और उसके साथी विचार करने लगे कि अब क्या किया जाय। रामसुन्दर सिंह बिगड़ कर बोले, "और लो आशीष! उस बूढ़े खूसट पर विश्वास करने का नतीजा·······।

बात काटकर आशीष बोला, "भई, पुरानी बातें छोड़ो। इस समय बताओ क्या करना चाहिए।"

वॉल्टर ने कहा, "सीधी बात है। स्टेज पर कब्जा कर लिया जाय। प्रोग्राम हमारा ही होगा।"

"नहीं यह ठीक नहीं है। इससे हमारी बड़ी बदनामी होगी।" आशीष ने समझाया।

वॉल्टर बिगड़ा, "फिजूल बात है। वैसे ही कौन बड़ी नेक-नामी कमा लोगे। क्या मुँह·······?"

तब तक आशीष ने बगल से निकलते हुए पाण्डेयजी को लपक कर पकड़ा। कहा, "पाण्डेयजी! यह क्या गजब किया आपने? सारे क्लासिकल आइटम्स काट दिये और मुझे मालूम भी न हुआ। मैंने सब आर्टिस्ट्स को बुला लिया। अब क्या इनकी बेइज्जती करवाइयेगा? क्या सोचकर·······?"

पाण्डेयजी गरम लोहे को पिघलाने में सिद्ध हस्त थे। एक क्षण तक दुःख मिश्रित आश्चर्य का अभिनय करने के बाद आंखों में आंसू भर लाये। टोपी उताकर सर झुका दिया। बोले, "भइया, दस जूते मार लो इस बुड्ढे को, लेकिन इस समय लाज रखो किसी तरह। मैं तो सटिया गया हूँ, क्या कहूँ?"

आशीष ठंडा पड़ गया, "अरे पांडेयजी आप भी क्या बातें करते हैं……
लेकिन अब होगा क्या ?" पाण्डेयजी ने गोया किला फतेह कर लिया। बोले, "भाई, मैं तो तुम्हीं लोगों पर निर्भर करता हूँ। जो ठीक समझो, करो। मुझे इस समय छुट्टी दो, मन्त्री महोदय अकेले बैठे हैं। उन्हें भेजने भी जाना होगा।"

आशीष ने समझ लिया कि कुछ नहीं हो सकता। कलाकारों से क्षमा-याचना करनी ही पड़ेगी। दुर्भाग्य से आशीष की परेशानियों का अन्त यहाँ नहीं हुआ। उसके द्वारा आमन्त्रित कलाकारों में अधिकतर गम्भीर व्यक्ति थे। उन्हें इस बात की सूचना किसी प्रकार मिल चुकी थी कि कार्यक्रम में कुछ गड़बड़ी हो गई है। उन्होंने आशीष को माफी माँगने का मौका ही नहीं दिया. पहले ही मंच पर आने से इनकार कर दिया। लेकिन असली दिक्कत यह थी कि शकुन्तला जी द्वारा आमन्त्रित कलाकारों का भी कोई पुरसाहाल न था। बेचारी लड़कियाँ एक ओर सिमटी-सिकुड़ी बैठी थीं, पार्श्वकक्ष में सारा प्रबंध गड़बड़ था, यहाँ तक कि नृत्य की पोशाक और घुघरुओं का भी ठीक प्रबंध न था। लोकगीतों के साथ के लिए जो ढोलक मँगायी गई, वह ऐन मौके पर मालूम हुआ कि कुछ फटी थी। किसी को इतनी भी फुर्सत न थी कि कलाकारों से पानी के लिए भी पूछता।

आशीष को इस समय अपनी प्रतिष्ठा से अधिक केन्द्र की व्यवस्था का ध्यान था। फिर भी वह उपाध्याय के पास गया कि प्रबंध में जो कुछ कमी है, वह सब भी बाजार से सामान मँगाकर पूरी की जा सकती है और इसके लिए वे कुछ पैसे दें। उपाध्याय जी ने कहा कि पैसे इस समय शकुन्तला जी के पास हैं।

अब शकुन्तला जी की खोज शुरू हुई। शिक्षामन्त्री एक-आध प्रारंभिक कार्यक्रम देखकर जा चुके थे। दर्शकों में काफी चीख-पुकार मची हुई थी; क्योंकि प्रारम्भिक कार्यक्रम जो उबाने वाले साबित हो रहे थे। अजीब उलझन थी। आशीष और उसके साथी शकुन्तला जी की खोज में लगे, किन्तु उनका कहीं पता नहीं था। पाँच मिनट बाद उन्हें हाल के पीछे वाले लॉन में एक अपेक्षाकृत अँधेरे भाग में एक बेंच पर पाया गया। उनके साथ सांस्कृतिक केन्द्र के उपसभापति श्री पुरुषोत्तमलाल खन्ना भी बैठे थे।

यह देखकर आशीष आपे से बाहर हो गया। उसने लगभग चीखते हुए कहा, "शकुन्तला जी आप यहाँ क्या करने आयी हैं ? वहाँ सारा आयोजन ढेर हुआ जा रहा है आप यहाँ मजे…… ।"

शकुन्तला जी अपने को आयोजन की अधिष्ठात्री समझती थीं। इतना

अपमान कैसे बरदाश्त करतीं। क्रोध से घुटी हुई आवाज में बोलीं, "आप लोगों को बात करने की भी तमीज नहीं है?"

खन्ना जी गरजे, "निकल जाओ बदतमीजों यहाँ से। भागो नहीं तो मार-मार के···।"

लेकिन, खन्ना जी कुछ गलती कर गये। उन्हें नहीं मालूम था कि पानी सर से ऊपर चढ़ गया है। उनकी बात पूरी होने के पहले ही रामसुन्दर सिंह के पहलवानी झापड़ से उनका मुँह फिर गया। दूसरे थप्पड़ के लगते ही वे अपनी कार की ओर भागे, तो पीछे से एक लात भी जमायी गई।

शकुन्तला जी थर-थर काँपने लगीं। खैरियत थी कि सारे लोग हॉल में और उसके सामने जमा थे। इस जगह आस-पास लगभग सुनसान था। आशीष के हाथ फैलाते ही शकुन्तला जी ने लगभग अस्सी रुपए उसके हाथ पर रख दिये। आशीष के साथियों ने तुरन्त ही तय कर लिया कि क्या करना है। शकुन्तला जी को खामोशी से पार्श्वकक्ष में बैठने का आदेश दिया गया। कार्यक्रम में तुरंत परिवर्तन कर दिया गया और कुछ शास्त्रीय तथा कुछ सुगम संगीत और नृत्य का मिला-जुला आयोजन कर दिया गया। शकुन्तला जी का कोई आइटम नहीं रखा गया।

पाण्डेय जी को इस अप्रत्याशित कांड की भनक मिल चुकी थी, वे चुप-चाप अगली सीट पर बैठे रहे। कार्यक्रम में उन्होंने कोई दखल नहीं दिया। वे हर मौके पर अपनी इज्जत बचाना जानते थे।

कार्यक्रम काफी सफल रहा। शुरू की थोड़ी गड़बड़ी को बाद के रोचक कार्यक्रम के आगे लोग भूल गये। रात के दो बजे तक हॉल ठसाठस भरा रहा। पाण्डेय जी को इस सफल आयोजन के लिए ढेर सारी बधाइयाँ मिलीं, जिन्हें उन्होंने मुस्कराकर स्वीकार किया।

लेकिन दुर्भाग्य से खन्ना जी की मरम्मत के दृश्य को नगर के सस्ते और गंभीरता विहीन दैनिक 'मस्ताना' के सम्पादक ने देख लिया था। दूसरे दिन शाम को नगर निवासियों के चर्चे का यही विषय बन गया था।

●●●

२

"मि० अब्दुर्रहमान…."

"येस सर।"

"मिस अ.विदा जैदी…"

"येस सर।"

"मि० अवध बिहारी लाल…."

"येस सर।"

"मि० बख्तियार रिजवी…."

"……………………"

"मि० बख्तियार रिजवी…" हाजिरी लेने वाले डॉ० सिद्दीकी ने दुबारा जोर देकर कहा।

"डॉक्टर साहब ! बख्तियार साहब जिस्मानी तौर पर क्लास में हाजिर हैं, लेकिन रूहानी तौर पर किसी दूसरे आलम की सैर कर रहे हैं।" एक चंचल छात्र ने कहा।

पूरा क्लास हँसने लगा। बख्तियार साहब चौंके और घबराकर बोले, जी…जी…सर ! येस सर !" क्लास की थमती हुई हँसी को एक और सहारा मिला।

डॉ० सिद्दीकी की भी विनोद की रग फड़की। उन्होंने निहायत सहूलियत से कहा, "अजी साहब, दो दो जबानों में हाजिरी देने की क्या जरूरत थी ? एक ही से काम चल जाता। मैं तो थोड़ी-थोड़ी अँग्रेजी, उर्दू दोनों जबानें जानता हूँ।"

अब क्लास का हँसी के मारे बुरा हाल था। लड़कियां तक खुलकर हँस रही थीं और मि० बख्तियार रिजवी का चेहरा तरह-तरह के रंग बदल रहा था।

हाजिरी खत्म हुई। डॉ० सिद्दीकी ने रजिस्टर बन्द कर दिया, लेकिन किताब नहीं खोली, मेज पर हाथ से हाथ मिला कर बैठ गए और आँखें

चमकाते हुए छात्रों की ओर देखने लगे। छात्रगण समझ गए कि आज डॉक्टर साहब का मूड दूसरा है और उन्हें भारी-भरकम लेक्चर या जी उबाने वाले नोट्स से छुटकारा मिल गया है। डॉ० साहब ने इधर-उधर नजरें घुमाने के बाद बख्तियार साहब पर निगाहें जमा दीं। पूछा, "बख्तियार साहब! इस वक्त आप इसी दुनियां में हैं या कहीं और?"

बख्तियार का आत्मविश्वास लौट आया था। मुस्कुराकर बोला, "डॉक्टर साहब! मैं वैसे ही बहुत शर्मिन्दा हूँ। आप और शर्मिन्दा क्यों कर रहे हैं?"

डॉक्टर साहब कुछ कहें, इसके पहले एक अन्य छात्र, सम्पत राय, बोला, "डॉक्टर साहब! शायर के लिए वे जमानों-मकां (देशकाल) की कैद नहीं रहती। वह किसी वक्त किसी आलम में पहुँच सकता है।"

"अच्छा, तो यह बात है? मुझे तो मालूम ही न था। बख्तियार साहब! आप शेर भी कहते हैं?" डॉक्टर साहब के लहजे में विनोद का पुट और गहरा हो गया था, 'शेर' शब्द उन्होंने जोर के साथ कहा।

बख्तियार झुँझला-सा गया। अपना अपमान तो मुस्करा कर पिया भी जा सकता है—अक्सर पीना ही पड़ता है—लेकिन कला का अपमान! उसने डॉक्टर साहब से निगाहें मिलाकर कहा, "जी हाँ! कहता हूँ, और····गुस्ताखी मुआफ हो, रूखा-सूखा नहीं कहता, जायकेदार और असरदार कहता हूँ····।"

डॉक्टर साहब को यह उद्दण्डता अच्छी न लगी। बड़े-बड़े शायर अपने कलाम की तारीफ नहीं करते, झूठी ही सी, लेकिन विनम्रता दरशाते तो हैं। और एक यह साहब हैं, कल के छोकरे, दो तुकबंदियां करके क्लास ही में शान झाड़ रहे हैं। डॉ० सिद्दीकी ने तय कर लिया कि इस तनी हुई गर्दन को झुकाना ही चाहिए वरना कक्षा के अनुशासन की जड़ में कीड़ा लग जायेगा। यह ठीक है कि डॉ० सिद्दीकी उद्भट विद्वान और सफल अध्यापक होने के नाते अनुशासन के थर्ड डिग्री तरीके—यानी निराधार डाँट डपट में विश्वास नहीं करते थे, लेकिन अध्यापक होने के नाते अनुशासन रखना तो उनका कर्त्तव्य था ही। इसलिए वे अपनी समस्त आलोचनात्मक क्षमता के हथियारों से लैस होकर मैदान में उतर आये। बोले, "तो अगर कुछ हर्ज न हो, तो एक आध गजल इनायत हो जाय।"

सभी छात्र उत्सुकतावश सांस रोके हुए थे। स्पष्ट था कि आज डॉ० सिद्दीकी की आलोचना की कैंची बख्तियार साहब की शायरी की बखिया उधेड़ने वाली है। किसी शेर में रूपक या उपमा की अनुपयुक्तता दिखायी जाएगी, किसी में कोष खोलकर किसी शब्द का गलत अर्थ में प्रयोग दिखा दिया जाएगा, किसी में

छन्द शास्त्र की भूल दरशायी जाएगी और जो शेर इन छुरियों से बच जायेंगे उनके बारे में उदाहरण देकर यह साबित कर दिया जाएगा कि वे 'मीर' या 'गालिब' या 'दाग' या 'इकबाल' के फलाँ-फलाँ शेर की बहुत ही अपूर्ण नकल है। कुछ नहीं तो भाषा की लड़खड़ाहट और बन्दिश का फुसफुसापन या ताकीद का दोष तो दिखा ही दिया जाएगा या हश्वे कबीह·······

लेकिन बख्तियार को कोई परेशानी न थी। जरा सा सर झुकाकर बोला, "जैसा इरशाद हो।"

"यूँ नहीं, इधर आइए मैदान में।" डॉक्टर साहब ने एक अदृश्य मुस्कुराहट के साथ कहा। बख्तियार उठा और झूमता हुआ आकर डॉ० सिद्दीकी की मेज की बगल में खड़ा हो गया। दूसरे ही क्षण उसकी ऊँची और सुरीली आवाज गूँजने लगी। छात्रगण मतले पर ही सर धुनने लगे। बगल में हिन्दी का एम० ए० फाइनल का क्लास लगा था और पण्डित दीनदयालु दुबे पद्मावत की व्याख्या कर रहे थे। लेकिन, बख्तियार की स्वर लहरी ही ने (उसके शब्द तो दूसरे क्लास में स्पष्टतः सुनायी ही नहीं दे सकते थे) जायसी का रहस्यवाद उड़ा दिया। हिन्दी के छात्र बेचैन से होने लगे। पण्डित जी ने मुस्कुराते हुए अपनी नोट्स की पुरानी कापी बन्द कर दी और बोले, "लो भाई, फिर शुरू हो गया सिद्दीकी साहब का मुशायरा। अब बेचारे जायसी की घिस-घिस कौन सुनेगा।"

हिन्दी के छात्र बरबस ही हँस पड़े। एक ने कहा, "पण्डित जी, क्यों न यहाँ भी कवि सम्मेलन शुरू कर दिया जाय? यहाँ कुछ कवि-पुंगवों की कमी है?"

"करो, लेकिन तारीफ जब है कि उर्दू का मुशायरा बन्द करवा दो, नहीं तो कोई बात नहीं हुई।"

किन्तु, इस अग्नि परीक्षा के लिए कोई छात्र कवि तैयार नहीं हुआ। इधर उर्दू का क्लास वाह वाह से आसमान सर पर उठाये था। डॉ० सिद्दीकी ताज्जुब और गौर से अपने छात्र का शायराना कमाल देख रहे थे। उसकी कविता दोष-रहित तो थी ही, साथ ही इतनी ताजगी लिये हुए थी कि डॉक्टर साहब दो-तीन शेरों के बाद ही छिद्रान्वेषण का असफल प्रयत्न छोड़कर शेरों में रस लेने लगे थे, यद्यपि उन्होंने अपने मुँह से 'वाह, वाह' नहीं की। बख्तियार गजल खत्म करके जब अपनी सीट की तरफ जाने लगा, तो डॉक्टर साहब ने अपने तरकश का आखिरी तीर निकाला, "क्यों साहब, आप गजल ही में तबा-आजमाई करते हैं या नज्म भी कहते हैं?"

"कुछ न कुछ तो सब कुछ कह लेता हूँ। इजाजत हो, तो नज्म भी पेश करूँ।"

"जरूर, जरूर।"

और बख्तियार ने एक नज्म भी सुनायी, जिसकी तारीफ भी गजल ही की तरह हुई।

सिद्दीकी साहब की अनुशासन-प्रियता इतनी बढ़ी हुई नहीं थी कि उनकी साहित्यिक रुचि में आड़े आती। बोले, "भई, खूब शेर कहते हो तुम। ताज्जुब है इसी उम्र में कलाम में इतनी पुख्तगी आ गई है जैसी बड़े-बड़ों को नसीब नहीं होती। मालूम होता है उर्दू शायरी का मुस्तकबिल चमकाये बगैर न छोड़ोगे।"

गम्भीर बात में भी हास्य का पुट ला देना डॉक्टर सिद्दीकी की विशेषता थी।

बख्तियार की तनी हुई गर्दन इस प्रशंसा से झुक गई। बोला, "सब आप लोगों की दुआ है।"

"कितने अर्से से मश्क कर रहे हो?"

"यही कोई दस साल से।"

"यानी बचपन ही से शायरी की तरफ मायल हो", सिद्दीकी साहब मुस्कुराये, "ठीक ही है। आखिर हो भी किस खानदान से। अदबियत तो तुम्हारे खून में जज्ब होनी ही चाहिए।"

बख्तियार का सर और भी झुक गया।

बख्तियार ने कमरे का ताला खोला, फाइल मेज पर फेंककर बुशर्ट खूँटी पर टाँगी और पैंट उतारे बगैर बिस्तर पर लेट गया। उसके दिल में गुदगुदी मची थी। यूनिवर्सिटी में क्लास खत्म होने पर उसके सहपाठियों ने उसे गोद में उठा लिया था; उसने यह भी लक्ष्य कर लिया था कि क्लास की सभी लड़कियों ने उसे चुरायी-चुरायी नजरों से देखा था—यहाँ तक कि नईमा खातून भी, जो उसे बहुत प्यारी लगती थी और साथ-ही-साथ जो उसे देखकर चिढ़-सी उठती थी। आज उसे कुछ दूसरी ही नजरों से देख रही थी; उर्दू ॲसोसिएशन के सेक्रेटरी ने आज उससे बहुत देर तक बातें की थीं और उसे मुशायरा कमेटी

का कन्वीनर बनाने का आफर किया था। बख्तियार ने सभी बातों का शालीनता पूर्वक उत्तर दिया था। सहपाठियों से उसने मुस्कुराकर जो कुछ कहा, उसका तात्पर्य यही था कि कविता करने के कारण वह उनसे कुछ ऊँचा नहीं हो गया, लड़कियों की चुरायी-चुरायी निगाहों का उत्तर भी उसने गम्भीरता तथा विनम्रतापूर्ण मौन से दिया था—नईमा खातून की ओर भी भूखी नजरों से नहीं देखा था, उर्दू अॅसोसिएशन के सेक्रेटरी से उसने कहा था "मैं किसी काबिल तो नहीं हूँ, लेकिन आपलोग जो भी खिदमत मेरे सुपुर्द करेंगे, उसे बजा लाने की मैं पूरी कोशिश करूँगा।"

वह साधारण समय ही पर हॉस्टल में आ गया था, ताकि कोई यह न कह सके कि फूला-फूला फिरता है। यूनिवर्सिटी गेट से बाहर निकलते हुए उसने देखा था कि एक छैला किस्म के विद्यार्थी महोदय एक पेड़ के साये में खड़े थे और इधर-उधर आती-जाती छात्राओं की ओर चारों ओर घूम-घूमकर झुक-झुककर दूर ही से हवाई चुम्बनों की बौछार कर रहे थे और आते-जाते छात्र इस निराली सूझ पर फबतियों द्वारा दाद दे रहे थे। आज बख्तियार को इस दृश्य को देखकर हँसी भी न आयी थी—वह अपने को इस बचकानेपन से बहुत ऊँचा महसूस कर रहा था और प्रोफेसरों की भाँति इस असभ्यतापूर्ण दृश्य की उपेक्षा करके अपने रास्ते पर आगे बढ़ गया था।

लेकिन जिस सहजता और गम्भीरता को उसने दूसरों के सामने सफलता पूर्वक कायम रखा था, उसने एकांत में उसका बिल्कुल साथ छोड़ दिया। वह आँखें बन्द करके लेटा था, लेकिन उसके मस्तिष्क में सहपाठियों की वाह-वाह, सह छात्राओं की चुरायी-चुरायी नजरें और सबसे बढ़कर डाक्टर सिद्दीकी के शब्द "मालूम होता है उर्दू शायर का मुस्तकबिल चमकाये बगैर न छोड़ोगे" बड़ी तेजी से घूम रहे थे। दिल की धड़कन जोरों पर थी। लेटे-लेटे चैन न पड़ा, तो उठकर टहलने लगा। अपने पर झुंझलाहट आने लगी। 'यह क्या बचपन है? किसी ने दो अल्फाज तारीफ के कह दिए, तो क्या इस तरह दिमाग खराब हो जाना चाहिए? फिर तारीफ भी कोई पहली बार मिली है? कितने मुशायरे इससे पहले नहीं लूट लिये हैं? बेकार बात है, मुझे अपनी मामूली हालत पर रहना चाहिए, बिल्कुल मामूली हालत पर। आखिर हुआ ही क्या है?'

तीन बजे थे, कोई पढ़ने का वक्त नहीं था, फिर बख्तियार ने लाइब्रेरी से लायी हुई एक मोटी पुस्तक उठा ली। आखिर स्वाभाविकता को कैसे वापस लाया जाता? पुस्तक का विषय था 'उर्दू गजल'। बख्तियार उसके पृष्ठ पलटने लगा। गहन आलोचनात्मक भाग भारी-भारी परिभाषिक शब्दों से बोझिल था। दो पृष्ठ पढ़कर भी उसे पता न चला कि वह आखिर पढ़ क्या रहा है? मजबूरन

उसने वह अंश देखने शुरू किए, जहाँ लेखक ने उस्तादों की गजलें नमूने के तौर पर दी थीं। 'इन में तो अपने आप को खोना आसान होता है। हाँ······यह "मीर" है। क्या बात है "मीर" की।' पढ़ना शुरू किया·······'लेकिन यह क्या बकवास की है "मीर" ने ? इन्हीं शेरों पर लोग सर धुनते हैं ? इसे गजल कहते हैं ? मेरी गजल में तो कोई शेर इतना फुसफुसा······लाहौलविला कुव्वत ! फिर वही "मैं" और मेरी "गजल" क्या मुसीबत है !'

बख्तियार ने झुंझलाकर किताब बन्द कर दी और आलमारी में घुसेड़ दी। खिड़की पर खड़ा होकर बाहर देखने लगा। लेकिन, बाहर देखने को था ही क्या। खूबसूरत मगर सुनसान, उदास सड़क बिल्कुल जवान बेवा की तरह मुरझायी हुई, बँगलों के ऊंघते हुए अफीमचियों जैसे पेड़-पौधे, सूखे बदन में सीने के नासूर की तरह खुली हुई पनवाड़ी की गुमटी। कोई क्या देखे, कब तक देखे और आखिर देखे ही क्यों ? वह खिड़की से हट आया। खुली आलमारी में आईने के सामने खड़ा हो गया और ठीक तरह कढ़े हुए बालों पर ख्वाहमख्वाह कंघा फेरने लगा। बेकारी का इससे अच्छा शगल और क्या हो सकता है ? लेकिन कोई जरूरी तो नहीं कि निगाहें आईने में बालों ही के प्रतिबिंब पर केन्द्रित रहें। नीचे भी फिसलती हैं निगाहें। उसे दिखायी दिया अपना चम्पई रंग का लम्बूतरा चेहरा, बड़ी-बड़ी रस भरी आँखें, रोमन टाइप की सीधी नाक, पतले होंठ, गढ़ेदार ढोड़ी—सब मिलाकर शहजादों जैसा चेहरा। यह भी तो आनुवंशिकता का प्रभाव है, पुराने रईस घराने के नौजवान का ऐसा रईसाना चेहरा नहीं होगा तो किसका होगा। डा० सिद्दीकी कह तो रहे थे, "आखिर हो किस खान-दान से !"·······'ओफ ओह ! फिर वही "मैं" ! आखिर इस कम्बख्त "मैं" से कभी छुटकारा मिलेगा या नहीं और आज ही इस "मैं" ने क्यों इतना घेर रखा है ?'

बख्तियार झुंझलाया नहीं। झुंझलाते-झुंझलाते थक गया था इसलिए हँस पड़ा·······अपने ही पर हँस पड़ा। अच्छा आइए "मैं" साहब आना ही चाहें, तो कौन रोक सकता है आपको ? आइए।'

वह लेट गया, आँखें बन्द कर लीं और विचारों के कपाट खोल दिये। 'ठीक ही है। मेरी शायरी अच्छी होती है·······होनी ही चाहिए। मैंने शुरू ही से पुराने उस्तदों को पढ़ा है, समझा और जज्ब किया है। मेरे दिल में उमंगें हैं, दिमाग में ताकत, निगाहों में पैनापन, खून में गर्मी······फिर वालिद साहब की तवज्जुह, दादा जान का प्यार······और वालिद साहब और दादा जान भी कौन ? जिन की इल्मियत का, लियाकत का, शराफत का डंका बजता है। कितने बड़े ताल्लुकेदार हैं लेकिन कितने परहेजगार और खुदातरस, कितने गरीब परवर, कितनी साफ सुथरी तबियत के। मुझे आम लोगों से ज्यादा ऊँचा होना ही चाहिए।

नहीं हूँगा, तो खानदान की नाक कटाऊँगा क्या ? डॉ० सिद्दकी कह रहे थे ······· डॉ० सिद्दीकी आदमी तो अच्छे मालूम होते हैं। ·······मालूम नहीं मुझ पर इम्प्रेशन कैसे पड़ गया था कि वे बहुत घमंडी हैं। बात तो सिर्फ इतनी ही थी कि मैं वालिद साहब का खत लेकर जब दो महीने पहले उनके पास गया था, तो उन्होंने पुरानी दोस्ती के बावजूद वालिद साहब के खत को निहायत बेरुखी से पढ़ा था और बुरा सा मुँह बनाकर कह दिया था कि मैं हास्टॅल के मामले में कुछ नहीं कर सकता और उन्होंने हास्टॅल सुपरिंटेंडेंट साहब के नाम एक चिट लिखना मंजूर नहीं किया था·······लेकिन उनका कसूर भी क्या था ? मुझे बुरा जरूर मालूम हुआ था, लेकिन मुझे क्या मालूम था कि सुपरिंटेंडेंट साहब से उनके ताल्लुकात खुशगवार नहीं हैं·······लेकिन इस बात के अलावा उन्होंने मुझमें कोई दिलचस्पी क्यों नहीं दिखायी थी ? यह तो हो सकता था कि वह मुझसे अलीगढ़ यूनिवर्सिटी के बारे में बातें कर लेते······मालूम होता था कि मेरी सूरत ही से बेजार हैं। होगी कोई वजह·······मुमकिन है कि वह फेवर चाहने वाले स्टूडेंट से परेशान हो गये हों। फिर भी उनकी निगाहें इतनी पैनी तो नहीं होनी चाहिए कि वह आदमी को पहचान लें कि वह किस किमाश का है······ बहरहाल आज तो उन्होंने जो रवैया अपनाया था, उससे नहीं मालूम होता था कि वह मगरूर······· ।'

"हैलो मि० चोर उर्फ मि० हरामखोर ! क्या कर रहे हो साले अकेले-अकेले ?" कहते हुए बगल के कमरे के निवासी प्रभुदयाल मेहरोत्रा ने तूफानी तेजी से प्रवेश किया और अपनी बात का जवाब पाये बगैर उसी रौ मे कहा, "सिगरेट निकालो इधर सीधी तरह से वरना······· ।"

"साले तुम्हारे बाप ने यहाँ पनवाड़ी की दुकान खोल रखी है न ? चल दिए सिगरेट माँगने", बख्तियार ने मुस्कुराते हुए और तकिये के नीचे हाथ डालते हुए कहा।

"अबे सीधी तरह देता है सिगरेट या फिर·······" मेहरोत्रा ने बड़ी अश्लील बात कही।

बख्तियार ने जवाबी गाली देकर सिगरेट पेश की। मेहरोत्रा ने कश लगाते हुए कहा, "उठो, कपड़े पहनो। टाइम हो गया है। कोर्ट में सब हरामजादे आ गए होंगे।"

"भई आज मैं टैनिस में न जा सकूँगा। आज तबियत कुछ ठीक नहीं मालूम होती।"

"यह क्यों नहीं कहते कि कागजी इश्क लड़ाने का मूड हो रहा है। साले

तुम्हारी भी जिन्दगी बर्बाद है। कोई मिलती नहीं, तो कागजी इश्क ही सही। लिखो और चाटो शहद लगाके। बर्बाद हो जाओगे इस शायरी में। याद रखना साहबजादे, यह बुजुर्गों की नसीहत है। छोड़ो यह सब। चलो······मालूम है आज मिस मुकर्जी भी आएँगी ? अब तो चलोगे हः हः हः।"

"नहीं यार तेरी जान कसम आज तबियत ठीक नहीं है। शायरी-वायरी कौन कम्बख्त····।"

"अबे चल भी। वहाँ जाकर तबियत ठीक हो जाएगी। मिस मुकर्जी तो······।"

"फिर वही मिस मुकर्जी ! मैं तो जाऊँगा ही नहीं। तुम भी क्या इन बेकार बातों···।"

"अबे बैठ ! तू क्या जाने यह मजे ? बैठकर नामर्दों की तरह शायराना इश्क किया कर···इससे ज्यादा तेरी किस्मत ही में कुछ नहीं···अच्छा मा बदौलत तो चले। हा हा।"

मेहरोत्रा चला गया, तो बख्तियार फिर सोचने लगा—"यह मेहरोत्रा भी खूब है। लखपती का बेटा है। मस्त साँड़ की तरह से घूमता है। दो साल से फेल हो रहा है, लेकिन कोई परवा ही नहीं। पास होगा भी तो क्या करेगा ? बाप की तरह रुपया बटोरेगा और कमाते-कमाते मर जाएगा। क्या जिन्दगी है···।"

बख्तियार हँस पड़ा। उसने बगैर कुछ सोचे-समझे साइकिल निकाली और डॉ० सिद्दीकी के बँगले की ओर चल दिया।

● ● ●

३

चैथम लाइंस का वह लाल बँगला खाली होते ही भर गया। दाँत तो उस पर बहुतों का लगा था, लेकिन जब खुद मुंसिफ साहब को जरूरत हो, तो टी० आर० ओ० साहब किसी और के नाम उसका अलॉटमेंट करने की हिम्मत ही कैसे कर सकते थे। फलतः आज उसके फाटक पर 'एम० डी० गोयल, मुंसिफ'

के नाम की तख्ती लग ही गयी। एक दिन के सन्नाटे के बाद बँगले में फिर चहल-पहल दिखायी देने लगी।

दिन भर की दौड़ धूप और सामानों की उठा-पटक के बाद हारी-थकी मालकिन दम लेने के लिए लॉन में कुर्सी डलवाकर बैठ गईं। शरद ऋतु की सुहानी शाम, हलकी-हलकी हवा चल रही थी। मिसेज गोयल आँखें बन्द करके आराम कुर्सी पर ही सुस्ताने लगीं। अर्दली ने पूछा, "सरकार यहीं चाय पियेंगी या अन्दर चलेंगी ?"

"यहीं ले आओ।" आंखें खोलते हुए मिसेज गोयल ने कहा। दो-चार मिनट से मालकिन का इन्तजार करते हुए बुड्ढे ने फौरन आगे बढ़कर सलाम किया।

"क्या बात है ?" मिसेज गोयल ने कुछ तेज स्वर में पूछा ! नौकर-चाकर दिन भर से परेशान किये हुए थे और अब यह बूढ़ा न जाने कहाँ से आ टपका था।

"इस बँगले का चौकीदार हूँ सरकार। सलाम को हाजिर हुआ हूँ।" बूढ़े ने कहा।

मालकिन का मूड दुरुस्त हो गया। मुंसिफ साहब जरूरी काम से लखनऊ गये हुए थे। बँगले की पहरेदारी की समस्या अभी सुलझानी बाकी थी। भगवान् ने यह समस्या खुद ही हल कर दी थी। स्पष्ट था कि पहले के किरायेदार अपने चौकीदार को अपने साथ नहीं ले गये थे। बूढ़े की काठी मजबूत थी और काम का आदमी मालूम होता था।

"कहाँ के रहनेवाले हो तुम ? कितने दिनों से यहाँ काम करते थे ?"

बूढ़ा आश्वस्त-सा होकर घास पर बैठ गया। मालकिन अच्छे स्वभाव की थीं, यह उसकी अनुभवी दृष्टि से छुपा न रह सका। उसने जबान खोली तो बन्द ही नहीं की। उसने बताया कि इस बँगले के पूर्ववर्ती निवासी चड्ढा साहब के यहाँ वह पाँच वर्ष रहा है, इसके पहले सामने वाले लड़कियों के हॉस्टल की भी चौकीदारी उसने की है। इलाहाबाद में वह तेरह वर्ष से रहता है। मुहल्ले के सभी लोग उसे जानते हैं। वह इसी क्रम में बोला, "आप चाहें किसी से भी पूछ लें सरकार, मेरा काम कितनी मुस्तैदी का होता है। पहाड़ी साले क्या खाकर...।"

"और चोरी भी बड़ी मुस्तैदी से कराते हो, पासी हो न ?" मालकिन मुस्कुराकर बोलीं।

बूढ़ा ही-ही करके हँसने लगा। मालकिन वास्तव में बड़ी खुशदिल थीं। बूढ़ा कहने लगा, "सरकार, सारी जवानी बीत गई, तब तो ऐसा दाग लगा नहीं, अब काहे के लिए यह सब कराऊँगा। भगवान् को भी मुँह दिखाना है या नहीं। सरकार हम तो समझते हैं कि ईमानदारी की रूखी-सूखी अच्छी, बेईमानी का तर माल भी मिले तो कुछ मजा नहीं। फिर हजूर हम तो माँगकर खा लेंगे, जरूरत होगी तो आपसे लड़-लड़कर लेंगे, चिरौरी करके लेंगे, लेकिन चोरी! राम राम;"

बूढ़ा बकवास करता जा रहा था, मालकिन सुनती जा रही थीं। यह नहीं कि उसके कसमें खाने से उन्हें उसकी ईमानदारी में विश्वास हो गया हो। लेकिन, उसकी बातों में उन्हें मजा आ रहा था। कभा-कभी बेमतलब की बातों में भी इतना मजा आता है जितना काम की बातों में नहीं आता। बल्कि मजा तो दरअसल बेमतलब की बातों ही में आता है। काम की बातें तो काम की बातें ही होती हैं।

बूढ़े ने प्रोत्साहन पाकर कुछ और आत्मीयता जतानी चाही। बोला, "सरकार की शकल कुछ जानी-पहचानी लग रही है। आप इसी 'अनवरसिटी' में तो नहीं पढ़ी हैं? शायद आप सामने वाले लड़कियों के होस्टल में भी रहीं ···।"

मिसेज गोयल यकायक चौंक पड़ीं। उनके चेहरे का रंग क्षण भर के लिए उड़ता सा जान पड़ा लेकिन उन्होंने तुरंत अपने को सँभाल लिया और डपटकर कहा, "नहीं, मैं लड़कियों-वड़कियों के हॉस्टल में कभी नहीं रही। मैं यहाँ आयी ही नहीं।"

बढ़ते हुए अँधेरे में चौकीदार मालकिन के चेहरे का रंग बदलना तो न देख सका, लेकिन उसे इस बात पर ताज्जुब जरूर हुआ कि इस बात पर मालकिन नाराज क्यों होने लगीं? लड़कियों के हॉस्टल में रहना कोई बुरी बात तो नहीं है। लेकिन, यह मनोविश्लेषण का मौका न था। मालकिन चाहे किसी बात से नाराज हुई हों, उन्हें खुश करना जरूरी था। अपनी अड़तालीस वर्ष की आयु में उसे हर तरह के मालिकों का तजुर्बा हो चुका था सीधे-सादे मालिकों का, उग्र स्वभाव मालिकों का और सनकी मालिकों का भी जो प्रायः अकारण खुश और नाराज भी हो जाते थे। लेकिन सबको खुश रखना तो जरूरी था और चौकीदार ने तरह-तरह के मालिकों को खुश करने के लिए तरह-तरह के नुस्खे भी सीख लिये थे। वह सफाई देता हुआ बोला, "ठीक है सरकार! आप यहाँ काहे को पढ़ी होंगी। यहाँ बड़े घरों की लड़कियाँ पढ़ने

क्यों आयेंगी। मैंने तो इसलिए कहा सरकार कि यहाँ एक बीबी जी बिल्कुल आप ही की तरह.... ।"

"जाओ जी, अपना काम करो।" अब मालकिन वाकई गुस्से में आ गई थीं। बोलीं, "तुम इतनी बक-बक करते हो, काम क्या खाक करते होंगे। जाओ, अपना खाना-पीना देखो। ठीक नौ बजे से पहरे पर आ जाना। खबरदार, एक मिनट की देर न होने पाये।"

"बहुत अच्छा सरकार, देर का क्या काम है।" चौकीदार घबराकर उठ बैठा। स्पष्ट था कि मालकिन कुछ सनकी स्वभाव की थीं और उन्हें गुस्से की हालत में छेड़ना ठीक नहीं था। उसने फौजी सलाम दागा और अपनी कोठरी की तरफ चल दिया।

मिसेज गोयल फिर आँखें बंद करके आराम कुर्सी पर पड़ रहीं, लेकिन इस समय उनके मस्तिष्क में सन-सन हो रही थी। उन्हें क्रोध नहीं आ रहा था, लेकिन एक अजीब तरह की घबराहट ने उनके हृदय में घर कर रखा था। ठीक उसी आदमी–जैसी उनकी हालत हो रही थी, जिसने अपने कमरे में साँप को बिल में घुसते देख कर बिल को मिट्टी से बंद कर दिया हो और घंटे भर बाद उसे वहीं साँप कमरे में रेंगता दिखायी दे रहा हो और किसी बिल में भी न जा रहा हो।

थोड़ी ही देर में मिसेज गोयल को लॉन में बैठने में भी अकारण भय लगने लगा। वे उठकर ड्राइंग रूम में चली आयीं। गर्मी बिल्कुल न होने पर भी पंखा खोल दिया और जी बहलाने के लिए रेडियो भी आन कर दिया। एक मिनट बाद रेडियो गर्म होने पर बोला, तो उन्हें फिर बिजली का-सा झटका लगा और उन्होंने रेडियो बंद कर दिया। ड्राइंग रूम से उठकर वे सोने के कमरे में चली आयीं और बेडशीट हटाये बगैर ही बिस्तर पर लेट गईं। सैंडिल उतारने की भी याद न रही।

दस-पन्द्रह मिनट तक इसी तरह पड़े रहने के बाद वे कुछ स्वस्थ हुईं और उठकर बैठ गईं। उन्हें अपनी घबराहट पर कुछ-कुछ हँसी भी आने लगी थी। आखिर इस बेवकूफी से कैसे काम चलेगा। अब तो जो पड़ी है, उसे सँभालना ही होगा। यह सही है कि उनके डेढ़ वर्ष के दाम्पत्य जीवन में अभी तक कोई कठिनाई नहीं पैदा हुई थी। उन्होंने बहुत ही सुन्दर ढंग से पत्नी के कर्त्तव्यों को पूरा किया था; और पतिदेव तो साक्षात् देवता थे—स्वस्थ, सुन्दर, हँसमुख, विद्वान, सम्मानित, कोई बुरी लत भी नहीं, पत्नी से कोई बात नहीं छुपाते थे। विवाहपूर्व के जीवन की सारी घटनाएँ और दुर्घटनाएँ उन्होंने पत्नी को बता

दी थीं। लेकिन क्या पत्नी भी ऐसा कर सकी थी ? यह सही है कि दो वर्ष पूर्व जिस बदनामी के बवंडर ने उसके जीवन की गति मोड़ दी थी, वह झूठी ही बदनामी थी। लेकिन क्या उन्होंने उसे भी अपने पति से छुपा कर अपने लिए स्वयं काँटे नहीं बोये थे ! अब अगर दूसरों से उस बात का पता मुंसिफ साहब को चलता है, तब तो प्रलय ही हो जाएगा। लेकिन, अगर मिसेज गोयल खुद भी उन्हें बताएँ, तो क्या वे उनपर विश्वास करेंगे ? क्या वे यह न सोचेंगे कि पत्नी ने उन्हें यह सब पहले क्यों नहीं बताया। अब इलाहाबाद ही में आकर क्यों बता रही हैं ? क्या किया जाए ?

बार-बार भुलाने पर भी मिसेज शकुन्तला गोयल को दो वर्ष पूर्व की ऐसी ही शाम की याद आ जाती। न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर वे खन्ना जी के साथ नाट्य कक्ष के पिछवाड़े वाले लॉन पर बातें करती-करती चली गई थीं। खन्ना जी के रंग-ढंग अच्छे नहीं थे, वे तिल तिल करते बढ़ते आ रहे थे। शकुन्तला जी को कोई खास परेशानी न थी, वे उसी समय उन्हें दुत्कार सकती थीं, (दो हजार रुपये तो खन्ना जी ने दे ही दिए थे और सांस्कृतिक आयोजन भी हो ही गया था), बल्कि कायदे के लिहाज से खन्ना जी को धता बता भी दिया जाना चाहिए था; क्योंकि पाण्डेय जी कई बार इशारा दे चुके थे कि खन्ना जी को छोड़ो, आशीष को खुश करने की कोशिश करो। लेकिन, शकुन्तला जी कुछ और मजा लेना चाहती थीं, खन्ना जी को हँसा-हँसा कर डसना चाहती थीं। उनका पूरा ईरादा था कि हॉल के पीछे सुनसान लॉन में होने वाले नाटक को वे दुखान्त बनायेंगी और खुद मजे ले लेकर हँसेंगी।

तभी दुर्भाग्य की तरह आशीष और उसके साथी फट पड़े। शकुन्तला जी एकदम से घबड़ा गईं और आशीष को सँभालने-फुसलाने के बजाय उससे उलझ पड़ीं। खन्ना जी तो निपट मूर्ख हैं ही, उनकी मूर्खता ने बँटाढार कर दिया। 'मस्ताना' के समाचार ने सारे शहर में सनसनी पैदा कर दी। यूनिवर्सिटी की बदनामी से वाइस चांसलर परेशान हो गए, प्रॉक्टर महोदय ने उग्र रूप दिखाया, पाण्डेय जी मसट्ट मारकर बैठ रहे और सारी मुसीबत शकुन्तला जी पर आ पड़ी। उन्हें यूनिवर्सिटी में क्या, हॉस्टल की सह छात्राओं के सामने भी सर झुकाकर चलना पड़ता। चारों ओर से व्यंग्य बाणों की वर्षा होती। छात्रों की कौन कहे, प्राध्यापक तक वक्रोक्तियों से न चूकते। दो दिन बाद सदमे की मारी शकुन्तला जी बीमार पड़ गईं, तो भी उन्हें किसी की सहानुभूति न मिली ; उनकी इस बीमारी को भी ढोंग समझा गया।

हॉस्टल की लेडी सुपरिटेण्डेण्ट का तार पाकर पिताजी गोरखपुर से दौड़े

आए। ज्वर के बावजूद शकुन्तला जी उनसे आंखें न मिला सकीं। उन्होंने भी कोई खास बात न की। बीमारी के बारे में भी औपचारिक ढंग ही से पूछा और लेडी सुपरिटेण्डेण्ट से सलाह करने के बाद वे वैसी ही हालत में पूरे साज-सामान के साथ शकुन्तला जी को गोरखपुर ले गये। इस प्रकार शकुन्तला जी के छात्र-जीवन का खामोशी से अन्त हो गया।

बाद के छह महीनों का इतिहास अगर दुःखद नहीं हुआ, तो केवल इस कारण कि पहले की मनमानी करनेवाली लाड़ली शकुन्तला बहुत सीधी और सहिष्णु हो गई थी। पिता तो अब भी कटे-कटे से रहते, लेकिन माता के प्रेम और सहानुभूति ने शकुन्तला के चेहरे की मुस्कान बिल्कुल गायब न होने दी। छोटे भाई-बहनों ने भी जैसे उसके सारे अभावों की पूर्ति कर दी। उन बेचारों को और किसी बात से क्या मतलब, वे इसी पर फूले न समाते थे कि अब दीदी बराबर उनके साथ खेलने और उन्हें प्यार से पढ़ाने के लिए उनके साथ रहेंगी, माताजी भी ठीक थीं, पर दीदी की बात ही और थी।

लेकिन, दीदी उनके साथ हमेशा न रह सकीं। पिताजी ने सारा काम-काज भूलकर दौड़-धूप शुरू कर दी और छह महीने बाद ही शकुन्तला के हाथ पीले हो गए। शहर भर में इस बात की तारीफ हुई कि लाला रामनरायन ने लड़का लाखों में एक ढूँढ़ा है। माना कि लड़की पढ़ी-लिखी है, लेकिन ऐसा वर किसे मिलता है, जो हर नजर से लाजवाब हो। मि० मनोहर दास गोयल लम्बे-तड़ंगे, गोरे-चिट्टे जवान थे, जमींदार खानदान के थे और पिछले वर्ष ही मुंसिफी के चुनाव में आ गए थे। लाला रामनरायन ने लड़की की शादी मे पानी की तरह रुपया बहाया। सारे शहर में इस विवाह की रौनक की चर्चा होने लगी।

फिर भी विवाह से सबसे अधिक प्रसन्नता जिसे हुई, वह शकुन्तला ही थी। छह महीने पहले वह विवाह के नाम से चिढ़ती थी, उसे 'पवित्र बन्धन' नहीं, 'शुद्ध बन्धन' मानती थी। लेकिन, अब विवाह उसे अपमान के बन्धनों से मुक्त करनेवाला सिद्ध हुआ था। और तो और, पिताजी तक सारी बातों को भूलकर उसकी विदा के समय फूट-फूटकर रोने लगे थे।

विवाह के बाद शकुन्तला जी ने अपने दाम्पत्य जीवन को यथासंभव आदर्श बनाने का प्रयत्न किया। परिस्थितियों ने उन्हें आत्म-संयम का पाठ पढ़ा दिया था और जन्मजात बुद्धिमत्ता उनमें थी ही। मि० मनोहर दास धनी ससुराल और सुन्दर, सुशिक्षिता और अत्यन्त सुशील पत्नी पाकर फूले न समाये। वे उच्च पदाधिकारी थे, तो भी विवाह प्रत्येक दृष्टि से उनकी आशा

से अधिक सुखद साबित हुआ। उन्हें विश्वास हो गया कि पूर्व जन्म में उन्होंने जरूर पुण्य कमाये होंगे, वरना विवाह के मामले में ऐसा भाग्यशाली कौन होता है।

शकुन्तला का व्यवहार क्या घर में और क्या सामाजिक जीवन में सब जगह आदर्श होता था। मुंसिफ साहब भी हँसमुख और सहिष्णु थे, अतः डेढ़ वर्ष के विवाहित जीवन में दोनों में एक दिन के लिए भी मनमुटाव नहीं हुआ। मुंसिफ साहब को थोड़ा सा आश्चर्य उस समय जरूर हुआ था, जब कि इलाहाबाद को तबादले की बात सुनकर शकुन्तला के चेहरे पर झाईं सी फिर गई थी। मुंसिफ साहब को आशा थी कि इलाहाबाद जाने के विचार से पत्नी प्रसन्न होगी; क्योंकि आखिर वह वहीं की पढ़ी है। किन्तु, कुछ देर बाद शकुन्तला ने अपनी परेशानी का 'उचित' कारण बताकर उन्हें आश्वस्त कर दिया। उसने कहा कि इलाहाबाद की जलवायु उसके अनुकूल नहीं पड़ती और उसे बीमारी के कारण ही अपनी एम० ए० की पढ़ाई अधूरी छोड़नी पड़ी थी। मुंसिफ साहब का ख्याल था कि ऐसा इसलिए होगा कि हॉस्टल में खाने-पीने का इन्तजाम ठीक न होगा। शकुन्तला इस बात को मान गई थी।

लेकिन, इसके बाद शकुन्तला की रात की नींद हराम हो गई। वह सिर्फ एक उपाय सोच पायी थी कि इलाहाबाद जाकर अपने सामाजिक जीवन का अन्त कर दे। घर से बाहर कम निकलेगी, तो मुंसिफ साहब की पत्नी को पह-चानने वाला कौन सामने आएगा? दो-तीन वर्ष तो इस तरह से भी काटे जा सकते हैं, इसके बाद कहीं और तबादला हो ही जाएगा। फिर भी बात ऊपर से देखने में जितनी आसान थी, वास्तव में उतनी ही कठिन थी। क्या कहकर वह सामाजिक जीवन का अन्त करेगी? यदि प्रारम्भ ही से वह अपना स्वभाव कुछ सनकी दर्शाती, तो इसकी भी गुंजाइश थी। लेकिन, अकारण ही बाहर निकलने के लिए इन्कार करने से मुंसिफ साहब को सन्देह हो जाएगा और एक बार सन्देह हो जाने पर बड़े-बड़े उलझे हुए मुकदमों में बात की तह तक पहुँच जाने वाले गोयल साहब से बात कैसे छुपायी जा सकेगी? और उसके बाद?........ हे भगवान!

एक ही रास्ता था और वह यह कि वह जल्द-से-जल्द माँ बन जाए। कुछ कठिनाई जरूर थी, क्योंकि मुंसिफ साहब शादी पाँच वर्ष पूरे होने के पहले पिता बनना पसंद नहीं करते थे। आधुनिक विचारों के गम्भीर आदमी थे, विवाह के पहले ही परिवार नियोजन पर यथेष्ट साहित्य पढ़ लिया था और डॉक्टरों से सलाह ले ली थी। शकुन्तला को भी इस बात में आपत्ति न थी। फलतः वह नियमित रूप से हर महीने कुछ विशेष दवाओं का सेवन करती रही थी।

लेकिन अब ? अब तो स्थिति ही और थी। मुंसिफ साहब के सहयोग का प्रश्न ही नहीं उठता था। उन्हें धोखा देना अत्यावश्यक था। आखिर इसमें हर्ज भी क्या है, शकुन्तला ने अपने-आप को समझाया। 'मातृत्व के लिये पुराने जमाने में औरतें क्या-क्या नहीं करती थीं। देवी-देवता मनाती थीं, तीर्थव्रत करती थीं, यहाँ तक कि अन्य स्त्रियों के पहले बच्चे की हत्या तक कर डालती थीं, सिर्फ अपनी गोद भरने के लिए। मैं तो कोई ऐसा काम नहीं कर रही हूँ, बल्कि बाद में किसी समय मुंसिफ साहब को भी बता दूँगी कि मैंने क्या शराफत की थी। मैं तो विवाह के भी विरुद्ध थी, किन्तु वही मेरे लिए वरदान सिद्ध हुआ और अब नियति ने यह परिस्थिति पैदा करके मातृत्व के प्राकृतिक कर्तव्य को निभाने को बाध्य किया है, तो उससे विमुख होने का क्या कारण हो सकता है ?'

शकुन्तला में अन्य विशेषताओं के साथ त्वरित निर्णय लेने का भी दुर्लभ गुण था। वह बेकार शशोपंज में नहीं पड़ी। दूसरे दिन दवा लेने का दिन था, लेकिन दवा उसके पेट में जाने के बजाय नाली में पहुँच गई। यह इलाहाबाद आने के एक महीना पहले की बात है। इलाहाबाद आते-आते उसे सुबह के समय मितली आने लगी थी और उसके मानस का कमल खिल उठा था।

इलाहाबाद आकर शकुन्तला को मालूम हुआ कि परिस्थितियाँ इतनी अनुकूल नहीं हैं, जितनी वह समझे हुयी थी। मकानों की कमी का जमाना था। शकुन्तला ने लाख लूकरगंज की ओर रहना चाहा, लेकिन बँगला उसे चैथम लाइन्स ही में मिला। मुंसिफ साहब को इस बँगले और मुहल्ले में कोई आपत्तिजनक बात न दिखायी दी। शकुन्तला ने कुछ और न कहा, कहती भी क्या। उसने होंठ भींच लिये और परिस्थितियों से अकेले ही संघर्ष करने के लिए तैयार हो गई।

जहाँ तक गोयल साहब का सम्बन्ध था, उन्हें अपने परिवार नियोजन कार्यक्रम की असफलता पर खेद अवश्य हुआ और परिवार नियोजन के साधनों पर से उनका विश्वास भी उठ गया, किन्तु अपनी योजना की असफलता पर वे विचलित न हुए। उन्होंने स्वभावतः ही अपनी पत्नी के स्वास्थ्य का अधिकाधिक ध्यान रखना आरम्भ किया। यह काम कोई मुश्किल भी न था। शकुन्तला केवल यह चाहती थी कि उसे पूर्णतः विश्राम करने दिया जाए और अधिक छेड़ा छाड़ा न जाए। घूमने-फिरने के नाम पर भी वह बँगले के बगीचे के चक्कर लगाने से अधिक कुछ न चाहती थी, टहलने के लिए बाहर जाना उसने पसन्द न किया, क्योंकि उसे बाहर जाने में अत्यधिक थकान हो जाती थी। मुंसिफ साहब काफी रोमाण्टिक थे। पत्नी का यह अलगाव उन्हें पसन्द तो न था, लेकिन करते भी क्या। वे धैर्यपूर्वक प्रसव काल की प्रतीक्षा करने लगे, जिसके

बाद उन्हें अपने साधारण दाम्पत्य जीवन के लौटने की आशा थी। शकुन्तला ने इसी बात को गनीमत समझा कि लगभग साल भर तक कोई खतरा नहीं है। आगे की स्थिति भी सुचारु रूप से सँभलने की आशा थी।

फिर भी यह जरूरी तो नहीं कि मनुष्य की सारी योजनाएँ पूरी ही हो जाएँ। शकुन्तला की योजना भी एक दिन आकस्मिक रूप से ढेर हो गई।

हुआ यूँ कि एक दिन गोयल साहब ने अदालत से लौटकर कहा कि उन्होंने अपने एक वकील मित्र को चाय पर आमन्त्रित किया है। शकुन्तला कुढ़कर रह गई। सौजन्यता के नाते उसे इन खुशामदी वकील साहब के सामने जाना ही था। कोई बहाना भी नहीं समझ में आया। सोच लिया कि साधारण शिष्टाचार के बाद वह उठ आएगी। वैसे इन पुराने खूसट वकीलों के साथ वह बात भी क्या करती। अभी तक का उसका अनुभव यही बताया था कि हाकिमों के घर पर हाजिरी देनेवाले पुराने वकील ही होते थे जो अपनी लच्छेदार बातों में खुशामद और आत्म प्रशस्ति की अजीब सी खिचड़ी पेश कर देते थे।

लेकिन चाय की मेज पर आते ही मेहमान पर जो नजर पड़ी, तो वह चिहुँक उठी। उसकी आँखें फट गईं, मुँह से एक शब्द भी न निकल सका। गोयल साहब परिचय देते जा रहे थे, "माई फ्रेण्ड मि० आशीष मुखर्जी···माई वाइफ शकुन्तला।"

लेकिन आधे ही मिनट में गोयल साहब हैरान होकर देखने लगे। बात क्या है? कोई एक दूसरे का अभिवादन नहीं कर रहा है। फिर आशीष ने अपने को झटका दिया और मुस्कुरा कर बोला, "नमस्कार शकुन्तला जी! पहचाना नहीं मुझे?"

थूक निगलकर शकुन्तला भरे स्वर में बोली, "पहचाना क्यों नहीं?"

आशीष ने हँसकर गोयल साहब को सम्बोधित किया, "आपने बेकार परिचय देने का कष्ट किया। मैं इन्हें आपसे भी पहले से जानता हूँ। किसी समय मैं ही इनका परिचय···।"

"जरूर मुझे दे सकते थे", मुंसिफ साहब हँसकर बोले, "यह यहीं पढ़ी हैं यह तो मुझे मालूम था, लेकिन आप इन्हें किस सिलसिले में जानते हैं?"

"हम दोनों यहीं के सांस्कृतिक आयोजनों में भाग लिया करते थे।"

औपचारिक हँसी-दिल्लगी शुरू हो गई। लेकिन साथ ही मुंसिफ साहब सोच रहे थे कि पुराने साथी अचानक एक दूसरे को देखकर हक्का-बक्का तो नहीं हो जाते···फिर···फिर क्या···।

४

बख्तियार रिजवी प्रतिभावान छात्र और सफल कवि था, किन्तु भाग्य ने उसे न प्रोफेसर बनने दिया, न साहित्यकार। बन गया वह राजनीतिक नेता। मतलब यह नहीं कि वह वास्तव में नेता बन गया था। सिर्फ इतनी बात थी कि उसे आशा थी कि वह शीघ्र ही, यानी छह-सात वर्ष के अन्दर ही, विधान सभा में पहुँच जाएगा। अभी तो वह मोटा खद्दर का कुर्ता-पाजामा पहने इलाहाबाद की गलियों में चप्पल सरकाता घूमता था। यूनिवर्सिटी से उसका नाता टूट गया था। डिग्री उसके पास वही बी० ए० की थी, जिसे लेकर वह अलीगढ़ से आया था। कोई गड़बड़ी न होती तो आगामी मास छपनेवाले एम० ए० फाइनल के परीक्षाफल में उसका भी नाम होता····लेकिन होता तो तब जब शैतान उँगली न दिखाता।

जहाँ तक शैतान का सम्बन्ध है, उसे फरिश्तों ही को फँसाने में अधिक आनन्द आता है। फरिश्ते बहुत भले होते हैं, इसीलिए वे खुदा के दामन से चिपके रहते हैं और मन-वचन-कर्म से उसकी आज्ञाओं का पालन करते रहते हैं। अगर दुर्भाग्य से किसी फरिश्ते में स्वतन्त्र चेतना जाग भी गई, तो खुदा नाराज होकर उसे परे धकेल देता है, फिर शैतान उँगली पकड़कर राह न दिखाए तो आखिर क्या करे। शैतान भी तो विद्रोही फरिश्ता ही था। जाति-भाइयों से किसे प्रेम नहीं होता।

बख्तियार साहब अगर पूरे नहीं, तो तिहाई-चौथाई फरिश्ते जरूर थे। और हालाँकि डॉ सिद्दीकी ने कभी खुदाई का दावा नहीं किया और मुझे भी उन्हें खुदा बनाकर मुल्लाओं का कोपभाजन नहीं बनना है, फिर भी उनके बख्तियार से पहले कुछ कुछ इसी प्रकार के सम्बन्ध थे, जैसे किसी जमाने में खुदा के शैतान से रहे होंगे और उन दोनों के वर्तमान सम्बन्ध भी ऐसे ही थे, जैसे कि इस समय खुदा और शैतान के हैं। शैतान हजरते आदम (मानव जाति के पूर्व पुरुष) को सर न झुकाने के अपराध में जन्नत से निकाल दिया गया था; बख्तियार को डॉ० सिद्दीकी की इच्छा के विपरीत कम्युनिस्ट पार्टी का विरोध करने के कारण यूनिवर्सिटी छोड़नी पड़ी।

किस्सा यूँ हुआ कि फाइनल में वर्ष के आरम्भ में होनेवाले यूनियन के चुनाव में बख्तियार अध्यक्ष-पद के लिए उम्मीदवार था। प्रतिद्वन्द्वी छात्र ठेठ कांग्रेसी था जिसे राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के विचार रखनेवाले छात्रों का भी समर्थन प्राप्त था। स्पष्ट था कि सारे वामपक्षी छात्र बख्तियार का साथ न देते, उसकी विजय असम्भव थी। बख्तियार कम्युनिस्ट न था, किन्तु इस समय कम्युनिस्टों से समझौता करना जरूरी था। लेकिन जमाना १९४८ का था, जब कि कम्युनिस्ट पार्टी श्री रणदिवे के नेतृत्व में घोर कांग्रेस विरोधी और उग्रवादी रूप धारण कर चुकी थी। बड़ी कोशिश करने के बाद जब कम्युनिस्ट उसकी सहायता करने को तैयार हुए, तो मैनीफेस्टो पर आकर बात टूट गई। कम्युनिस्टों का कहना था कि मैनीफेस्टो में नेहरू जी और कांग्रेस दोनों को प्रतिक्रियावादी और पूँजीपतियों का पिट्ठू घोषित किया जाए। बख्तियार इसके लिए राजी न हुआ। डॉ० सिद्दीकी ने, जिनके कहने से कम्युनिस्ट समझौता करने के लिए राजी हुए थे, उसे बुलाकर बहुत समझाया, लेकिन बख्तियार न माना। फलतः बख्तियार को कम्युनिस्टों की सहायता न मिली और वह चुनाव में हार गया।

बख्तियार इस अपमान को सहज ही पी न सका। वह हृदय से वामपक्षी था, किन्तु उसे कम्युनिस्टों से बदला लेना ही था। इसलिए उसने कुछ ही दिनों में दौड़-धूप करके समाजवादी युवक सभा की स्थापना कर डाली। डॉ० सिद्दीकी ने फिर उसे बुलाकर ऊँच-नीच समझाया, लेकिन उनकी बात मानने के बजाय उन्हें तुर्की बतुर्की जवाब देना शुरू किया। डॉ० सिद्दीकी गम्भीर आदमी थे, खामोश ही रहे।

किन्तु, डॉ० सिद्दीकी की स्थिरता भी अधिक कायम न रह सकी। यह प्रसंग कोई अच्छा नहीं, लेकिन कहना ही पड़ता है। समाजवादी युवक सभा के सदस्य जब भी मिलते, कम्युनिस्टों को गालियां देना अपना परम कर्त्तव्य समझते। डॉ० सिद्दीकी भी कम्युनिस्टों के हमदर्द होने के नाते उनके प्रहारों के लक्ष्य होते।

एक रोज एक साहब ने जोश में आकर कह दिया कि डॉ० सिद्दीकी का नईमा खातून से अनुचित सम्बन्ध है। बख्तियार चाहता तो इस निराधार लांछन का प्रतिवाद भी कर सकता था, किन्तु उसे क्या पड़ी थी कि एक कम्युनिस्ट की (भले ही वह अध्यापक हो) ओर से सफाई देकर समाजवादी साथियों को नाराज करे। वह नईमा खातून से भी खुश न था, वह उसे अब भी मुँह न लगाती थी। उसने सोचा कि अच्छा है जो इस लड़की की बदनामी होती है, मैं क्यों बीच में बोलूँ। किन्तु उसके सस्मित मौन ने मामला गड़बड़ कर दिया।

मुँह-दर-मुँह होती हुई यह बात डॉ० सिद्दीकी के कानों तक पहुँची, तो इस तरह कि बख्तियार ही ने उन पर यह लांछन लगाया है। डॉ० सिद्दीकी तिलमिला कर रह गए। बात बढ़ाने में और बदनामी होती, इसलिए चुप रहे, लेकिन बख्तियार से बोलना छोड़ दिया।

और कुछ दिनों बाद एक सभा में कम्युनिस्टों और सोशलिस्टों में किसी बात पर झड़प हो गई और तू-तू मैं-मैं से बढ़कर लातों-घूँसों तक पहुँच गई। मामला प्रॉक्टर के सामने गया। प्रॉक्टर महोदय को डॉ० सिद्दीकी ने, जो उनके पुराने क्लास फेलो और अभिन्न मित्र थे, अच्छी तरह समझा दिया कि कौन छात्र कितना बदमाश है। उन्होंने लगभग दस छात्रों पर विभिन्न रकमों का जुर्माना कर दिया, किन्तु बख्तियार को यूनिवर्सिटी से निकाल ही दिया, क्योंकि उसके दल ही के एक सदस्य ने गवाही दी थी कि बख्तियार ने उन सबको भड़काकर झगड़ा कराया था। यह बात और जान लेनी चाहिए कि यह छात्र भी उर्दू ही के क्लास में था और गवाही से पहली शाम को उसे सिद्दीकी साहब ने अपने घर बुलाया था। उन्होंने गम्भीरतापूर्वक पूछा कि नईमा खातून वाली निराधार बात किसने शुरू की और धमकी दी कि मैं इस मामले को भी उठाऊँगा (हालांकि यह दो महीने पहले की बात थी)। संयोग से उसी छात्र ने वह बात भी कही थी। इस समय वह काँप उठा। सिद्दीकी साहब ने आश्वासन दिया कि वे जानते हैं कि नईमा खातून वाली बात में उसका कोई दोष नहीं है। छात्र को बचने का सहारा मिला और उसने कह दिया कि यह बात बख्तियार ने कहा था। डॉ० सिद्दीकी ने उसे प्रेम पूर्वक समझाया कि ऐसे छात्रों का साथ करने में शैक्षणिक जीवन तक नष्ट हो सकता है। कुछ और भी बातें हुईं और छात्र ने दूसरे दिन 'सच्ची' गवाही दे दी। उस छात्र का शैक्षणिक जीवन वास्तव में नहीं बिगड़ा। यद्यपि वह कक्षा में काफी कमजोर था, तथापि एम० ए० की परीक्षा में द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हो गया।

शैतान को सजा देकर खुदा ने हमेशा के लिए सर दर्द मोल ले लिया। यहाँ भी कुछ ऐसी ही बात हुई। बख्तियार ने निश्चय कर लिया कि इलाहाबाद ही में रहना है और सोशलिस्ट पार्टी में काम करके शहर में कम्युनिस्ट पार्टी की जड़ खोद देनी है।

उसने अतरसुइया मुहल्ले में एक छोटा-सा घर किराये पर ले लिया। यद्यपि पंजाब से आनेवाले शरणार्थियों के कारण इलाहाबाद में मकानों की काफी दिक्कत हो गई थी, तथापि अभी तक कुछ पुराने मकान ऐसे थे, जिन पर रेण्ट कण्ट्रोल ऑफिस के इंसपेक्टरों की निगाह नहीं पड़ी थी और सीधे मकान मालिक

से बातचीत करने पर भी मकान किराये पर मिल जाते थे। मुहल्ला हिन्दुओं का था और आसपास के लोगों को यह बिल्कुल पसन्द न था कि बख्तियार को वहाँ जगह दी जाए। एक तो मुसलमान और दूसरे अविवाहित। एक तो करेला और नीम चढ़ा वाला मामला था। लेकिन, बात तो यह थी कि मियाँ बीवी राजी, तो क्या करेगा काजी। मकान मालिक श्री पुरुषोत्तम लाल खन्ना इतने संकुचित विचारों के आदमी नहीं थे। बख्तियार सूरत-शक्ल से शरीफ आदमी लगता था; राजनीतिक कार्यकर्ता था, इसलिए उसे इस बात की फुर्सत ही नहीं थी कि मुहल्ले में ताक झाँक करता फिरे, खन्ना जी के परम मित्र डॉ० चड्ढा ने उसका परिचय दिया था और इस बात का आश्वासन भी कि बख्तियार सच्चरित्र तो है ही साथ ही वह नाम का ही मुसलमान है और उसे साम्प्रदायिक भेद-भाव छू तक नहीं गया; फिर जिस मकान के लिए अभी तक पन्द्रह रुपये से अधिक किसी ने न दिए थे उसे बख्तियार पच्चीस रुपए पर लेने के लिए राजी हो गया था। हाँ, खन्ना साहब को पहले चिन्ता जरूर थी कि यह साहब जो रात दिन राजनीतिक आवारा गर्दी के अलावा कुछ नहीं करते, किराया दे सकेंगे कि नहीं, लेकिन जब उन्हें मालूम हुआ कि बख्तियार अवध के एक ताल्लुकेदार का इकलौता लड़का है, तो उनकी यह चिन्ता भी दूर हो गयी।

बख्तियार के सम्बन्ध में जो आश्वासन दिया गया था, वह गलत न था, यह बात मुहल्ले वालों को शीघ्र ही मालूम हो गई। कुछ ही दिनों में उसका मुहल्ले के सारे प्रमुख व्यक्तियों से मेल हो गया। उसे मुसलमान होने के कारण आरम्भ में सन्देह से देखा जाता था, किन्तु उसने जनसाधारण के इस पूर्वाग्रह को धैर्यपूर्वक दूर कर दिया। सभी उसकी शिष्टता और सौजन्यता से प्रभावित हुए। महिलाओं के प्रति उसका व्यवहार अत्यन्त शालीनतापूर्ण था और लोगों के दुःख-दर्द में वह उनका साथ दिया करता था।

बख्तियार को इस प्रकार रहना ही था। एक तो वह वास्तव में सज्जन था, दूसरे उसने जान-बूझकर इस घने बसे हुए हिन्दू मुहल्ले में घर इसीलिए लिया था कि उसकी राजनीतिक आकांक्षाएँ यहीं पूरी होने की आशा थी। घर तो उसे बगल के मुसलमानी मुहल्ले रानीमण्डी में सस्ता और आसानी से मिल जाता, लेकिन उसे इस समय मुसलमानों के बीच रहने की कोई इच्छा नहीं थी। देश-विभाजन के समय के उपद्रवों से डरे हुए मुसलमान कांग्रेस के दामन से कसकर चिपटे थे और समाजवाद की बात सुनने के लिए तैयार न थे। इसीलिए बख्तियार ने अतरसुइया को ही अपना हेड क्वार्टर बनाने का निश्चय किया और अपने विश्वस्त खानदानी नौकर पीरू को लेकर खन्ना जी के मकान में डट गया था।

उसने जब सारे मुहल्ले के लोगों से हेल-मेल बढ़ाया था, तो अपने मकान मालिक से क्यों अलग-थलग रहता ? खन्ना जी मुहल्ले के सबसे बड़े रईस न सही, लेकिन प्रमुख व्यक्तियों में से जरूर थे। यह ठीक है कि ढाई वर्ष पूर्व 'शरदोत्सव' के सिलसिले में उनकी बदनामी सारे शहर में हो गई थी और कुछ मनचले नौजवान अभी तक कभी-कभी शकुन्तला गुप्त या 'मस्ताना' का नाम उनके सामने लेकर उनके क्रोध के मूक अभिनय को देखकर मजे लिया करते थे, लेकिन वह बात साधारण लोगों के लिए बहुत पुरानी हो गई थी। तब से गंगा-जमुना में बहुत पानी बह गया था और किसी प्रभावशाली आदमी की भूल-चूक को जनता इतने दिनों तक कैसे याद रख सकती है। खन्ना जी की प्रतिष्ठा कुछ ही महीनों में पुनः स्थापित हो गई।

खन्ना साहब से बख्तियार लगभग नियमित रूप से प्रत्येक रविवार को उनके घर पर तीसरे पहर मिलता और चाय उन्हीं के साथ पीता। यह ढर्रा स्वयं खन्ना जी ने कायम किया था; क्योंकि यद्यपि वे स्वयं हाई स्कूल से अधिक शिक्षा प्राप्त न कर सके थे। (हाई स्कूल की परीक्षा भी उन्होंनें दो वर्ष फेल होने के बाद पास की थी), किन्तु उन्हें पढ़े-लिखे आदमियों का साथ पसन्द था। दिक्कत सिर्फ यह थी कि व्यवसाय की व्यस्तता में उन्हें स्वयं कुछ पढ़ने-लिखने का अधिक अवसर नहीं मिलता था और साधारणतः उच्च शिक्षित व्यक्ति उनसे दूर की साहब-सलामत रखना ही पसन्द करते थे। ऐसे में यदि एक मित्र ऐसा मिलता है, जो राजनीति, दर्शन, कला, साहित्य आदि क्षेत्रों में अच्छी पैठ रखता हो, राजनीतिक नेता हो और उनका साथ करने से ऊबे भी नहीं, तो खन्ना साहब को उसे चाय पर बुलाने से कौन रोक सकता था ? अगर वे कहीं नौकर होते तो शायद उनका बख्तियार साहब से साथ और अधिक हो जाता, किन्तु वे थे व्यवसायी। सुबह साढ़े नौ बजे तक जरूर दुकान पहुँच जाते थे और दोपहर में दो-तीन घण्टे घर पर गुजारने के बाद फिर चार बजे दुकान चले जाते थे, जहाँ नौ बजे तक व्यस्त रहते थे। मालिक की इतनी तत्परता के कारण ही 'यूनिवर्सल प्रॉवीजंस' का काम धड़ल्ले से चल रहा था। रविवार को दुकान बन्द रहने के कारण उन्हें फुर्सत रहती और अब प्रत्येक रविवार की सन्ध्या को उनकी नियमित रूप से उससे दो-तीन घण्टे गपशप रहती। वैसे भी अक्सर वह कॉफी हाउस से लौटते समय सिगरेट आदि खरीदने के लिए खन्ना जी की दुकान में चला जाता और कुछ गपशप हो रहती। मतलब यह कि दोनों की अच्छी-खासी छनने लगी थी।

फिर भी खन्ना जी को कुछ दिनों से उसकी एक बात बुरी लग रही थी।

वह जब उनकी दुकान में जाता, तो उनसे बातें करने के साथ ही शॉप असिस्टेण्ट सक्सेना से भी बातें करता और उन दोनों की घनिष्ठता सी होने लगी थी। बख्तियार के लिए चाहे खन्ना जी और सक्सेना साहब में कोई फर्क न हो, लेकिन खन्ना जी इस बात को कैसे पसन्द कर सकते थे कि उनका और उनकी मातहत का कोई 'कॉमन फ्रेण्ड' हो। वे इतने मूर्ख भी न थे कि इस बात पर खुली आपत्ति करते, किन्तु उन्होंने इशारे से जरूर सक्सेना को बताया कि उसे बख्तियार से अधिक बातें करने का कोई अधिकार नहीं है। किन्तु, सक्सेना ने इन संकेतों की पूर्ण उपेक्षा कर दी थी। वैसे भी उसके रंग-ढंग बिगड़ रहे थे। इधर दो-एक बार खन्ना जी ने उसे उसकी लापरवाही पर डाँटा तो, वह गुर्रा पड़ा था, हालाँकि वैसे पिछले पाँच वर्षों से वह मालिक की डाँट को चुपचाप सहता आ रहा था। खन्ना जी का माथा ठनका। उन्हें बख्तियार का दुकान में आना खलने लगा।

आखिर एक दिन खन्ना जी और उनके मित्र में चख-चख हो ही गई। बख्तियार का उद्देश्य अपने सार्वजनिक जीवन का विस्तार करना था, खन्ना जी के यहाँ हफ्ते-हफ्ते चाय पीना नहीं। खन्ना जी के यहाँ काम काफी बढ़ गया था, लेकिन चूँकि यह निश्चय नहीं था कि युद्धोत्तर व्यापार का यह जोर कितने दिन तक रहे, इसलिए उन्होंने कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि करना ठीक न समझा। कर्मचारियों पर काफी मिहनत पड़ने लगी थी। उन्हें रोजाना नौ-दस घण्टे काम करना पड़ता, फिर भी मालिक की डाँट पड़ती ही रहती। दूसरी दूकानों के कर्मचारियों की भी थोड़ी-बहुत यही हालत थी। कम्युनिस्ट इस स्थिति का लाभ उठाना चाहते थे, लेकिन तभी बख्तियार ने तेजी से काम किया। उसने स्थानीय समाजवादी नेताओं से परामर्श किया और अप्रैल के महीने में व्यवसाय संस्थान कर्मचारी संघ की स्थापना हो गई। जैसा हमेशा होता है, इस संस्था में भी कुछ कम्युनिस्ट समर्थक उग्रवादी कार्यकर्त्ता घुस आए और परिस्थिति इतनी गम्भीर हो गई कि आम हड़ताल की बातें होने लगीं। हड़ताल का मतलब था, कम्युनिस्ट नीति की विजय, जो बख्तियार को सह्य न थी। वैसे भी नव-निर्मित संस्था के लिए हड़ताल को सँभालना कठिन ही था। सबसे ज्यादा खराब हालत 'यूनिवर्सल प्रॉविजंस' की थी और वहाँ के बीस कर्मचारी अत्यन्त उग्र रूप धारण कर रहे थे। बख्तियार जानता था कि अगर खन्ना जी को समझा-बुझाकर कर्मचारियों के वेतन में कुछ वृद्धि करवा दी जाए, तो दूसरी दुकानों के मालिक भी मान जाएँगे। खन्ना जी इस मामले में बड़े जिद्दी थे, लेकिन बख्तियार ने अगले रविवार को उनसे बात करने का निश्चय किया।

इतवार को शाम को बख्तियार उनके घर पहुँचा, तो खन्ना जी शुरू ही से उसका व्यंग्यपूर्वक स्वागत किया, "आइए रिवौल्यूशनरी साहब ! तशरीफ लाइए ।"

बख्तियार अच्छी तरह बैठ भी नहीं पाया था कि खन्ना साहब ने दोस्ताना शिकायत की, "भई, मुझे तुमसे यह उम्मीद नहीं थी । आखिर दोस्ती का....।"

खन्ना जी धारा प्रवाह मैत्री के कर्त्तव्य पर व्याख्यान देने लगे । बख्तियार चुपचाप सिगरेट पीने लगा । तब तक मिसेज खन्ना भी आकर बैठ गई थीं । खन्ना जी का भाषण जारी था । बख्तियार और मिसेज खन्ना एक दूसरे की ओर देखकर मुस्कुरा रहे थे ।

खन्ना जी के चुप होने पर बख्तियार ने कहा, "खन्ना साहब ! मैं दोस्ती ही के नाते आपके पास आया हूँ । मैं आपको यही समझाना चाहता हूँ कि इसमें आप ही का फायदा....।"

"क्या बात है ! कल आप कहेंगे मेरा फायदा इसमें है कि सारी जायदाद लुटाकर फकीर बन जाऊँ । नहीं साहब, ऐसा फायदा मुझे नहीं करना है ।"

"तो नुकसान उठाइएगा", बख्तियार ने हँसकर कहा, "आप बात तो समझना चाहते नहीं और बेकार नाराज होने लगते हैं । इसमें नुकसान तो होगा ही ।"

"अच्छा साहब ,समझाइए बात !" खन्ना जी की वक्रोक्तियाँ जारी रहीं ।

"यह आपको मानना ही पड़ेगा कि आपके आदमियों में बड़ी बेइत्मीनानी....।"

"बेइत्मीनानी तो आप ही ने पैदा की है ।" खन्ना जी पैतरा बदल कर बोले ।

बख्तियार तेज पड़ गया । बोला, "यही तो मैं कहता हूँ कि आप सही बात सुनना भी नहीं चाहते । इसी वजह से आप कभी सही नतीजों पर नहीं पहुँचते ।"

"ठीक तो है, पूरी बात तो सुनो ।" मिसेज खन्ना ने मिस्टर खन्ना को डाँटा ।

"मैं मुख्तसरन आपको हालत बताना चाहता हूँ । कम्युनिस्ट पूरी ताकत से मुलाजमीन को भड़का रहे हैं । सिर्फ मैं ही हड़ताल को रोके हुए हूँ, इसे चाहे अपनी दोस्ती समझ लीजिए या मुलाजमीन के लिए हमदर्दी । हड़ताल

में नुकसान दोनों का होगा। आप अगर पाँच-पाँच रुपया भी बढ़ा दें, तो मामला सँभल जाए। दूसरे मालिकान इसके लिए राजी हैं। सिर्फ आप ही····।''

''लेकिन इसका मतलब है सौ रुपए महीने का नुकसान।'' मिसेज खन्ना बोलीं।

''मेरा ख्याल है, नुकसान आपका एक पैसे का भी नहीं होगा। नुकसान दरअसल इस वक्त हो रहा है। गैर मुतमइन मुलाजमीन काम में कितनी ढिलाई करते हैं और उनकी बेपरवाई से कितना नुकसान होता है, यह खन्ना जी अच्छी तरह जानते हैं। सिर्फ इस वक्त झूठी प्रेस्टीज के फेर में पड़कर मुलाजमीन को और नाराज कर रहे हैं।''

''झूठी प्रेस्टीज का सवाल नहीं है साहब'', खन्ना जी बिगड़े, ''सवाल उसूल का····।''

''अरे हटाओ भी'', मिसेज खन्ना ऊबकर बोलीं, ''यह सब झंझट बाहर ही किया करो। बख्तियार साहब, आपकी चाय ठंडी हो रही है। चाय पीजिए, बहस न कीजिए।''

''जैसा इर्शाद'', बख्तियार हँस पड़ा, ''मुझे तो और कुछ कहना भी नहीं है। खन्ना साहब भी इस वक्त गुस्से में हैं, लेकिन मैं जानता हूँ कि मेरी बात मान जरूर लेंगे। आज नहीं तो कल तक जरूर मान लेंगे। समझदार आदमी हैं, कोई बच्चे तो हैं नहीं।''

विराम सन्धि हो गई और वार्ता का विषय बदलकर यूनिवर्सिटी के अध्यापक और उनके व्यक्तिगत स्वभावों की आलोचना हो गया। मिसेज खन्ना भी यूनिवर्सिटी की छात्रा थीं और इस वर्ष बी० ए० के प्रथम वर्ष की परीक्षा में बैठी थीं। पिछले साल यूनियन के चुनाव में उनका वोट बख्तियार के विरुद्ध पड़ा था, लेकिन इस समय वे उससे बहुत प्रभावित थीं और उसकी लायी हुई समाजवाद सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ा करती थीं।

फिर भी उनके बारे में कोई भ्रम न रहना चाहिए। उनकी अवस्था तीस-इकतीस के लगभग थी और वे चार बच्चों की माँ बन चुकी थीं। विवाह के पूर्व उन्होंने हाई स्कूल की परीक्षा पास की थी। विवाह के बाद लगभग दस वर्ष तक घर-गृहस्थी और बाल-बच्चों के चक्कर में पड़ी रहीं, लेकिन आगे पढ़ने के लिए जिद करती रहीं और आखिर पिछले वर्ष प्राइवेट तौर पर इण्टर की परीक्षा पास ही कर लीं। वह गोरी-चिट्टी, स्वस्थ और हँसमुख महिला थीं, किन्तु आश्चर्य की बात यह थी कि किसी ललित कला में उनकी दिलचस्पी न थी। दिलचस्पी

थी, तो राजनीति में, जो साधारणतः स्त्रियों का विषय नहीं होता। कांग्रेस की भक्त थीं और कम्युनिस्टों से बेहद नफरत करती थीं। साथ ही पूँजीवादी व्यवस्था से भी उन्हें सन्तोष न था। इन्हीं दो आधारों पर बख्तियार से उनकी खूब पटने लगी थी।

बख्तियार और मिसेज खन्ना यूनिवर्सिटी की बातें करते रहे। खन्ना जी भिन्नाये बैठे रहे। बख्तियार उठकर चला गया, तो भी भिन्नाये बैठे रहे। जाते समय उसके सलाम का जवाब भी बड़ी बेरुखी से दिया। सोच रहे थे कि यह आदमी अच्छा आस्तीन का सांप निकला।

कुछ देर की खामोशी के बाद मिसेज खन्ना बोलीं, "बढ़ा दो न तनख्वाह। क्या हर्ज है?"

"वाह वाह, उस बदमाश ने उल्टी-सीधी पट्टी पढ़ायी और तुम भी उस जैसी बातें करने लगी।....मैं इसे मकान से निकाल दूँगा....मुसलमानों पर विश्वास करना....।"

"लेकिन उसकी बात से फायदा तो तुम्हारे हिन्दू नौकरों का होगा", मिसेज खन्ना बोलीं, "तुम गुस्से में बहकने क्यों लगते हो। इसमें हिन्दू-मुसलमान की बात नहीं है। तुम्हारे पीछे जो कम्युनिस्ट पड़े हैं, उनमें तो एक भी मुसलमान नहीं है।"

"वकालत तो खूब करती हो अपने गुरु की", खन्ना जी होंठ सिकोड़ कर बोले, "लेकिन मैं तुम्हारे नेता जी के लिए बारह सौ सालाना नुकसान नहीं करूँगा। समझी?"

मिसेज खन्ना का चेहरा लाल पड़ने लगा। खन्ना जी के स्वर का व्यंग्य कोई और दिशा ले रहा था। ईंट का जवाब पत्थर से देना जरूरी था। उठते हुए बोलीं, "ठीक है। तुम गरीब कर्मचारियों के लिए बारह सौ क्यों खर्च करोगे? तुम्हें तो जूते खाने के लिए दो दो हजार के चेक काटने की आदत है।"

मिसेज खन्ना तन्नाकर घर के अन्दर चली गयीं।

● ● ●

५

लगभग उसी समय आशीष गोयल साहब के बँगले में दाखिल हुआ। कई बार आ चुका था, नौकर ने अदब से सलाम करके ड्राइंग रूम खोला और पंखा चला दिया। फिर मालकिन को इत्तला दी कि वकील साहब आए हैं।

पांच मिनट में शकुन्तला आ गई। साफ मालूम होता था कि दिन भर ढीली-ढाली पसीने में डूबी पड़ी रही है और इस समय जल्दी से मुँह धोकर और साड़ी बदल कर आई हैं। आशीष उसकी ओर देखता रह गया। आया तो वह कई बार था, लेकिन शकुन्तला अन्दर ही रही थी और उसे वह कई महीनों के बाद देख रहा था। इस अर्से में उसकी सूरत ही बदल गई थी। पहले की 'स्मार्टनेस' का स्थान अजीब तरह की ढिलाई ने ले लिया था, बाल कुछ बिखरे हुए से, कपड़े भी जैसे पहनने के बजाय लपेट लिये हों, शरीर के अंगों का उतार चढ़ाव बिल्कुल दूसरी तरह का, रंग सांवलेपन से गोरेपन की ओर जाने लगा था, शरीर पर चिकनाई-सी चढ़ रही थी। अलसाई आँखों की स्निग्धता देखते ही बनती थी।

सोफे पर बैठ गई और मुस्कुरा कर पूछने लगी, "बहुत दिनों बाद आए ?"

आशीष को आश्चर्य हुआ। अभी तक शकुन्तला ने कभी इस स्वर में बात नहीं की थी, अधिकतर अलग-अलग, कटी-कटी सी रहती थी। अचानक ही यह आत्मीयता कैसे पैदा हो गई। अप्रतिभ-सा होकर बोला, "काम अधिक था···· मुंसिफ साहब नहीं हैं क्या ?"

"नहीं, वे तो कल रात ही लखनऊ चले गये।" शकुन्तला अभी तक मुस्कुरा रही थी।

"हैं ! लखनऊ चले गये ? कल तो उन्होंने लखनऊ जाने का कोई जिक्र नहीं किया था। मुझे आज जोर देकर बुलाया भी था। अचानक कोई काम आ गया क्या ?"

शकुन्तला ने सर उठाकर उसकी ओर देखा। उसके होठों के कोने एक अदृश्य-सी मुस्कान से कुछ टेढ़े हुए। लापरवाही से बोली, "मुझे तो कुछ नहीं मालूम। होगा कोई काम।"

आशीष वह अदृश्य-सी मुस्कान नहीं देख पाया। उसे आश्चर्य था कि मुंसिफ साहब को यकायक यह झक कैसे सवार हो गई कि उसे बुलाकर खुद लखनऊ चले गए। वास्तव में उसे आज एक दूसरे मित्र से मिलना था, लेकिन मुंसिफ साहब ने उस पर आने के लिए बहुत जोर दिया था। फिर यह क्या हरकत है? उससे भी बढ़कर आश्चर्य की बात यह थी कि शकुन्तला इस अद्भुत व्यापार को इस स्वाभाविकता के साथ ले रही थी, जैसे कुछ हुआ ही न हो। आशीष ने पूछा, "कब तक आएँगे?"

"कल सुबहवाली गाड़ी से आने के लिए कह गए हैं।"

यह तो ठीक ही था। आशीष के एक मुकदमे की दूसरे ही दिन तारीख थी, जिसे बढ़ाने की कोई जरूरत नहीं पड़ेगी। लेकिन आखिर आज उसे बुलाया क्यों गया था। उसने पूछा, "उन्होंने मेरे बारे में नहीं बताया कि मैं आऊँगा?"

"नहीं साहब", शकुन्तला हँसकर बोली, "उन्हें शायद मुझ पर यह विश्वास है कि मैं पूर्व सूचना दिये बगैर भी आपका थोड़ा-बहुत स्वागत-सत्कार कर सकती हूँ।"

आशीष झेंपकर हँसने लगा। शकुन्तला की वाक्पटुता से पार पाना कठिन था।

"और सुनाइए, आपकी रंगमंच की दिलचस्पी थोड़ी-बहुत कायम है या बिल्कुल वकील साहब ही होकर रह गए?" शकुन्तला ने हँसी की दूसरी फुहार छोड़ते हुए कहा।

आशीष ने सांस्कृतिक कार्यों को बिल्कुल न छोड़ा था, छोटी-मोटी संगीत-गोष्ठियों में जाया करता था। किन्तु, उसकी नई वकालत थी, अधिकतर ध्यान इधर ही लगाया करता था। बोला, "पहले से तो कमी हो ही गई है...लेकिन अब शायद दिलचस्पी बढ़ जाए। अभी तक कोई ढंग का साथ नहीं था। अब तो आप आ गई हैं।"

शकुन्तला का चेहरा कुछ लाल पड़ने लगा, फिर वह सँभल गई। आशीष ने इसे लक्ष्य किया। उसने अपनी अन्तिम बात दरअसल शकुन्तला को अपनी ओर से सफाई देने के लिए कही थी, ताकि वह ढाई वर्ष पूर्व की घटना का रोष अपने दिल से निकाल दे। वह जल्दी से बोला, "आप चाहें, तो इसे खुशामद समझ सकती हैं, लेकिन सच्ची बात यह है कि मंच की प्रतिभा कम ही स्त्रियों में होती है। आपके जाने के बाद एक भी महिला कलाकार ढंग की नहीं दिखायी दी। इसीलिए कहता था...।"

"आप मुझे इसी हालत में स्टेज पर उतारना चाहते हैं ?" शकुन्तला हँस पड़ी।

आशीष भी हँस पड़ा। नाट्यकला सम्बन्धी बातें होने लगी। लेकिन, आशीष का जी नहीं लग रहा था। वह कायदे का आदमी था ! वेकायदगी उसे बिल्कुल पसन्द नहीं थी, चाहे वह मुंसिफ सहाब ने ही क्यों न की हो। "यह भी कोई बात हुई कि मुझे यहाँ बुलाकर मेरे बारे में भूल गए और बाहर चले गए। होंगे बड़े आदमी तो अपने घर के होंगे, इस तरह मेरी उपेक्षा करने का उन्हें क्या अधिकार है ?" उसे गुस्सा आ रहा था, लेकिन वह शकुन्तला से क्या कहे, इसे तो खुद ही कुछ नहीं मालूम। कुछ देर बाद बोला, "समझ में नहीं आता मुंसिफ साहब कैसे अचानक लखनऊ चले गए। मुझसे तो उन्होंने''''।"

"जी नहीं; वह लखनऊ नहीं गए हैं", शकुन्तला किंचित रोष में बोली, "मैंने उन्हें सन्दूक में बन्द कर दिया है। जाइए, अन्दर तलाशी ले लीजिए। आप भी बस''''।"

आशीष वेचारा दुबक गया। शकुन्तला हिन्दी रंगमंच की दुर्दशा पर फिर भाषण करने लगी थी, वह सुन रहा था। लेकिन उसका जी इन बातों में बिलकुल न लग रहा था। कुछ देर बाद उसने विदा चाही, लेकिन शकुन्तला चाय पिलाये बगैर बिदा देने के लिए बिलकुल तैयार न हुई। तारीफ की बात यह थी कि उसने नौकर से चाय मँगायी भी न थी। कुछ देर में वह बोली, "मालूम होता है आप किसी बात से परेशान हैं।"

"क्या बताऊँ", वह कुछ हँसकर बोला, "मैं मुंसिफ साहब का खैचा समझ नहीं सका।"

शकुन्तला भवें टेढ़ी करके दूसरी तरफ देखने लगी। फिर जल्दी से बोली, "अरे ! मैं चाय मँगाना तो भूल ही गई।" नौकर को आवाज देते-देते वह खुद अन्दर चली गई।

आशीष को उसका व्यवहार रहस्यमय लगा। आखिर वह मुंसिफ साहब की बात आते ही टाल क्यों जाती है, साथ ही उठकर जाने भी नहीं देती''''या शायद अब बिदा देने ही की तैयारी कर रही हो। लेकिन मुंसिफ साहब को ऐसा क्या काम''''।

तर्क-वितर्क का मौका अधिक न मिला। चाय आ गई और शकुन्तला की बकबक फिर शुरू हो गई। आशीष धैर्यपूर्वक सुनता रहा। फिर शकुन्तला यकायक चुप हो गई। मौका देखकर आशीष बिदा माँगने की सोच ही रहा था

कि शकुन्तला ने पूरी नजरें उस पर गड़ा दीं और बोली, "आप जानना चाहते हैं कि वे आपको बुलाकर क्यों चले गए ?"

आशीष जानना जरूर चाहता था, किन्तु इस समय शकुन्तला की भाव भंगिमा देखकर उसकी इच्छा होने लगी कि वह यह बात जाने बगैर ही भाग जाए। उस पर एक अप्रत्याशित-सा भय छाने लगा था। किन्तु वह बोला, "मैं तो शुरू ही से यह बात पूछ रहा था।"

शकुन्तला के आदेश पर कुर्सियाँ लॉन में डाल दी गईं; क्योंकि धूप बिलकुल चली गई थी। शकुन्तला अब भी चुपचाप बैठी थी। आशीष भी उसकी बात की प्रतीक्षा में बैठा था।

यकायक वह बोली, "मुंसिफ साहब ने आपको जोर देकर इसलिए बुलाया कि आप बहुत दिनों से यहाँ नहीं आए थे। और चले इसलिए गए कि आज आप आनेवाले थे।"

आशीष मुँह फाड़कर देखने लगा। यह कुछ पागल हो गई है क्या ? उसे और भय लगा।

शकुन्तला उसे तेज नजरों से देखकर बोली, "शायद आपकी समझ में बात नहीं आई।"

"जी नहीं, मैं नहीं समझा।" आशीष घबड़ाकर बोला।

"कोई कानून की बात होती तो समझ लेते। कॉमनसेंस की बात कैसे समझ में आएगी"। शकुन्तला की कटुता बढ़ती जा रही थी। आशीष की परेशानी बढ़ती जा रही थी। कुछ देर चुप रहने के बाद शकुन्तला मुँह फेरकर बोली, "उनका ख्याल है हम दोनों में प्रेम है।"

आशीष की आँखों के सामने लॉन और बँगले की चहारदीवारी गोलाई में चक्कर काटने लगी। बड़ी मुश्किल से फँसे हुए गले से बोला, "क्या कहा आपने ?"

शकुन्तला चुप रही।

"साफ बताइए न। आखिर हुआ क्या ?" आशीष के स्वर में काफी तेजी आ गई थी।

शकुन्तला ने पूरा हाल बताया। कैसे अपने छात्र जीवन की बदनामी को पति से छुपाये रही, कैसे इलाहाबाद के तबादले पर परेशान रही, कैसे संभावित बदनामी से बचने के लिए उसने समय से पूर्व माँ बनने का षड्यन्त्र किया। "लेकिन 'मैंने प्रोपोजेज, गॉड डिस्पोजेज।' यहाँ आने के बाद घर में सबसे पहले मेहमान

के रूप में आप ही पधारे। मैं एक बार खन्नाजी का उचित स्वागत करने को तैयार थी, किन्तु आप के आने की आशा बिल्कुल नहीं थी। मुझे क्या मालूम कि कलाकार महोदय वकील भी हो गए हैं। वैसे भी मुझे आप से डर लगता था। तैयारी करके भी मैं आपका सामना नहीं कर सकती थी। मैं स्वभावतः ही घबड़ा गई और आप भी पहले तो घबड़ाये, फिर कहने लगे कि हम दोनों का पूर्व परिचय है। मुंसिफ साहब की नजरें तेज हैं। उन्हें संदेह हो गया। मैं उसके बाद भी उन्हें असली किस्सा बताने का साहस नहीं कर सकी। इसी से उन्हें....।''

शकुन्तला की आवाज भर्रा गई। वह चुप हो गई। आशीष बुत बना बैठा था। शकुन्तला फिर कहने लगी, ''इसके बाद आप कई बार आए और मैं आपके सामने न आई। मुंसिफ साहब आदमी नहीं, देवता हैं। सोचते हैं कि हम दोनों में प्रेम है तो हमें जरूर मिलने देना चाहिए। मेरी भावनाओं का खयाल करके मुझसे साफ-साफ कुछ कहते भी नहीं। मैं भी उनसे असली बात करने का साहस नहीं कर सकती।''

''इतनी ही बात है या कुछ और भी ?'' आशीष ने निर्विकार भाव से पूछा।

''बस इतनी ही।''

''अच्छा आज्ञा दीजिए, नमस्ते।'' कहता हुआ आशीष चला गया। शकुन्तला की दबी हुई रुलाई फूट पड़ी। निर्जन लॉन में घण्टे भर चुपके-चुपके रो लेने के बाद उसका जी हलका हुआ।

शकुन्तला तो रो-धोकर हलकी हो गई, लेकिन आशीष को इतनी जल्दी छुटकारा न मिला! प्रकृति माता का काम बड़ा न्यायपूर्ण होता है, वह हर एक की आवश्यकता के अनुसार देती है और सामर्थ्य के अनुसार बोझ भी डाल देती है। स्त्रियाँ दुःख का बोझ अधिक सँभाल नहीं पातीं, इसलिए उनकी आँखों की अश्रु-ग्रंथियाँ शीघ्रता पूर्वक काम करने लगती हैं और आँसुओं के साथ उनका दुःख घुलता जाता है, साथ ही इस बात की भी संभावना हो जाती है कि दूसरे लोग आँसुओं को देखकर उनका दुःख बँटा लें। पुरुषों के मन और मस्तिष्क को धैर्य का गुण अधिक मात्रा में मिला हुआ है, तो साथ ही अश्रु-ग्रंथियाँ भी अधिक निष्क्रिय रहती हैं। हृदय फटा जा रहा हो, किन्तु उनकी आँखों में आँसू नहीं आते। आँसू ? अरे म्याँ, उन्हें ऐसी हालत में हँसना-मुस्कराना भी पड़ता है, अन्दर की आग को दबाकर बाहर फूल बिखेरने पड़ते हैं। मजाक नहीं है मर्द होना!

आशीष घर नहीं गया, घर जाकर करता भी क्या ? सीधा कम्पनी बाग चला गया। अँधेरा बढ़ने लगा था, किन्तु पार्क भरा हुआ था, परीक्षा की तैयारी

में व्यस्त छात्रों के लिए संध्या का मनोरंजन आवश्यक होता है और परीक्षा के दिनों में मनोरंजन सिर्फ कम्पनी बाग में टहल कर हो सकता है, सिविल लाइन्स का बाजार, कॉफी हाउस और सिनेमा गृह तो बेफिक्री के दिनों में मनोरंजन प्रदान करते हैं।

अंधेरा बढ़ने के बावजूद छात्र काफी संख्या में मौजूद थे, यत्र-तत्र कुछ छात्राएँ भी दिखायी दे जाती थीं। आशीष चुपचाप जाकर गोल चक्कर में एक बेंच पर बैठ गया। अन्दर के चबूतरे पर एक बैण्ड निरंतर एक ही धुन बजाये जा रहा था। आशीष को झुंझलाहट होने लगी। अल्फ्रेड पार्क इसलिए आया था कि जी बहलेगा। यहाँ जी बहलने के सामान हैं? चारों तरफ मुरझाये से चेहरे, चश्मों के अन्दर बुझती हुई सी आँखें, जवानी की निर्द्वन्द्वता को दबाती हुई बुढ़ापे की जिम्मेदारी; दोपहर की तेज धूप में सँवलाये हुए फूल, मुरझायी हुई पत्तियाँ; बेगार में पकड़े गए जैसे बैण्ड बजाने वाले भाव भंगी संगीतकारों से कम, रोमन साम्राज्य में तांबे की खानों में कोड़े खाते हुए काम करने वाले गुलामों से अधिक मिलती-जुलती लग रही थी। बेंच ऐसी जिस पर बैठकर मातम करने को जी चाहे लकड़ी की सीट में मुँह फाड़े हुए दरारें और लोहे के फ्रेम से उधड़ी हुई वार्निश। आशीष लोटस पौण्ड की ओर गया, तो उसने देखा कि कमल की पत्तियाँ कीचड़ में मुँह छुपाने का प्रयास कर रहीं हैं। लौटकर फिर जंग खायी बेंच पर बैठ गया। झुंझलाहट बढ़ गई। 'क्या तमाशा है! ऐसी ही हालत में पार्क रखना है, तो म्युनिस्पेल्टी इसे खोदकर फिकवा क्यों नहीं देती, बैण्ड वाले क्यों बोर कर रहे हैं, ये वाहियात से लड़के-लड़कियाँ क्यों बेकार इधर-उधर रेंग रही हैं, पार्क जब पार्क नहीं है, तो रेगिस्तान क्यों नहीं बन जाता......।'

"बाबूजी आप पढ़ते हैं?" आशीष ने चौंक कर देखा। अपने विचारों में उसे पता ही न चला कि बेंच पर यह महाशय कब आ बैठे। थुल-थुल-सा शरीर, गोबर गणेश जैसा चेहरा, खिचड़ी मूँछों के नीचे पीले काले एक दूसरे के ऊपर चढ़े हुए दांत। जय हो देवता! आप ही की कसर बाकी रह गयी थी, सो आप भी तशरीफ ले आये। उनके गन्दे कपड़ों से अपने को बचाता हुआ आशीष बोला, "नहीं।"

"तो आप पढ़ाते हैं! गन्दे आदमी ने आशीष की आधी आस्तीन की कमीज में से झलकती हुई बाहों की गठीली मांसलता पर नजरें जमाते हुए पूछा। आशीष चुप रहा, मुँह फेर कर बैठ गया।

अचानक जांघ पर हाथ का स्पर्श पाकर वह चिहुंक उठा। उस व्यक्ति की आँखों में आशीष ने जो कुछ देखा, उससे उसका खून खौल उठा। वह विद्युत्-

गति से उठा और उसके मुँह पर भरपूर थप्पड़ जमा दिया। आदमी हाय-हाय करता हुआ बेंच पर लुढ़क गया। कुछ लोग दौड़े आए, पूछने लगे, क्या हुआ। आशीष ने कड़ुवाहट से कहा, "इसी से पूछो"; और चल दिया। लोग स्तम्भित थे, कोई आशीष को रोक भी नहीं पा रहा था। जमाव में एक व्यक्ति गन्दे आदमी को जानता था, व्यंग्यपूर्वक बोला, "अरे इनका शौक ही ऐसा है कि हर जगह मार खिलाता है।" लोग असली बात समझने लगे और तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से उसे देखने लगे। उसने भी चुपचाप खिसक जाने ही में खैरियत समझी।

आशीष रिक्शे में बैठा सिविल लाइंस की ओर भागा जा रहा था, लेकिन उसका जी बुरी तरह मितला रहा था। यदि चार-छह बार नहीं थूकता, तो शायद उल्टी भी कर देता। रामाज के पास पहुँच कर रिक्शा रुका। आशीष अन्दर घुस गया। तले हुए आमिष खाद्यों और मदिरा की मिली-जुली सुगंध से तबियत सँभली। बैरे को ऑर्डर दिया, एक बोतल बियर का। बैरे को आश्चर्य-मिश्रित प्रसन्नता हुई। आशीष लगभग रोज का आने वाला था, किन्तु आज उसने शराब पहले ही पहल मँगायी थी; हर बैरा जानता है कि पीने के बाद ग्राहक टिप ज्यादा देते हैं और खोटे सिक्के भी ले लेते हैं। ठंडी बियर के कसैले घूँटों के उतरते ही आशीष के मन की जुगुप्सा खत्म होने लगी और पहला ग्लास खत्म करते-करते वह पूर्ण स्वस्थ होकर अपने चारों ओर देखने लगा।

घर पहुँच कर उसने अपने कमरे ही में खाना मँगवाया और नौकर से कहा कि सर्वेण्ट्स क्वार्टर्स की ओर वाले लॉन में, जहाँ घर का कोई और व्यक्ति नहीं सोता था, उसका पलंग पड़े। माँ ने आकर कहा कि पिता जी किसी मुकदमे के बारे में बात करना चाहते हैं, तो बोला, "आमि जेते पारबो न, बेशी थेके होच्छि।" वह जानता था कि माँ बेचारी भोली-भाली हैं, लेकिन पिता की तेज नजरों से मद्यपान छुप न सकेगा।

लॉन में मच्छरदानी के अन्दर लेटा, तो उसके महीन वितान में से दशमी का चन्द्रमा झलकने लगा। धीरे-धीरे उसने मानव-आकार लेना शुरू किया (नए पीने वाले के लिए एक बोतल बियर भी जरूरत से ज्यादा होती है)। यह हाथ, यह पाँव, यह केशराशि, यह साड़ी—कौन कहता है कि यह चन्द्रमा है। यह तो''''यह तो''''शकुन्तला है!

आशीष झटके के साथ उठ बैठा। उफ्फोह! अब क्या किया जाए। मानस-पटल पर गहरे खुदे हुए इसी चित्र को मिटाने के लिए तो वह कम्पनी बाग गया था, जहाँ से उसे मजबूरी में उठ आना पड़ा। लेकिन, यह अश्रुपूरित आँखों

वाला चित्र कैसे मिटे ? क्या चीज इसे धो सकती है ? बियर, नहीं रम···ह्विस्की ····कोई शराब···श···रा····ब···।

कई घंटों की गहरी नींद के बाद उसने अजीब सपना देखा। देखा कि आसाम के जंगलों में वह शिकार करने गया है। हाथियों का एक झुण्ड दिखायी दिया, लम्बे-चौड़े बहुत बड़े हाथी···पहाड़ जैसे। आशीष ने राइफल सँभाली, लेकिन राइफल तो गुलेल हो गई। खैर गुलेल ही सही। एक हाथी उसके पास आकर हँसने लगा····बिल्कुल गोयल साहब की-सी हँसी। उन्हीं की तरह बोला, "हलो मुखर्जी ! शी इज वेटिंग फार यू।" अरे बाप रे ! हाथी चढ़ा ही आ रहा है। उसने आशीष को सूँड़ से पकड़ कर उछाल दिया···आशीष की आँखें खुल गईं। शरीर पसीने-पसीने हो रहा था, दिल धौंकनी की तरह धड़क रहा था।

●●●

६

आशीष के बारे में यह तो बताया ही जा चुका है कि वह बैरिस्टर चारु चन्द्र मुखर्जी का इकलौता पुत्र था। उसके परिवार का कुछ और परिचय दे दिया जाए तो अनुपयुक्त न होगा। चारु बाबू के पितामह ने कलकत्ते से आकर इलाहाबाद में वकालत आरम्भ की थी और तब से यह वंश इलाहाबाद ही में रहता था और वकालत को जीविका का साधन बनाये था। आशीष के पितामह श्री प्रेमचन्द्र मुखर्जी अपने समय के चोटी के वकीलों में थे। एडमंड्स्टन रोड पर मुखर्जी परिवार की आलीशान कोठी प्रेमचन्द्र बाबू हो की यादगार थी। उनके पुत्र चारु बाबू पिता के जोर देने पर विलायत जाकर बैरिस्टरी पास कर आए और वापस आकर प्रैक्टिस भी करने लगे, लेकिन सच्ची बात यह थी कि इस पेशे में उन्हें जबर्दस्ती धकेला गया था। उनका ध्यान वकालत में कम लगता, अध्यात्म चर्चा में अधिक। फलतः उनकी वकालत में वह दमन रहा, जो प्रेमचन्द्र बाबू की वकालत में था। यूँ उन्हें भी एक डेढ़ हजार की

माहवारी आमदनी हो ही जाती थी, किन्तु इसका लगभग आधा भाग संत सेवा में चला जाता था।

इसी कारण आशीष ने जिस वातावरण में आँखें खोलीं, उसमें न अर्थाभाव को दखल था न आडम्बरपूर्ण रहन-सहन को। धन-संचय की भी कोई प्रवृत्ति इस घर में नहीं थी और इतना बड़ा आदमीपन भी नहीं था कि किसी निम्न आर्थिक वर्ग के आदमी के साथ मैत्री या खान-पान का व्यवहार न किया जा सके। आशीष की मनोवृत्ति भी ऐसी ही हो गई। उसे पितामह की प्रखर बुद्धि, पिता की निस्पृहता, माता की संवेदनशीलता और कलात्मक रुचि उत्तराधिकार में मिली थी, उसका स्वास्थ्य भगवान की अनुकम्पा थी।

चारु बाबू की संतों की सेवा के फलस्वरूप जो आशीर्वाद मिले, उससे उन्हें आठ पुत्र रत्नों और चार कन्या रत्नों की प्राप्ति हुई। किन्तु, इस अंधाधुंध देन से भगवान के हिसाब में गड़बड़ी पड़ गई। साधुओं का आशीर्वाद खाली नहीं जा सकता, इसलिए ये रत्न चारु बाबू को दिये अवश्य गए किन्तु हिसाब ठीक करने के लिए इनमें से दस रत्न वापस ले लिए गए और उनके पास उनके भाग्य के दो ही रत्न रह गए—एक आशीष और दूसरी उससे लगभग दस वर्ष छोटी बहन बन्दना, जो इस समय हाई स्कूल की परीक्षा के आखिरी परचे कर रही थी।

आशीष को किशोरावस्था से तीन शौक लग गए थे—नाट्य, संगीत और व्यायाम। तीनों का फल स्पष्ट था। इसके अलावा उसे कोई शौक न था, पान और सिगरेट तक से उसे परहेज था। लेकिन परहेज भी सिर्फ अपने लिए था, अपने मित्रों की हर एक लत को बरदाश्त करने की उसे आदत थी। यह सहिष्णुता भी मजबूरी में पैदा हुई थी। कलाकारों का उसका रात-दिन का साथ था और कलाकारों में किसी लत का न होना अपवाद स्वरूप ही हो सकता था। यही हाल उसका स्त्रियों के प्रति व्यवहार में था। व्यायाम शिक्षक खलीफा जी ने प्रारम्भ ही से उसके कोमल मन पर यह छाप छोड़ दी थी कि औरत मर्द के लिए जहर होती है, किन्तु उसे स्त्रियों से घृणा न थी। रंगमंच और संगीत के संसार में रह कर स्त्रियों से घृणा करने का अर्थ भी क्या है। हाँ, आशीष को उनमें अपने लिए कोई विशेष आकर्षण नहीं मालूम होता था। यही उसकी सच्चरित्रता की ख्याति का रहस्य था।

फिर भी पिछली शाम को शकुन्तला ने आशीष का सन्तुलन बिगाड़ कर रख दिया। डरावना स्वप्न देखने के बाद वह फिर सोया, किन्तु शकुन्तला की छाया उसे बराबर घेरे रही। आज जिला कचेहरी में भी वह अजीब हालत में रहा। मुंसिफ साहब लखनऊ से न आ सके थे, इसलिए उनका सामना नहीं

हुआ (अच्छा ही हुआ, वरना कोई नाटक जरूर हो जाता) फिर भी अन्य-मनस्कता इतनी रही कि अन्य मुकदमों में वह ठीक पैरवी न कर सका और मुवक्किलों को मुंशीजी के सुपुर्द करके जल्द ही घर चला आया, कह दिया कि तबियत ठीक नहीं है। वास्तव में उसके सर में दर्द हो भी रहा था।

लेकिन समस्या तो घर आकर भी नहीं सुलझती थी। उसने जी बहलाने के लिए फिर मुकदमों की फाइलें खोलीं, लेकिन बेकार! कमरे के डेढ़ सौ चक्कर लगाए—बेकार!····ढेर सारा पानी पिया—बेकार! मन में कोई चीज घुमड़ रही थी, जो बाहर आना चाहती थी। लेकिन, आशीष की समझ में न आता कि उसे किस तरह बाहर निकाले। एक ही रास्ता समझ में आता था कि खूब जोर से चीखे और ईंट से अपना सर फोड़ डाले। लेकिन, भला यह भी कोई तरीका हुआ जो बहलाने का? उसे अपने पागलपन पर हँसी आ गई।

बात भी हँसने की थी। ढाई वर्ष पहले इसी शकुन्तला से वह घृणा करता था, जब कि वास्तव में उससे प्रेम किया जा सकता था। लेकिन, शायद हजरते-इश्क उस समय अफीम की पीनिक में पड़े थे। जागे हैं इस वक्त जब कि उससे प्रेम करने से ज्यादा बेतुकी बात कोई नहीं हो सकती। 'आशीष मोशाय! कुछ अक्ल से भी तो काम लो, वह इस समय एक गजेटेड आफिसर की बीबी है। आप किसी कुमारी से प्रेम करते, तो दुनिया बरदाश्त कर लेती, न करती तो भी कुछ बिगाड़ न लेती। लेकिन, इस समय सारी सच्चरित्रा का बाना ओढ़े हुए आप एक विवाहित स्त्री के दीवाने बनेंगे? बलिहारी है!········ विवाहिता ही नहीं, माँ बनने की तैयारी भी कर रही वह! किसी ने गर्भवती से प्रेम किया है? और लोग आकृष्ट होते हैं, कमल-दल जैसी आँखों से, पतले होंठो से, लता-सी देह से—आप आकृष्ट होते हैं, गुब्बारे जैसे फूले हुए पेट से········हः हः हः हः।'

"दिमाग खराब हो गया है आशीष? ········ अकेले ही हँसते चले जा रहे हो!"

आशीष चौंक कर देखा। वॉल्टर खड़ा था, हमेशा की तरह मलगुजा पाजामा और कमीज और बिखरे हुए बाल। आशीष को सहारा मिला। बोला, "आओ वाल्टर, मुझे इस समय तुम्हारी ही जरूरत थी········ वहाँ नहीं, इधर आकर बैठो।"

"मेरी नहीं, किसी डाक्टर की जरूरत है तुम्हें। कुछ पागलपन के आसार दिखायी दे रहे हैं। मेरी जरूरत थी, तो अकेले हँसने की क्या जरूरत थी?"

आशीष ने मुँह खोला, अपना जी हलका करने के लिए। जो चीज अन्दर घुमड़ रही थी, वह अब बाहर निकाली जा सकती है। प्रेम की बात कहने के लिए वाल्टर से अधिक उपयुक्त श्रोता दुनिया में कहाँ मिलेगा। यह तो—

"वो गलियाँ अभी तक हसीनो-जवाँ हैं,
जहाँ हमने अपनी जवानी लुटा दी।"

का जीता-जागता, चलता-फिरता उदाहरण है। अभी तक बराबर आशीष को उसके पवित्रतावादी जीवन पर व्यंग्यवाणों से बींधता चला आया है। खूब आदमी है यह वाल्टर भी—रहन-सहन का गंदा, दिल का साफ, दो टूक बात कहने वाला। अक्खड़ आदमी नाराज हो जाए तो, सर फोड़ दे, खुश हो जाए, तो जान न्योछावर कर दे। आशीष उसके इन्हीं गुणों पर लट्टू था, इसलिए उससे दाँतकाटी रोटी थी, वरना अच्छे गाने वाले तो इलाहाबाद में हर जगह मिल जाते हैं।

आशीष ने मुँह खोला, लेकिन मुँह खोलकर रह गया। घुटी हुई भावनाओं के निकलने का रास्ता साफ नहीं था। उसका सारा निष्कलंक अतीत रास्ते में धरना दिये बैठा था। इन सत्याग्रहियों को तो हटाना ही होगा। बगैर भूमिका के एकदम से प्रेम कहानी सुना बैठना—इससे ज्यादा बढ़कर भला क्या होगा? फिर कोई कहानी भी तो हो!

"अरे कुछ कहोगे भी या मुँह फाड़े देखते ही जाओगे? क्या हो गया है तुम्हें?"

वाल्टर को आश्चर्य था कि आशीष इतना अनाक्रामक क्यों है। उसके व्यंग्य वाणों का आशीष ने हमेशा तुर्की-बे-तुर्की जवाब दिया है। आज क्या बात हो गई कि कुछ कहता ही नहीं। आशीष बोला, "मेरी फिक्र न करो। एक गाना सुना दो।"

"गाना?" वाल्टर का आश्चर्य बढ़ता जा रहा था। वह बोला, "गाना तुम्हारे मुकाबले मैं क्या गाऊँगा?"

"देखो, नखरे न करो। कह रहा हूँ तो सुना दो। मैं खुद नहीं गाना चाहता, सुनना चाहता हूँ।"

"सचमुच तुम पागल हो गए हो। खैर, सुना दूँगा, दम तो लेने दो ……लेकिन इस वक्त गाने का दिमाग किसे है? बड़ी मुसीबत पड़ गई है… …तुम्हारे पास पाँच रुपये होंगे?"

आशीष को वाल्टर की हर महीने दो-तीन बार पड़ने वाली 'मुसीबतों' का

पता था और वह हर बार मद्यनिषेध पर लम्बा लेक्चर देकर वाल्टर की 'मुसीबत' दूर कर दिया करता था। किन्तु इस समय उसने एक शब्द कहे बगैर दस का नोट उसकी ओर बढ़ा दिया।

आशा से अधिक पाकर वाल्टर की आवाज खुल गई और उसने लहक कर एक गजल सुनानी शुरू कर दी। गजल बड़ी तड़पती हुई थी। आशीष झूम उठा। आधी गजल के बाद उसने भी अन्तरे उठाने शुरू कर दिये। भावभीनी गजल की स्वर-लहरियों से रस वर्षण होने लगा। छोटे से कमरे का अणु-अणु उल्लास में नाचने लगा।

गजल खत्म हुई, तो चाय आई। चाय खत्म हुई, तो वाल्टर ने पैकेट निकालकर सिगरेट जलायी। आशीष कुछ झिझका, फिर अपने लिए भी एक सिगरेट माँग बैठा।

"क्या बात है हजरत ?" वाल्टर मुस्कराकर बोला, "सारा 'प्युरिटनिज्म' छोड़ दे रहे हो ! रंग-ढंग कुछ और ही दिखायी दे रहा है।" और उसने लहक कर फिर गजल का मसला गा दिया—

(अरे) तूँ हजार उज्र करे मगर हमें शक है और ही ऐ 'जिगर',
तेरे इज्तराबे-निगाह से तेरी एहतियाते-कलाम से।

आशीष मुस्करा उठा। यही है, यही है। ठीक मौका है बात शुरू करने का……लेकिन जाने दो। बेतुकी बात है। जी तो बहल गया है, उलझन तो खत्म हो गई है।

"देखो वाल्टर ! तुमने मुझे समझने में हमेशा गलती की है। मैं 'प्युरिटन' कभी नहीं था, न इस समय 'और ही शक' की कोई बात है। बात सिर्फ इतनी है कि आदमी शराब पिये तो बुराई नहीं है। बुराई तब होती है, जब शराब आदमी को पीने लगे।"

"इसका मतलब है कि शराब भी पी सकते हो, कोई एतराज बाकी नहीं है।"

आशीष के सामने रामाज में गुजरी हुई पिछली शाम घूम गई और घूम गई चन्द्रमा में दिखायी देने वाली शकुन्तला की आकृति। बोला, "नहीं, बशर्ते कि अपने पर काबू रहे।"

"ब्रेवो !" वाल्टर उछलकर बोला, "अच्छा शाहिद (प्रियतमा) के बारे में क्या खयाल है ?"

"अब उँगली पकड़कर पहुँचा पकड़ना चाहते हो।" आशीष हँस पड़ा।

हँसी क्या थी, मानसिक उद्वेग को छुपाने की असल चेष्टा थी। वाल्टर की निगाहों से छुपा न रह सका कि इस समय लोहा गर्म है। ऐसे लायक शागिर्द का उस्तादी का मौका चूकना मूर्खता थी। सरगोशी में बोला, "आज शाम को कोई काम तो नहीं है ? मेरे साथ चलो।"

"कहाँ ?" आशीष घबड़ाकर बोला।

"जहन्नुम में", वॉल्टर ने बिगड़कर कहा, "अजीब पोंगा आदमी मालूम होते हो !"

"भई, यह बात गलत है। बीमारियों के घर में जाने का मुझे कोई शौक नहीं।"

वॉल्टर हँस पड़ा, "बर्खुरदार ! बुजुर्गों पर यकीन किया करो। अपने बच्चे को कौन बीमारियों के मुँह में झोंकेगा। मैं तुम्हें बीमारियों के घर में नहीं, तन्दुरुस्ती के घर में ले चलूँगा। कॉल्विन हॉस्पीटल तो चलोगे, जहाँ हर मरज की दवा मिलती है ? हः हः हः"

वॉल्टर सिर्फ भाग्य के भरोसे चल पड़ा था, लेकिन भाग्य उसके साथ था। उसके दस रुपयों पर भी आँच नहीं आई और जी भर कर पीने को भी मिल गई; और मिली भी हमेशा की देशी नहीं, बल्कि सोलन ह्विस्की। हुआ यूँ कि संयोग से उस रोज जूलिया का ऑफ था यानी उसकी शाम बिल्कुल खाली थी। नतीजा यह हुआ कि झुटपुटे के समय जूलिया, आशीष और वाल्टर गजदर में बैठे हुए दिखायी दे रहे थे। जूलिया का रंग तो बहुत साफ न था, लेकिन फिर भी खुलता हुआ था। उसके शरीर का कोई अंग ऐसा नहीं कहा जा सकता, जो विशेष प्रशंसनीय हो, उसमें कुछ निन्दनीय भी न था। सभी कुछ बिल्कुल साधारण। हाँ, दन्त-पंक्ति जरूर बड़ी सुन्दर थी और सबसे बढ़कर था उसका स्वास्थ्य, जिसके कारण उसका चेहरा कुछ खास न होते हुए भी झल-झल करता रहता था।

वॉल्टर समझता अपने को पक्का शराबी था और मौके-बे-मौके दोस्तों में शराबखोरी का बखान करके उन्हें बोर भी किया करता था। लेकिन, दरअसल शराब पीने के मामले में उससे ज्यादा बेकार साथी मिलना असम्भव था। पहले ही पेंग में कमबख्त के पांव लड़खड़ाने लगते थे और दूसरे ही पेंग में तो बहकने ही लगता था।

जूलिया हँसी बिखेरते हुए बोली, "भई वॉल्टर, तुम्हारे दोस्त तो बहुत खामोशी पसन्द इन्सान मालूम होते हैं। हूँ-हाँ भी नहीं करते। फिलॉसफर हैं क्या ?"

"आ····नया जानवर है, सधते-सधते ही सधेगा", वॉल्टर की बहक शुरू हो गई।

"मुखर्जी साहब ! आप इसकी बात का बुरा तो नहीं मान रहे ?" जूलिया ने पूछा।

"इसकी बात का क्या बुरा मानना !" आशीष ने चाप से उलझते हुए कहा।

"यही तो दिक्कत है। आप नाराज भी नहीं होते। नाराज होते तो भी कुछ गर्मी आती।"

आशीष लाख गम्भीर सही, फिर भी भरा-पूरा आदमी था। पेशे से वकील, लगातार छेड़ को चुपचाप कैसे सहता। बोला, "कोई हर्ज नहीं, आप ही मुझ पर नाराज होना शुरू कर दें।"

"लेकिन कैसे ? आप तो मुझे भी नाराज होने का मौका नहीं दे रहे हैं।"

"मौका मैं दे दूँगा, आप नाराज होने के लिए तैयार रहिए।" आशीष मुस्कुराकर बोला।

"मैं तैयार हूँ।"

"मैं कहता हूँ कि मुझे आप से प्रेम है।" आशीष ने नाटकीय ढंग से कहा।

"मैं कहती हूँ कि हर भाई को बहन से प्रेम होना चाहिए।" जूलिया हँस कर बोली।

"शह !" वॉल्टर ने जोश में आकर कहा।

आशीष पर भी सुरूर चढ़ रहा था। मेज पर प्लेटें और छुरी-काँटे बिजली की तेज रोशनी में चमचमा रहे थे, पंखे की तेज हवा में केबिन का रेशमी पर्दा थिरक रहा था, ग्लास में सोड़ा मिली हुई सुनहले रंग की शराब झलझला रही थी, जूलिया का चेहरा दमक रहा था, वॉल्टर के कन्धे झूम रहे थे। बनावट, मक्कारी और खुदगरजी की दुनिया बाहर कैद थी। केबिन में हर चीज खुली हुई थी, हर चीज दमक रही थी, हर चीज थिरक रही थी, हर चीज कह रही थी, 'खुलकर खेलो····अपने असली रूप में सामने आओ····अपने को दबाना ढीपना पाप है···हँसो, मुस्कुराओ, गाओ; क्योंकि तुम हँसना-गाना चाहते हो····गम्भीर न रहो; क्योंकि गम्भीरता जीवन नहीं है, जीवन पर पड़ा हुआ मोटा कफन है···जीवन मरा नहीं है···कफन उतार फेंको, उतार फेंको, उतार फेंको···।'

आशीष ने मुस्कुराते हुए अँगड़ाई ली। बोला, एक तरह के भाई 'फ्रेंच ब्रदर' भी होते हैं।"

"मात!" वॉल्टर चिल्ला उठा और उसने सामने का ग्लास एकदम से खाली कर दिया।

जूलिया हँसने लगी, "भई मान गए! आप भी छुपे रुस्तम निकले।"

वॉल्टर पहले ही काफी पी चुका था, इस तेज घूँट ने उसकी हालत अजीब कर दी। उसने एक भरी प्लेट फर्श पर गिराकर तोड़ दी। आशीष ने बैरे को बुलाकर रिक्शा लाने का आदेश दिया और वाल्टर के तीव्र प्रतिरोध के बावजूद उसे रिक्शे पर लादकर घर भिजवा दिया। केबिन में जूलिया और आशीष रह गए। आशीष तो बराय नाम का 'सिप' कर रहा था, जूलिया ने थोड़ी-बहुत जरूर पी थी, लेकिन वॉल्टर से कम। मगर आशीष को यह देखकर आश्चर्य हो रहा था कि नशे के साथ जूलिया की गम्भीरता बढ़ती जाती है। आशीष ने इस पर उसका ध्यान आकृष्ट किया, तो वह बोली, "मुखर्जी साहब! शराब बड़ी बेरहम चीज होती है। पुरानी यादों के जख्मों पर वक्त का मरहम लगाकर मशगूलियत की पट्टी बाँधी जाती है, तभी चैन मिलता है। और कम्बख्त इस पट्टी को बेरहमी से फाड़ फेंकती है और सीने के नासूर बहने लगते हैं।"

आशीष हँसी-खुशी के मूड में था। हँसकर बोला, "उपमाएँ तो आपने सटीक दी हैं, आपको शायरी करनी चाहिए....लेकिन आपके जीवन में कौन-सा दर्द छुपा पड़ा है?"

"क्या कीजिएगा सुनकर; और किस-किस की सुनिएगा और किस-किस का दर्द बँटाइएगा? यहाँ ता हर आदमी जख्मी है, हर आदमी कराह रहा है। आप दुनिया को चाहे जिस नजर से देखें, मुझे तो यह बड़ा लम्बा-चौड़ा अस्पताल दिखायी देता है जिसमें इन्सान तभी तक रहता है, जब तक उसका दुःख-दर्द बना रहता है। फिर डिस्चार्ज! हः हः हः"

"खूब! मुझे फिलॉसफर बता रही थीं। अब अपनी फिलासफी को क्या कहिएगा? लेकिन यह तो बताइए कि दुनिया में हर आदमी कहाँ दुखी है। कम-से-कम कुछ तो सुखी हैं।"

"सुख एक ब्रह्म के सिवा कुछ नहीं। कुछ का दर्द उभरकर सामने आ जाता है और वे हाय-हाय करने लगते हैं, कुछ को जरासीम अन्दर से खाये लेते हैं, लेकिन जाहिरी तौर पर उन्हें कोई तकलीफ नहीं है। मगर, एक वक्त भी आता है, जब उनका दर्द भी फूट निकलता है।"

"आपका दृष्टिकोण बड़ा निराशावादी है। इसी यंग एज में आप ऐसी बातें····।"

"जनाब, हमलोग ऐसी दुनिया में रहते हैं, जिसमें रहकर आदमी कुछ-से-कुछ बन जाता है। आप लोगों को जिस्मानी तकलीफों का कभी-कभी तजुर्बा होता है, यहाँ रोज का ओढ़ना-बिछौना ही यही है····अब उठा न जाए? काफी टाइम तो हो गया है।"

जूलिया की बातें आशीष को रहस्यमय सी लग रही थीं। जूलिया को उसके क्वार्टर्स तक छोड़ने के लिए रिक्शे में बैठा, तो उसने फिर बात का सिलसिला शुरू कर दिया, "मैंने समझा नहीं कि आपका मतलब क्या था। आप लोगों की जिन्दगी में···।"

"भई वकील से बहस करना तो अपने बस की बात नहीं है", जूलिया ने हँसकर कहा, "फिर यह भी बात है कि अस्पताल की जिन्दगी में जो इम्प्रेशंस पड़ते हैं उन्हें लफ्जों में बयान नहीं किया जा सकता है, सिर्फ देखा और महसूस किया जा सकता है।"

नर्सों के क्वार्टर्स के पहले अस्पताल की इमारत पड़ती थी। रिक्शा अस्पताल के पास ही पहुँचा था कि सिस्टर अब्राहम फाटक से घबड़ायी हुई सी निकलीं और जूलिया को देखकर पुकार उठीं, "अरे रॉबिसन! कहाँ घूम रही है। जल्दी यूनी-फार्म पहनकर आ।"

मालूम हुआ कि शाम को रिक्शेवालों के दो जुलूसों में लड़ाई हो गई। ईंट-पत्थर चल गए, पुलिस ने लाठी चार्ज कर दिया और बड़ी संख्या में घायल अस्पताल पहुँच गए। सारे स्टाफ के ऑफ कैंसिल कर दिए गए हैं। जूलिया ने जल्दी से रस्मी बिदाई ली और अपने क्वार्टर में घुस गई।

पाँच मिनट बाद निकली तो आशीष को सड़क ही पर खड़ा पाया। वह चाहता था कि यदि सम्भव हो, तो अस्पताल में जूलिया के साथ चलकर थोड़ी देर घायलों की परिचर्या करे। नियमानुसार तो यह सम्भव नहीं था, किन्तु आपत्तिकाल में नियमों में ढिलाई आ ही जाती है। जूलिया ने इसका प्रबन्ध कर दिया। उसे अस्पताल के लॉन में बिठाकर जूलिया ने उसे एक ग्लास में एक कड़वी-सी दवा पिला दी। आशीष का रहा बचा नशा भी उतर गया। आशीष के अनभ्यस्त हाथ इस संकट काल में सहायता तो क्या करते, लेकिन यह स्पष्ट था कि वह अस्पताल के जीवन को निकट से देखना चाहता था। जूलिया ने इसमें कोई हर्ज भी न समझा; आखिर आशीष उसी की चुनौती स्वीकार कर रहा था।

वार्ड में पहुँचा, तो आशीष चकरा गया। अन्दर के सारे पलंग तो भर ही गए थे, बचे हुए घायलों को, जिन्हें अपेक्षाकृत हलकी चोटें आई थीं, बाहर बरामदे में बिस्तर डालकर लिटा दिया गया था, बैड पेनों की कमी मिट्टी की हाँड़ियों से पूरी की गई थी। घायलों में कुछ तो चुप थे, कुछ कराह रहे थे, कुछ गशी में पड़े थे। (जूलिया ने भी तो कुछ देर पहले यही बात कही थी!) अजीब-अजीब तरह के घायल, गन्दे कपड़े, पसीने की बदबू छोड़ते हुए बदन, दुबले-पतले, काले-काले, हजामत बढ़े हुए भूतों जैसे चेहरे पर बँधी मोटी-मोटी सफेद पट्टियाँ और पट्टियों में से झलकता हुआ खून और दवाओं का रंग। मशीन की तरह खट-खट तेजी से दौड़ते हुए सफेद लकदक यूनीफार्म पहने हुए वार्ड मास्टर, मेल नर्स, सिस्टर, नर्सें; शीघ्रता में भी शालीनता कायम रखनेवाले पुष्ट शरीरों वाले डॉक्टर; दवाओं की तेज बू, जिसे न खुशबू कहा जा सके, न बदबू!

आशीष ठगा-सा खड़ा ही था कि खट-खट करती जूलिया आई। आशीष उसे गौर से देखने लगा, कितनी बदली हुई लग रही थी वह सफेद फ्रॉक और नर्सेज कैप में।

जूलिया मुस्कुरा कर बोली, "खड़े मुँह क्या ताक रहे हो जी? कुछ काम करो न! वह मरीज बेड पैन माँग रहा है। उधर से हाँड़ी उठाओ और उसे दे आओ।"

जूलिया का अचानक ही अपनत्व का स्वर अपना लेना आशीष को भला लगा। उसने हाँड़ी उठाकर घायल को थमा दी और मुँह फेरकर खड़ा हो गया। लेकिन, फिर उसकी समझ में न आया कि क्या करे। पेशाब से भरी हाँड़ी घायल के पास ही पड़ी रही। दूसरे घायल ने कराहते हुए पानी माँगा, आशीष ने उसे पानी दे दिया, तीसरे को सहारा देकर करवट से लिटा दिया।

दस मिनट में जूलिया आई तो बरस पड़ी, "आपका दिमाग कहाँ है साहब? अभी हाँड़ी में किसी की ठोकर लगेगी तो मरीज पेशाब से नहा नहीं जायेगा? इसे उठाकर फेंका क्यों नहीं अब तक?"

जूलिया हाँड़ी उठाकर बकती झकती चली गई, आशीष घबराया सा खड़ा रहा।

साढ़े दस बजे अस्पताल से निकला तो खुली हवा में आशीष को चैन की साँस मिली। फिर भी पसीने, मलमूत्र और दवाओं की बदबू दिमाग में भरी पड़ी थी। जूलिया कैसे रहती है रात-दिन इस बदबू में? घर जाने के पहले उसने एक बोतल बियर और चढ़ायी।

: ७ :

खन्ना साहब की जिद ने मामला बिल्कुल बिगाड़ दिया। दो-ढाई महीनों तक की खींचतान के बाद जुलाई १९४९ के दूसरे सप्ताह में दुकानों के कर्मचारी हड़ताल कर बैठे। सिविल लाइंस और कटरे की सारी दुकानों में ताले पड़ गए। व्यवसायियों की परेशानी का ठिकाना न था। जुलाई का महीना, हॉस्टलों में नए-नए लड़के आये हुए थे, उन्हें हर चीज की जरूरत होती ही है और सबसे ज्यादा खरीदारी जुलाई-अगस्त ही के महीने में होती है और इसी समय सालभर के लिए स्थायी ग्राहक भी बन जाते हैं। लड़कों का क्या है, वे कब चार-छह दुकानों में पूछ-ताछ करके सौदा खरीदते हैं, एक दुकान पकड़ी, सो पकड़ी। ग्राहकों को साल भर के लिए हाथ से निकलते देखकर बड़े व्यवसायी परेशान थे। बेकारी कुछ-कुछ शुरू तो हो गई थी, लेकिन ऐसी हालत भी न थी कि एक जगह के लिए पचास-पचास उम्मीदवार आ जाएँ। मालिकों ने नए नौकरों को रखकर काम चलाना चाहा, लेकिन दुकानदारी का काम आते ही आते आता है। नए नौकर सीधे देहात से आने वाले लोग ही थे उनके बस का यह रोग न था। दूसरे, हड़ताली लोग केवल वैध ही नहीं अवैध तरीकों को भी अपनाए हुए थे। मौका मिलते ही नए कर्मचारियों की मरम्मत कर दी जाती थी और सीधे-सादे देहाती घबड़ाकर तनख्वाह लिये बगैर ही अपने गाँव को भाग जाते थे।

यह भी समझना भारी भूल होगी कि हड़ताली बड़े आराम से थे। गरीब आदमी बगैर तनख्वाह के दो दिन भी नहीं काट सकते। हजारों आदमियों के जी रात-दिन धुकधुकाते रहते थे। शुरू में नेताओं के गर्मागर्म भाषणों को सुनकर उन्हें मालूम होता था कि एक बार जी कड़ा करके हड़ताल कर दी, तो दूसरे ही दिन सारे संकट कट जाएँगे, लेकिन यहाँ तो दो सप्ताह हो गये थे और यह साफ मालूम होने लगा था कि आधी छोड़ सारी को धावे आधी रहे न सारी पावे। मजबूरी यह थी कि महसूस करने के बावजूद यह कहने की हिम्मत किसी में न थी कि समझौता कर लेना चाहिए। हड़ताली लोग देख रहे थे कि उनके नेतागण दिन का चैन और रात की नींद हराम करके उन्हीं के लिए दौड़-धूप कर रहे हैं। पढ़े-लिखे सफेद पोश आदमियों की इतनी निस्पृह सेवा की

उपेक्षा भी कैसे की जा सकती थी। फिर सारी कठिनाइयों के बावजूद जब यह नवयुवक नेता मुट्ठी बाँधकर कहते थे कि अंतिम विजय हमारी ही होगी, तो हड़तालियों को उनकी बात पर पूरा नहीं तो काफी हद तक विश्वास हो भी जाता था। फिर भी एक अनिश्चितता, एक बेचैनी उनके मन में रहा ही करती थी। इसी का परिणाम था कि आरंभ का जोश हड़तालियों में भी सात-आठ दिन बाद खत्म हो गया और अब वे अपने नेताओं के आदेशों का पालन उसी तरह करते, जैसे बेगार में पकड़े गए देहाती मजदूर। धरना देने वालों और हड़ताल में सक्रिय रूप से भाग लेने वालों की संख्या में बराबर कमी होती जा रही थी। हड़ताल के नेतागण स्पष्ट देख रहे थे कि अधिक दिनों तक पाँव टिकाना उनके लिए संभव न होगा। लेकिन, उनकी मजबूरी यह थी कि दुकानदार संघ किसी भी कीमत पर समझौता करने को तैयार न था और बगैर समझौते के आत्मसमर्पण का अर्थ था आन्दोलन ही का अकाल मृत्यु को प्राप्त होना।

दरअसल समझौता होना कुछ इतना मुश्किल भी न था। बाजारों का बन्द रहना कोई ऐसी बात न थी, जिसे नगर-निवासी उपेक्षा की दृष्टि से देखते। यदि काँग्रेस के नेताओं तथा अन्य प्रमुख अधिकारियों को बीच में डाला जाता, तो अभी तक समझौता हो भी जाता। लेकिन दिक्कत उन कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं के कारण थी, जो अपनी तत्कालीन नीति के अनुसार समाजवादी क्रांति से कम कोई नारा उठाते ही न थे। उनकी कार्यनीति केवल यह थी कि आन्दोलन बढ़ाए जाओ, समझौता किसी हालत में न करो, अपने उद्देश्य के लिए शांतिपूर्ण उपायों के बजाय अशांतिकारी उपायों को ही अपनाओ; क्योंकि अशांति से ही समाजवादी क्रांति जन्म लेती है। कम्युनिस्ट पार्टी के अन्दरूनी आदेशों में कार्यकर्त्ताओं को संघर्ष करने के लिए बराबर प्रेरित किया जाता था, चाहे उनकी तायदाद कितनी ही कम हो। इसी का नतीजा था कि पार्टी में लोग धीरे-धीरे बहुत कम हो गए थे। कुछ तो इस उग्रनीति और फलस्वरूप इसके सरकारी दमन से डर कर अलग हो गए थे, किन्तु बहुत बड़ी तादाद ऐसे लोगों की थी, जिन पर कायरता का आरोप लगाकर उन्हें पार्टी से निकाल दिया गया था। उन लोगों को पार्टी की नीति पर पूरा विश्वास था, किन्तु उनकी 'कायरता' यह होती है कि वे पार्टी के आदेशों के अनुसार 'चार आदमियों को ही लेकर अनाज-गोदामों पर हमला करना समझदारी के खिलाफ समझकर हिचक जाते थे।' फलतः पार्टी में ऐसे ही सर फिरे रह गए थे जिन्हें न अपनी जान की परवाह थी न दूसरे की; उनकी सारी नैतिकता पार्टी के आदेशों के पालन तक सिमित रह गई थी और उन्होंने पार्टी के आदेशों की छान-बीन या आलोचना के लिए सहज बुद्धि के दरवाजे बिल्कुल बन्द कर दिये थे।

यूनिवर्सल प्राविजन्स का शाप असिस्टेंट रघुवीर सक्सेना इस समय नया कम्युनिस्ट हुआ था। श्रमिक आन्दोलन की ओर निःसन्देह उसे बख्तियार रिजवी लाया था, लेकिन यह उसे बिल्कुल पसन्द न था कि मजदूरों का नेता संघर्ष की हालत में भी सबमें अड़ियल और प्रतिक्रियावादी मालिक पुरुषोत्तम लाल खन्ना से व्यक्तिगत सम्बन्ध बनाए रखे और उनके यहाँ चाय पीने जाता रहे। इसीलिए स्थानीय कम्युनिस्ट नेताओं की यह उक्ति उसकी समझ में आ गई कि बख्तियार दरअसल मालिकों का आदमी है, मजदूरों में सिर्फ उनके आन्दोलन की 'पीठ में छुरा भोंकने' के लिए घुसा है। कम्युनिस्टों ने उसे यह भी बताया कि बख्तियार का लीला खन्ना से अनुचित सम्बन्ध है (प्रबल कम्युनिस्ट विरोधी मिसेज खन्ना से कम्युनिस्ट बदला क्यों न लेते)? सक्सेना ने उनकी बात पर विश्वास कर लिया। कम्युनिस्टों को इस 'अवैध सम्बन्ध' में केवल राजनीतिक दुरभि संधि मिली, किन्तु चौबीस वर्षीय रघुवीर सक्सेना के हिन्दू संस्कार इतने कमजोर न पड़े थे कि वह एक मुसलमान के द्वारा हिन्दुओं के इस 'अपमान' को सहज ही पी जाता। फलतः उसका क्रोध खन्ना से भी अधिक बख्तियार की ओर हो गया। बख्तियार अब भी इस गलतफहमी में था कि हड़ताली संघर्ष समिति में सक्सेना उसका प्रमुख समर्थक है। सक्सेना दिल में बात रखने वाला आदमी था, इसलिए शुरू में उसने बख्तियार से खुली झड़प न ली, यूँ एक-आध मरतबा हड़ताल के जारी रखने या समझौता करने के प्रश्न पर उसकी बख्तियार से तू-तू-मैं-मैं हो गई, तो बख्तियार ने समझा कि यह संघर्ष की परेशानियों की वजह से है। उसे सक्सेना पर पूरा विश्वास रहा।

लेकिन, एक दिन संघर्ष समिति की बैठक में उसकी बख्तियार से खुलकर झड़प हो ही गई। बख्तियार लगातार तीन दिन तक कोशिश करके खन्ना को इस बात पर राजी कर चुका था कि फिलहाल कर्मचारियों के वेतन में दो-दो रुपए बढ़ा दिए जाएँ और आर्थिक वर्ष के अन्त में संघ के सदस्य मालिकों के साथ बैठकर उनकी व्यावसायिक स्थिति के आधार पर वेतन वृद्धि के लिए बात-चीत करें। कायदे की बात थी कि इस पर समझौता हो जाता। लेकिन ऐसा होता तो यह बख्तियार की 'व्यक्तिगत' विजय होती, जो कम्युनिस्टों को सह्य न थी। चुनांचे उन्होंने इस 'अपमानजनक' समझौता का घोर विरोध किया। सक्सेना तैस में आकर कह दिया, "ऐसी टुकड़खोरी की बातें बख्तियार साहब को ही शोभा देती हैं और किसी को नहीं।"

बख्तियार लाख समाजवादी, सही खून तो उसमें उन ताल्लुकेदारों का था जिन्हें "सरकार" और "माई-बाप" के अलावा और कोई सम्बोधन सुनने की

आदत नहीं होती, फिर महीने भर दौड़-धूप और परेशानी (वह इस अर्से में किसी दिन भी चार घण्टे से अधिक न सोया था) का मारा हुआ। उसका क्रोध भड़का, तो उसने सक्सेना की सात पुश्त की खबर ले डाली और श्लील-अश्लील सारे विशेषणों का प्रयोग कर डाला। अगर अन्य सदस्य बीच में न पड़ते, तो मार-पीट भी हो जाती।

अब सक्सेना को बख्तियार से वैयक्तिक विद्वेष भी हो गया और उसकी बख्तियार सम्बन्धी योजनायें दूसरी ही दिशा लेने लगीं। कम्युनिस्टों को इसकी भनक लगी, तो वे चुप-चाप खुश ही हुए; क्योंकि संघर्ष जारी रहने के लिए बख्तियार का रास्ते से हट जाना जरूरी था। साथ ही सक्सेना की हरकत को वे मालिकों के सर थोप कर अपना आन्दोलन भी बढ़ा सकते थे। कुछ कम्यु-निस्टों ने सक्सेना को पूरा सहयोग देने का वादा किया। नतीजा यह हुआ कि एक दिन सुबह लोगों ने स्थानीय दैनिक पत्रों में यह समाचार पढ़ा—

"इलाहाबाद, ५ अगस्त। आज रात लगभग ११ बजे स्थानीय व्यापार संस्थान कर्मचारी संघ के अध्यक्ष श्री बख्तियार रिजवी पर, जब वे अपने घर लौट रहे थे, कुछ अज्ञात व्यक्तियों ने आक्रमण करके उन्हें बुरी तरह घायल कर दिया। आक्रमण उस गली के मोड़ पर हुआ था, जिसमें श्री रिजवी का घर है। वर्षा के कारण घटना-स्थल बिल्कुल निर्जन था। श्री रिजवी की चीखें सुनकर आस-पास से जब तक लोग दौड़े, तब तक आक्रमणकारी फरार हो चुके थे। आक्रमण का कारण उस हड़ताल से सम्बन्धित बताया जाता है, जो व्यापारिक संस्थानों के कर्मचारी लगभग एक मास से किये हुए हैं। श्री रिजवी को बेहोशी की हालत में अस्पताल पहुँचाया गया। उनके सर और कंधे पर गहरी चोटें आई हैं और उनकी दशा चिंतनीय बतायी जाती है।"

बख्तियार चोट खाकर अस्पताल तो पहुँच गया, लेकिन कम्युनिस्टों की योजना सफल न हुई। वे इस बात को बिल्कुल भूल गए थे कि स्थानीय कांग्रेसी नेताओं से साँठ-गाँठ करके बख्तियार ही सरकारी यन्त्र को कार्यान्वित होने से रोके हुए था।

दूसरे ही दिन कम्युनिस्टों ने आग उगलने वाला पर्चा छपवाया, जिसका शीर्षक था "क्रांतिकारी मजदूर नेता पर मालिकों का बुजदिलाना महला।" लेकिन नतीजा कुछ न हुआ। उसी रोज पुलिस की धर पकड़ शुरू हो गयी और संघर्ष समिति के लगभग तीन-चौथाई सदस्य हवालात में पहुँच गए। यही नहीं, पुलिस ने एक नए कम्युनिस्ट को उल्टा टाँग कर खूब मारा, तो उसने कबूल कर लिया कि बख्तियार पर हमला रघुवीर सक्सेना के नेतृत्व में किया गया था और हमले में खुद वह भी शामिल था। अतः सक्सेना साहब भी पकड़

लिए गए और उस कम्युनिस्ट को मुखबिर बनाकर अदालत में पेश कर दिया गया। तीन महीने बाद सक्सेना को दो वर्ष की बामशक्कत कैद की सजा हो गई।

कहना न होगा कि हड़ताल उसके बाद फौरन ही समाप्त हो गयी। समाप्त क्या जड़ से गायब ही हो गयी। हड़ताली नेता जान बचा कर इधर-उधर घूम गए और संघर्ष में हारे हुए कर्मचारी गणों में कुछ को तो माफी मांगने पर मालिकों ने काम पर दुबारा लगा लिया और शेष में जिसके जिधर सींग समाये, वह उधर चला गया। हड़ताल का फल यह हुआ कि कर्मचारियों की वेतन वृद्धि तो नहीं ही हुई, साथ ही दोपहर को अवकाश में थी मालिकों ने कटौती कर दी। लेकिन, अब किसी का दम उनका विरोध करने का न था। केवल कम्युनिस्ट पार्टी के सर्कुलरों में इस हड़ताल का उल्लेख करते हुए उपर्युक्त मुखबिर कम्युनिस्ट के पार्टी के निष्कासन का आदेश था, जिसे कार्यान्वित करने की अब कोई जरूरत न थी; क्योंकि वह खुद पार्टी के नाम ही से काँप रहा था। जनता को हड़ताल खत्म होने से राहत ही मिली थी।

कॉल्विन अस्पताल के इमर्जेंसी वार्ड का यह सब से निस्तब्धता पूर्ण समय था, यानी रात के एक बजे। ऊपर पंखों की सनसन के अलावा किसी एक-आध मरीज की कराह ही निस्तब्धता को भंग कर देती थी, वरना सब कुछ शांत था। स्टाफ नर्स जूलिया रॉबिसन के लिए यह समय बड़ा दूभर हो जाता था। दिन में—खास तौर से शाम के वक्त काम की तेजी में समय किस तरह निकल जाता उसे कुछ पता न चलता; लेकिन यह पहाड़-सी खामोश रात कैसे काटी जाए? नींद उसे अपने विस्तार ही पर आती थी, कुर्सी पर बैठ कर ऊँघने की तो उसे आदत ही न थी। मेल नर्स श्रीवास्तव साहब की तबियत कुछ खराब थी और चूँकि उन्हें सरकारी तौर पर छुट्टी न मिल सकी थी, इसलिए इंचार्ज सिस्टर से कह-सुनकर जूलिया ने उन्हें गैर सरकारी तौर पर आराम करने को कह दिया था और सारी रात की जिम्मेदारी अकेली लेकर बैठ गयी थी।

सहसा उन्नीस नम्बर के पलंग से कराहने की आवाज आयी। जूलिया दौड़ी हुई पहुँची। क्या इस मरीज को होश आ गया? डाक्टर ने होश आते ही फौरन इत्तिला करने को कहा था। लेकिन नहीं; मरीज सिर्फ बेहोशी में कराह रहा था। जूलिया वापस अभी सीट पर जाने को हुई, लेकिन जाते-जाते ठिठक गयी। एक टक मरीज को देखने लगी'.........इसका चेहरा फिलिप से

कितना मिलता-जुलत है, वही आँखें, वैसे ही बाल, वैसी ही नाक और वैसे ही होंठ। सिर्फ उसका रंग इससे काफी दबता था और बदन ज्यादा भरा था। जूलिया दस मिनट तक खड़ी रही, फिर विश्वास भर कर अपनी सीट पर आ गयी। जानेवाला चला गया, तो उसकी जिन्दा तसवीर ही देख कर क्या होगा; फिर यह जिन्दा तसवीर भी तो अब-तब हो रही है। जूलिया किसी को नहीं बचा सकती, किसी को भी नहीं……उसकी आँखों में आँसू उमड आए।

दूसरे दिन ड्यूटी न होते हुए भी जूलिया ग्यारह बजे के करीब इमर्जेंसी वार्ड में आ गई। उसकी आशंका निर्मूल सिद्ध हुई। उन्नीस नम्बर के मरीज को होश आ गया था। डॉक्टर राउंड पर थे और उसका हालचाल पूछ रहे थे। पास ही खड़ी नर्सों की झुण्ड में जूलिया भी खड़ी हो गई। वह मरीज से कुछ नहीं बोली, डॉक्टर के जाने के बाद भी न बोली (सबके सामने फिलिप से भी तो कटी-कटी रहती थी)। यह जरूर हुआ कि उसने दो नर्सों के गाल मसल दिए और वार्ड मास्टर तिवारी को गुदगुदा कर भाग गई। आज रात को फिर ड्यूटी करनी थी, लेकिन दोपहर को वह सो भी न सकी।

तीन दिन के अन्दर ही नर्सों के बीच उन्नीस नम्बर का मरीज 'जूलिया का मरीज' मशहूर हो गया। इंचार्ज सिस्टर अब्राहम भी अपनी स्वाभाविक गम्भी-रता कायम न रख सकीं। ऑफ ड्यूटी होते हुए भी जूलिया को छेड़ देतीं, "क्या कर रही है यहाँ? अपने मरीज को स्पंज कर आ न!"

उन्नीस नम्बर का मरीज भी मजाकों का शिकार होने लगा। वार्ड की सबसे चुलबुली नर्स मुखर्जी उससे कहती, "बख्तियार साहब! मैं टेम्परेचर ले लूँ या रॉबिसन ही से थर्मामीटर लगवाइएगा?"

बख्तियार अपने रक्तहीन मुखमंडल पर क्षीण मुस्कान लाकर रह जाता। लेकिन वास्तविकता यह थी कि उसे मानसिक शांति उसी समय मिलती, जब जूलिया की ड्यूटी होती। वैसे तो कमोबेश सारे ही मरीजों का यह हाल था। जूलिया काम में इतनी मुस्तैद थी और मरीजों के साथ इतना अपनत्व रखती थी कि उन्हें यह महसूस ही न होता कि वे अपने घर में नहीं है। मरीजों की जावेजा फर्माइशों पर भी क्रोध न करना, उदास होने पर उन्हें छेड़-छेड कर हँसाना, उनके घरवालों से भी अपनेपन के साथ बातें करना—इन बातों के बल पर वह अस्पताल की आदर्श नर्स समझी जाती थी और बेपरवा तथा क्रोधी स्वभाव की नर्सों पर सिस्टर जब नाराज होतीं, तो जूलिया ही का उदाहरण सामने रखतीं। फिर भी सच्चाई यह है कि बख्तियार की तरह कोई और मरीज जूलिया की राह में आँखें बिछाये न रहता था। इसीलिए तो वह 'उसका' मरीज था।

एक दिन दो बजे के लगभग जूलिया आकर उससे बातें करने लगी। बख्तियार ने पूछा, "सिस्टर! आप इतना काम कैसे कर लेती हैं? मेरा तो एक दिन में दिवाला निकल जाए।"

जूलिया का सस्मित उत्तर था, "हम लोगों को ट्रेनिंग आखिर किस बात की दी जाती है।"

"लेकिन और भी तो नर्सें हैं। आपके जैसा तो कोई भी काम नहीं करतीं।"

"भई, यह तो अपनी-अपनी आदत है। मैं ही पूछूँ कि इलाहाबाद में लाखों लोग हैं, सब आपकी तरह दूसरों के फायदे के लिए अपना सर क्यों नहीं तुड़ा लेते, तो आप क्या कहेंगे?"

बात खत्म हो गयी, लेकिन और भी गहरी बातों के लिए गुंजाइश छोड़ गयी।

अस्पताल में बख्तियार को लगभग पन्द्रह दिन रहना पड़ा। उससे मिलने वालों का ताँता लगा रहता था। पत्रकार, राजनीतिक नेता, मजदूर कार्यकर्ता सभी तो उससे मिलने आया करते। खन्ना साहब की कार भी अक्सर अस्पताल के चक्कर लगाती थी। मिलने का समय हो या न हो, मिलने वाले मौजूद ही रहते थे और ये मिलने वाले इस हैसियत के होते थे कि अस्पताल का स्टॉफ भी उनसे यह न कह पाता, "शाम को आइएगा।" फिर भी वह जूलिया से घंटे दो घंटे बातें करने का समय निकाल ही लेता था। टुकड़े-टुकड़े करके उसने जूलिया के जीवन इतिहास के कई पृष्ठ पढ़ लिये। जूलिया के पिता किसी मिशन स्कूल में अध्यापक थे। उनके तीन संतानें थीं। तीनों ही लड़कियाँ थीं और जूलिया उनमें सबसे छोटी थी। छोटी ही थी तभी न मालूम किस तरह स्थानीय चर्च के पादरी के लड़के फिलिप सिंह की ओर आकृष्ट हो गई। फिलिप उम्र में उससे लगभग बारह बरस बड़ा था। वह खुद जूलिया की सबसे बड़ी बहन एनिड से प्रेम करता था। जूलिया को वह अपनी छोटी बहन की तरह छेड़छाड़ कर खिलाया करता था (कोई नवयुवक अपने से बारह बरस छोटी गुड़िया-सी लड़की के साथ और क्या कर सकता है)। कुछ दिन बाद एनिड ने फिलिप की मुहब्बत के सारे वादे तोड़कर जब एक डिप्टी कलक्टर से शादी कर ली, तो जूलिया को अपनी बहन पर क्रोध न आया। उसके पन्द्रह वर्षीय हृदय में कुछ सपने जागने लगे थे, लेकिन फिलिप इस आघात को न सह सका। वह विक्षिप्त-सा हो गया और अगले साल द्वितीय महायुद्ध छिड़ने पर फौज में भर्ती हो गया। लैंसनायक की वर्दी में कितना शानदार लगता था उसका लम्बा-

चौड़ा शरीर। जूलिया देखती ही रह जाती और भविष्य के सपने सँजोती रहती। फिलिप छुट्टी लेकर आया तो जूलिया से पहले ही की तरह छेड़छाड़ करता। फौजी जीवन की व्यस्तता ने उसकी दृष्टि बड़ी छिछली कर दी थी और वह न जूलिया के शरीर के उभारों ही को देख पाता, न उसकी आँखों की दबी-दबी-सी याचना को। जूलिया मन मसोस कर रह जाती। जिसके पीछे वह अपने सारे प्रशंसकों और प्रेमियों को ठुकरा रही थी, वह तो उसे नारी ही नहीं समझता था।

कमबख्त ने जूलिया के हृदय के आलोड़न को समझा भी कब? जबकि समझने का कोई फायदा ही न था। १९४४ ई० में वह डिस्चार्ज होकर घर आ गया। जूलिया उस समय तक अध्यापन की ट्रेनिंग लेकर एक स्कूल में कार्य करने लगी थी। फिलिप को देखकर चौंक उठी, उसका दानव-सा शरीर कंकाल मात्र रह गया था, बड़ी-बड़ी रसभरी आँखों में मृत्युच्छाया घूम रही थी। वह बर्मा के जंगलों में महीनों मलेरिया से पीड़ित रहने के बाद डिस्चार्ज किया गया था। घर आने पर डॉक्टरों ने परीक्षा करके बताया कि टी० बी० का दूसरा स्टेज है। जूलिया यह सुनकर कटे पेड़ की तरह बिस्तर पर गिर पड़ी थी और घंटों पड़ी रही थी। उसके सँजोये हुए सपने मृत्यु की यन्त्रणा झेल रहे थे। अब क्या होगा? पादरी साहब मर चुके थे। बेसहारा फिलिप को मृत्यु के चंगुल से कौन निकालेगा? जूलिया को अपने घरवालों से कोई उम्मीद न थी, किसके पास फालतू पैसा था। जूलिया के पास जो पैसा आता, उसे बूढ़ी माँ से बचाकर रखना असम्भव था। बेचारी खुद ही सुबह-शाम मिशन अस्पताल के टी० बी० वार्ड में कुछ घंटे बैठ आती।

मृत्यु से पन्द्रह दिन पहले फिलिप फूट पड़ा था। जूलिया का हाथ पकड़ कर उसने कहा था, "जूली! मैंने तुम्हें कभी नहीं समझा, मुझे माफ करना। तुमने मेरे साथ इतना किया और मैं·······।"

थूक निगल कर संयत स्वर में जूलिया ने कहा था, "कुछ भी तो नहीं कर सकी तुम्हारे लिए।"

"शायद तुम भी न समझ सको जूली कि तुम मेरे लिए कितना बड़ा काम कर रही हो। मैं तुम्हें बताता हूँ। मौत मेरे पास आई नहीं है, मैंने उसे बुलाया है। लड़ाई के मैदान में जापानियों की गोलियाँ भी जब मुझसे कतरा कर निकलने लगीं, तो मैंने सीधी-सीधी खुदकुशी की, मलेरिया के बारे में दिये हुए आर्डर न माने और मलेरिया को बढ़कर टी० बी० हो जाने दिया। काश, मेरे गधे जैसे दिमाग में उस समय तुम्हारा ख्याल आ जाता! लेकिन जब टी० बी० बढ़ गया और मौत यकीनी हो गई, तो मेरी अकड़ भी ढीली हो गई और मैं भी

मामूली लोगों की तरह जीने की ख्वाहिश करने लगा। अब जीने की भी ख्वाहिश नहीं, मरने की भी तमन्ना नहीं। ख्वाहिश करने वाली ताकत ही खत्म हो गई है······ जानती हो जूली, जिन्दगी से मायूस रोगी की क्या हालत होती है? उसकी दशा डूबने वाले की जैसी होती है। डूबने वाले को बचने की उम्मीद नहीं होती, फिर भी वह तिनके का सहारा पकड़ता है और वह तिनका ही उसके दिल के लिए सहारा हो जाता है। मुझे इस समय सारी दुनिया छोड़ रही है, तुम्हीं तिनके की तरह मुझे सहारा दिए हो। शायद कोई बड़ी मदद करती तो तुम्हारी यह अहमियत न रहती। तुम्हें भी दूसरे की मदद करने का घमण्ड हो जाता और मैं भी जिन्दगी की उम्मीद में तुम्हें सिर्फ मददगार ही मानता। लेकिन इस समय मेरे लिए सारी दुनिया सिमट कर तुम्हीं में आ गई है········ सुनो जूली! मरीज प्रेम का बदला नहीं दे सकता लेकिन प्रेम की जरूरत सबसे ज्यादा उसी को होती है। वह दवा नहीं चाहता, जिन्दगी नहीं चाहता, चाहता है सिर्फ एक मुस्कान, सिर पर फिरता हुआ प्यार भरा हाथ, दो मीठे बोल·······।'

फिलिप कहते-कहते एकदम खामोश हो गया था। शायद उसका फौजी फिर उभर आया था। क्षीण हँसी हँस कर बोला था, "बीमारी में दिमाग ठिकाने नहीं रहता। जाने क्या अंड-बंड बक जाता हूँ।"

फिलिप के मरने के बाद उसकी यही अंड-बंड बकवास जूलिया के जीवन का मूल मन्त्र बन गई। फिलिप की मृत्यु पर वह रोयी नहीं, उसने सारे आँसुओं को पीकर मुस्कानों में बदल दिया और उन्हें उन लोगों पर बिखेरने का फैसला कर लिया, जिन्हें इनकी सबसे ज्यादा जरूरत थी। फिलिप का कोई आदेश न था, इशारा भी न था, फिर भी एक इच्छा तो थी और वह भी अन्तकाल की इच्छा।

जूलिया ने जब अध्यापन कार्य छोड़ कर नर्स बनने का फैसला किया, तो घर में तूफान आ गया। माँ-बाप ने फटकारा, सहेलियों ने एक सम्मानित कार्य को छोड़कर बदनाम पेशा अपनाने पर लानत-सलामत की, हरएक शुभचिन्तक ने समझाया, लेकिन जूलिया की जिद के आगे किसी की न चली। फलतः पिछले चार-पाँच वर्षों से उसकी दुनिया अस्पताल तक सीमित रह गई थी।

बख्तियार यह कहानी सुनकर बोला था, "सिस्टर! मैं उठ नहीं सकता। आप खुद ही अपने कदमों की खाक मुझे दें तो मैं आँखों पर मल लूँ···।"

जूलिया खिलखिला पड़ी, "आप शायर मालूम पड़ते हैं जनाब! मरीज का

एक्साइमेंट ठीक नहीं है। लेकिन गलती मेरी ही थी। खैर, अब आप आराम करें, मुझे काम करना है।''

जूलिया चली गई और गई तो बख्तियार के पास लगभग आई ही नहीं। वह आसपास के सारे मरीजों से हँसती-बोलती, लेकिन बख्तियार की तरफ ध्यान न देती। बेचारा देखता ही रह जाता।

हाँ, जिस दिन वह डिस्चार्ज हुआ, उस दिन वह उसे अस्पताल के फाटक पर एक गुलाब का फूल जरूर दे गई।

● ● ●

८

''कांनग्रेचुलेशंस सर !'' नर्स ने कमरे से निकल कर कहा, 'यू हैव गॉट ए सन। बहुत हैल्दी है बेबी, पूरे साढ़े छह पाउंड का। एण्ड वेरी हैंडसम, बिल्कुल दूध जैसा।''

''थैंक यू सिस्टर !'' गोयल साहब घबड़ा कर बोले, ''जच्चा का क्या हाल है ?''

''ठीक है। जरा 'वीक' हैं, लेकिन घबड़ाने की कोई बात नहीं है। ठीक हो जाएँगी।''

तब तक लेडी डॉक्टर कृष्णास्वामी भी बाहर आ गईं। बोलीं, ''अब हमारा काम हो गया मुंसिफ साहब। अब सिर्फ आपका काम बाकी है।''

''जी ? मेरा काम ?'' मुंसिफ साहब ने हैरान होकर पूछा, ''मुझे क्या करना होगा ?''

''आपको कोई डिग्री नहीं देनी है। देने के नाम पर हमलोगों को शानदार दावत······।''

मुंसिफ साहब आश्वस्त हो गए। हँसकर बोले, सब आपही का है। जब भी हुक्म करें।

"ओ थैंक यू, लेकिन कोरा वादा ह रह जाए।" लेडी डॉक्टर हँसी लेकिन अचानक गम्भीर हो गई, "सुनिए मि० गोयल, मिसेज गोयल काफी 'वीक' हैं। मैं शुरू ही से चेक अप करती आ रही हूँ, कोई फिजिकल कम्प्लीकेशन कभी नहीं मालूम हुआ, लेकिन डिलीवरी के वक्त उनकी हालत काफी खराब हो गई थी। करीब-करीब बेहोशी में डिलीवरी हुई है। इस वक्त भी उन्हें टेम्परेचर है। खैर, मैंने काफी प्रिकॉशंस ले रखे हैं, भगवान चाहेगा तो सब ठीक हो जाएगा। आप भी जरा उनका ख्याल रखिएगा। मेरी समझ में तो उन्हें कोई मेंटल शॉक पहुँचा है। अच्छा, मैं चलती हूँ। यह नर्सें मौजूद रहेंगी।"

"अरे दम तो ले लीजिए, अभी तो लू भी काफी चल रही है। चाय-वाय पीकर जाइएगा, ऐसी भी क्या जल्दी है?" मुंसिफ साहब ने अतिथि सत्कार का कर्त्तव्य निभाना चाहा।

खिचड़ी हुए बालों से भरे सर को जोरों से हिलाकर डॉक्टर बोलीं, "नो, सर! हमलोगों के लिए मौसम पर ध्यान देना सम्भव नहीं है। अभी अस्पताल को देखना है। रेडियो स्टेशन भी जाना है····आज ही टॉक देनी है और आज ही लिखनी है। चाय-वाय फिर कभी सही।"

मुंसिफ साहब चाहते तो उन्हें इतनी देर तो रोक ही सकते थे कि वे चाय पी लेतीं। लेकिन, वे भी दिखावे का तकल्लुफ करके रह गए। दरअसल उन्होंने डाक्टर की बातें ठीक तरह सुन भी न पायी थीं। यहाँ तक कि वे डाक्टर की कार के स्टार्ट होने की आवाज भी न सुन सके थे। सोफे से उठकर वे ड्राइंग रूम के चक्कर लगाने लगे थे।

उनकी निगाह कैलैंडर पर गई। आज कौन-सी तारीख है? १८ मई—दिन बुधवार····। शकुन्तला को अन्दरूनी सदमा पहुँचा है···मुझे तो उसने इसकी हवा तक नहीं लगने दी, पिछले एक महीने से तो ऐसा मालूम होता था कि बहुत खुश है····अजीब बात है।

मेज की घंटी जोर से बज उठी। अर्दली दौड़ा आया, "हुजूर!"

"रामखिलावन! सुनो, मुखर्जी बाबू·······नहीं तुम नहीं। जाकर सुखिया को भेज दो।"

घर की नौकरानी सुखिया आकर चुपचाप खड़ी हो गई। मुंसिफ साहब शायद भूल गए थे कि उन्होंने उसे बुलाया भी है। दो मिनट बाद बोली, बुलाए रहन, सरकार!"

"क्या?" मुंसिफ साहब चौंककर बोले, "अच्छा तू है। सुन सुखिया, आशीष बाबू यहाँ कब आए थे?"

''को आहीं आसीस बाबू, सरकार ?''

''अजीब गधी औरत है, मुंसिफ साहब अकारण ही झुंझला उठे, आशीष बाबू को नहीं जानती ? अरे, वही वकील साहब जो मेरे साथ कई बार यहाँ आए हैं। मुखर्जी बाबू !''

''ऊ तो सरकार बहुत दिना भे आये रहे। याक महोना ते ऊपर हुइ गवा।''

''अच्छा, हूँ !'' मुंसिफ साहब फिर सोचने लगे। एक मिनट बाद बोले, ''रामखिलावन को भेज दे।''

अर्दली आया तो हुक्म हुआ, ''मुखर्जी बाबू को हमारा सलाम बोलो। कहना कि मालकिन की तबियत बहुत खराब है। साहब ने बुलाया है, जितनी जल्दी हो सके, चले आएँ।''

आशीष बेचारा अभी-अभी एक मजिस्ट्रेट की अदालत से अपहरण के मामले की बहस करके निकला था। गर्मी और थकावट के मारे उसका बुरा हाल हो रहा था। आज और कोई काम नहीं था, घर जाने को सोच ही रहा था कि मुंसिफ साहब का हुक्म पहुँचा। साहब ने बुलाया है, यह सुनकर उसकी भवें टेढ़ी हुई ही थीं कि अर्दली ने यह भी सुना दिया कि मालकिन की तबियत बहुत खराब है। आशीष अपने आर्डर किए हुए सोडे के ग्लास की उपेक्षा करके फौरन चल दिया।

लेकिन मुंसिफ साहब के बँगले का वातावरण बिल्कुल शान्त था। मालकिन की तबियत बहुत खराब होने जैसी कोई बात ही नहीं लग रही थी। ड्राइंग रूम में भी मुंसिफ साहब जिस मुद्रा में बैठे थे, उससे कोई परेशानी जाहिर नहीं हो रही थी। फिर भी आशीष ने घबड़ा कर शकुन्तला का हाल पूछा। मुंसिफ साहब ने सिगरेट सुलगाते हुए जवाब दिया, ''कोई खास बात नहीं है, ढाई बजे उसको बच्चा हुआ है। सो रही है।''

''लेकिन मुझसे........'' आशीष झिझका और फिर मुस्करा कर बोला, ''मुबारक हो !''

''थैंक यू।'' कहकर मुंसिफ साहब इत्मीनान से सिगरेट पीते रहे।

''यह आपका अर्दली बड़ा गधा है। इतनी अच्छी खबर को इस बुरी तरह सुनाया।''

''उसने वही कहा, जो मैंने उससे कहने के लिए कहा था।''

"क्यों ?"

"इसलिए कि मैं तुम्हें अभी बुलाना चाहता था और तुम इस झूठ के बगैर न आते।"

आशीष को समझ में न यह दलील आई, न मुंसिफ साहब की जबान से अपने लिए प्रयुक्त होनेवाले सम्बोधन 'आपका' सहसा 'तुम' होना ही समझ में आया। बोला, "कहिए क्या काम है ?"

मुंसिफ साहब उसके पास आकर बैठ गए, "देखो आशीष बाबू ! यह फार-मेलिटी खत्म करो। तुमने ख्वाहमख्वाह मेरे और अपने बीच फासला पैदा कर रखा है। मेरे यहाँ के मुकदमे भी लेने तुमने छोड़ दिए। मुझे उसकी शिकायत नहीं। लेकिन, मेरी और तुम्हारी दोस्ती में कोइ फर्क नहीं आना चाहिए। मैं बहुत परेशान हूँ और तुम्हारी मदद चाहता हूँ।"

मुंसिफ साहब वाकई परेशान मालूम होते थे। पहली सिगरेट ही से उन्होंने दूसरी सिगरेट सुलगाई। चेन स्मोकिंग का कौन कहे, वे तो कभी-कभार ही सिगरेट पिया करते थे।

आखिर आशीष परेशान होकर बोला, "कुछ कहिएगा भी या यूँ ही मदद करूँ ?"

हँसने के बजाय मुंसिफ साहब ने ढेर सारा धुंआ उगला और बोले, लेडी डाक्टर कहती थी कि शकुन्तला को कोई मानसिक आघात लगा है, मुश्किल से केस सँभला है।"

आशीष का चेहरा तन गया। वह जलती हुई नजरों से मुंसिफ साहब की ओर देखने लगा।

मुंसिफ साहब कह रहे थे, "आशीष ! शकुन्तला जैसी भी है, मैं उससे मुहब्बत करता हूँ। मैं नहीं चाहता कि किसी भी वजह से वह तकलीफ उठाए।"

"गोयल साहब ! अगर मैं कुछ कहूँगा तो आप यकीन करेंगे ?"

"तो क्या मैंने तुम्हें जिरह करने के लिए बुलाया है ?" गोयल साहब झुंझला कर बोले।

"तो सुनिए। आप अदालत में जितने समझदार हैं, घर में उतने ही नासमझ।"

"क्या मतलब ?" गोयल साहब चौंककर बोले।

"मतलब यह कि शकुन्तलाजी को अगर किसी ने मानसिक आघात पहुँचाया है, तो वह आप ही हैं। आप उनपर बेकार शक करते हैं। उन्हें न कभी मुझसे प्रेम था, न अब है।"

"लेकिन मैंने तो उससे कभी कुछ नहीं कहा!" मुंसिफ साहब हैरानी से बोले।

"वे बच्ची नहीं हैं। आपकी नजरें उनसे छुपी रह सकती हैं? उनकी हिम्मत सच्ची बात कहने की नहीं होती, इसीलिए वे आपकी गलतफहमी दूर नहीं कर सकतीं और घुटती रहती हैं।"

मुंसिफ साहब की पकड़ में कुछ न आया, तो आशीष ने सविस्तार उन्हें पूरा हाल बताया। सुनकर मुंसिफ साहब हँस पड़े। यह माँ बनने की शरारत भी खूब रही।

लेकिन फिर वे गम्भीर हो गए। बोले, "आशीष बाबू! मेरा दवाओं में विश्वास लौट आया है, लेकिन मुझे इसका सदमा जरूर पहुँचा है कि शकुन्तला मुझ पर विश्वास न कर सकी।"

आशीष चुप रहा, तो मुंसिफ साहब ने कहा, "बोलते क्यों नहीं जी?"

आशीष जैसे उनपर पलट पड़ा, "सच बताइएगा, यह पहला सदमा आपको लगा है? पिछले साल अक्तूबर में आपको सदमा नहीं लगा था, जब आपने मुझे और शकुन्तला जी को पहली मुलाकात में हिचकिचाते देखा था और सोचा था कि हम दोनों……।"

वकील हाकिम ही से जिरह करने लगे इस बात के लिए हाकिम पहले से कभी तैयार नहीं रहता। मुंसिफ साहब को कहना पड़ा, "यह कैसे कह सकता हूँ? मैं भी तो इंसान हूँ।"

"तो फिर इंसान ही बने रहिए न! देवता बनने की कोशिश क्यों करते हैं?"

"देवता बनने की कोशिश भी तो इंसान ही करता है, जानवर तो नहीं करते।"

"लेकिन हर बात की एक हद होती है। हद से ज्यादा देवतापन दूसरे इन्सानों के लिए मुसीबत हो जाता है। अच्छा अब इजाजत दीजिए। मेरे ख्याल में मेरा काम पूरा हो गया है।

तीन रोज से मेंह की जो झड़ी लगी, तो रुकने का नाम न लिया। रुकने के नाम पर सिर्फ घण्टे-डेढ़-घण्टे के लिए फुहार पड़ने लगती थी, वरना फिर वही मूसलाधार वर्षा। सस्री की तबियत घबरा रही थी। बाहर की बात जाने दीजिए, गोयल साहब के बँगले के अन्दरूनी कमरों के चिकने सीमेंट के फर्श तक चिपचिपाने लगे थे। बदबू और सीलन के मारे नाक में दम था।

लेकिन, शकुन्तला के हृदय में अकारण ही उमंगें उठ रहीं थीं। आज इतवार था, गोयल साहब भी पास बैठे हुए अखबार पढ़ रहे थे। नन्हा आलोक पास ही पालने में सो रहा था। कुछ देर फिल्म मैगजीनों से खिलवाड़ करने के बाद शकुन्तला बोली, "इस बारिश ने तो बड़ा परेशान कर रखा है। बिल्कुल घर में कैद कर दिया है। अब तो जी घबरा गया, अब तो बारिश बन्द होनी चाहिए।"

"बस अब हो जाएगी, आपके ही हुक्म की देर थी।" गोयल साहब ने हँसकर कहा।

"अच्छा? मैं इतनी पावरफुल हूँ कि नेचर भी मेरा हुक्म मानने को मजबूर है?"

कुछ देर चुहल रही। गोयल साहब ने आलोक के बारे में पूछा, पिछली शाम से उसे जुकाम के लक्षण मालूम हो रहे थे। शकुन्तला ने सख्ती से डाक्टर के बुलाने को मना कर दिया। बच्चे मे कुछ 'हार्डीहुड' भी आनी चाहिए, जरा-जरा सी बात पर दवा करने से कैसे काम चलेगा।

लेकिन यह कह कर वह पालने की ओर ललक भरी दृष्टि से देखने लगी। प्लास्टिक के गुड्डे जैसा खूबसूरत बच्चा आराम से सो रहा था। शकुन्तला लपक कर उठी और उसने आलोक को उठाकर चूम लिया। बच्चा कुछ देर कुनमुना कर फिर सो गया। गोयल साहब ने कहा, "बच्चे को हार्डी बनाने के लिए सोते से जागना तो ठीक नहीं है।"

"माँ की भावना को आप लोग क्या समझेंगे। माँ कितनी मुश्किल से बच्चे पाती हैं!"

"लेकिन तुम्हें तो तुम्हारा बच्चा मुश्किल से नहीं मिला है, इत्तिफाक से ही मिल गया है।"

शकुन्तला ने प्रतिवाद न किया, हँसकर रह गई, लेकिन ज्यादा देर चुप न रह सकी। उसके अन्दर से जैसे कोई ठेल-ठेल कर बात उगलवा रहा था। गोयल साहब को भी मालूम होना चाहिए कि उसके लिए उनका और इस बच्चे का

कितना महत्व है। उसने साहस बटोर कर कहा, "एक बात बहुत दिन से कहना चाहती थी। नाराज तो न होंगे?"

"बिल्कुल नहीं। कहो न!"

"यह बच्चा एक्सीडेंटली पैदा नहीं हुआ है। बिल्कुल प्लैंड तरीके से···।"

"मुझे मालूम है। यह दूसरी बात है कि तुम्हारी प्लैनिंग, मेरी प्लैनिंग से उल्टी थी।"

शकुन्तला को जैसे ततैये ने डंक मार दिया। बोली, "आपको कैसे मालूम हुआ।"

गोयल साहब ठठाकर हँस पड़े। बोले, "कोई बात किसी से छुपाने का एक ही तरीका होता है—उसे किसी दूसरे से भी न बताया जाए। तुमने अपना भेद किसी को बता दिया, उसने आकर मुझसे कह दिया। इसमें ताज्जुब की क्या बात है? आइंदा होशियार रहना।"

शकुन्तला की गर्दन नीची हो गई। धीरे से बोली, "उन्होंने आपको क्या बताया?"

आशीष ने जो कुछ बताया था, वह गोयल साहब ने शकुन्तला के सामने रख दिया। शकुन्तला ने इतमिनान की साँस ली। सभी बातें सच्ची बतायी गई थीं, किसी तरह की कोई सफाई देने की जरूरत न रही थी। बोली, "आप लोगों की बातें कहाँ पर हुईं? वे तो यहाँ पिछले चार महीने से नहीं आए। कोर्ट में क्या आप लोग निजी बातें भी करते हैं?"

"कोर्ट में निजी बातें करना भी कोई जुर्म नहीं है, लेकिन आशीष ने मुझे यह सब इसी कमरे में बताया। यह उसी दिन की बात है, जब आलोक पैदा हुआ था। उसके पैदा होने के घण्टे भर बाद वे यहाँ आए थे। तुम उस वक्त गहरी नींद में सो रही थी।"

शकुन्तला चुप रही। फिर बोली, "आपको यह सुनकर मुझ पर गुस्सा नहीं आया?"

"जरूर आया। लेकिन तुम पर मेरा गुस्सा कितनी देर रह सकता है? मुझे तुमसे यही शिकायत है कि तुमने जो कुछ आशीष को बताया, वह मुझे पहले क्यों नहीं बताया? तुम मेरी मुहब्बत पर इतना यकीन क्यों न कर सकी? खैर, यह तुम्हारी मरजी।"

शकुन्तला आकर पति की बगल में बैठ गई। उनकी गर्दन में बाँहें और आँखों में आँखें डालकर बोली, "मैं आपको कैसे बताती? मैं तो अपने कृत्य को बड़ा

पाप मानती थी, दुनियाँ भर ने मुझे यही बताया था, इसकी भरपूर सजा दी थी। इधर आप बिल्कुल देवता आदमी। कैसे आपके शुद्ध मन को धक्का पहुँचाती?"

"ओफ ओह! हटाओ भी। शकुन्तला! मैं इस शब्द से चिढ़ता हूँ। आशीष ने भी मेरे लिए इसी शब्द का प्रयोग किया था। मैं देवता नहीं हूँ, बिल्कुल इंसान हूँ। मेरे अन्दर भी तमाम इंसानी कमजोरियाँ हैं। मेरे मन का उजला भाग ही तुमने देखा है, काला नहीं।"

"मैं इस पर विश्वास नहीं करती कि आपके मन में कोई काला भाग भी है।"

"नहीं करती, तो किसी दिन शाक लगेगा, जब अपने देवता को राक्षस बना देखोगी।"

"इसका मतलब है कि कोई किसी पर विश्वास ही न करे, हर एक पर शंका किया करे।"

"जरूरत से ज्यादा विश्वास-अविश्वास दोनों ही नुकसान पहुँचाते हैं। हुमायूँ ने विश्वास करके सल्तनत खो दी और औरंगजेब ने अविश्वास करके उसकी जड़ कमजोर कर दी। हर इंसान में कुछ बुराइयाँ और कुछ अच्छाइयाँ होती हैं। दोनों के लिए तैयार रहना चाहिए।"

"आपका यह सिद्धांत अदालती काम के लिए ठीक हो सकता है। औरतें या तो किसी पर पूरा विश्वास ही करती हैं या पूरा अविश्वास। दोनों के बीच का कोई रास्ता नहीं।"

"तो फिर औरतों का मरज ला-इलाज है। भगवान ही उनका रक्षक है।" मुंसिफ साहब ने हँस कर बात खत्म कर दी।

बात खत्म हो भी गयी और नहीं भी हुई। शकुन्तला के मन पर जो बोझ तीन वर्षों से जमा हुआ था और जिसकी वजह से उसका दिन का चैन और रात की नींद हराम थी, वह अचनाक दूर हो गया और वह अपने को एक दम हलका महसूस करने लगी। लेकिन, यह हलकापन भी इतना आकस्मिक था कि उसके पाँव जैसे उखड़ गए हों। उसे महसूस हो रहा था कि जिस बात को वह अभी तक बोझ समझती चली आ रही थी और जिससे छुटकारा पाने के लिए वह भगवान से रात-दिन प्रार्थना किया करती थी, वही उसके सारे व्यक्तित्व का आधार था। जब वह मुंसिफ साहब की नजरों में क्या रह गयी—महज एक अच्छे दिल की मूर्ख और डरपोक युवती, जिसकी हर व्यक्ति बड़ी आसानी से उपेक्षा कर सकता है। नारी का नारीत्व उसकी रहस्यमयता ही है। नारी रहस्यमय नहीं है, तो उसमें और छोटी सी बच्ची में

फर्क ही क्या रहा। शकुन्तला रात के दो बजे तक करवटें बदलती और बार-बार अपने पर झुँझलाती रही—'आखिर मैं भी क्या तमाशा हूँ……जो चाहती थी वह बगैर कोशिश के मिल गया, फिर भी चैन नहीं……इससे तो वह पुराना बोझ ही अच्छा था, रात को नींद तो आ जाती थी……आखिर मैं चाहती क्या हूँ? आशीष ने वही तो किया, जो मैं वर्षों से चाहती थी…… लेकिन मान लो कि वह यह न करता तो?……तो भी क्या होता, मुंसिफ साहब तो परिस्थितियों से संतोष कर ही चुके थे……उनको हम लोगों के "अवसर" देने की निरर्थकता पूरी तरह सिद्ध हो ही चुकी थी……क्या फायदा हुआ मेरा इससे। कौन सा अहसान किया आशीष ने मुझ पर?……यही अहसान किया कि मुंसिफ साहब का देवतापन स्थापित कर दिया और अपनी सच्चरित्रता……और मुझे कहाँ रखा? मुझे तो बिल्कुल महत्त्वहीन बना कर रख दिया……ठीक है, उनका रवैया तो शुरू ही से यह रहा था कि मैं किसी तरह उभर न सकूँ, सांस्कृतिक केन्द्र में भी तो उनका यही हाल था; यह दूसरी बात है कि अब उन्होंने मारने के लिए जहर के बजाय गुड़ दे दिया……गोयल साहब की गलतफहमी दूर कर दी, बहुत अच्छा किया, लेकिन यह काम मुझ से सलाह लेकर भी तो कर सकते थे……हुँह, मुझसे सलाह जरूर करते।…… मेरा ही पागलपन था कि उन्हें अपना विश्वासपात्र बना लिया, अपना हृदय खोल कर रख दिया, और वे हजरत? ……उन्होंने सिर्फ डपट कर पूछा कि कोई और बात तो नहीं है, और चले गए……ऊपर-ही-ऊपर सरकारी कार्रवाई की और मेरा 'दाग' धो दिया और अपने वकालत के काम में लग गए…… ज्यादा नहीं अगर दो शब्द सांत्वना के कह देते, तो उनका क्या बिगड़ जाता? लेकिन नहीं……उन्हें तो हीरो बनना था, उनके कानूनी मस्तिष्क में भावनाओं के लिए जगह कहाँ……वे क्या जानें कि कोमलता नाम की भी कोई चीज जिन्दगी में हुआ करती है……तारीफ यह है कि आप कलाकार बनते हैं…… ऐसी-तैसी कलाकार की, यह कला-साधना भी ढोंग है, गैर-जिम्मेदारी और आवारागर्दी को छुपाने के लिए महज एक परदा है……मान लो कलाकार की हैसियत से बहुत उठ भी गए तो क्या हुआ?……इन्सान की हैसियत से क्या रहे?……इंसानियत की बात दूर, यहाँ तो आशीष बाबू मामूली शिष्टाचार भी न निभा सके……मेरे सामने आना बिल्कुल छोड़ दिया, जैसे मैं कोई जहरीली नागिन हूँ……अच्छा किया……अब आएँगे भी तो मैं मुँह न लगाऊँगी……चाहे गोयल साहब से झूठ ही बोलना पड़े कि आशीष बाबू मुझ पर बुरी नजर रखते हैं, लेकिन मैं उन्हें अपने साथ न बैठने दूँगी……ऐसे आदमी का मुँह भी न देखना चाहिए।'

लेकिन शकुन्तला को इतना खतरनाक झूठ बोलना पड़ा। भाग्य ने उसे चार दिन बाद ही, जब वह अपनी ननद का स्वागत् करने स्टेशन गई हुई थी, उसे एक ऐसा दृश्य दिखायी दिया जिससे उसकी आँखों से जहरीली लपटें उठने लगीं और उसके हृदय में विध्वंसात्मक आनन्द की लहरें जोर मारने लगीं। ननद बेचारी परेशान थी कि भाभी को हो क्या गया है, जो बात कही जाती है वह सुनती नहीं और बेवजह हंसे और मुस्कुराएँ जाती हैं।

दुर्भाग्य से अगले रविवार को गोयल साहब ने आशीष को अपने यहाँ चाय पीने के लिए मजबूर कर दिया। उन्हें यह पसन्द न था कि शकुन्तला का अपने किसी सच्चे मित्र से उनकी गलतफहमी की वजह से साथ छूटे। आशीष के दिल के मैल को धोना भी उन्होंने जरूरी समझा।

किन्तु, उन्हें आश्चर्य यह देख कर हुआ कि इस अवसर पर जिसे ज्यादा खुश होना चाहिए था, वही सबसे अधिक चुप है। शकुन्तला चुप ही नहीं बल्कि कुछ झुंझलायी हुई भी मालूम हो रही थी। उसने पहले ही गोयल साहब से कहा था कि वह आशीष बाबू के सामने नहीं जाना चाहती, लेकिन गोयल साहब इस नारी सुलभ लज्जा को कोई महत्त्व देने को तैयार न थे। सोचते थे कि वातावरण खुल जाएगा, तो शकुन्तला की झेंप भी मिट जाएगी, जो होना ही चाहिए। लेकिन उन्हें यह देख कर परेशानी थी कि उनकी सारी कोशिशों के बावजूद शकुन्तला आशीष की उपेक्षा अशिष्टता की हद तक कर रही है—उसने सबके प्यालों में अपने हाथ से चीनी डाली, आशीष की ओर सुगर पॉट खिसका दिया। मेज पर सिर्फ गोयल साहब और उनकी चचेरी बहन वीणा की आवाज सुनायी दे रही थी। वीणा चुलबुली लड़की थी—कुछ तो स्वभाव ही से और कुछ लखनऊ के आइजाबेला थॉबर्न कॉलेज में पढ़ने की वजह से। वह बराबर अपनी भाभी को छेड़ रही थी, शकुन्तला सिर्फ मुस्कुरा कर इसकी छेड़ का जवाब दे रही थी। इधर आशीष भी शिष्टतावश ही गोयल साहब की बातों का उत्तर दिए जा रहा था। शकुन्तला की उपेक्षा उसे उतना अजीब नहीं मालूम हो रही थी, जितनी गोयल साहब को। फिर भी उसने वातावरण के भारीपन को महसूस किया और वीणा से पूछने लगा, "आपने कौन से सबजैक्ट्स लिये हैं?

वीणा के कुछ कहने के पहले ही शकुन्तला बोली, "इसका कोई सबजैक्ट आपकी दिलचस्पी का नहीं है।"

"क्यों? क्या मुझे म्यूजिक और लॉ के अलावा किसी चीज में दिलचस्पी नहीं है?"

"है क्यों नहीं ? आपकी दिलचस्पी नर्सिंग में भी है, लेकिन इसने वह भी नहीं ली।"

आशीष इतने जोर से चौंका कि मेज का चम्मच नीचे गिर गया। वह शकुन्तला को घूरने लगा। शकुन्तला उसे दुगुनी तेज नजरों से देखकर बोली, "आशीष बाबू ! इन्सान को दो चेहरे नहीं रखने चाहिए। आपकी दिलचस्पी लो लैविल के लोगों में है, तो उन्हीं में रहा कीजिए। शरीफों के यहाँ बेकार आते हैं।"

"हाय, हाय शकुन्तला ! हैव यू गॉन मैड ?" गोयल साहब घबड़ा कर बोले।

"माफ कीजिएगा गोयल साहब !" शकुन्तला तड़पकर उठ खड़ी हुई, आपकी अपनी मजबूरियाँ हो सकती हैं, मगर मैं हरकिस्म के लोगों से मिक्स करने के लिए मजबूर नहीं हूँ।'

यह कहकर शकुन्तला झप से अन्दर चली गई। गोयल साहब बोले, "आशीष बाबू ! इसे न मालूम आजकल क्या हो गया है। मैं खुद तुमसे माँफी माँगता हूँ, इस पगली की बात का ख्याल न करना।"

आशीष तब तक सँभल चुका था। हँसकर बोला, "आई डोन्ट माइंड एनी-थिंग वीमेन से आर डू। आई डोन्ट अटैच एनी इम्पार्टेंस टु देम। एक्सक्यूज मी ! टु ऐनी ऑफ देम।"

समस्त नारी जाति की भर्त्सना करके आशीष वीणा से उसके छात्र जीवन के बारे में बातें करने लगा। गोयल साहब भी इस बेकार के विषय में दिलचस्पी लेने लगे। वातावरण सँभल गया।

शकुन्तला उस रात को फिर देर से सोयी—किन्तु परेशानी की वजह से नहीं, खुशी की वजह से।

● ● ●

९

कहने को तो आशीष ने इत्मीनान से कह दिया कि मैं स्त्रियों को कोई महत्व नहीं देता और उनकी किसी बात का ख्याल नहीं करता, लेकिन शायद

यह बताने की जरूरत नहीं है कि वह ऐसा वीतराग नहीं था कि शकुन्तला के द्वारा किए हुए अपमान को आसानी से पी जाता। यह सही है कि उस रात को उसे कोई परेशानी नहीं हुई थी और वह बड़े आराम की नींद सोया था। बिल्कुल ताजा चोट में अक्सर कम दर्द होता है, कष्ट का बोध करानेवाले स्नायु सुन्न पड़ जाते हैं। उस रात को उसे गुस्से के बजाय हँसी ही आती रही—'क्या बात है आपकी शराफत की! अभी इलाहाबाद वालों को मालूम हो जाए कि मुन्सिफ साहब की बीवी कौन हैं, तो सारी शराफत की कलई खुल जाए··· क्यों न छोटा-मोटा मजाक किया जाए? दो-चार आदमियों से जिक्र करने भर की देर है····दो-चार भी क्यों, अकेला मेरा पट्ठा वॉल्टर ही काफी है···वह इस मजे से बात को फैला देगा कि मुझे भी कोई नहीं जान सकेगा····लाख घर में बन्द रहती हो फिर भी अधिकारी वर्ग से तो मिलती-जुलती हैं, लेडीज क्लब में तो जाती हैं, जब दूसरी महिलाएँ ही इनसे कहेंगी कि तुम शरीफों में बैठने के काबिल नहीं हो, तब मालूम होगा कि इन शब्दों का क्या अर्थ होता है···लेकिन जाने दो····उसकी हैसियत ही क्या है····मुए पर सौ दुर्रे वाली बात हो जाएगी···· मालूम नहीं किन मजबूरियों में यह तमाशा किया होगा, कैसे-कैसे गोयल साहब के सामने अपनी सफाई दी होगी, उसका सीमित पारिवारिक जीवन क्यों और दुःखमय बनाया जाए····फिर इससे गोयल साहब की पोजीशन भी तो खराब होगी, वे देवता न सही शरीफ आदमी तो हैं···उन्हें बेकार परेशानी होगी···· नहीं यह कमीनापन होगा····मेरा क्या बिगड़ गया है····।' और आशीष सो गया।

दूसरे दिन पाँच बजे ही उठ गया। दीवानी के एक मुकदमे में बहस करनी थी। साढ़े नौ बजे तक नजीरों में उलझा रहा। वकील काम के समय सारी दुनिया को न भूल जाए, तो वकालत दो महीने न टिके। उसने वास्तव में इतने मनोयोग से तैयारी की थी और इस शान के साथ बहस की कि जिला जज महोदय उसकी ओर आँखें फाड़कर देखने लगे थे। दीवानी अदालतों के सौर साठ बरस के पुराने घाघ वकील यूसुफ जाफर के हाथ से, जो प्रतिपक्षी की ओर से खड़े हुए थे, उनका बना-बनाया मामला आशीष नें छीन लिया। बहस के बाद अदालत से बाहर निकलकर जफर साहब ने भी उसकी पीठ ठोंकी थी और भविष्यवाणी की थी, "साहबजादें, तुम अपने दादा का नाम रोशन करोगे।"

पुराने अखाड़िये मुकदमेबाजों और दल्लालों में हलचल पड़ गई थी। कई दल्लाल उसी दिन सलाम करने को हाजिर हुए थे। आशीष के सहपाठी वकीलों ने, जिन्हें औसतन दिन भर में तीन चार रुपए रोज से ज्यादा की आमदनी न होती थी, उसे ईर्ष्यायुक्त बधाई दी थी।

लेकिन अदालत से बाहर निकलकर आशीष का वकील कुण्ठित हो रहा था और इन्सान उभर रहा था। उसने सारी बधाइयों और सलामों को पेशेवर काम की तरह स्वीकार किया और घण्टे भर ही में बाकी बचे दो मुकदमों को निपटाकर (उनमें ज्यादा काम ही न था, एक में तनकीह पड़नी थी और दूसरे में सम्मन जारी करवाने थे) वह घर चला आया। किसी को ताज्जुब भी नहीं हुआ, इतनी जबरदस्त ढाई घण्टे की बहस के बाद वकील साहब आराम करना ही चाहेंगे। मुवक्किलों को फँसाने के लिए मुन्शी जी मौजूद ही थे।

घर आकर आशीष की लगभग वैसी ही दशा हो गई, जैसी पांच महीनें पहले हुई थी। शकुन्तला की चढ़ी हुई भवें उसके सामने बराबर घूम रही थीं। कुछ देर आराम कुर्सी पर लेटनें से जब उलझन बढ़ने लगी, तो कॉफी हाउस में आकर बैठ गया। लेकिन, बैठ वहाँ भी न सका। पीछे लगे दुर्भाग्य की तरह वहाँ गोयल साहब आ गए और उनके साथ उनकी पत्नी और बहन भी। स्पष्ट था कि वीणा को इलाहाबाद की जिन्दगी दिखाने के लिए ही शकुन्तला यहाँ आई थी, वरना उसे कॉफी हाउस से क्या लेना-देना। बहरहाल आशीष के सामने तो मुँह छुपानें की समस्या आ ही गई थी। खैरियत थी कि वह एक कोनें में बैठा था और कॉफी हाउस की भीड़ में इन लोगों में से किसी की नजर उस पर न पड़ी थी। वह फैमिली केबिन की दीवार से सटा हुआ ही बैठा था। अन्दर से शकुन्तला की खिलखिलाहट सुनाई दे रही थी। उसकी बातें स्पष्ट न थीं, लेकिन स्वर से स्पष्ट था कि वह वीणा से कल की छेड़छाड़ का पूरा बदला निकाल रही है। बीच-बीच में गोयल साहब की हँसी भरी आवाज भी सुनाई दे जाती थी। आशीष का रोआं-रोआं जल उठा। अन्दर 'शरीफ' लोग हँसी-दिल्लगी कर रहे हैं, बाहर एक 'आवारा और बदमाश' दीवार से कान लगाए बैठा है। वह क्या करे?····क्या अन्दर घुसकर सलाम दागे और कह दे कि 'शरीफ' लोगों को अपने घरों में ही रहना चाहिए, कॉफी हाउस में नहीं आना चाहिए; क्योंकि यहाँ उसके जैसे 'लो लेविल' के आदमियों को आने से कोई नहीं रोकता?····नहीं, इस आरामदेह जगह को भी इन 'शरीफों' ने कडुआहट से भर दिया है····वह अब वाकई 'लो लेविल' के लोगों के यहाँ जाएगा, जहाँ पर शरीफ लोगों और शरीफ मक्कारियों का गुजर न हो। प्याले की कॉफी पूरी पिये बगैर ही आशीष उठ खड़ा हुआ। सामने से कुछ मित्र चले आ रहे थे, जिन्होंने उसे रोकना चाहा, लेकिन उसने कह दिया कि एक बहुत जरूरी काम है। उसे पल-पल यह डर बना हुआ था कि कहीं गोयल परिवार केबिन से उठ न

बैठे। इस मानसिक स्थिति में और ऐसी खुली जगह वह उन लोगों का सामना करने के लिए तैयार नहीं था।

आशीष को यह मालूम था कि इस हफ्ते जूलिया की रात की ड्यूटी नहीं है। अगर वह बिल्कुल आखिरी शिफ्ट में न रखी गई हो, तो उसके साथ पहले शो में कोई पिक्चर देखी जा सकती थी। अभी तक आशीष ने कई बातों का ख्याल करके उसे पहले शो में कोई पिक्चर न दिखाई थी और दूसरे शो की इजाजत लेने में जूलिया को दिक्कत होती थी, इसीलिए वह उसे अभी तक सिर्फ एक ही तसवीर दिखा सका था। लेकिन, अब उसे कोई खयाल न था। उसने तय कर लिया था कि वह जूलिया को लेकर सरेआम घूमेगा और इस तथाकथित सभ्य समाज के मुँह पर थूक देगा। फर्स्ट शो ही में नहीं वह अब उसे मैटिनी शो में भी पिक्चर दिखाने को तैयार था।

जूलिया की वाकई चार बजे छुट्टी हो गई थी। संयोग से उसकी कोई अन्तरंग सहेली भी खाली न थी और जूलिया के लिए भी समय काटना मुश्किल हो रहा था। आशीष का प्रस्ताव सुनकर वह खुश हुई और उसने शृंगार करना आरम्भ कर दिया।

लेकिन, मालूम होता था कि आशीष के लिए आज का दिन बहुत खराब था। चलने के कुछ ही देर पहले एक खद्दरधारी महाशय तशरीफ ले आए। जूलिया ने परिचय कराया, "समाजवादी नेता कॉमरेड बख्तियार रिजवी···प्रमुख कलाकार मि० आशीष मुखर्जी।"

हाथ मिलाते वक्त नेता और कलाकार दोनों की जबान से निकला कि आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुईं, लेकिन दरअसल दोनों को काफी नाखुशी हुई थी।

फिर भी जूलिया को कोई परेशानी न थी। वह ऐसी परिस्थितियों से बचकर निकलना खूब जानती थी। उसने शिकायत के लहजे में कहा, "बख्तियार साहब! मैं कल शाम को आपका बहुत इन्तजार करती रही, कहीं घूमने भी नहीं गई। आज आप आए हैं, तो ऐसे वक्त जब मैं आपसे एक प्याला चाय तक के लिए नहीं पूछ सकती।"

"सिनेमा की तैयारी मालूम होती है। जरूर जाइए।" बख्तियार मुस्कुराकर बोला।

"आप भी चलिए न!"

"नहीं भाई, यह ऐश अपनी किस्मत में नहीं। डा० लोहिया आज सात बजे

पार्टी वर्कर्स की मीटिंग ऐड्रेस कर रहे हैं। उसे छोड़कर पिक्चर कैसे देख सकता हूँ ? मैं तो आपको भी उसी के लिए लेने आया था। कल शाम को वे नागपुर चले जाएँगे।''

आशीष बोला, ''चली जाओ न जूलिया। पिक्चर तो हम कल भी देख लेंगे।''

''मैं तो आपसे भी दरख्वास्त करूँगा कि कुछ देर के लिए तशरीफ ले चलें। आखिर यह भी तो सुनिए कि गरीबों की पार्टी क्या कहती है। कांग्रेस का व्यू तो सारे अखबारात देते हैं, कुछ हम लोगों की भी समाखराशी सुन लीजिए।'' बख्तियार ने आशीष से कहा।

''मैं ?'' हँसकर आशीष बोला, ''पॉलिटिक्स मेरी समझ के बाहर की चीज है। आप यकीन रखें, अखबारों में मैं विज्ञापन के अलावा कुछ नहीं पढ़ता। आधी जिन्दगी तो इसी तरह गुजर गई, अब 'आखिरी वक्त में क्या खाक मुसलमाँ होंगे'।''

जूलिया को अब परिस्थिति सँभालना जरूरी हो गया। बख्तियार की दिलचस्पी केवल राजनीतिक थीं। उसके साथ न जाने पर उसे कोई सदमा न लगता। आशीष के साथ ऐसी बात न थी, उसकी नाराजगी उसके स्वर से फूटी पड़ रही थी। वह बोली, ''सच्ची बात तो यह है, बख्तियार साहब कि अपना मूड भी इस वक्त बिल्कुल पोलिटीकल नहीं है। क्या यह मुमकिन नहीं है कि लोहिया साहब से कल मुलाकात हो सके ? मैं छुट्टी ले लूँगी।''

बख्तियार भी इस परिस्थिति से बचकर निकलना चाहता था। उसने कहा कि जूलिया सुबह नौ बजे उसके घर पर आ जाए, तो लोहिया साहब से मुलाकात हो जाएगी; और बिदा हो गया।

फिर भी जूलिया को आशीष के खुश करने में कोई सफलता न मिली। रास्ते भर और सिनेमा हाल में भी वह उसका जी बहलाने की कोशिश करती रही, लेकिन वह गुमसुम ही बैठा रहा। पिक्चर खत्म होने के बाद आशीष ने फौरन विदा चाही, लेकिन जूलिया ने शिकायत के लहजे में कहा कि एक प्याला चाय भी न पिलाएँगे, तो उसे नावेल्टी के केबिन में उसके साथ बैठना ही पड़ा। जूलिया ने पूछा, ''आप की तबियत तो ठीक है ?''

इसका उत्तर आशीष ने यूँ दिया, ''तुमने बख्तियार साहब का पूरा परिचय नहीं दिया।''

जूलिया मन-ही-मन हँस पड़ी। यह पुरुष वर्ग भी कितना भोला-भाला

होता है। बच्चों-जैसी आपसी ईर्ष्या होती है इन लोगों में। बच्चे ने अपनी माँ की गोद में किसी दूसरे बच्चे को देखा और रोने लगा। आदमी ने अपनी महिला मित्र से किसी और की बात करते देखा और जल मरा। लेकिन बच्चे को भी बहलाना जरूरी होता है और पुरुष को भी। वह बोली' "पिछले महीने सर तुड़ाकर अस्पताल में दाखिल हुए थे। उसकी खबर तो अखबारों में भी निकली थी। आपने नहीं पढ़ी थी क्या ?"

"पढ़ी होगी। इस वक्त याद नहीं है .... लेकिन उन्होंने तुम्हें अपनी शिष्या क्या सिर्फ सर तुड़ाकर ही बना लिया ? तुम्हें पालिटिक्स में दिलचस्पी कैसे हो गई ?"

"आप तो इस तरह जिरह कर रहे हैं जैसे पालिटिक्स में दिलचस्पी होना कोई जुर्म हो। मेरी समझ में तो हर एक को पालिटिक्स में दिलचस्पी होनी चाहिए और हो सकता है कि आपको इसकी जरूरत न महसूस हो... "आप लोग रात-दिन रुपया से खेलते हैं। यह तो हम गरीबों से पूछिए, जिन्हें रात-दिन खून-पसीना एक करके दो रोटियों का इन्तजाम करना और अन्याय का शिकार होना पड़ता है।"

आशीष इस समय समाजवाद के औचित्य पर लेक्चर सुनने की स्थिति में नहीं था। यह बात नहीं कि वह किसी तरह पूँजीवाद का समर्थक हो, हृदय से वह भी मानवीय शोषण के विरुद्ध था, लेकिन इस समय समाजवाद की आड़ लेकर जो काण्ड हो रहा था, उससे उसके अन्दर एक आग-सी लग गई थी। उसने कहा, "जनाब ! गुस्ताखी माफ हो तो अर्ज करूँ कि मैंने भी सोशलिज्म के नाम पर कुछ पढ़ा है और अगर बुरा न मानें, तो यह भी कह दूँ कि आपको महीनों तक सोशलिज्म पर लेक्चर दे सकता हूँ, बल्कि आपके नेताजी को भी सिखा सकता हूँ। यह दूसरी बात है कि मुझे पालिटिक्स को प्रोफेशन बनाने की जरूरत अभी तक नहीं पड़ी।"

"आयंदा पड़ सकती है ?" जूलिया हँसी में बात उड़ा देना चाहती थी। लेकिन, आशीष बात को उड़ाना नहीं चाहता था। वह गम्भीर होकर बोला, "नामुमकिन तो दुनियाँ में कोई चीज नहीं है। कभी मैं ऐक्टिव पालिटिक्स में भी आ सकता हूँ लेकिन यह बता दूँ कि मेरा पालिटिक्स में आना बख्तियार साहब कभी पसंद न करेंगे। मैं उनकी पार्टी के सोशलिज्म की असलियत जानता हूँ। ये लोग सोशलिज्म का नारा लगाकर सोशलिज्म को रोकने की कोशिश कर रहे हैं, कांग्रेस के पिट्ठू हैं। भेड़ों की खाल ओढ़े हुए ऐसी भेड़िया पार्टी में ऐसे मक्कार लोगों के साथ काम करने की बिल्कुल इच्छा नहीं है।"

जूलिया ने आशीष को सँभालना चाहा था, लेकिन खुद गड़बड़ा गई। गम्भीर होकर बोली, "आपकी लियाकत में कौन शक कर सकता है? आप मुझे महीनों नहीं, बरसों समझा सकते हैं। लेकिन, मैं यह जरूर कहूँगी कि जिस आदमी को आप न जानते हों, उस पर कीचड़ उछालना ठीक नहीं है। सोशलिस्ट पार्टी के बारे में आपकी राय ठीक हो सकती है, लेकिन आप यह कैसे कह सकते हैं कि उसका हर वर्कर मक्कार है। कुछ लोगों में सिंसियारिटी भी हो सकती है।"

"बक्तियार साहब में जरूर होगी। इतने खूबसूरत आदमी का दिल कैसे बुरा हो सकता है। मैंने अभी तक औरतों की नजर से इस बात पर गौर ही नहीं किया था।" आशीष हँस कर बोला।

जूलिया ने उसे भवें चढ़ा कर देखा। फिर हँस पड़ी। बोली, "आप में जेलसी बहुत है।"

आशीष ने जूलिया का हाथ पकड़ लिया। बोला, "शायद तुम ठीक कहती हो। लेकिन यह भी सोचो कि मेरी जलन अनुचित है या नहीं। मुझे जलने का हक नहीं है क्या?"

जूलिया हँसती ही रही। बोली—"आप की जलन का कोई जस्टीफिकेशन नहीं है और अब तो आप और मामलों में भी हद से आगे बढ़े जा रहे हैं।"

आशीष ने जूलिया का हाथ छोड़ दिया बोला—"मैं नहीं समझ पाता कि तुम मेरी हद कहाँ तक समझती हो। मैं अपनी कोई हद नहीं समझता। अब मै और बरदाश्त नहीं कर सकता। जूलिया! मैं तुम से मुहब्बत करता हूँ, तुम्हें मेरी बनना पड़ेगा। इसे कोई रोक नहीं सकता।"

जूलिया अब सचमुच घबड़ा गयी। वह पहले से इस बात के लिए बिल्कुल तैयार नहीं थी। पिछले पाँच महीनों की दोस्ती में आशीष ने कभी शालीनता को हाथ से नहीं जाने दिया था, कभी रिक्शों में उसके साथ अनावश्यक सट कर नहीं बैठा था, कभी उसके बालों या कपड़ों को बहाने से छूने की कोशिश नहीं की थी, यहाँ तक कि कभी उससे हलके स्तर का हँसी-मजाक भी नहीं किया था। गजदर में पहली शाम की बात और थी; क्योंकि उस दिन जूलिया ही ने उसे छेड़ा था, वरना उन दोनों के बीच प्रेम जैसे विषय पर कभी बात ही न होती थी। बातें होती थी सिर्फ स्त्रियों की सामाजिक अवस्था पर, महात्मा ईसा के व्यक्तित्व पर और इसके अलावा दुनिया भर की छोटी-मोटी बातों पर। जूलिया के लिए ऐसी मित्रता एक नया अनुभव था, लेकिन उसे आशीष का रवैया बहुत पसंद था। उसके कई पुरुष मित्र थे, लेकिन उनमें से कुछ लोग अगर

जी के ओछे नहीं थे तो भी परिष्कृत रुचि का भी कोई आदमी नहीं था। जूलिया ने अपने पिछले अध्यापन काल के जीवन को एक दम से मिटा डालने की बहुत कोशिश की थी, लेकिन उसके मन के किसी कोने में संस्कृत समाज में मिलने की इच्छा बराबर बलवती होती जा रही थी और इसीलिए उसने आशीष का दामन कस कर थाम रखा था। गंभीर आदमी तो बख्तियार भी था लेकिन वह जरूरत से ज्यादा गंभीर था—या तो राजनीतिक नारेबाजी करने लगता था। उसकी कवि कल्पना की उड़ाने शुरू हो जातीं। जूलिया के मन को संतोष आशीष ही दे पाता था।

फिर भी इस समय जूलिया की कल्पना को आशीष ने बुरी तरह झकझोर कर रख दिया था। अगर यह सभ्य और सुसंस्कृत व्यक्ति भी दूसरे पुरुषों की तरह छाती पर हाथ रख कर हाय-हाय करने लगा, तो इसका मतलब यह था कि जूलिया के सारे सपने मिट्टी में मिल गए थे। यह ठीक है कि उसने आशीष के लिए कुछ नहीं किया था, लेकिन करने से ही क्या होता है, अपनी कल्पना में उसे एक विशेष स्थान तो दिया था। उस स्थान को छोड़ने का आशीष को क्या अधिकार था?

जूलिया ने गंभीर होकर कहा, "आशीष बाबू! आप शराब पीकर हमेशा कायदे की बातें करते हैं, आज बगैर पिये हुए ही बहक रहे हैं। हलके-फुलके लोगों ही के मुँह से इस तरह की बेकार बातें अच्छी लगती हैं। मेरा आपका दोस्ती के आलावा और क्या साथ हो सकता है?"

"मैं तुम से शादी करूँगा। मेरा कनवर्ट होना जरूरी नहीं है। हम सिविल मैरिज कर लेंगे।"

इस वकालती दलील ने जूलिया के सर पर जैसे दो मन का पत्थर मार दिया। उसके चारों ओर फिलिप का चेहरा नाचने लगा। सामने बैठा हुआ व्यक्ति उसे जीभ लप-लपाते हुए कुत्ते-जैसा दिखायी देने लगा। उसको इच्छा होने लगी कि उसके मुँह पर एक जोरों का थप्पड़ मारे और चली जाए। लेकिन, उसने अपने पर काबू कर लिया।

सहूलियत से बोली, "बचपने की बातें न कीजिए। हम लोगों की सामाजिक हैसियत में फर्क है।"

"क्या बातें करती हो। मेरे लिए भी समाज का कोई महत्त्व है? समाज ने तुम्हें यह वाहियात नौकरी करने को मजबूर किया है, मैं समाज की ताकत को चुनौती दे सकता हूँ। यकीन करो, तुम्हें पूरी सामाजिक प्रतिष्ठा मिल जाएगी।" आशीष ने बच्चों की तरह मचल कर कहा।

जूलिया को गुस्सा आ गया। मेरे काम को यह वाहियात समझ रहे हैं…… फिलिप ने इसे किस नजर से देखा था ?……बख्तियार ने मेरे कदमों की खाक आँखों पर मलने के लिए माँगी थी……यह साहब हीरो बन कर मेरा उद्धार करना चाहते हैं……क्या बात है !

आशीष कहता जा रहा था, ''जूलिया ! सच कहता हूँ तुम्हारे अलावा मेरा कोई सहारा नहीं है।'

जूलिया चीख पड़ी, बकवास बन्द कीजिए मुखर्जी साहब। आप भूल रहे हैं कि आप किसी भोली-भाली हिन्दू लड़की से बात नहीं कर रहे हैं, जिसे अपनी लच्छेदार बातों में फँसा कर उसकी जिन्दगी बरबाद कर सकें। आप के जैसे आशिक मैंने बहुत देखे हैं और उनके इश्क का इलाज भी जानती हूँ। आप खैरियत चाहें तो चुपचाप उठ जाएँ और फिर कभी मेरे यहाँ आने की तकलीफ न करें……मुझे अफसोस यही है कि आप के जैसे लो लैविल के आदमी को मैंने अच्छा इंसान समझा।''

आशीष को एक क्षण को लगा जैसे उसे किसी ने पहाड़ की चोटी से नीचे पटक दिया हो, दूसरे क्षण उसका जी चाहने लगा कि जूलिया की खूबसूरत गर्दन को अपने पंजों में कस ले और कसता चला जाए। लेकिन, उसने यह सब कुछ नहीं किया, शरीफ आदमी की तरह लात खाकर उठ आया।

घर जाकर उसने अपने कमरे का दरवाजा बंद कर लिया। दो महीने के बाद ह्विस्की की बोतल की डाट खुली। बारह बजे तक सिप करता रहा, कमरे के चक्कर लगाता रहा और बड़-बड़ाता रहा, ''लो लैविल, लो लैविल……कहाँ है लो लैविल ? ''……यहाँ तो सब हाई अप हैं……मुझे मेरा लैविल कहाँ मिलेगा……?''

● ● ●

१०

गोयल साहब ने शकुन्तला से बहुत पूछना चाहा कि वह आशीष से क्यों नाराज हो गई थी, लेकिन उसने कुछ न बताया। आशीष का नाम आते ही उसकी जबान से धाराप्रवाह गालियाँ निकलने लगती थीं। हाँ, इतना गोयल

साहब को उसने बता दिया कि आशीष ने उससे कुछ नहीं कहा। इस बात से उनकी उलझन तो बढ़ी, लेकिन समझदार आदमी थे, शकुन्तला को इस मौके पर ज्यादा कुरेदना उन्होंने ठीक न समझा।

फिर भी उनका जी न माना। उन्होंने इस बात को लाख भुलाना चाहा, लेकिन हजार समझाने के बाद भी उनका मन बच्चों-सी जिद करता रहा कि वास्तविकता का पता लगाया जाए। कहीं ऐसा तो नहीं कि आशीष ने शकुन्तला की ओर हाथ बढ़ाया हो। वैसे तो सच्चरित्र आदमी है, लेकिन आदमी की सच्चरित्रता कब उसे धोखा दे जाएगी, यह कौन कह सकता है। मुमकिन है आशीष में कोई कमजोरी आ ही गई हो। मुंसिफ साहब ने अपने मन को समझाना चाहा कि ऐसा हो भी तो क्या हुआ, अब तो सारी बात खत्म हो गई। लेकिन, मन माने तब न ? 'कुछ भी हो, वास्तविकता तो मालूम ही होनी चाहिए चाहे मैं इस सिलसिले में कुछ न करूँ।'

दूसरे दिन लगभग दिनभर वे इसी उधेड़बुन में पड़े रहे। शकुन्तला से कुछ पूछना बेकार था। शाम को शकुन्तला और वीणा के साथ काफी हाउस में प्रवेश करते समय उनकी नजर अंधेरे कोने में बैठे हुए आशीष पर पड़ी (यद्यपि आशीष ने यही समझा था कि वे उसे नहीं देख पाये हैं), लेकिन वे उस समय तय न कर सके कि उन्हें शकुन्तला के साथ होने पर आशीष को आकृष्ट करना चाहिए या नहीं। फिर भी उनका जी न माना। केबिन ही में उन्होंने तय कर लिया था कि आशीष को जा पकड़ेंगे। वे जल्दी से अपनी काफी खत्म कर बाथरूम जाने के बहाने उठ भी आए, लेकिन हाल में भी आशीष की कुर्सी खाली पड़ी थी। मजबूरन वे फिर केबिन में लौट गए।

इसके दूसरे दिन, यानी मंगलवार को उन्होंने अदालत ही में अपना चपरासी भेजा कि जाकर आशीष को बुला लाये। चपरासी ने वापस आकर बताया कि मुंशीजी कहते हैं कि वकील साहब की तबियत खराब है। यही नहीं, कुछ देर बाद मुंशीजी खुद हाजिर हो गए, "सरकार, कोई जरूरी काम हो तो मुझे बताएँ, मैं वकील साहब से अभी जाकर कह दूँगा।"

मुंसिफ साहब ने मुंशीजी को धन्यवाद देकर विदा कर दिया।

लेकिन, अब उन्हें फिक्र हुई कि आशीष बीमार क्यों पड़ गया। यह ठीक है कि मुंशीजी गम्भीर बीमारी की स्थिति में यह बात उनसे जरूर कहते और उनके स्वर से भी यह नहीं लग रहा था कि कोई गम्भीर बीमारी है, लेकिन मुंसिफ साहब आशीष की बीमारी के लिए अपने को दोषी समझने लगे थे। एक मर्तबा उनका जी चाहा कि यह बात शकुन्तला को बतलाएँ, लेकिन फिर

उन्होंने चुप रह जाना ही ठीक समझा। भाग्य से वीणा को कुछ खरीदारी करनी थी और आया के यकायक छुट्टी ले बैठने की वजह से आलोक को घर छोड़कर शकुन्तला जा नहीं सकती थी (आलोक को खाँसी-जुकाम के साथ पिछली रात बुखार भी हो गया था) इसलिए मुंसिफ साहब ही वीणा को लेकर सिविललाइंस चले गए। वापसी में रिक्शा सीधा चैथम लाइंस न ले जाकर उन्होंने एडमंड्स्टन रोड की तरफ मुड़वा दिया। वीणा को बता दिया कि आशीष की तबियत खराब है। उसे भी बीमार का हाल पूछने में कोई एतराज की बात नहीं दिखायी दी।

दिनभर कमरे में पड़े रहने के बाद आशीष शाम को लॉन में कुर्सी डलवा कर अखबार पढ़ रहा था। मुंसिफ साहब को देखकर हड़बड़ा कर उठ बैठा। पूछने पर उसने बताया कि रात को बाहर सो जाने की वजह से सर्दी लग गई थी (यह तो कोई बताने की बात न थी कि ह्विस्की की तीन-चौथाई बोतल खत्म कर देने की वजह से सुबह दस बजे तक उससे बिस्तर से ही नहीं उठा गया और अगर दोपहर को तीन घंटे और न सो लेता, तो अभी तक सर फटता रहता)। मुंसिफ साहब आश्वस्त हो गए।

फिर भी घर आए मेहमान को फौरन चले जाने की अनुमति तो नहीं दी जा सकती थी। चाय का समय बीत चुका था, फिर भी चाय मँगायी गई। आशीष के पिता चारु बाबू भी आ गए और थोड़ी देर औपचारिक बातचीत करके उठ गए।

अब वातावरण में कुछ अजीब तरह की घुटन हो गई थी। स्पष्ट था कि गोयल साहब और आशीष दोनों ही कुछ कहना चाहते थे, लेकिन वाणी के सारे द्वार अवरुद्ध हो रहे थे। वीणा ऊब रही थी कि यह अच्छी मुलाकात है, कोई बोलता ही नहीं। आखिर उससे चुप नहीं बैठा गया। बोल उठी, "कल शाम को तो इतनी गर्मी भी नहीं थी। आप बाहर क्यों सो गए? मालूम होता है आपको गर्मी बहुत लगती है।"

आशीष ने हँसकर कहा, "बाहर गर्मी नहीं थी, लेकिन दिमाग में तो थी।"

"दिमाग की गर्मी तो दूर हो जाती है, लेकिन इलाज जरा सख्त होता है" वीणा अपने चुलबुले स्वभाव के कारण यह कह तो गई, लेकिन उसने फौरन जीभ काट ली। गोयल साहब से वह लाख खुली सही, फिर भी उनके अभिन्न मित्र से दूसरी ही मुलाकात से इतनी बेतकल्लुफी तो नहीं होनी चाहिए। न मालूम क्या सोचें।

आशीष को खुलकर हँसने का मौका मिला। सर झुकाकर बोला, "शुभस्य शीघ्रं, शुरू कर दीजिए इलाज।" मुंसिफ साहब को भी हँसना पड़ा; बोले, 'बड़ी पगली है यह।"

वीणा ने अनुनयपूर्वक कहा, "माफ कीजिएगा। मैं तो यूँ ही ऊटपटांग बक जाती हूँ।"

आशीष ने आश्वासन दिया, "आप इत्मीनान रखें। मुझे बुरा कम लगता है।"

"वह तो मैं अपनी आँखों देख चुकी हूँ।" वीणा फिर बगैर समझे-बूझे बक गई।

गोयल साहब बेचैनी से कुर्सी पर इधर-उधर खिसकने लगे। आशीष ने वीणा की ओर देखा। मुर्शिदाबादी प्रिंट की साड़ी में साक्षात वनदेवी लग रही थी। साड़ी पर छपे हुए बड़े-बड़े धानी रंग के पत्ते, गुलाबी चेहरा, भौंरों जैसी काली आँखें—जैसे बसंत ऋतु मानव शरीर धरकर सामने आ गई हो। चुप रहकर एकटक देखती थी, तो सौन्दर्य की प्रतिमा दिखायी देती थी, मुस्कुराने में सामने के एक दूसरे पर चढ़े हुए दो दांत दिखायी दे जाते थे। आशीष को जूलिया की सुडौल दंत-पंक्ति याद आ गई और उसे वीणा के एक दूसरे पर चढ़े हुए दाँत बहुत अच्छे लगने लगे। वह सोचने लगा—क्या यह नहीं हो सकता कि यह लड़की हमेशा हँसती-मुस्कुराती रहे और इसके एक-दूसरे पर चढ़े हुए दाँत हमेशा दिखायी देते रहें। हमेशा नहीं तो अक्सर दिखायी दे जाएँ।

बोला, "उस दिन बात अधूरी ही रह गई थी। आपने कौन-से सबजैक्ट्स लिये हैं?"

"इंगलिश लिटरेचर, फिलासफी और इकनामिक्स।"

"बहुत खूब! वैयक्तिक, सामाजिक कोई भी क्षेत्र नहीं छोड़ा आपने।" आशीष हँसा, "सर्वगुण सम्पन्न बनने का इरादा मालूम होता है।"

वीणा फिर हँस पड़ी, उसके एक-दूसरे पर चढ़े हुए दाँत दिखायी देने लगे, आशीष देखता रह गया।

वीणा ने कहा, "यहाँ तो एक भी गुण आता नहीं दिखायी देता। पास हो जाऊँ, यही बहुत है। फिलासफी तो जैसे हाथ धोकर जान के पीछे पड़ गयी है।"

"फिलासफी में और तो सब ठीक है, इथिक्स बहुत ड्राई सब्जैक्ट होता है।"

"मुझे इथिक्स में परेशानी नहीं होती—कुछ गिने-चुने सिद्धांत हैं उन्हें रट लो, काम बन जाता है। असली उलझन तो साइकालाजी में होती है। उसका हिसाव ही समझ में नहीं आता।"

"ताज्जुब की बात है। साइकालाजी तो बड़ा इंटरेस्टिंग सब्जेक्ट है। मेरी मदद तो साइकालाजी ने ही की थी वरना बी० ए० में इथिक्स तो मुझे ले डूबती।" आशीष बोला।

"फिलासफी आपका भी सबजेक्ट रहा है?" वीणा खुश होकर बोली, "तव तो मैं आपको थोड़ा-सा कष्ट दूँगी। इकनामिक्स में भाई साहब की वजह से इत्मीनान है, साइकालाजी आप देख लेंगे, तो बेड़ा पार लग जाएगा। अभी तो मैं दो-चार दिन यहाँ हूँ ही, इलाहाबाद के प्रवास का यही फायदा हो जाय। तो फिर आप कब……मतलब यह कि आपको संडे को तो फुर्सत ही होगी। कहिए तो मैं दो-चार घंटे के लिए आ जाऊँ। आप रूडीमेंट्स समझा देंगे तो मैं आगे चला लूँगी।"

उँगली पकड़ते ही पहुँचा पकड़ने वाली इस लड़की की ओर देखकर आशीष हैरान रह गया। लेकिन उसे बचकर निकल भागने की कोई जरूरत महसूस न हुई। पुराने विषय के नए अध्ययन में मजा भी आता है, इसी बहाने साइकालाजी फिर रिफ्रेश हो जाएगी……और एक दूसरे पर चढ़े हुए दाँत भी देखने को मिलेंगे, निश्छल मन की प्रसन्नता देखने को मिलेगी।

वह बोला, "आप काहे को तकलीफ करेंगी। संडे को मैं खुद ही आ जाऊँगा।"

"आप आएँगे?" वीणा ने हैरानी से पूछा। गोयल साहब की नजरें भी जैसे कहने लगीं, "बड़े अजीब आदमी मालूम होते हो। इतना सब सुनने के बाद भी आप आएँगे?"

"क्यों? मैं क्यों नहीं आ सकता?" आशीष शरारती भोलेपन के साथ बोला।

"जी नहीं, यह बात नहीं…मेरा मतलब है कि…", वीणा की समझ में नहीं आ रहा था कि यह किस तरह कहे कि गृहस्वामिनी की फटकार खाने के बाद आप कैसे आएँगे।

"भाभी का डर है? आप इत्मीनान रखें, अब तक उनका गुस्सा उतर गया होगा। मैं उनके स्वभाव को अच्छी तरह जानता हूँ। हाँ, गोयल साहब को

एतराज हो तो बात दूसरी है। सो इनसे अभी से पूछ लीजिए।'' आशीष हँसकर बोला।

गोयल साहब बुरी तरह चौंक गए। फिर सँभले और हँसकर आशीष के कन्धे पर हाथ मारते हुए बोले, ''बड़े मसखरे हो भाई। अच्छा इतवार को दोपहर का खाना भी वहीं खाना।''

वीणा का चुलबुलापन फिर जाग उठा। बोली, ''सोच समझकर इनवाइट कीजिए भाई साहब। आपके रसोई घर में मच्छी भात का इन्तजाम कैसे होगा। वहाँ तो निपट शाकाहारी....।''

''तुम पाँच हाथ की काहे के लिए बैठी हो। हमलोग दकियानूसी सही, तुम तो सब खाती हो। तुम लोग मसाले पर हाथ साफ करना, हम गरीब दाल-भात पर ही गुजारा कर लेंगे।''

वीणा झेंपकर हँसने लगी। एक तो वैश्य परिवार की सदस्या, फिर लड़की की जात। उसके लिए तो माँस मछली का नाम तक लेना पाप था। लेकिन वह क्या करती, हॉस्टल में साथ की ईसाई लड़कियों ने उसे गोश्त खिला ही नहीं दिया था, बल्कि उसका चस्का भी लगा दिया था। माँ-बाप को मालूम होता तो फाड़ खाते, इसलिए फर्रुखाबाद में किसी को इस बात का पता न था। यहाँ चचेरे भाई के आधुनिक परिवार में इतना डर न था। भाई से तो कहने का कोई मौका ही न था, भाभी को जरूर यह बात बता बैठी थी, सो उन्होंने अपने पतिदेव से जड़ दी। अजीब अक्ल है, यह भी कोई बताने की बात थी। फिर भी खैरियत थी कि भाई साहब इस बात से नाराज नहीं, खुश ही मालूम होते थे।

आशीष के मन में एक बार आया था कि कह दे कि बी० ए० पास किए हुए उसे सात साल हो गए। एम० ए० उसने इतिहास में किया था और फिर कानून पढ़ा; दिलचस्पी उसकी संगीत और नाटक ही में थी। इन सबके बीच सात वर्ष पुराना मनोविज्ञान का ज्ञान कहाँ तक साथ दे सकता था। लेकिन उसकी जबान पर जैसे किसी ने ताला जड़ दिया था और उसने रविवार के दिन गोयल साहब के यहाँ जाकर वीणा को पढ़ाने का प्रस्ताव खुद ही कर दिया था। अब तो किसी तरह लाज रखनी ही थी। दूसरे दिन यानी बुधवार को वह अपनी मेज पर रात के बारह बजे तक भुका रहा। चारू बाबू ने समझा किसी मुकदमे की तैयारी में लगा होगा लेकिन, वे अगर उसके पास आकर देखते, तो ताज्जुब जरूर होता; क्योंकि उसके सामने आज ही लाइब्रेरी से लाये हुए वुडवर्थ और ऐडलर के मनोविज्ञान के सिद्धान्त सम्बन्धी ग्रन्थ खुले थे

और वह ऐसे मनोयोग से नोट्स ले रहा था, जैसे उसे खुद ही इम्तहान देना हो।

उसने इतने ही पर बस नहीं की। अगले रोज जाकर पन्द्रह-पन्द्रह रुपये की मनोविज्ञान की दो पुस्तकें—जो लाइब्रेरी में नहीं थीं, खरीद भी लाया। तीन दिनों तक वह अपने पेशे का काम भी ठीक तरह न कर सका। एक मुकदमे में प्रतिपक्षी के गवाहों से जिरह करनी थी, लेकिन उसने मिसिल ही ठीक तरह नहीं देखी थी, जिरह बिल्कुल बेकार रही। मुन्शी जी को मुवक्किल को समझाना पड़ा, "अजी वकील साहब की तबियत खराब है। वह तो कहो कि तुम्हारा मामला था, इसलिए आ भी गए, वरना तारीख पड़वा देते। फिर तुम क्या जानो। यह वकीलों के दिमागों की बातें हैं, न मालूम किस पाइण्ट पर मारेंगे। बहस के दिन देखना, इन्हीं गवाहियों की कैसी धज्जियाँ उड़ाते हैं। देखी नहीं थी करीमुल्ला वाले मामले की बहस ? यूसुफ जफर साहब भी चारों खाने चित्त हो गए थे।"

मुवक्किल बेचारा तो आश्वस्त होकर चला गया था, लेकिन बूढ़े मुन्शी ने (जो चारू बाबू का भी काम कर चुका था) शाम को आशीष को आड़े हाथों लिया था, "बाबू साहब ! ऐसे वकालत नहीं चलेगी। आपका जी नाच-गाने से न हटता हो, तो उसी को लेकर बैठिए, वकालत छोड़िए, क्यों बाप-दादे का नाम बदनाम कर रहे हैं। कमाल है साहब ! ऐसे मोंदू गवाहों की गवाही भी आप न तोड़ सके। मुझे बड़े बाबू जी से बात करनी पड़ेगी—आपको दूसरा मुन्शी दे दें, मैं आपके साथ अपनी बदनामी कहाँ तक कराऊँगा।"

मुन्शी जी का गुस्सा बजा था। मुवक्किल ने आज उन्हें तहरीर की फीस न दी थी, फिर भी उन्हें उसकी खुशामद करनी पड़ी थी। आशीष के लिए मुन्शी जी की खुशामद करना जरूरी हो गया, वरना वह चारू बाबू के सामने जाकर बात का बतंगड़ बना देता। वह हँस-हँसकर उनकी बातें सुनता रहा और नौकर को मसालेदार देशी का अद्धा लाने को भेज दिया। पाव भर शराब पेट में पहुँची, तो मुन्शी जी का गुस्सा दूर हुआ। बहकते स्वर में बोले, "परवाह न करो बेटे...मुन्शी हरदयाल ने जिन्दगी भर इस घर का नमक खाया है, वह यूँ ही अकारथ नहीं जाएगा...साला (तात्पर्य आज के असन्तुष्ट मुवक्किल से था) कहता था कि दूसरा वकील कर लेंगे...मैंने मिसिल उसके मुँह पर दे मारी...मैंने कहा 'बेटा जाओ, दूसरे वकील ही से माँ....मैंने तुम्हारे जैसे बहुत मुवक्किल सीधे किए हैं...साले अब हमी से रोब झाड़ने चले हो। यह कचहरी है, मजाक नहीं है।' साला हें हें करने लगा। अरे भैया उस मुकदमे में भी क्या बिगड़ा है यूँ चुटकी बजाते मामला ठीक होगा...यूँ....यूँ...।" मुन्शी

जी ने कई बार चुटकी बजाकर मामले के ठीक हो जाने का विश्वास दिलाया और आशीष ने सन्तोष की साँस ली। मुन्शी जी को विदा करके वह फिर 'परसेप्शन', 'फिलिंग' और 'मेमोरी' से उलझने लगा।

खैर यह परेशानी भी दो-तीन दिन तक हो रही। रविवार को ग्यारह बजे आशीष बाबू का रिक्शा चैथम लाइंस की ओर दौड़ रहा था। गोयल साहब और वीणा ने उसका खुलकर स्वागत किया, शकुन्तला ने चुपके से नमस्कार किया। लेकिन आशीष उससे भी खुलकर मिला—जैसे कि सात दिन पहले कोई दुःखद काण्ड हुआ ही न हो; उससे आलोक के और उसके अपने स्वास्थ्य के बारे में पूछा; गोयल साहब की हँसी-हँसी में शिकायत की कि उन्होंने शकुन्तला को घर ही में बन्द कर दिया है और उसे शकुन्तला के दर्शन तभी होते हैं, जब कि वह इस दूर-दराज मुहल्ले में आए। गोयल साहब ने सन्तोष की साँस ली, शकुन्तला चुप-चाप सर झुकाये सुनती रही, मुस्कुराती रही। आशीष सही मानी में आज का हीरो था।

खाना आया। वीणा ने वाकई अपनी कारीगरी दिखायी थी और मेज पर रखे एक डोंगे में कोरमा भी भरा था। कोरमा लाजवाब था, आशीष ने ऐसा कोरमा कभी नहीं खाया था। तारीफ की बात यह थी कि उसका मसाला आशिक के दिल की तरह बिल्कुल जल गया था लेकिन हड्डी से रेशे को अलहदा करना उतना ही मुश्किल था, जितना आशिक को माशूक की महफिल से उठाना। ऐसा शायराना कोरमा खाकर आशीष की जीभ और आँतें आहें भरने लगीं, लेकिन होंठों से तो वाह-वाह ही निकलती थी, सो निकली। असलियत यह है कि खाने का शौक होना एक बात है, पकाने की तमीज होना बिलकुल दूसरी बात; बेचारी वीणा को कच्चा गोश्त पतीली में चढ़ाने का मौका पहली ही बार मिला था और सामिष खाद्यों के पाक की निपुणता उर्दू जबान की तरह आते-आते ही आती है। चुनांचे उसके पाक प्रयोगों की वेदी पर पहला बलि का बकरा बनने का गौरव आशीष हो को प्राप्त हुआ था और उसने सर झुकाकर इस सम्मान को स्वीकार किया।

मुंसिफ साहब खाना खाने के बाद आराम करने के आदी थे, इसलिए वे क्षमा याचना करके बेड रूम की ओर बढ़ गए। लेकिन वीणा ने आशीष को दम लेने का भी मौका न दिया। वह अपनी किताब-कापी लेकर ड्राइंग रूम में आ गई। आशीष ने कहा, "मुझे आपके उत्साह से डर लगने लगा है, वीणा जी। मैं कोई प्रोफेसर नहीं हूँ; सिर्फ बी० ए० में साइकलाजी पढ़ी थी, उसे भी सात वर्ष से अधिक हो गया है। डर यह है कि आपको मेरे अल्पज्ञान से कहीं निराशा न हो।"

थोड़ा, बहुत वीणा को भी यही डर था, लेकिन आशीष ने जब उसकी पुस्तक की विषय सूची पर सरसरी निगाह डालकर किताब बन्द कर दी और विषय को समझाना शुरू किया, तो वह देखती ही रह गई। कमाल का दिमाग होता है इन बंगाली खोपड़ियों में! सात वर्ष बाद भी इतने इत्मीनान से विषय को ब्योरेवार समझा रहा है जैसे यूनिवर्सिटी में लेक्चर देता रहा हो…वीणा को तो सात मिनट पहले की बात भी याद रखना मुश्किल था। और फिर समझाने का ढंग भी कितना लाजवाब; अब वाकई मालूम होता है कि साइकालाजी जैसा सरल विषय कोई नहीं होता। एक वह थे डॉ० धर, जिनके लेक्चरों से पूरे क्लास को जम्हाइयां आने लगती थीं, एक आशीष है जिसने दो चार्टों में सारे विषय को गला कर भर दिया था। मालूम नहीं इसने यूनिवर्सिटी में कोशिश क्यों नहीं की। प्रोफेसर होता तो छात्रगण रात-दिन इसके नाम की माला जपा करते।

अन्दर जी न लगा, तो शकुन्तला भी आकर बैठ गई और चुपचाप बुनाई करने लगी। आशीष अपने पाठ्य विषय में डूबा हुआ था, शकुन्तला से बातें करने का मतलब था कि विषय में व्याघात होता। शकुन्तला बिल्कुल चुपचाप थी, कभी-कभी कनखियों से गुरु-शिष्या की ओर देख लेती और फिर सलाइयों पर नजरें जमा देती। आशीष को आशा थी कि वह खुद कोई बात शुरू करेगी। एक आध बार शकुन्तला को मौका देने के लिए वह चुप भी हो गया था किन्तु शकुन्तला थी कि न तो हटती थी और न कुछ बोलती ही थी।

आखिर आशीष को खुद बोलना पड़ा, "आपकी बात गलत साबित हुई, शकुन्तला जी। वीणा जी का कम से कम एक सबजैक्ट ऐसा है, जिसमें मुझे भी थोड़ी-बहुत दिलचस्पी है।"

शकुन्तला सलाइयों पर नजरें जमाये हुए मुस्कुराने लगी। आशीष ने वीणा को कुछ बताने के इरादे से मुँह खोला ही था कि शकुन्तला की आवाज सुनाई दी, "मैं वाकई गलती पर थी आशीष बाबू! मुझे मालूम होना चाहिए कि कलाकार की दिलचस्पियों का पारावार नहीं होता। किसी भी मौके पर किसी भी नए सबजैक्ट में कलाकार को दिलचस्पी पैदा हो सकती है।"

आशीष चौंक पड़ा और आंखें फाड़कर शकुन्तला की ओर देखने लगा। वह पूर्ववत मुस्कुराते हुए बुनाई में लगी हुई थी। लेकिन वीणा को भाभी की भूल सुधारना जरूरी हो गया। बोली, "नहीं, भाभी! मि० मुखर्जी के लिए साइकालाजी नया सबजैक्ट नहीं है। बी० ए० में आपने भी फिलासफी आफर की थी। साइकालाजी में तो इनकी मास्टरी है। अगर यह इसी में

रिसर्च करते तो बड़े सफल अध्यापक हो जाते। समझाने का ढंग तो इतना अच्छा····।''

''सफल अध्यापक तो अब भी साबित हो रहे हैं।'' शकुन्तला मुस्कुराती हुई बोली।

''वही तो मैं कह रही हूँ'', वीणा बोली, ''सिर्फ यूनिवर्सिटी में पढ़ाने से ही कोई अच्छा टीचर नहीं हो जाता। मि० मुखर्जी इतने अच्छे ढंग से समझाते हैं कि कोई दिक्कत रह ही नहीं जाती। दो ही घण्टे में इन्होंने मेरी सारी कठिनाइयाँ दूर कर दीं। कहीं पास रहती तो फर्स्ट क्लास····।''

''कठिनाइयाँ दूर करने में आशीष बाबू एक्सपर्ट हैं'', शकुन्तला खुलकर हँस पड़ी, ''तुम्हारी तो सारी कठिनाइयाँ दूर कर देंगे। रहने लगो न पास आकर, कोई मुश्किल काम है?''

''सो कैसे हो सकता है?'' वीणा हैरानी से बोली, ''मैं तो लखनऊ में रहती····।''

आशीष अभी तक बेचैनी से वीणा के नोट्स को उलट-पुलट कर रहा था। अब चुप न रह सका। बोला, ''वीणा जी! आपकी भाभी की बातें बहुत दिलचस्प होती हैं। इनमें फँस गई, तो सबजैक्ट धरा रह जाएगा। पहले इसे समझ लीजिए; भाभी से तो हमेशा बातें करेंगी।'' और वीणा आज्ञाकारिणी शिष्या की तरह नोट्स की कापी सँभालकर और पेन खोलकर बैठ गई।

लेकिन, उसे यह देखकर कुछ ताज्जुब हुआ कि आशीष अब पहले की तरह मनोयोग से नहीं समझा रहा था। उसका मन कहीं और उड़ा हुआ मालूम होता था। विषय को वह डाक गाड़ी की रफ्तार से बढ़ाये लिए जा रहा था। वीणा की पकड़ ढीली पड़ने लगी। एक आध बात के समझ में न आने पर उसने दुबारा पूछा, तो आशीष ने जिन नजरों से उसे देखा, वे जैसे कह रही थीं कि अजब कूढ़मग्ज लड़की से पाला पड़ा है। पहले की तरह वह बात-बात से हँसी का पुट देकर विषय को सुबोध तो नहीं ही बना रहा था, बल्कि डॉ० धर ही की तरह मोटे-मोटे शब्दों की भरमार भी कर रहा था। वीणा को उलझन होने लगी। भाग्यवश पुस्तक के अन्तिम दो अध्याय ही रह गए थे। बीस मिनट में उन्हें खत्म करके उसने विदा चाही। वीणा ने भी राहत की साँस ली।

लेकिन शकुन्तला ने कहा, ''बड़ी स्वार्थी हो वीणा! घण्टों मेहनत कराकर आशीष बाबू को थका मारा और अब हाथ झाड़कर अलग हो गई। इनसे एक प्याला चाय तक के लिए नहीं पूछा।''

वीणा लज्जित होकर उठ खड़ी हुई और चाय का इन्तजाम करने चली गई। भाभी ठीक ही कहती हैं। थक तो गए ही होंगे, तभी तो बाद में ठीक तरह से पढ़ा नहीं सके।

कोरमे की तरह वीणा के हाथ की बनी हुई चाय भी 'लाजवाब' थी। किसी तरह एक प्याला गले से उतारकर आशीष भाग खड़ा हुआ।

कुछ देर बाद उनींदी आँखें लिए हुए गोयल साहब आए। पूछा, "आशीष चला गया?"

शकुन्तला हँसकर बोली, "वीणा को तबियत से पढ़ा रहे थे। मैं आई, तो नाराज होकर चले गए।"

गोयल साहब ने आँख भरकर पत्नी और बहन की तरफ देखा। फिर चुपचाप 'स्टडी' में चले गए। उन्हें एक मुकदमे की फाइल देखनी थी।

● ● ●

११

"अच्छा जनाब, आप यह बता सकते हैं कि आपकी पैदाइश के वक्त से कितने दिन पहले आपके वालिद साहब का इन्तकाल हुआ था?" आशीष ने जिरह में सवाल किया।

"मैं इस सवाल की इजाजत नहीं दे सकता।" अदालत ने हस्तक्षेप किया।

"लेकिन हुजूर, यह तो बहुत अहम सवाल है। मैं तो इसी बात पर मुद्दई का दावा गलत साबित करूँगा।" आशीष ने दीवानी अदालत को समझाना चाहा।

"मैं इस सवाल की इजाजत नहीं दूँगा। एवीडेंस ऐक्ट आपको ऐसे सवाल करने की इजाजत नहीं देता, जिससे आप गवाह को तौहीन करके उसे परेशान करें।"

"लेकिन हुजूर....।"

"नो आर्गमैंट्स विद मी, प्लीज", मुंसिफ मनोहर दास गोयल ने दृढ़ स्वर में कहा, "आप मुकदमे से मुतअल्लिक सीधे सवाल क्यों नहीं करते ? गवाह की पैदाइश···।"

"हुजूर, मैं यह साबित करना चाहता हूँ कि मुद्दई का एक भी गवाह ऐसा नहीं है, जो तालीम या खानदान या परवरिश किसी भी नजर से काबिले-एतबार हो और····।"

"काबिले-एतबार कोई नहीं होता मि० मुखर्जी !" मुंसिफ साहब ने अजीब-सी हँसी हँसकर कहा, "कभी कभी बड़े खानदानी शरीफ भी आस्तीन के साँप निकलते हैं। आप दूसरा सवाल करें।"

"बहुत अच्छा, हुजूर·······अच्छा जनाब आपकी दुकान की आमदनी कितनी है ?"

गवाह कसाई था। मुंसिफ साहब की बातों से उसका दिल बढ़ गया था। उसने गुर्राकर कहा, "मेरी दुकान की आमदनी से आपको मतलब ? क्या आप इनकम टैक्स इंस्पैक्टर हैं ?"

"सवाल का सीधा जवाब दो", मुंसिफ साहब कड़ककर बोले, "बदतमीजी की, तो अभी जेल भिजवा दूँगा।"

कसाई ने सकपकाकर हाथ जोड़ लिये। जिरह चलती रही।

एक गवाह चला गया, दूसरा आया। दूसरा गया, तीसरा आया। लेकिन मुंसिफ साहब का रवैया वही रहा। जिन सवालों पर गवाह गड़बड़ाने लगते, उनकी मुंसिफ साहब अनुमति ही न देते थे। हारकर आशीष ने कहा कि मेरा मुवक्किल तारीख बढ़वाना चाहता है। मुवक्किल भी खुशी से हर्जाना देने को तैयार हो गया। मुंसिफ साहब की नजरें एक बार टेढ़ी हुईं, तारीख के इल्तवा की कोई खास वजह न थी। वे चाहते तो अर्जी नामंजूर कर सकते थे, लेकिन उन्होंने अर्जी मंजूर कर ली। तारीख एक महीने बाद की पड़ी।

इसी एक मुकदमे पर बस नहीं थी। एक हफ्ते में आशीष के तीन मुकदमे गोयल साहब के यहाँ पड़े, तीनों में उनका यही रवैया रहा। मुंशी हरदयाल घबड़ाने लगे। गोयल साहब की वकील साहब से जाती दोस्ती का हवाला देकर वे अच्छे-से-अच्छे मुवक्किल लाते थे, और यहाँ मामला ही उल्टा जा रहा था। एक रोज शाम को फिर उन्होंने आशीष को समझाना चाहा, "भैया ! हाकिम-हुक्काम को नाराज करना वकील के लिए ठीक नहीं होता। अभी आप जवान हैं, मिजाज गर्म है, लेकिन···।"

"लेकिन जब बूढ़ा होऊँगा तो आपकी तरह सठिया जाऊँगा मुंशी जी, लोग पीकर तो वहकते ही हैं, मगर आप बगैर पिये भी वहकने लगते हैं।" आशोष ने हँसकर कहा।

मुंशी जी भी हँसे, लेकिन तुरन्त गम्भीर हो गए। बोले, "लेकिन आखिर वात क्या हो गई? मुंसिफ साहब तो इतने गहरे दोस्त थे आपके। आपने क्या कह दिया कि···?"

"कह दिया आपका सर!" आशीष भुंझला पड़ा, "मैं किसी के दिल में घुसा वैठा हूँ, जो समझ लूँ कि कोई क्यों नाराज है? आप उनकी अदालत के सारे मुकदमे मिसरा जी (आशीष के एक मित्र वकील) को दे दें। आयन्दा भी उनकी अदालत का कोई मुकदमा न लें।"

बात तो एक तरह ठीक थी। हाकिम का रवैया दुश्मनी का हो, तो वहाँ के मुकदमे लेकर वकालत की साख खराब करने से कोई फायदा न था। लेकिन, मुंशी जी चाहते थे कि अगर किसी वजह से वकील साहब ने मुंसिफ साहव को नाखुश कर दिया हो, तो उन्हें फिर मना लें। वजह यह थी कि मुंसिफ वैस्ट के यहाँ ही मालदार आसामियों के मुकदमे आते थे। और फिर हाकिमों का क्या है, दो बरस बाद बदली हो जाएगी, कौन जिन्दगी भर का साथ है। किसी तरह यह वक्त निकाल दें, बाद में दूसरा आदमी आ जाएगा। लेकिन, मुवक्किल एक दफा हाथ से निकल गए, तो दूसरे वकीलों के शिकंजे से फिर आसानी से न निकलेंगे। इसी लिए मुंशी जी ने गिड़गिड़ा कर कहा, "भैया, यह तो ख्याल कीजिए कि·······।"

"मुंशी जी, भगवान के लिए मेरी खोपड़ी न चाटिए। मुझे जो कुछ कहना था, मैंने कह दिया। अब आपको और जो कुछ कहना-सुनना हो, वह पिताजी से कहिए।"

आशीष ने अन्दर जाकर कपड़े बदले और रिक्शा मँगा कर सिविल लाइंस चला गया। मुंशी जी कुछ देर मुँह लटकाये बैठे रहे, फिर उठ कर धीरे-धीरे अपने घर को चले गए। वे आज 'हौली' (देशी शराब की दुकान) भी न गए। उनकी समझ में नहीं आता था कि इस जिद्दी वकील का साथ कैसे निभेगा, जो ढंग की बात पर भी नाराज हो जाता है।

आशीष भी कॉफी हाउस में अपनी खास कोने की जगह बैठा हुआ इसी वात पर गौर कर रहा था कि मुंसिफ साहव को हो क्या गया। अभी तक इतनी बातें हो गई थीं, वे उससे नाराज नहीं हुए, पिछले इतवार को उन्होंने उसे खाने पर भी बुलाया था। क्या इस वजह से नाराज हो गए, कि वह तीसरे पहर

उनसे बगैर मिले चला आया था। लेकिन, इस बात पर तो कोई महा झझकी ही नाराज होगा। गोयल साहब तो बहुत ही सुलझे हुए आदमी हैं।

तर्क-वितर्क का अधिक मौका न मिला। उस दिन की तरह फिर गोयल साहब शकुन्तला और वीणा को लेकर कॉफी हाउस आ गए। आशीष यह सोच ही रहा था कि वह उन्हें अभिवादन करे या न करे कि शकुन्तला ने उसे देख लिया। देख ही नहीं लिया, जबरदस्ती अपने साथ केबिन में भी ले गए, हालाँकि स्पष्ट था कि गोयल साहब को यह पसन्द नहीं है।

आशीष के प्याले में चीनी डालते हुए शकुन्तला बोली, "आशीष बाबू, यह वीणा तो आप की बड़ी भक्त हो गई है। हफ्ते भर आप का इंतजार करती रही, आप आए ही नहीं।"

आशीष तिलमिला-सा उठा। 'आखिर यह कहना क्या चाहती है? मजाक एक बार होता है या बार-बार? फिर भाभी होने के नाते वह वीणा को चाहे जितना छेड़े, मुझे क्यों बार-बार सानती है?' लेकिन इस बात पर झगड़ा भी तो नहीं किया जा सकता। आशीष धीरे से बोला, "काम कुछ अधिक था इस लिए आ नहीं सका।"

गोयल साहब को अचानक कुछ याद आ गया। घड़ी देख कर बोले, "गॉन विद द विंड" फिर लगा है। आज आखरी शो है। अभी टाइम है। चलो, तुम लोगों को दिखा दें।"

शकुन्तला के होंठ कुछ टेढ़े हुए। एक क्षण रुक कर बोली, "चलिए…… आशीष बाबू आप भी साथ देंगे न? कोई काम न हो, तो चले चलिए।"

लेकिन यह औपचारिकता भर थी और इस औपचारिकता में भी गोयल साहब ने शकुन्तला का साथ नहीं दिया। आशीष ने स्वभावतः ही क्षमायाचना कर ली। कहा कि एक दोस्त से घंटे भर बाद मिलना है। शकुन्तला बोली, "अच्छी बात है। लेकिन कल तो कोई काम नहीं है। कल शाम को चाय हम लोगों के साथ पीजिए।"

आशीष इनकार न कर सका।

दूसरे दिन इतवार था। आशीष ने गोयल साहब के बर्ताव को कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया था। अदालत के बारे में वह तय ही कर चुका था कि उनके यहाँ के मुकदमे नहीं लेगा। व्यक्तिगत रूप से भी उनसे सम्बन्ध-विच्छेद करने में उसका कोई हर्ज न था। उसने तय कर लिया कि वादा करने के बावजूद उनके यहाँ चाय पीने नहीं जाएगा।

लेकिन इतवार की सुबह को उसका इरादा डगमगा गया। कारण केवल यह था कि उसने रात को वीणा को स्वप्न में देखा था। देखी थी उसकी हँसी और एक दूसरे पर चढ़े हुए दांत। दिन भर उधेड़बुन मे पड़ा रहा और चार बजे चैथम लाइंस को चल दिया।

गोयल साहब फिर घर पर न मिले। मालूम हुआ कि सेशंस जज उसमानी के यहाँ चले गए हैं। आशीष को आश्चर्य हुआ। सुरा-सुन्दरी के परम प्रेमी उसमानी साहब और गोयल साहब का क्या साथ? लेकिन उसने इस पर ज्यादा गौर न किया, उसे गोयल साहब और उनके मित्रों से लेना-देना ही क्या था। चाय पर वह शकुन्तला और वीणा के साथ मजे में बातें करने लगा। लेकिन जो देखने आया था, वह देखने को न मिला। वीणा आज हँस बिल्कुल नहीं रही थी। शकुन्तला ने शरारत से मुस्कुरा कर उसकी ओर एकाध बार देखा जरूर था, लेकिन उसे कुछ छेड़ा-वेड़ा नहीं था। फिर भी वह सर झुकाए चुप-चाप चाय पीती रही। एकाध बार उसने चुरायी हुई नजरों से आशीष की ओर देखा जरूर, लेकिन बोली कुछ नहीं। चाय पीकर उसने यह कहकर माँफी माँग ली कि तबियत ठीक नहीं है और नमस्कार करके अन्दर चली गई। आशीष ने शकुन्तला से पूछा कि इसकी क्या तबियत खराब है, तो फिर शरारत से हँस कर बोली, "आपको बड़ी फिक्र हो जाती है।" लेकिन आशीष के चेहरे पर बुरा लगने का भाव आते ही बोली, "कोई खास बात नहीं, यूँ ही कुछ खराब होगी।"

चाय पीने के बाद उसे शकुन्तला ने रोका नहीं, लेकिन खुद उसका उठने को जी न चाहा। शकुन्तला भी न उठी, न उसके चेहरे पर ऊबने ही का भाव आया, लेकिन आशीष ने यह देखा कि वह गम्भीर हो गयी है। आशीष कुछ देर चुप बैठा रहा। कायदे की बात थी—और उसने सोचा भी यही था कि वह दो-एक औपचारिक बातें करके उठ आए, लेकिन उसे न मालूम किस अदृश्य शक्ति ने जकड़ रखा था। न रहा गया तो बोला, "शकुन्तला जी! एक बात पूछूँ?"

"जरूर पूछिए, अनुमति माँगने की क्या जरूरत है?"

"उस रोज चाय पर मेरे बारे में आपने जो कुछ कहा था, उससे मैंने यह·······।"

"उसके लिए तो मैंने माफी माँग ली है, फिर माफी माँगती हूँ।" बड़ी मीठी हँसी वह हँसी।

"माफी की बात नहीं शकुन्तला जी। आप मेरे साथ ज्यादती कर रही

हैं। मैंने बुरा ही कब माना था कि आप बार-बार माफी माँग रही हैं। मैं तो दरअसल आपका बड़ा आभारी हूँ कि आप मेरे भले-बुरे का इतना ध्यान रखती तो हैं। मैं तो दूसरी बात कह रहा था। मैं यह कह रहा था कि उसके बाद आपका रवैया कुछ समझ में नहीं आ रहा है·······, देखिए आप फिर माँफी न माँगने लगिएगा। मैं देखता हूँ कि आप कभी असाधारण रूप से प्रसन्न हो जाती हैं, कभी बहुत गम्भीर और दुखी हो जाती हैं। ऐसा क्यों होता है ?"

"दुःख-सुख तो आदमी को लगा ही रहता है।" फिर मीठी हँसी हँसकर शकुन्तला बोली।

"आप बात को टाल रही हैं। साधारणतः आदमी का मूड इतनी जल्दी नहीं बदलता।"

"भई वकील से बहस कौन करे? आप इतना भी नहीं समझते कि जब आदमी को अन्दर से कोई चिन्ता खाये जाती है, तो उसका ऊपरी बर्ताव अजीब-सा हो जाता है ?"

"यही तो मैं कहना चाहता था," आशीष विजयी वकील की हँसी हँसा। बोला, मैं चाहता हूँ कि आप मुझे बताएँ कि आपको क्या चिन्ता है, आपके सामने क्या समस्या है।"

शकुन्तला तेज पड़ गई, "आप हद से आगे बढ़ रहे हैं आशीष जी। मेरी सारी समस्याएँ मेरी अपनी हैं और मैं उन्हें खुद ही सुलझाना चाहती हूँ। क्या मैं पूछ सकती हूँ कि दूसरों के मामलों में दखल देने का अधिकार आपको किसने दिया ?"

आशीष जैसे फिर आसमान से जमीन पर गिर पड़ा, लेकिन फौरन सँभल गया। बोला, "आप ठीक कहती हैं। यह मेरी गलती है·······काश कोई मुझे बता देता कि मेरी हद क्या है, मेरे अधिकार क्या हैं, मेरा लैविल क्या है, दुनिया में किसी को मेरी जरूरत है या नहीं····अच्छा नमस्ते।"

वह सड़क पर पहुँचा ही था कि पीछे से आवाज आई, "आशीष बाबू, रुकिए।" देखा, तो फाटक पर शकुन्तला खड़ी थी। बोली, "आपको घंटे दो घंटे की फुर्सत तो है ?"

"जी हाँ। क्यों ?"

"जरा वहीं रुके रहिए। मैं अभी आई।"

दस मिनट में कपड़े बदल कर शकुन्तला उसके पास आ गई। भाग्य से एक रिक्शे वाला भी मिल गया। शकुन्तला बोली, "कम्पनी बाग।"

कम्पनी बाग में दोनों एक अपेक्षाकृत निर्जन स्थान पर बेंच पर बैठ गए। पास की बेंच पर एक शरीफ आदमी बैठा था, इन्हें देखकर वह उठ गया। उसने सम्भवतः उन्हें नवविवाहित दम्पति समझा। शकुन्तला की चेष्टाएँ भी तो कुछ ऐसी ही हो रही थीं। बोली, "बुरा मान गए ?"

"नहीं तो।" आशीष चौंककर बोला। रहस्यमयता से वह कुछ खीझ भी उठा था।

"अब आप शादी कर डालिए। तभी आपको अपनी हद, अपने अधिकार, अपना लैविल और संसार के किसी प्राणी के लिए अपनी जरूरत–सब कुछ मालूम हो जाएगा।"

आशीष हँस पड़ा। बोला, "यही कहने के लिए आप यहाँ आई हैं ? यह तो घर पर भी कह सकती थीं ?"

"नहीं कहना तो दूसरी बात थी।"

"तो कह डालिए न।"

"कैसे कहूँ, कहा नहीं जाता।"

"कोई बात नहीं, न कहिए। हमलोग और किसी विषय पर बात कर सकते हैं।"

"लेकिन बगैर कहे रहा भी नहीं जाता है।" शकुन्तला फिर मीठी हँसी हँसने लगी।

आशीष जोरों से हँस पड़ा। बोला, तो आइए, हम दोनों मिलकर जगत पिता से प्रार्थना करें कि इस अँधेरे में हमें राह सुझाये।"

आशीष ने वाकई हाथ जोड़ लिये।

हँसने-हँसाने के बाद शकुन्तला गम्भीर हो गई। बोली, "बात वीणा की है।"

आशीष भी एकदम गम्भीर हो गया, दम साधे सुनता रहा। शकुन्तला बोली, "आपने पिछले इतवार को शायद यह सोचा हो कि मैं आपको जबरदस्ती परेशान कर रही हूँ। कल भी शायद आपने यही सोचा हो। आप कुछ नाराज से भी लग रहे थे। आज भी आप नाराज थे। थे न ?"

"मैं नाराज-वाराज कुछ नहीं था। आप अपनी बात जारी रखिए।"

दरअसल आपके मामले में मैं मजाक ही कर रही थी। वीणा मुझे बहुत छेड़ती है न ? उससे बदला लेने का मौका मैं क्यों चूकती ? लेकिन पिछले

इतवार के बाद एक मजेदार बात और भी मालूम हुई ! आपके एक प्रतिद्वंदी भी पैदा हो गए हैं ।"

"आप मजाक से अब भी नहीं चूक रही हैं । किन साहब को वीणाजी में दिलचस्पी है ?"

"श्री मनोहरदास गोयल, मुंसिफ वैस्ट, इलाहाबाद को ।" शकुन्तला ने कहा ।

"क्या ?" आशीष उछल कर खड़ा हो गया । शकुन्तला हँसी, "आप कहीं मुझे न मार बैठिएगा । मेरा कोई कसूर नहीं है । लेकिन कह मैं सच्ची बात रही हूँ ।"

"आप बकवास करती हैं । कुछ भी हो, वीणा गोयल साहब की बहन है ।" आशीष लगभग चीख उठा ।

शकुन्तला भी तेज पड़ गई । बोली, "यह बात आप स्कूल के बच्चों को समझाइए । मैं आपकी तरह मनोविज्ञान की पंडित नहीं हूँ, फिर भी इतना जानती हूँ कि लैंगिक प्रवृत्तियाँ सामाजिक नैतिकता से दब तो जाती हैं, लेकिन उनके आधीन होकर काम नहीं करतीं । फिर वीणा कौन उनकी सहोदरा है ? हिन्दुओं को छोड़कर अन्य सारे समाजों में ऐसी दशा में वैवाहिक सम्बन्ध भी हो जाते हैं ।"

आशीष धीमा पड़ गया । अँधेरा बढ़ गया था इसलिए शकुन्तला को दिखाई न दिया कि आशीष का सांवला रंग काला पड़ने लगा है । वह धीरे से बोला, "लेकिन सामाजिक वास्तविकता की किस हद तक उपेक्षा की जा सकती है ? क्या हिन्दुओं में ऐसे विवाह हो सकते हैं ? गोयल साहब……।"

"शकुन्तला हँसकर बोली, "गोयल साहब में साहस की कमी नहीं है । मुझे तलाक दे दें, तो……।"

आशीष के हाथ ने शकुन्तला का मुँह बन्द कर दिया । आशीष की उँगलियाँ उसके बाएँ गाल को छू रही थीं और हाथ के रोएँ दाहिनी तरफ गर्दन में गुद-गुदी पैदा कर रहे थे । एक क्षण के लिए शकुन्तला की आँखें बन्द हो गईं । फिर उसने धीरे से आशीष का हाथ अपने मुँह पर से हटा दिया ।

आशीष भी प्रकृतिस्थ होकर बोला, "कुछ डिटेल में बताइए, तो समझ में आए ।"

"कोई खास डिटेल्ज नहीं हैं । पिछले इतवार को मैंने हँसी में कह दिया था कि आप अकेले वीणा को खुशी-खुशी पढ़ा रहे थे, मैं आई तो नाराज होकर

चले गए। इसपर गोयल साहब गम्भीर हो गए। इसके बाद वीणा जब भी आपकी तारीफ करती, उसे किसी न किसी और बात में लगा दिया जाता। यहाँ तक भी शक की कोई बात नहीं थी। लेकिन, इस बीच उन्होंने आपकी शराबखोरी और दुश्चरित्रता का भी कई बार उल्लेख किया, जो पहले न किया था। आज सुबह वीणा आपकी चाय के साथ के लिए अंडे मँगाने की बात कर रही थी, तो गोयल साहब ने उसे काफी भला-बुरा कहा। वह रोने लगी।"

आशीष हँसने लगा। बोला, "गोयल साहब का दिमाग खराब हो गया है। इस उम्र में और ऐसी पोजीशन में होकर लौण्डों जैसी हरकतें करने लगे हैं। इस हफ्ते उन्होंने मेरे कई मुकदमे खराब कर दिए। उन्होंने कुछ व्यंग्य भी किए थे, जिनका मतलब अब समझ में आ रहा है। अपनी आंखों देखा है, तो मानना ही पड़ता है, वरना और कोई कहता, तो यकीन न होता कि वे ऐसा बचपना करेंगे।"

"औरत की आँखें कब किस बूढ़े को बच्चा बना देंगी, यह कौन बता सकता है, आशीष बाबू?"

आशीष चुप रहा, तो शकुन्तला ने कहा, "एक बात पूछूँ? बुरा तो न मानिएगा?" फिर आशीष की स्वीकृति पाकर वह हँसकर बोली, सच बताइएगा, आपके दिल में वीणा के लिए कुछ……।"

"आपसे झूठ न बोलूंगा, शकुन्तला जी। अभी तक मैं खुद कुछ समझ नहीं पा रहा था। लेकिन अब मालूम होता है कि मैंने उसे जब से देखा है, तभी से उससे मुहब्बत करने लगा हूँ, हालांकि बेतुकी बात है।"

अँधेरा गहरा न हो जाता, तो आशीष देख लेता कि शकुन्तला ने अपना निचला होंठ काट लिया है। मुँह से उसने कहा, "मुझे खुशी है कि आप मुझसे झूठ नहीं बोले हैं। आइए, अब चलें।"

उठकर चले, तो रविश पर रोशनी में आशीष ने शकुन्तला की बाँह पकड़ ली। उसकी आँखों में आँखें डालकर क्षण भर देखता रहा, फिर बोला, अब बताइए शकुन्तला जी, आप खुद अपनी समस्याएँ सुलझा सकती हैं?"

मन्त्रमुग्ध-सी शकुन्तला बोली, "नहीं।" आशीष ने उसकी बाँह छोड़ दी।

"मुझे आपकी बातों में, आपके पारिवारिक मामलों में दखल देने का हक है या नहीं?"

"बिल्कुल है।" शकुन्तला ने उसी मन्त्रमुग्ध स्वर में कहा।

"तो फिर मैं आपके मामलों में दखल दूँगा। आप कुछ बोलिएगा नहीं,

चुपचाप तमाशा देखती रहिएगा·······अच्छा, अब काफी देर हो गई है। चलिए, आपको घर पहुँचा दूँ।''

''नहीं, आज नहीं। आज मैं अकेली ही घर जाना चाहती हूँ। गोयल साहब आ गए होंगे।''

मुंशी हरदयाल को खुशी थी कि वकील साहब ने मुंसिफ वैस्ट की अदालत में जाना मंजूर कर लिया है। उन्हें मालूम होता कि किसलिए किया है, तो मुवक्किल को बाहर ही बाहर खिसका देते।

संयोग से फिर गवाह कुछ इसी तरह का था। आशीष ने जान-बूझकर फिर खानदान की बात उठायी। मुंसिफ साहब झुँझलाकर बोले, ''मि० मुखर्जी! मैं खानदान को कोई महत्व नहीं देता। आप गवाह को बेकार परेशान क्यों कर रहे हैं? मैं बड़े-बड़े खानदानी लोगों की करतूतें जानता हूँ।''

आशीष बोला, ''आप बिल्कुल बजा फरमाते हैं, सरकार! मैंने खुद ऐसे खानदानियों को देखा है, जो अपनी बहनों पर भी बुरी नजर रखते हैं। फिर भी खानदान का कुछ तो असर होता है। सायकालाजी का साइंस भी हेरेडिटी के असर से इनकार नहीं करता।''

मुंसिफ साहब को अचानक ही जैसे किसी खटमल ने काट लिया। आशीष के सवालों पर उन्होंने फिर कोई एतराज नहीं किया। आशीष ने प्रतिपक्षी गवाहों की धज्जियाँ उड़ा दीं।

लंच के लिए मुंसिफ साहब चेम्बर में गए, तो उन्होंने आशीष को बुलाया। कुछ देर तेज नजरों से देखकर पूछा, ''आप को शाम को कोई काम तो नहीं है? मैं कुछ निजी बातें करना चाहता हूँ।''

आशीष अभी तक आपसी दोस्ताना बातचीत में 'तुम' था, आज फिर 'आप' हो गया था। उसने मंजूर कर लिया। करता भी क्यों नहीं, उसने इसीलिए तो छेड़ की थी।

शाम को छह बजे 'रामाज' के एक केबिन में दोनों दिखायी दे रहे थे। कुछ देर इधर-उधर की बातें होती रहीं, लेकिन यह भूमिका जल्द ही खत्म हो गई, और मुंसिफ साहब ने कहा, ''कल आपकी शकुन्तला से बातें हुई थीं।''

''बातें क्यों न होती? मेहमान के साथ मेजबान बातें करता ही है।''

''नहीं, मेरा मतलब है कोई खास बात हुई थी?''

आशीष कुछ देर उन्हें जलती निगाहों से देखता रहा। फिर बोला, ''जी हाँ। उन्होंने मेरी हफ्ते भर की उलझन दूर कर दी कि आप क्यों इधर खास तौर

से मुझपर मेहरबान रहे हैं। उन्होंने मुझे यह बताया कि आप कितनी शर्मनाक हिमाकत कर रहे हैं, किस तरह दो जिन्दगियों को…।;'

"उन दो जिन्दगियों को मैं नहीं, जनाब बरबाद कर रहे हैं। ढोंग रचाकर दोनों को अपनी तरफ अट्रेक्ट कर रहे हैं और जबरदस्ती एक बेतुका रोमांटिक ऐडवेंचर करना चाहते हैं।"

"यह झूठ बात है। आपसे अधिक इस बात को कोई नहीं जानता कि आपकी और मेरी पोजीशन में बहुत फर्क है। मैं अगर एक बार रोमांटिक ऐड-वेंचर करूँ भी तो जस्टीफाइड होगा। फिर भी आप जानते हैं कि मैंने कितने मौके छोड़े हैं। इसे चाहे आदर्शवाद कह लीजिए, चाहे बेवकूफी।"

कॉफी खत्म करके गोयल साहब ने सिगरेट सुलगायी। फिर बोले, "आपने पाँच महीने पहले मुझसे कहा था कि आपको शकुन्तला से कोई मुहब्बत नहीं है। यह बात झूठ नहीं थी ?"

"मैंने यह नहीं कहा था। कहा था यह कि उन्हें मुझसे प्रेम नहीं है, और यह बात झूठ नहीं है।"

लेकिन मैं जानता हूँ कि यह बात झूठ है। आप दोनों एक दूसरे को चाहते हैं……देखो आशीष बाबू, झगड़े की बात नहीं है। तुम दोनों का आपसी लगाव स्वाभाविक है, मैंने इसमें कोई एतराज कभी नहीं किया। लेकिन ढोंग मुझे पसन्द नहीं और यह भी पसन्द नहीं कि अगर मैं अपना ध्यान कहीं और लगाना चाहूँ तो आप उसमें भी आड़े आएँ। आप वीणा को छोड़ दीजिए, शकुन्तला से…।"

"शट अप, यू डैविल ! यह भी कोई जायदाद का बँटवारा है ? मुझे दोनों में से एक भी न चाहिए। लेकिन आप फौरन वीणा को वापस भेज दीजिए। शकुन्तला जी को आपकी जात से किसी तरह कोई तकलीफ पहुँची, तो मुझसे बुरा कोई न होगा। यह कोरी धमकी नहीं है, मैं कानूनी और गैर कानूनी दोनों तरीके अपनाना जानता हूँ। उम्मीद है आप समझदारी से काम लेंगे।"

● ● ●

१२

आशीष अपने बंगले के लॉन में बैठा हुआ नवम्बर के तीसरे पहर की धूप का आनन्द ले रहा था। इतवार तो नहीं था, लेकिन कोई छुट्टी थी। दोपहर भर वह अगले दिन के लिए दो मुकदमों की बहसें तैयार करता रहा था। उसका मन बड़ा उचाट हो रहा था। पिछले डेढ़ महीनों से उसने सारा ध्यान अपने पेशे की तरफ लगाया था। मुंशी हरदयाल कहने लगे थे कि आशीष बाबू की वकालत प्रेमचन्द बाबू से बीस ही चलेगी। लेकिन, आशीष की पेशेवर लगन का कारण पितामह की प्रतिष्ठा प्राप्त करने की आकांक्षा नहीं, बल्कि सिर्फ यह था कि उसका जी अपनी भावनाओं की कचोट से घबड़ा गया था और वह उनकी अभिव्यक्ति के सारे मार्ग रोक देना चाहता था। पूरी शरद ऋतु बीत गई, नगर में सांस्कृतिक आयोजनों की बाढ़ आ गई, लेकिन आशीष ने सभी संगीत गोष्ठियों के निमन्त्रण अस्वीकार कर दिए। डर था कि कहीं शकुन्तला या वीणा के थरथराते हुए चित्र सितार के झालों से निकल न पड़ें। बड़ी मुश्किल से तो वह अपने को यह साधारण तथ्य समझा सका था कि उन लोगों के प्रति उसका मोह बिल्कुल बेतुकी बात है। गोयल परिवार जहन्नुम में जाए, उससे क्या मतलब। लेकिन, इन बेगानों से अलहदगी पैदा की, तो अपनों से भी और दूर हो गया। मित्र मंडली ने समझ लिया कि निन्यानवे के फेर में पड़ कर उसके कलाकार की मृत्यु हो गई।

फिर भी दिमागी मेहनत की एक हद होती है। मशीन भी चौबीस घंटों में कुछ घंटे आराम करना चाहती है। आशीष भी थक जाता, तो ऑल इंडिया रिपोर्टर की मोटी-मोटी जिल्दें बन्द करके अलमारी में घुसेड़ देता और माथे पर हाथ रखकर बैठ जाता। कभी-कभी जासूसी उपन्यासों से मन बहलाने की कोशिश करता, लेकिन अधिकतर चुपचाप बैठा रहता, कुछ सोचता भी नहीं।

इस समय भी वह इसी तरह भारी अन्यमनस्कता की हालत में बैठा था कि यकायक "लारा लप्पा, लारा, लप्पा" की आवाज से चौंक पड़ा। मुड़कर फाटक की ओर देखा, तो मालूम हुआ कि वॉल्टर साहब तशरीफ ला रहे हैं—वही अपनी खास धजा में; डिस्पोजल्स की पतलून और कुहनियों से फटता हुआ स्वेटर।

आशीष का मन एक बार हुआ कि वॉल्टर पास आए, तो उसे यकवारगी ही डाँट कर भगा दे। लेकिन, वह जब आया, तो आशीष सिर्फ थके हुए स्वर में यह कह सका, "आओ, वॉल्टर। बहुत दिनों पर दिखाई दिए।"

वॉल्टर ने कहा, "तुम्हारी हालत क्या हो गई है आशीष ? इतने कमजोर कैसे हो गए ? बीमार-बीमार रहे थे क्या ?"

"नहीं तो। अच्छा खासा तो हूँ। मुझे तो नहीं लगता कि कमजोर हूँ।"

"शीशा तो देखो। कभी तुम्हारे गाल की हड्डी इस तरह उभरी थी ?

आशीष अपने स्वास्थ्य के बारे में वॉल्टर से बहस नहीं करना चाहता था। उसने झूठ ही मंजूर कर लिया कि पन्द्रह दिन पहले उसे इनफ्लुएंजा का हलका-सा झटका लगा था। वॉल्टर को मालूम हो गया कि बात टाली जा रही है, इसलिए उसने प्रतिवाद न किया। सिर्फ यह कहा कि स्वास्थ्य की ऐसी दशा में उसे वकालत पर इतनी मेहनत न करनी चाहिए जितनी वह कर रहा है। साथ ही यह कि किसी अच्छे डॉक्टर से चेक-अप कराकर इलाज करा लेना चाहिए, कमजोरी रहना ठीक नहीं।

फिर भी यह सब औपचारिक बकवास थी। वॉल्टर जो कुछ कहना चाहता था, वह उसकी समझ में नहीं आ रहा था, कैसे कहे। पहले तो वह हर बात लठमार तरीके से कह देता था, लेकिन इसबार ऐसा नहीं हो सकता था। वह सीधा-सादा आदमी सही लेकिन बेवकूफ तो हरगिज नहीं था। एक तो बात ही बहुत नाजुक थी और फिर आशीष का मूड भी ऐसा था कि होशियारी से काम लिया जाता। वॉल्टर को खुद डाँट खाने की चिन्ता न थी, अगर एक बार आशीष उसे बँगले से निकलवा देता, तो भी उसे कोई खास परवा न होती। उसे डर यह था कि कहीं आशीष रो न दे। अगर इस हृष्ट-पुष्ट हँसमुख आदमी की आँखों में आँसू दिखायी दे गए, तो वॉल्टर से कैसे देखा जाएगा, यह उसकी समझ में नहीं आ रहा था। लेकिन बात को—किसी भी बात को—किसी और मौके के लिए टाल दिया जाए, इतना धैर्य लेकर वाल्टर ने इस संसार में प्रवेश ही नहीं किया था। तो फिर ?

फिर यही कि वॉल्टर ने जान पर खेलना तय किया। बोला, "जूलिया तुम्हें बहुत याद करती है।"

आशीष की भवों पर बल पड़ने लगे हैं, यह देख कर वह खुश हुआ। इसका मतलब है कि लोहा पिघल कर मोम नहीं बना है। हँस कर बोला, "नाराज क्यों होते हो, म्याँ ?"

"कुछ और बात करो, वॉल्टर। बेकार की बातें मुझे पसंद नहीं हैं," आशीष का स्वर दृढ़ था।

"बिल्कुल बच्चे हो यार, इन बातों को इतनी सीरियसली लिया जाता है ?"

"कह दिया एक बार कि कुछ और बातें करो" आशीष के स्वर में काफी खीझ थी।

"अच्छा, नहीं करूंगा यह बात। लेकिन तुम यह बताओ कि तुम्हें हो क्या गया है ?"

"कह तो दिया कि इनफ्लुएंजा का अटैक हुआ था। इसके अलावा कुछ नहीं हुआ।"

"झूठ बोलोगे तो फिर मजबूरन मुझे जूलिया के बारे में बात करनी पड़ेगी।"

आशीष एक क्षण तक भवें तान कर उसकी ओर देखता रहा, फिर हँस पड़ा। कैसी भी हालत हो, वॉल्टर हँसा जरूर देगा। वह अब गभीर हो गया। बोला, "आशीष, मुझे तुम से यह उम्मीद नहीं थी कि मुझसे भी इतनी गैरियत बरतोगे। मैं तुम्हारा·······।"

आशीष अब वाकई पिघल गया। बोला, "नहीं वाल्टर, गैरियत की बात नहीं है। लेकिन, कुछ बातें ऐसी होती हैं, जिन्हें याद करना भी इंसान के लिए तकलीफदेह हो जाता है। इसलिए वह उन्हें किसी दूसरे से भी नहीं कहना चाहता। मेरे साथ भी यही बात है।"

"देखो भई, तुम्हारी तरह किताबों के पन्ने तो मैंने नहीं चाटे हैं, लेकिन, जिन्दगी जरूर देखी है और इसीलिए यकीन से कहता हूँ कि किसी बात को भुलाने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि उसे जबान के रास्ते निकाल दिया जाये। इसीलिए माँ बदौलत का हुक्म है कि मुसम्मी आशीष मुखर्जी वल्द चारु चन्द्र मुखर्जी कौम बरहमन साकिन इलाहाबाद अपने दिल की सही-सही हालत बिला चूंचिरा बगैर कमोकास्त हमारे हुजूर में बा अदब पेश करें।"

"बहुत खूब, आलम पनाह !" आशीष हँसकर बोला, "गुलाम अर्ज करता है।"

आशीष को खुद ताज्जुब हो रहा था कि उसी बात को जिसे सात महीने पहले वह हजार कोशिश करके भी वाल्टर को न बता सका था, आज इतने इत्मीनान से कैसे बताये जा रहा है। वाल्टर ने इस अरसे में चार सिगरेट फूंक

डाली, लेकिन एक बार भी मुंह न खोला, न्यायाधीशों-जैसी गंभीरता के साथ सुनता रहा, आशीष की राम कहानी।

पौन घण्टे के बाद बोला, भी तो यह—"मा बदौलत चाय नोश फरमाना चाहते हैं।"

चाय पीने के बाद भी वाल्टर चुप रहा, तो आशीष को खुद कहना पड़ा, "तुमने कुछ नहीं कहा?"

"मुझे कहना सिर्फ यह है कि एक काली-कलूटी औरत से इश्क करने वाले को महज पागल कहा जा सकता है। लैला से मुहब्बत करने वाला सिर्फ मजनूँ ही हो सकता है।"

"गधे हो फर्स्ट क्लास, बल्कि फर्स्ट क्लास फर्स्ट।" आशीष मौज में आ गया था।

"देखिए जनाब, अगर आप वाकई मजनूँ हो रहे हैं, तो मुंसिफ साहब को नाक-कान काट कर शहर निकाला भी दिया जा सकता है। लेकिन, काम मुश्किल है। मावदौलत की फौजी ताकत काफी हद तक खत्म हो जाएगी। हाँ, लखनऊ की परी को जरूर शीशे में उतारा जा सकता है। लेकिन इस मुहिम के लिए भी पैसे की काफी जरूरत पड़ेगी......अरे बाप रे!"

वाल्टर उछल कर फिर बैठ गया और गुद्दी सहलाने लगा। आशीष ने पूरे जोर से चपत मारी थी और वाल्टर की आँखों के आगे देर तक तितलियाँ उड़ती रहीं थीं।

"जहाँ पनाह का मिजाज आली दुरुस्ती की तरफ मायल हुआ?" आशीष ने पूछा।

"बहुत खराब आदमी हो।" वाल्टर गुस्से में बोला, "फौरन मार-पीट पर उतर आते हो। अच्छा मजाक खत्म। मेरी बात गौर से सुनो। तुम पढ़-लिख चाहे जितना गए हो, हो बिल्कुल बच्चे ही। जिन्दगी गुजारने का आर्ट तुमने अभी नहीं सीखा है। कामयाब इंसान होने का यह रास्ता हरगिज नहीं है। औरत उसी की होती है, जो उस पर कब्जा करता है, उसे इस्तेमाल करता है। जो शख्स औरत के पाँव पर गिरता है, उसे वह ठुकराती भी है और अपने पाँव में लगने वाली चोट पर रोती भी है। तुम्हें अगर इसी तरह ठुकराया जाना और पाँव सहलाना मंजूर हो, तब तो मुझे कुछ नहीं कहना, वरना कायदे की बात यह है कि शकुन्तला तुम्हारे लायक हरगिज नहीं है। हाँ, मुंसिफ साहब ही के लिए ठीक हो सकती है। तुम चाहो, तो उससे कहीं अच्छी—हर माने में कहीं अच्छी

औरत तुम्हारी हो सकती है। लेकिन, तुम इतने अहमक हो कि जूलिया तक से इजहारे-इश्क इस भोंडे ढंग से किया कि अगर मैं होता, तो तुम्हें मार बैठता। भले आदमी! भैंस का दूध दुहा जाता है, उसके गले में माला नहीं डाली जाती। अगर तुम उसके कमरे में जाकर उसे दबोच लेते, तो उसे एतराज न होता।''

''लेकिन मैंने तो उसके सामने बड़ा भारी आफर किया था। अगर उसमें जरा सी भी अक्ल होती तो मुझे न ठुकराती। लेकिन मेरा खयाल है, उसके पाँव में चोट भी नहीं लगी।''

''कहा न मैंने कि तुम बिल्कुल बच्चे हो? अरे भाई, तुम आदमी होकर इतनी बेवकूफियाँ कर सकते हो तो वह औरत होकर एक भी न करे? यह सही बात है कि वह वैसे बड़ी समझदार लड़की है। लेकिन, यह हिमाकत वह हमेशा करती है। वह अपना जिस्म किसी को भी दे सकती है, दिल किसी को नहीं दे सकती; क्योंकि उस पर दूसरे का कब्जा है।''

''अच्छा? इसका तो मुझे अंदाजा ही नहीं था। कुछ और मुफस्सिल तौर पर बताओ।''

''जी नहीं हुजूर! आपका दिमाग वैसे भी खराब है। उसकी कहानी सुनकर आप भी बख्तियार साहब की तरह दौड़कर उसकी कदमों की खाक लेने लगेंगे।''

''कौन बख्तियार साहब? अच्छा, वह सोशलिस्ट लीडर साहब! समझ गया।''

''रकाबत जाग रही है!'' वाल्टर ठहका लगाकर बोला, ''हाँ साहब, वह शायर भी हैं।''

''जरूर होंगे। वह सब कुछ हो सकते हैं। शायद जूलिया के दिल के मालिक वहीं हैं।''

''नहीं भाई, नहीं···· ''अच्छा तो तुम जूलिया की कहानी सुनकर ही रहोगे।'' दरअसल वाल्टर के लिए कोई बात छुपाना उतना ही मुश्किल था, जितना छन्नी में चाय पीना और संक्षेप में जूलिया का जीवन-वृत्त सुना दिया। हाँ, इसके बदले उसने एक प्याली चाय और पी।

आशीष को मालूम हुआ कि वह किसी दूसरी दुनियाँ में पहुँच गया है, या यूँ कि अभी तक किसी झूठी दुनियाँ में था, सही दुनियाँ में आया है। मुस्कराकर बोला, ''जूलिया ने मुझे लो लेविल का आदमी कहा था। ठीक ही कहा था, उसे यह कहने का हक है।''

वाल्टर ने कुछ और कहने के लिए मुंह खोला ही था कि आशीष बोला, ''अब

हुजूर तशरीफ ले जाएँ। काफी देर हो गई है। रात काफी बीत गई है और घर के कुत्ते खोले जाने वाले हैं।''

रात गहरी होती चली गई, लेकिन आशीष के लिए नहीं। साधारणतः वह दस बजे सो जाया करता था। आज बारह बज गए, लेकिन उसकी आँखों में नींद न आई, यहाँ तक कि सोने का ख्याल भी न आया। अब तक धूम्रपान का आदी हो चुका था इसलिए उसने सिगरेट का एक पैकट जरूर खत्म कर डाला। तारीफ की बात यह थी कि उसके विचारों में न कोई तारतम्य था और न उसे इसकी चिन्ता ही थी। कभी उसके सामने वीणा की हँसी और एक दूसरे पर चढ़े दाँत आ जाते, कभी खन्ना जी के मुँह पर पड़ता हुआ राम सुन्दर सिंह का थप्पड़, फिर अचानक कम्पनी बाग में मिलने वाले गंदे आदमी की कुचेष्टा (जिसके याद आने पर अशीष को फिर नई सिगरेट सुलगानी पड़ती), फिर जूलिया के साथ होने वाला झगड़ा, फिर गोयल साहब से होने वाली झड़प, फिर अपने यूनीवर्सिटी के विद्यार्थी जीवन के दिन, पिताजी के आग्रह पर ठहरने वाले साधु-सन्तों के प्रवचन, जिन्हें वह बचपन में सुना करता था और समझ में कुछ न आने पर भी मन्त्र मुग्ध-सा बैठा रहता, जूलिया और वॉल्टर के साथ गजदर में बितायी हुई शाम, वीणा का पकाया कोरमा (जिसकी याद आते ही आशीष जी भर कर हँसता; क्योंकि खाते वक्त तो उस पर हँसने का मौका ही नहीं मिला था), फिर पाण्डे जी की चालाकियाँ, शकुन्तला से कम्पनी बाग में होने वाली बातचीत, अखाड़े के उस्ताद खलीफा जी का बड़ी-बड़ी मूँछों से सुशोभित चेहरा और बाहर निकली हुई तोंद के बावजूद उनकी वज्र कठोर माँस-पेशियाँ, मुँशी हरदयाल की नसीहतें और फिर बख्तियार......।

बख्तियार पर आकर गाड़ी रुक गई। दरअसल बख्तियार से अच्छा साथी उसे और कोई मिल ही नहीं सकता था। उसके पेशेवर साथियों में कलात्मक रुचि का नितांत अभाव था और वे रात-दिन सिवा पैसे के और कुछ न सोच पाते। यूँ अपनी धाक जमाने के लिए राजनीति, कला, साहित्य—सभा पर राय-जनी करते, लेकिन साफ मालूम होता कि सिर्फ बोलने के लिए ही बोल रहे हैं, विषय में उनकी दिलचस्पी नहीं है। रंगमंच और संगीत गोष्ठियों के साथी अपेक्षाकृत अधिक ईमानदार थे, लेकिन उनमें स्वतन्त्र चेतना, विचार शक्ति और आत्मसम्मान की एक दम कमी मालूम होती थी। आशीष को इन सभी साथियों का साथ करने में उनके अवगुणों की उपेक्षा करनी पड़ती। बख्तियार के साथ—अगर उसका साथ किया जाता—इस तरह के भावना-दमन की कोई आवश्य-कता नहीं थी। उसमें आत्मसम्मान, अध्ययन, विचार-शक्ति, भावनात्मक परि-

ष्कार, आकर्षक व्यक्तित्व, शिष्ट और सुसंस्कृत व्यवहार सभी कुछ था, सभी कुछ आशीष की टक्कर का था।

लेकिन, आशीष के सामने इस समय यह तथ्य नहीं था। वॉल्टर ने जो कुछ कहा था, इसके बावजूद उसके हृदय से यह विचार नहीं हटता था कि बख्तियार ही ने जूलिया को उस से दूर किया है। यह ठीक है कि जूलिया के साथ विवाह के लिए तैयार हो जाना आशीष अपनी क्षणिक कमजोरी मानता था और उसे इस बात पर खुशी ही थी कि जूलिया ने उसका प्रस्ताव रद कर के उसे बड़ी भारी मुसीबत से बचा लिया; क्योंकि यह सच्ची बात थी कि जूलिया फुर्सत का समय काटने के लिए अच्छी साथी हो सकती थी, लेकिन अपनी छिछली रुचियों के कारण अच्छी जीवन-संगिनी हरगिज नहीं हो सकती थी।

यह तो सब ठीक है, लेकिन यह ठीक बात भी कितने गलत तरीके से हुई थी। सवाल यह है कि जूलिया ने जो कुछ किया, वह बख्तियार के प्रभाव में आकर क्यों किया। यह विचार कितना प्रमाणहीन बल्कि आधारहीन था, इस पर आशीष के वकालती दिमाग ने बिल्कुल गौर नहीं किया था—शायद उसकी तर्क-बुद्धि उस समय सोयी पड़ी थी और उसने इस बेतुकी बात को स्वयं सिद्ध मान लिया था। उसका दिमाग खौलने लगा था। बख्तियार का लम्बा सफेद खद्दर का कुरता, उनका गोरा रंग, उसकी बड़ी-बड़ी आँखें, उसका हर बात मुस्कुरा कर करना, उसकी गंभीर और शालीन चाल—उसकी हर विशेषता—आशीष के लिए तीव्र घृणा का विषय बन गई थी। बाख्तियार उसे एक ऐसे शैतान की सूरत में दिखायी दे रहा था, जिसका संसार से उठ जाना सभी के लिए कल्याण कर है, लेकिन मजबूरी थी। उसे मटियामेट किया कैसे जाए।

गला सूखने लगा, तो आशीष पानी पीने के लिए उठा, लेकिन न मालूम किस अज्ञात शक्ति ने उसे पानी के जग की मेज के बजाय आलमारी की तरफ पहुँचा दिया जिसमें बगैर सील टूटी हुई ह्विस्की की बोतल (वक्त-बेवक्त की जरूरत के लिए) एक महीने से रखी हुई थी। तभी उसकी तर्क-बुद्धि झटके के साथ लौट आई। 'यह क्या बेवकूफी है ? कल दो मुकदमों में बहस करनी है, वह क्या खुमार उतरने की हालत मे की जा सकती है ? आशीष ! वाल्टर ठीक कहता था, तुम बच्चे हो। भाड़ में जाए जूलिया और जहन्नम में पड़े बख्तियार। तुम बेकार बातों में अपनी जिन्दगी क्यों खराब कर रहे हो ?' आशीष ने पेटभर पानी पिया, दुलाई ओढ़कर एक सिगरेट सुलगायी और मुकदमों की दलीलें सोचने लगा। पन्द्रह मिनट में उसकी आँख लग गई।

तीन-चार रोज तक आशीष बख्तियार, जूलिया, शकुन्तला सभी को भूले रहा। अपने पेशे के काम में उसे नया मजा मिलने लगा था। वह खूब मेहनत

करता, हँसता-हँसाता और अदालतों तथा मुवक्किलों पर अपनी विद्वत्ता की धाक जमाता। लेकिन एक दिन अचानक ही बख्तियार से उसका साक्षात्कार, बल्कि टकराव, हो गया।

हुआ यह कि रघुवीर सक्सेना को उसी रोज दो वर्ष की कड़ी कैद की सजा सुनायी गई थी। बख्तियार भी उस दिन कचहरी आया था, कम्युनिस्ट की सजा का फैसला सुनने के लोभ का संवरण वह न कर सका था। फैसला सुनाये जाने के बाद यूसुफ जफर साहब, जो बख्तियार के पिता के सहपाठी रहे थे और इस मुकदमें मे सबूत पक्ष की ओर से शामिल भी थे, बख्तियार को कुछ देर की गप-शप के लिए अपने साथ बार लाइब्रेरी में ले आए। आमलेट और चाय का आर्डर दिया गया और गपें होने लगीं तो बात तुरन्त ही मुकदमे से फिसल कर राजनीति और विशेष कर कम्युनिस्ट राजनीति पर आ गई। आशीष भी बैठा हुआ सुन रहा था। एक अन्य नौजवान वकील ने कहा, "भई हमने और तो सब साचा था, लेकिन यह नहीं सोचा था कि कम्युनिस्ट इतने कमीने हो सकते हैं।"

बख्तियार बड़ी उमंग में था। इस बात पर उसे शालीनता पूर्वक चुप रह जाना चाहिए था; क्योंकि बात उसी के मतलब की थी। लेकिन, सक्रिय राजनीति में...... वह भी फील्ड वर्क में रहकर शालीनता कायम रखना जरा मुश्किल ही होता है। वह बोल पड़ा, "आप कम्युनिस्टों को जितना करीब से देखेंगे उतनी ही उनकी कमीनगी रौशन होती जाएगी। बेचारे रघुवीर ने तो कुछ भी नहीं किया था। कम्युनिस्टों की तो नसनस में कमीनापन भरा होता है।"

"सोशलिस्टों की कमीनगी पर क्या इर्शाद होता है?" आशीष ने भी बहस में हिस्सा लिया।

"आप कम्युनिस्ट हैं?" बख्तियार ने बौखलाकर आशीष से पूछा।

"मैं कोई भी हूँ, आप पर हमला नहीं करूंगा। घबड़ाएँ नहीं।" आशीष ने हँसकर कहा।

"मि० आशीष मुखर्जी, दी फ्यूचर होप आफ द बार।" यूसुफ जफर साहब ने परिचय दिया।

लेकिन, आशीष की बख्तियार के प्रति सारी घृणा सिमटकर इसी समय निकलना चाहती थी। वह हाथ मिलाकर फिर बहस पर आ गया। पौन घण्टे तक बोलता रहा। उसने कांग्रेस समाजवादी दल के १९३४ में जन्म से लेकर अब तक की परिवर्तनशील नीतियों और भटकावों पर प्रकाश डाला, यह बताया कि सोशलिस्ट हर मौके पर प्रगतिशील कांग्रेसियों से भी अधिक प्रतिक्रियावादी रहे हैं।, यह साबित किया कि उन्होंने समाजवाद का नारा सिर्फ इसलिए लगाया है

कि जनता समाजवाद के रास्ते से भटक जाए, उसने यह बताया कि सोशलिस्टों ने कम्युनिस्टों के साथ किसी भी तरह का समझौता नहीं किया है और हमेशा दक्षिण पंथियों के तलवे चाटे हैं।

बख्तियार भवें चढ़ाए हुए सब सुनता रहा। वकील की कायदे के साथ दी गई दलीलों का काट मंच पर उत्तेजनापूर्ण भाषण करने वाला नेता क्या करता? यहाँ तो ठंडी दलीलों का सामना था, कवित्व पूर्ण उपमाएँ भी तो काम नहीं आ सकतीं थीं। झुंझलाकर बोला, "वकील से बहस करना तो मुमकिन नहीं है, लेकिन यह समझ लीजिए कि आपकी सिर्फ बातें हैं, मैं असली मैदान में हूँ और मैंने सर पर डंडे खाये हैं।"

"ओह! अफसोस है।" आशीष बोला, "खोपड़ी और डण्डे के बारे में मेरा कोई तजुर्बा नहीं है। मैंने तो यह सब यह सोचकर कहा था कि आपकी दिलचस्पी शायद पालिटिक्स में भी हो।"

आशीष के सारे नौजवान साथी, वकील हँस पड़े। यूसुफ जफर भी मुस्कुरा उठे। बख्तियार तिलमिला कर उठ आया। पार्टी आफिस पहुँच कर उसने सारा गुस्सा मातहत कार्यकर्त्ताओं पर उतारा।

● ● ●

१३

आशीष ने अपना वादा पूरा किया, तो शकुन्तला ने भी अपना वादा पूरा किया। उसने अपना मुँह बन्द रखा, सिर्फ आँखें खुली रखीं। वह देखती रही, देखकर मुस्कुराती रही। गोयल साहब जाति के बनिये सही, लेकिन बनियों की तथाकथित विशेषता—कायरता—का उनमें नामों-निशान न था। आशीष की धमकी को उन्होंने बचकाने जोश से ज्यादा कोई महत्व नहीं दिया। उन्होंने इरादा कर लिया था कि दीपावली तक के लिए वीणा को जरूर रोकेंगे और शकुन्तला और आशीष दोनों को दिखा देंगे कि उन्हें दुनिया में किसी से झगड़ा करना मंजूर नहीं है, लेकिन दबना भी मंजूर नहीं है।

मगर, यह एकतर्फा बहादुरी किसी काम न आई। वे यह भूल गए कि वे एक ऐसे मैदान में जोर आजमाई कर रहे हैं, जहाँ एक नहीं, दो व्यक्तियों के सम्मिलित साहस की अपेक्षा होती है। आशीष के पीछे गोयल साहब की डाँट खाने के चौथे-पाँचवें रोज ही वीणा ने शकुन्तला से कहा कि मैं फर्रुखाबाद जाना चाहती हूँ। शकुन्तला ने किसी प्रकार की मध्यस्थता करने से इन्कार कर दिया तो उसे गोयल साहब से खुद ही यह कहना पड़ा।

गोयल साहब भवें चढ़ाकर बोले, "क्यों ? क्या शकुन्तला ने कुछ कहा है ?"

"जी नहीं।"

"फिर ?"

इस 'फिर' का कोई जवाब न मिला। सिर्फ वीणा के आँसू बहने लगे। गोयल साहब ने सहूलियत से पूछा, दुलार से पूछा, डाँट कर पूछा, लेकिन वीणा ने जाने का कोई कारण न बताया। सिर्फ यही कहा कि मैं जाना चाहती हूँ और फूट-फूट कर रोने लगी।

मजबूरी में गोयल साहब वीणा को जाने की इजाजत तो दे दी, लेकिन गुस्से के मारे उनका बुरा हाल हो गया। उन्हें उठते-बैठते आशीष की व्यंग्य मुद्रा दिखायी देने लगी। एक बार उन्होंने सपने में भी आशीष को देखा कि हँसकर वह उनकी पीठ ठोंक रहा है और कह रहा है, "दैट्स ए गुड ब्वाय ! गोयल साहब आप बहुत समझदार आदमी हैं।" गोयल साहब सपने में तो दाँत पीसने ही लगे थे, जागने पर भी बहुत देर तक दाँत पीसते रहे।

लेकिन, दाँत पीसने से क्या होता है ? गोयल साहब को मालूम हुआ कि उनका गजेटेड पद दो कौड़ी का है। जिस आदमी ने उनके व्यक्तित्व को इतनी बड़ी चुनौती दी, बल्कि उसे कुचलकर रख दिया, उसका वे बालबाँका भी नहीं कर सकते, बल्कि इस पद की मर्य्यादा इस समय उनके लिए बन्धन ही साबित हो रही थी। आशीष उनकी अदालत में आता ही न था कि उसे किसी बहाने जली-कटी सुनाते, उसके घर जाकर उसे बुरा-भला कहना पागलपन होता, अगर वे अपने साथी सब जजों या मुंसिफ ईस्ट को आशीष के खिलाफ भड़काने की कोशिश करते, तो आशीष की शिकायत क्या करते ? आशीष का सद्व्यवहार सभी को प्रभावित किया था और गोयल साहब से उसकी मित्रता भी मशहूर हो चुकी थी, फिर क्या वे यह कहते फिरते कि आशीष मेरी बीबी या बहन पर बुरी निगाह रखता है ? गोयल साहब को अपने ओहदे से, अपनी अदालत की कुर्सी से, अपने नाम की तख्ती से घृणा होने लगी। उन्होंने नौकरी से इस्तीफा नहीं दिया, लेकिन पुरानी तख्ती हटवा कर नई जरूर लगवा दी' जिस पर सिर्फ उनका नाम

लिखा था, उसके आगे 'मुंसिफ वैस्ट, इलाहाबाद' का दुम—छल्ला निकल गया था।

लेकिन, तख्ती निकलवाने भर से तो मन की भड़ास निकल नहीं सकती थी। गोयल साहब की भड़ास घर पर ही निकल सकती थी। वही हुआ। नौकर-चाकरों पर बेवजह डाँट-फटकार होने लगी, शकुन्तला से बोल-चाल जरूरत भर की रह गई, आलोक को खिलाना बिल्कुल बन्द हो गया। लेकिन गोयल साहब का असली गुस्सा अपनी पत्नी ही पर था, उसी ने तो आशीष को भड़काकर उससे बदतमीजी करायी थी। यह ठीक है कि वीणा आशीष के कहने से अपने घर नहीं गई, लेकिन अधिकतर सम्भावना तो इस बात की थी कि शकुन्तला ने वीणा को भड़काया हो। यह देखने में सीधी-सादी स्त्री कितनी जहर की बुझी है—यही गोयल साहब सोचा करते और कुढ़ा करते। लेकिन, कहती भी क्या ? हाँ, घर की महराजिन उनकी डाँट-डपट से परेशान होकर नौकरी छोड़ बैठी और शकुन्तला को खुद ही रसोईं सँभालनी पड़ी, तो उन्हें खुशी जरूर हुई। लेकिन, शकुन्तला ने उनके मन की पूरी न होने दी। वे चाहते थे कि शकुन्तला अपनी ओर से कुछ कहे-सुने, तो वे भी अपने दिल का बुखार निकालें, लेकिन वह उनसे ज्यादा चालाक निकली। वह उनकी बात-बात पर झल्लाहट की अपेक्षा तो करती ही उन्हें मनाने या सन्तुष्ट करने की कोशिश भी नहीं करती। पन्द्रह दिन ही में गोयल साहब की स्थिति असह्य हो गयी।

दिमाग खराब हो गया तो जबरदस्ती झगड़ा करने को ठानी। दाल की भरी हुई प्लेट खिड़की से बाहर फेंक दी। "यह दाल है या गोबर ?"

शकुन्तला इत्मीनान से खाती रही।

"महाराजिन जब से गई है, एक दिन भी ढंग का खाना नहीं मिला।"

"मैंनें तो उसे नहीं निकाला। उसे बुलाकर फिर बात कर लीजिए न ?" शकुन्तला बोली।

गोयल साहब ने कोई बहुत कड़ी बात कहनी चाही, लेकिन शकुन्तला की आँखों में न जाने क्या देखा कि चुप हो रहे और सूखी सब्जी के साथ ही रोटियाँ निगलने लगे।

खाना खाने के बाद शकुन्तला से बोले, "मैं तुमसे कुछ बातें करना चाहता हूँ।"

आलोक के दूध का इंतजाम करके शकुन्तला ड्राइंग रूम में आकर बैठ गई और बुनाई करने लगी। गोयल साहब सिगरेट पीते रहे। उन्होंने बात करने

को तो कह दिया, लेकिन अब उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या बात कहें और किस तरह शुरू करें।

आखिर उन्होंने कहा, "यह बात सच है या मेरा खयाल ही है कि तुम मेरी उपेक्षा करने लगी हो ?"

"यह आपका खयाल ही है।" शकुन्तला बोली, उसकी सलाइयां बदस्तूर चलती रहीं।

"फिर तुम मुझसे पहले की तरह बात क्यों नहीं करती हो ?"

पहले तो हमेशा आप ही बात शुरू करते थे। आपने बोलना छोड़ दिया, तो मैंने समझा कि आप बात नहीं करना चाहते। फिर मैं जबरदस्ती आपको क्यों परेशान करती ?"

"लेकिन बीबी की हैसियत से तुम्हें यह तो पूछना चाहिए कि मुझे क्या परेशानी है ?"

"पहले तो आप खुद ही अपनी परेशानियाँ मुझे बता दिया करते थे।"

"साफ क्यों नहीं कहती कि बंगाली का जादू चल गया है और तुम मुझसे घृणा करती हो।"

लेकिन, ये शब्द कहते हुए गोयल साहब भूल गए कि यह घर है, अदालत नहीं, जहाँ उनकी भवें टेढ़ी होते ही हर आदमी सकपका जाता। शकुन्तला पूरी तरह नजरें मिलाकर बोली, "मैं इस बात का कोई जवाब नहीं देना चाहती। घर आपका है, जब कहिए छोड़ दूँगी। लेकिन, हर वाहियात बात का जवाब नहीं दे सकती।"

शकुन्तला उठकर चली गई। गोयल साहब के दिमाग में खलबली मचती रही। वे सिगरेट पर सिगरेट पीते रहे। आखिर उन्होंने तय किया कि आशीष ही का रास्ता ठीक है, जिन्दगी को इसी तरह कम तकलीफदेह किया जा सकता है। वे उठकर चल दिए। सिविल लाइंस से वापस लौटे, तो उनके हाथ में झोला था और झोले में बोतल। दो ही पेग में वे खुर्राटे भरने लगे।

शकुन्तला को जरूर रात में बहुत देर में नींद आई। तरह-तरह की बातें उसके दिमाग में चक्कर काट रही थीं। गोयल साहब ने ठीक ही कहा था, "मेरे मन का उजाला भाग ही तुमने देखा है, काला नहीं........" ठीक है, काला भाग तो देख लिया, लेकिन उजले भाग के नाम पर क्या देखा !........क्या मैं इस आदमी के बारे में हमेशा धोखे में नहीं रही ? क्या इस आदमी की सारी शालीनता ढोंग मात्र नहीं है ? क्या मैंने अपनी तरफ से इसे कभी शिकायत का मौका दिया

है ? फिर यह मुझे किस बात की सजा देना चाहता है ?·······सीधी-सी बात यह है कि इन्होंने एक थोथा आदर्शवाद निभाना चाहा, जिसकी कभी कोई जरूरत नहीं थी·······और वह भी निभा नहीं सके, देवता बनने चले थे, जानवर बनकर रह गए; जानवर भी नहीं एक गन्दे बिलबिलाते कीड़े······ठीक है, आदमी में कमजोरियाँ होती हैं, यह वीणा पर फिसल पड़े तो कोई तूफान नहीं आ गया···· लेकिन इसके लिए इतना ढोंग रचाने की, मुझ पर कीचड़ उछालने की, आशीष को सानने की क्या जरूरत थी ?'

शकुन्तला झटके के साथ उठ बैठी और खिड़की पर खड़ी हो गई। कृष्ण पक्ष की अन्तिम तिथियाँ थीं, चन्द्रमा का कहीं नामोनिशान नहीं था। शरद ऋतु के साफ आसमान में सितारे जगमगा रहे थे, रात नशीली हो रही थी, लेकिन शकुन्तला की आँखों के आगे यह सब कुछ नहीं था। उसे दिखायी दे रही थीं आशीष की आँखें······वे आँखें जो कम्पनी बाग में बिजली की रोशनी में उसकी आँखों से मिली हुई थीं। बाँयीं बाँह पर महसूस हो रही थी उसकी मजबूत पकड़, बाँएँ गाल पर उसकी उंगलियों और गर्दन में उसके रोमों के स्पर्श की तरह सुरसुराहट साफ महसूस हो रही थी। कानों में साफ सुनाई दे रहे थे ये शब्द, "आप अपनी समस्याएँ खुद सुलझा सकतीं हैं ?"

शकुन्तला बिस्तर पर औंधी गिर पड़ी और रोने लगी·······रोते-रोते सो गई।

गोयल साहब ने झगड़ा करने की कोशिश छोड़ दी, तो शकुन्तला का हाल और भी बुरा हो गया। मुंसिफ साहब बिल्कुल गैर आदमी की तरह रहने लगे थे, वीणा चली ही गई थी और आशीष को क्या कहा जाये ? जब भी शकुन्तला उसके प्रति समर्पण करती, वह किसी-न-किसी पहलू से पुरुष शौर्य का प्रदर्शन करके इस तरह उँगलियों के बीच फिसल जाता कि शकुन्तला आँखों में आँसू भरी रह जाती। वह सोचती कि स्वार्थ-त्याग की जिन लोगों ने इतनी प्रशस्ति की है, क्या उन्हें वास्तव में यह मालूम था कि दूसरे के लिए यह चीज कितनी कष्टकर होती है ? शायद उन्हें यह गुण दूर ही से अपनी झलक दिखाकर रह गया होगा। अगर निकट का अनुभव होता, तो सारे आदर्शवादी एक स्वर से कहते कि आदमी में एक हद तक स्वार्थपरता का होना चाहे खुद उसके लिए जरूरी न हो, लेकिन औरों के लिए निश्चय ही जरूरी है। 'क्या एक आदमी खुद को बहुत ऊँचा साबित करके परोक्ष रूप से औरों को अपने से नीचा साबित नहीं करता ? आशीष ही को लो। स्पष्ट है कि वह मुझसे प्रेम करता है, लेकिन सामने आता है, तो इन्सान नहीं, देवता बन जाता है। हाड़-मांस के बने मनुष्य को तो पहली जरूरत मनुष्य की होती है, देवतापन को लेकर कोई चाटे ? आदमी चाहता है कि उसे किसी से

टक्कर लेने, झगड़ने, बुरा-भला कहने को मिले। लेकिन, जिस पर उसका ध्यान सबसे अधिक रहता हो, उसे कुछ कह भी न सके, केवल श्रद्धापूर्वक सर झुकाने के लिए मजबूर हो, तो उसकी क्या हाल हो जाएगी? आशीष ने कभी इसका भी मौका नहीं दिया कि मैं उसकी दुश्चरित्रता का ढिंढोरा पीट सकती। कम्पनी बाग में अचेतन रूप से शायद इसी लिए तो मैंने उसे उकसाने की कोशिश की थी कि मुझे अपनी सच्चरित्रता दिखाने का मौका मिले। लेकिन अपने बन्धन में मैं खुद ही कस गई। उसने मेरा मुँह भी दबाया और बाँह भी पकड़ ली, लेकिन मैं क्या कर सकी? मैं स्वयं विभोर हो गई और जब होश आया, तो देखा कि वह बहुत दूर, बहुत बड़ी ऊँचाइयों पर जा चुका था।'

शकुन्तला की आँखों के नीचे गड्ढे पड़ने लगे, चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। चौबीस घंटे में कम से कम घंटे आध घंटे रोने और रात-दिन कुढ़ने का नतीजा और क्या होना था। उसका मिजाज चिड़चिड़ा हो गया। नौकरों की अजीब मुसीबत आ गई, पहले मालिक बेवजह बिगड़े रहते थे, अब वे ठीक हुए, तो मालकिन का वही हाल हो गया। शकुन्तला ने दो-एक बार गोयल साहब से उलझने की कोशिश की, लेकिन इसमें उसे कोई सफलता न मिली, वे उसकी पूर्ण उपेक्षा कर गए। हाँ, छः महीने के बच्चे पर जरूर उसका दो-एक मर्तबा हाथ उठ गया, लेकिन इसका नतीजा भी यही हुआ कि जितना वह नहीं रोया, उतना उसे सीने से लगाकर उसकी माँ रोई।

घर का वातावरण शकुन्तला को काटने दौड़ता था। आलोक को आया और रसोई घर को नई महराजिन के सुपुर्द करके अब वह घंटों बाहर रहने लगी। कभी लाइब्रेरी में बैठी है, तो कभी सिनेमा घर में, कभी यूँ ही पार्कों में घूम रही है। लेकिन, सच्ची बात यह थी कि पैसे और समय के अपव्यय के अलावा उसके हाथ कुछ न आता। कोई उससे पूछता कि कौन-सी पुस्तक या पत्रिका पढ़ी और उसमें क्या पाया या सिनेमा की कहानी क्या थी, तो वह शायद बता भी न पाती।

फिर भी समय काटने भर से समस्या हल न हुई। उसे तो इंसानों की तलाश थी। बड़े शहर में आदमियों की क्या कमी? लेकिन शकुन्तला को दिखाई देता कि सब अपने-अपने काम में व्यस्त हैं, किसी को मामूली शिष्टाचार के अलावा उससे खुलकर बात करने की फुर्सत ही नहीं थी और शकुन्तला को इस समय सिर्फ बात करने वाला नहीं, बल्कि लड़ने वाला चाहिए था।

एक दिन बैठे-बिठाये शरारत सूझी, तो सरोजिनी नायडू हॉस्टल चली गई। इलाहाबाद आई थी, तो इसी हॉस्टल का पड़ोस मिलने की वजह से

जान सूखी जा रही थी। इस वक्त इस तरह से जा रही थी, जैसे थानेदार जुए के अड्डे पर छापा मारने जा रहा हो।

लेडी सुपरिंटेंडेंट तीन वर्ष बाद भी उसे फौरन पहचान गई। भवें चढ़ाकर बोली, "तुम ?"

"जी हाँ, मैं ही हूँ।" शकुन्तला हँसकर बोली थी, "मरी नहीं हूँ। सिर्फ कायाकल्प हो गया है। मिस की बजाय मिसेज हो गई हूँ और 'गुप्त' की बजाय 'गोयल', लेकिन नाम में क्या रखा है?"

लेडी सुपरिंटेंडेंट अचकचा गई। अपने पैंतालिस वर्ष के जीवन में उन्होंने पहली बार देखा था कि जिस लड़की की इतनी बदनामी हो गई हो, वह भी सर उठाकर इतनी शान से बात करे। लेकिन थी समझदार। डेढ़ सौ रुपए की बनारसी साड़ी और हीरे की अँगूठी पहने हुए जो महिला आई हो, उसपर रोब नहीं झाड़ा जा सकता चाहे पहले वह उनकी हमेशा डाट ही खाती रही हो। हँसकर कहने लगी, "मरे तुम्हारे दुश्मन ! मैं तो सिर्फ यह पूछ रही हूँ कि कहाँ हो, क्या कर रही हो।"

शकुन्तला ने संक्षेप में अपना हाल बताया, तो कहने लगी, "साल भर हो गया पड़ोस में रहते हुए, दर्शन देने की याद अब आई है?"

मुंसिफ की पत्नी से मित्रता के स्तर पर व्यवहार करना चाहिए यह लेडी सुपरिंटेंडेंट की व्यावहारिक बुद्धि ने फौरन समझ लिया था।

"पहली बात तो यह थी कि छः महीने पहले ही माँ बनी हूँ। दूसरी और इससे बड़ी वजह यह थी कि यहाँ आने की हिम्मत बटोरते-बटोरते साल भर लग गया।"

लेडी सुपरिंटेंडेंट परेशान हो गई। शकुन्तला से अतीत की अप्रिय घटना को भुला देने की अपेक्षा होनी चाहिए, लेकिन वह खोद-खोदकर गड़े मुर्दे उखाड़ रही है और लेडी सुपरिंटेंडेंट को बात टालनी पड़ रही है, जैसे बदनामी शकुन्तला की न होकर उनकी ही हो।

पूछने लगी, "अब तो फुर्सत होगी ? एम० ए० क्यों नहीं ज्वायन कर लेती ?"

शकुन्तला जोरों से हँस पड़ी, "सोच समझ कर बात कीजिए, मिस मेहता ! क्यों अपने लिए फिर सिरदर्द लेना चाहती हैं और अब आपके लिए न सही, प्रॉक्टर साहब और वी० सी० साहब के लिए तो हो ही जाएगा।"

मिस मेहता को गुस्सा आने लगा कि इसे अफसर की बीबी होने का इतना

घमण्ड हो गया है। रुखाई के साथ बोली, "मेरी समझ में नहीं आता कि तुम क्यों ताना दिए जाती हो। क्या समझती हो कि तुम्हारे साथ जो कुछ हुआ उससे किसी को खुशी हुई है ? लेकिन, हमारी भी तो मजबूरी है। हमारे भी तो कुछ स्टैंडर्ड.........।"

"जी हाँ, आप ठीक कहती हैं। हंसों में कौए का क्या काम ? यूनिवर्सिटी में तो सब दूध के धुले ही होते हैं।"

मिस मेहता अपनी शालीनता कायम न रख सकीं। अब एक प्रोफेसर भूतपूर्व छात्रा से नहीं, बल्कि एक औरत दूसरी औरत से बात कर रही थी। बिगड़ कर बोली, "दूध का धुला कोई नहीं होता, लेकिन यूनिवर्सिटी के टिचर्स का फर्ज हो जाता है कि अपने यहाँ से हर तरह की गन्दगी दूर करने की कोशिश करें।"

शकुन्तला अब भी हँस रही थी। हँसते-हँसते ही बोली, "आप बेकार बिगड़ रही हैं, मिस मेहता। मैं आपसे कुछ नहीं कह रही हूँ न आपसे लड़ने के लिए आई हूँ। लेकिन भगवान के लिए यूनिवर्सिटी के अधिकारियों का पक्ष न लीजिए, लुटेरों को संत साबित करने की कोशिश न कीजिए।"

"क्या मतलब है आपका ?" मिस मेहता ने यथासम्भव तीखे स्वर में पूछा।

"मतलब आप अच्छी तरह जानती हैं। आप लोगों के हाथ में सच्चरित्रता और अनुशासन दो मजबूत डंडे हैं, जिनका इस्तेमाल वक्त-बेवक्त छात्रों की खोपड़ियों पर किया जाता है। अधिकारियों के लिए इन बातों की कोई जरूरत नहीं समझी जाती, सिर्फ छात्रों के लिए समझी जाती है। कोई लड़का किसी लड़की को जीवन संगिनी बनाना चाहे, तो बदचलनी, कोई प्रौढ़ अध्यापक नवयुवती छात्रा पर जीभ लपलपाने लगे, तो छात्रों के प्रति गुट की ममता। छात्र को दो मिनट की देर हो जाए तो ऐपसेंट, टीचर बीस मिनट देर कर के आए तो छात्रों को दम साधे बैठे रहना चाहिए। मेरे ही मामले को लीजिए। मुझे निकाल दिया, अच्छा किया। लेकिन, किसी ने पाण्डेय जी से भी यह पूछने की कोशिश की कि आप क्यों इस लड़की को इधर-उधर लिए घूमते थे और जिस तिस से परिचय कर बातें करते-फिरते थे, मिस मेहता ! आप को अच्छी तरह से मालूम है कि क्या हुआ था। पाण्डेय जी ने मुझे शो पीस बनाकर खन्ना जी से दो हजार वसूल करके और शरदोत्सव करके वाह-वाही नहीं लूटी थी ? अगर आप लोगों को यूनिवर्सिटी में सच्चरित्रता ही कायम रखनी थी, तो मुझ से भी पहले पाण्डेय जी को निकालते। फसाद की जड़ तो वही थे। लेकिन, आपके यहाँ तो यूनिवर्सिटी का न्याय चलता है। पुराने जमाने में शायद यूनिवर्सिटियाँ नहीं थीं, इसी लिए इसे मत्स्य न्याय की संज्ञा दी गई थी।"

मिस मेहता ने बात बढ़ाना ठीक न समझा। शकुन्तला बेतरह बिगड़ी हुई थी। उन्हें डर था कि अगर उन्होंने बात बढ़ायी, तो वह खुद उन्हीं की जवानी के दिनों के झूठे-सच्चे किस्से कहने लगेगी जो हॉस्टल की छात्राओं में काफी मशहूर थे। इस समय वह प्रतिष्ठित परिवार की मालकिन है। कोई आत्मविश्वास-हीन छात्रा भी नहीं, जिसे डाँट-डपट कर भगा दिया जाए। हँसकर बोलीं, "शकुन्तला! तुम्हारा बचपन अभी नहीं गया। यूनिवर्सिटी ही को क्या बदनाम करती हो, यह मत्स्य न्याय कहाँ नहीं होता? अपने पति देव से पूछना अदालतों में क्या होता है। खैर, अभी तो चाय पियो, ठंडी हुई जा रही है।"

चाय मिस मेहता ने खास तौर पर शकुन्तला के लिए न बनवायी थी। उन्हें हर घण्टे पर चाय पीने की आदत थी और इस समय उन्होंने खुद चाय न पीकर अपना प्याला शकुन्तला की ओर बढ़ा दिया था।

चाय सिप करते-करते शकुन्तला बोली, "मेरी बातों का गलत मतलब न लीजिए, मिस मेहता। मैं आपकी अब भी वैसी ही इज्जत करती हूँ, जैसी हॉस्टल में रहते हुए करती थी। और इसी नाते आप से आशा करती हूँ कि आप यह महसूस करें कि मेरे साथ यूनिवर्सिटी ने कितनी ज्यादती की है, वरना मैं आज न जाने कहाँ पहुँच गई होती। अब तो चूल्हे-चक्की ही में सर खपाना रह गया है। करने को तो कुछ नहीं है, लेकिन आप महसूस तो कीजिए।"

मिस मेहता को भागने का रास्ता मिल गया। बोली, "तुम्हें यह कहने की जरूरत नहीं है, शकुन्तला। पण्डेय को मैं पन्द्रह वर्षों से अच्छी तरह जानती हूँ। उन्होंने हमेशा इसी तरह छात्राओं की जिन्दगी बरबाद करके अपना उल्लू सीधा किया है। तुम्हारे साथ तो कुछ भी नहीं हुआ, सिर्फ हल्ला हो गया। मुझ से पूछो कितनी गरीब लड़कियों को, इन महंत जी की बदौलत अबॉर्शन कराने पड़े हैं। लेकिन सब चलता ही है, हम लोग भी क्या करें, सब देखकर भी न देखने का स्वाँग करना पड़ता है और पाण्डेय जी का काम अब भी उसी धड़ल्ले के साथ चलता चला जा रहा है। हाल ही में एक स्कैंडॅल उछलते-उछलते बचा है।"

अच्छा? तो पाण्डेय जी ने अब भी अपना रवैया नहीं बदला?" शकुन्तला की त्योरी चढ़ने लगी।

"न बदला है, न बदलेगा। छोड़ो भी इन बातों को। इन बातों से उबकाई आने लगती है।" और इस प्रकार मिस मेहता ने शकुन्तला को अपनी अभिन्न सहेली बना लिया। फलतः घण्टे भर तक और बातें करने के बाद जब शकुन्तला उठी तो उसने मिस मेहता से अपने यहाँ आने का वादा ले लिया।

जब आदमी बेहद चालाकी करने लगता है, तो उसे मुँह की भी खानी पड़ती है। इस तथ्य को व्यक्त करने के लिए जन साधारण में एक कहावत मशहूर है। लेकिन उसके शब्द काफी गंदे हैं. इसलिए उसका उल्लेख करना तो ठीक नहीं है मगर यह बताना जरूरी है कि यूनिवर्सिटी के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पण्डित कृष्ण दत्त पाण्डेय जी के साथ एक ऐसी ही दुर्घटना हो गई। मिस मेहता को खुद तो शकुन्तला के यहाँ जाने की फुर्सत न मिली, लेकिन एक दिन बात चलने पर उन्होंने पाण्डेय जी को बता दिया कि आपकी पुरानी प्रिय शिष्या शकुन्तला गुप्त साल भर से यूनिवर्सिटी ही के पास रहती है और इस समय मुंसिफ वैस्ट मि० मनोहर दास गोयल की पत्नी है।

पाण्डेय जी की हिम्मत की दाद देनी पड़ती है कि तीन वर्ष पहले के काँड को उपेक्षा करके एक दिन शाम को शेरवानी के ऊपर ओवर कोट लाद कर वे गोयल साहब के बंगले की ओर चल ही दिए। उनकी मुस्कान और वाक् पटुता और हर समय तैयार रहने वाली अक्षुग्रंथियों ने बड़े-बड़े तीसमारखानों को पिघलाकर रख दिया था, यह बेचारी तो किस गिनती में है। और यह बताने की जरूरत ही नहीं है कि एक व्यवहार कुशल अध्यापक को अपने प्रत्येक भूत-पूर्व छात्र से, जो जीवन में एक सफलता प्राप्त कर चुका हो, सम्पर्क बनाए रहना अत्यावश्यक है।

उनके आने से शकुन्तला को ऐसी ही खुशी हुई जैसी मकड़ी को जाले में मक्खी के आजाने से होती है। वह तो खुद ही किसी बहाने उनसे दो-दो हाथ करना चाहती थी। भगवान भी कभी-कभी अनायास प्रसन्न हो जाते हैं और अनायास ही मनोवांछित वस्तु मिल जाती है।

खूब भारी चाय पिलायी शकुन्तला ने अपने पुराने गुरु को। और जानवर को मोटा करने के बाद उसे जिब्ह करने के लिए छुरी लेकर बैठ गई पाण्डेय जी ने मिस मेहता वाली बात दुहरायी, "तुम्हारे खिलाफ कोई ऐक्शन तो लिया नहीं गया था। तुम तो खुद ही यूनिवर्सिटी से अलग हो गई थीं। फिर एम० ए० ज्वायन कर लो?"

"हाँ, मेरे आने से यूनिवर्सिटी में चहल-पहल तो खूब बढ़ जाएगी।" शकुन्तला बोली।

उसके व्यंग्यात्मक स्वर से पाण्डेय जी चौंके। फिर उन्होंने जल्दी से बात सँभालने की कोशिश की, "इसमें भी कोई संदेह है? तुम्हारी-जैसी प्रतिभा सम्पन्न छात्राएँ कहाँ मिलती हैं। रंग-मंच की प्रतिभा……

"रंग-मंच की प्रतिभा हो चाहे न हो, उल्लू फँसाकर दो हजार का चेक

कटवाने की प्रतिभा तो मुझमें थी ही और वही असली चीज है। मेरा ख्याल है, इतनी हिम्मत वाली छात्रा आपको फिर नहीं मिली।''

पाण्डेय जी चुप हो गए। उनका एक भी अस्त्र आज काम न आ रहा था। शकुन्तला ने पूछा, ''और कुछ सुनाइए। सांस्कृतिक केन्द्र के क्या हाल-चाल हैं? फिर कोई आयोजन हुआ?''

''कहाँ? तुम चली ही गई। आशीष बाबू ने सारा ध्यान वकालत ही में·······।''

शकुन्तला तड़प कर उठ खड़ी हुई, ''आह, आप काफी नीच हैं। मैं भी बहुत नीच हूँ। हमलोग आपस में कुछ भी बात करें, उस देवता का नाम भी जबान पर लाएँगे, तो उसके तेज से जीभ जल जाएगी।''

और इसके बाद शकुन्तला की जबान खुली, तो उसने आध घण्टे तक रुकने का नाम न लिया। क्या-क्या कहाँ, पाण्डेय जी के लिए किन-किन विशेषणों का प्रयोग किया, यह न कहना ही अच्छा। पाण्डेय जी को भागते राह न मिली।

●●●

: १४ :

इतनी लड़ाई-भिड़ाई से शकुन्तला को मानसिक रूप से कुछ भी लाभ न हुआ हो, ऐसी बात नहीं है। लेकिन, वास्तविकता यह है कि उसके हृदय में संतोष-जैसी कोई चीज अब भी नहीं थी। इतना जरूर हुआ कि उसे अब किसी का डर नहीं रहा, अब वह आजाद सिंहनी की भाँति निर्द्वंद्व घूमती थी। पति उसके एक ही वाक्य में सीधे हो गए थे। घर में दूसरी महराजिन भी आई थी और उससे कोई यह भी पूछने वाला न रहा था कि वह दिन भर कहाँ घूमती रहती है और रात के ग्यारह-बारह बजे तक—बल्कि कभी-कभी एक-एक बजे तक कड़ाके की सर्दी में घर से बाहर क्या करती रहती है। यूनिवर्सिटी भी कभी-कभी जाने लगी थी, परिचितों से मिलने के लिए। लेकिन, वहाँ भी सर उठाकर चलती जैसे मध्य

युग की कोई रानी अपने राज्य में विचरण कर रही हो। प्रॉक्टर साहब उसे देखते, तो जल्दी से अभिवादन करके लम्बे-लम्बे डग भरते हुए अपनी राह चले जाते। लड़कियों के झुण्ड दूर से उसे देखा करते और लड़कियाँ एक दूसरे को उसका परिचय देतीं, लड़कों के झुण्ड उसे देखकर जड़वत् हो जाते। लेकिन, उसके निकल जाने के बाद सिगरेट के धुएँ और फक्कड़पन के ठहाकों के बीच उसका गुणगान होता। अध्यापकों के बीच विशेषतः हिन्दी विभाग के स्टॉफ रूम में उसका नाम लेकर अध्यापकगण एक दूसरे पर छींटे उड़ाया करते। शकुन्तला को इस बात की जरूरत न थी कि कोई उसे बताये कि उसके बारे में क्या बातें होती हैं। वह सबकी नजरें पहचानती थी। लेकिन न सिर्फ यह कि उसे किसी की परवाह नहीं थी, बल्कि वह चाहती थी कि कोई उसे छेड़े, तो वह उसकी खबर ले। मगर किसकी शामत आई थी जो ऐसा करता? पाण्डेय जी को बेइज्जत करके घर से निकाल देने वाली महिला से कौन भिड़ता?

फिर भी यह न समझना चाहिए कि वह अधिकतर यूनिवर्सिटी ही के चक्कर लगाती रहती थी। वहाँ उसका ज्यादा क्या काम? अधिकतर वह सांस्कृतिक केन्द्र, साहित्य निकेतन और रेडियो स्टेशन ही के चक्कर लगाती। सांस्कृतिक केन्द्र में वास्तव में उसके आने से जान पड़ गई थी और अगले चुनाव में उसका अध्यक्ष चुना जाना निश्चित था। इस समय भी पाण्डेय जी चुप-चाप बैठे रहते और सारा काम शकुन्तला के आदेशों पर होता, पाण्डेय जी उसकी हर बात से सहमत हो जाते। दोनों में एक प्रकार की मौन सन्धि-सी हो गई थी कि कोई किसी की प्रतिष्ठा के विरुद्ध कुछ नहीं कहेगा; हाँ, शकुन्तला सांस्कृतिक केन्द्र के बाहर उनसे बात-चीत करने की कोई जरूरत न समझती। उसकी देख-रेख में अगले महीने एक नाटक के प्रदर्शन की तैयारियाँ भी जोर-शोर से शुरू हो गई थीं। उसने खुद इसके लिए पैसे इकट्ठे किए थे और इतने पैसे इकट्ठे कर लिए थे जितने किसी आयोजन के लिए अब तक न हुए थे। अजीब बात सिर्फ यह थी कि अब आशीष ने, जो पहले हफ्ते दस रोज में केन्द्र का चक्कर लगा लेता था, वह भी छोड़ दिया। उसने सिर्फ कुछ ऊपरी प्रबन्ध में प्रारम्भिक सहयोग दे दिया, लेकिन नाटक में भाग लेने से बिल्कुल इन्कार कर दिया, यहाँ तक कि एक दिन के लिए भी गोयल साहब के बँगले में रोज शाम को होने वाला रिहर्सल देखने के लिए नहीं आया। शकुन्तला ने भी आशीष पर कोई दबाव नहीं डाला।

दिसम्बर ही के महीने में रेडियो के विभिन्न कार्यक्रमों में सुगम संगीत देने के लिए उसके पास दो-तीन कार्यक्रम आ गए और स्टूडियोज के माइक उसकी रस-

भरी आवाज को पीने लगे। यही नहीं, बच्चों और स्त्रियों के लिए उसके लिखे हुए दो नाटक भी स्वीकृत हो गऐ।

साहित्य के नाम पर उसकी लिखी हुई कोई चीज प्रकाश में नहीं आई थी। लेकिन, साहित्य संस्थाओं में प्रमुखता पाने के लिए न किसी का लेखक होना जरूरी है, न आलोचक। जो भी इस बेकार वर्ग के साथ बैठने के लिए कुछ समय निकाल सके और नवोदित लेखकों तथा नई शैली के कवियों की रचनाओं पर जबरदस्ती वाह-वाह कर सके, उसका स्वागत होता है। अगर वह कोई उच्च पदाधिकारी है, या पत्रकार है, या धनपति है, या नेता है, या स्त्री (अगर जवान हो तो कहना ही क्या है) है, तो चुप-चाप बैठे रहने पर भी उसे हाथों हाथ लिया जाता है और लेखकगण उससे अपनी प्रशस्ति की आशा न करके उसी की प्रशस्ति करने में अपने को धन्य समझते हैं। शकुन्तला तो अफसर की बीबी भी थी, जवान भी थी, खूबसूरत भी थी, गायिका भी थी, कलाकार भी थी--क्या हुआ अगर लेखिका या आलोचिका या ढंग की पाठिका नहीं थी। साहित्य निकेतन में दिसम्बर ही में चुनाव हुआ और चारों ओर से उस पर उपाध्यक्ष-पद स्वीकार करने के लिए जोर पड़ने लगा (क्योंकि अध्यक्ष-पद नगर कांग्रेस कमेटी के उप मन्त्री महोदय के लिए रिजर्व कर दिया था)। शकुन्तला ने लाख अपनी विवशता दिखायी, समय की कमी का रोना रोया, अपनी अल्पायु और नगण्य साहित्यिक ज्ञान की आड़ लेनी चाही, लेकिन उसे उपाध्यक्ष-पद स्वीकार करना ही पड़ा, क्योंकि इस दलील का उसके पास कोई जवाब नहीं था कि उपाध्यक्ष को कोई काम नहीं करना पड़ता, उसे नियमित रूप से मीटिंगों में आना भी नहीं पड़ता, वह तो बस होता है--और स्पष्ट है कि शकुन्तला अपनी ओर एक टक निहारती हुई तीस जोड़ी आँखों की उपेक्षा करके या उन्हें झुठला कर यह न कह सकी कि मेरा अस्तित्व ही नहीं है। फलतः वह उपाध्यक्ष हो गई।

बहुत-सी परम्पराएँ ऐसी होती हैं, जो बस होती हैं। उनका कोई कारण ढूँढ़ना दर्शन शास्त्र की भाँति रात को अँधेरे कमरे में एक ऐसी काली बिल्ली की, जो वहाँ है ही नहीं, खोज करने जैसा होगा। संस्थाओं में दो से लेकर चार तक उपाध्यक्षों के चुनाव की परम्परा भी कुछ ऐसी है। इस भारी संख्या का औचित्य साबित करने के लिए यह भी मानना जरूरी होगा कि बैठकों की अध्यक्षता ऐसा खतरनाक काम है, जिसमें जान की जोखिम बहुत बढ़ जाती है; इसी लिए परमवीर अध्यक्ष के वीरगति प्राप्त करते ही उसकी जगह छत्र धारण करने वाले शूरवीरों की एक रिजर्व फौज बना दी जाती है, जो एक के बाद एक करके मैदान में उतरते जाएँ। अगर आँकड़े इकट्ठे किए जाएँ, तो शायद अध्यक्षों की जोखिम का तथ्य प्रमाणित न हो सके, लेकिन हमें यह प्रमा-

णित करके करना ही क्या है ? हम तो यह जानते हैं कि हर संस्था में दो से लेकर चार तक (संस्था के महत्त्व के अनुसार) उपाध्यक्ष होते हैं जो…….. जैसा पहले कहा जा चुका है—कुछ करते-धरते नहीं हैं, सिर्फ होते हैं। साहित्य निकेतन का साहस अपने को फर्स्ट क्लास घोषित करने का नहीं था, लेकिन वह अपने को थर्ड क्लास संस्था मानने के लिए भी तैयार नहीं थी। चुनांचे उसके भाग्यविधायकों ने मध्यम मार्ग अपनाया था, इसलिए उसके संविधान में तीन उपाध्यक्षों के निर्वाचन का विधान कर दिया था।

साहित्य निकेतन में अध्यक्ष और मन्त्री के अलावा केवल अपने सहधर्माओं के चुनाव ही में शकुन्तला ने दिलचस्पी ली; क्योंकि उसे यह जानने की उत्कण्ठा थी कि उसके अलावा और दो कौन ऐसे भाग्यशाली हैं जिन्हें कुछ करने-धरने की जरूरत नहीं है, जिनका अस्तित्व ही संस्था में जान बनाए रखने के लिए काफी है। यह दोनों एक दूसरे से बिलकुल प्रतिलोम जान पड़े। एक थे श्री हरिश्चन्द्र बाजपेयी, जिनका कृशकाय शरीर, मोटे चश्मे के नीचे से झांकती हुई बुझी-बुझी-सी आँखें और जबान पर पड़ा हुआ एक अदृश्य ताला उन्हें बेहद अनाकर्षक बना रहे थे। यह तो शकुन्तला को बाद में मालूम हुआ कि वे एक स्थानीय कॉलेज में लेक्चरर हैं। उनके निजी पुस्तकालय में छ-सात हजार किताबें हैं और हिन्दी संसार में उनके आलोचनात्मक लेखों का डंका बजता है। बहरहाल अभी तो वे जिस मुद्रा में बैठे थे, उससे बुद्धिमान के बजाय बुद्धू ही मालूम हो रहे थे।

दूसरे उपाध्यक्ष का व्यक्तित्व उसी अनुपात में आकर्षक था, जिसमें बाजपेयी जी का अनाकर्षक था। कद जरूर मध्यम से भी कुछ कम था, लेकिन शरीर काफी पुष्ट था। भरी हुई बाँहें जैसे खादी के रेशम कुर्ते को और पिंडालियाँ चूड़ीदार पाजामें को फाड़ कर निकलना चाहती थीं। गोरे रंग पर कतरी हुई मूँछें चमक रही थीं और बड़ी-बड़ी आँखें होठों के न फैलने पर भी जैसे मुस्कुराती रहती थीं। पश्मीने की सदरी और सवा सौ रुपये की ऊनी लोई उनकी सुरुचि, सम्पन्नता का विज्ञापन कर रही थीं। नाम था सर्वेश कुमार माथुर। स्थानीय प्रतिष्ठित अंग्रेजी दैनिक में सहायक सम्पादक थे। सबसे ज्यादा खुशी शकुन्तला को यह जानकर हुई कि वे भी उसकी भाँति न कवि थे, न कथाकार, न नाटककार और न आलोचक; उसी की भाँति उनकी उपस्थिति मात्र से (प्रभावशाली पत्रकार जो थे) संस्था अपने को धन्य मान रही थी। किन्तु, उनकी उपस्थिति थी बड़ी मुखर। तीन घण्टे की कार्रवाई में ऐसा पांच मिनट का अर्सा भी नहीं गुजरा, जिसमें उनकी आवाज न सुनायी दी हो। एक-आध

छिद्रान्वेषकों ने चुपके से (आपस ही में) यह भी कहा कि माथुर साहब अपने दिमाग से कुछ सोच कर नहीं बोलते, दूसरों की राय को उलट-पलट कर के इस तरह कह देते हैं कि उनकी बात मान ली जाए। लेकिन, यह आपत्ति बेकार थी। जब सम्मतियों की भरमार हो रही हो, तो अपने मस्तिष्क को क्यों कष्ट दिया जाए ? बरसते पानी में कुआँ खोदना कहाँ की समझदारी है ? यह आपत्ति भी बेकार थी कि उनकी राय का जब कोई प्रभावशाली व्यक्ति विरोध करता है, तो वे प्रभावशाली सम्मति को भी अपनी सम्मति की तरह पेश करके यह दिखा देते हैं कि उनकी पहले कही हुई बात का उनसे बड़ा विरोधी कोई नहीं हो सकता। ऐसी आपत्तियाँ उठानेवाले नादान लोग यह नहीं जानते कि ऐसे निरात्मवादी मौजूद न हों, तो हर बात पर जूती पैजार हुआ करे। फिर जब दूसरों ही की सम्मतियों का प्रयोग करना है, तो अड़ियलपन की क्या जरूरत है ? एक चीज पसन्द नहीं आई दूसरी खरीद ली !

माथुर साहब में 'शिवेलरी' की भी कमी न थी। यूँ तो साहित्य निकेतन में शकुन्तला को हाथों-हाथ लिया जा रहा था, लेकिन उसकी राह में बिछ-बिछ जाने वाले माथुर साहब, केवल माथुर साहब ही थे। हर बात में वे उसकी राय लिया करते (बगल ही में बैठे थे, न), और राय भी इस तरह से झुक कर गोपनीयता पूर्ण लहजे में लेते और बाद में इतने जोरों से उसकी घोषणा करते कि उपस्थित समुदाय को इसमें संदेह ही न रह गया कि सब से अधिक महत्त्वपूर्ण सम्मति श्रीमती शकुन्तला गोयल की ही होती है। चाय आई, तो माथुर साहब के आग्रह से शकुन्तला को एक के बजाय दो प्याले पीने पड़े और नाश्ते में आई हुई मीठी नमकीन पन्द्रह चीजों में हर एक को जरा-जरा तोड़ कर चखना पड़ा। सत्कार-कर्ता गृहस्वामी का भी आग्रह था, लेकिन वे माथुर साहब के सहकारी मात्र मालूम हो रहे थे। शकुन्तला को प्यास लगी, तो नौकर को आदेश देने भर से संतोष न हुआ, माथुर साहब खुद ही उठकर पानी का गिलास ले आये। उनकी बकवास से ऊबकर शकुन्तला एक बार आँखें बंद कर लीं। माथुर साहब ने कारण पूछा, तो उसने बहाना किया कि सर में कुछ दर्द हो रहा है। माथुर साहब फौरन उतरकर घर से अनासिन लाने के लिए तैयार हो गए, लेकिन शकुन्तला ने उन्हें दृढ़तापूर्वक रोक दिया। हाँ, इसके बाद वह ऊबती रही, मगर उसने आँखें बन्द न कीं, डर था कि अब की माथुर साहब उसे कोई-न-कोई सल्फा ड्रग निगलवा ही कर छोड़ेंगे। मीटिंग खत्म होने पर भी शकुन्तला का उनसे पीछा तभा छूटा, जब वह रिक्शे में बैठ गई।

शकुन्तला को, जैसा पहले बताया जा चुका है, साहित्य से कोई खास दिल-

चस्पी न थी—बावजूद इस बात के कि वह किसी समय हिन्दी में एम० ए० कर रही थी। उसकी सारी दिलचस्पी संगीत, नाटक आदि में थी। एम० ए० की कक्षाओं में जो कुछ पढ़ा था, वह पढ़ने से अधिक शास्त्रीयता की रटन्त थी और वह भी अब बहुत कुछ विस्मृति के गर्भ में चली गयी थी। प्रतिष्ठा की स्थापना थोड़ी बहुत इस माध्यम से होती है, इसलिए शकुन्तला इधर साहित्य में कुछ दिलचस्पी लेने लगी थी। लेकिन, यह सोचना गलत होगा कि इस माध्यम से प्रतिष्ठा स्थापना के मामले में भी वह बहुत गम्भीर थी। वह इसे एक आधुनिक फैशन से अधिक महत्त्व नहीं देती थी।

फिर भी साहित्य निकेतन के चुनावों के बाद घर लौटने पर वह बहुत प्रसन्न थी। उसे रह-रहकर माथुर साहब की भाव-भंगिमाएँ याद आतीं, उनपर हँसी आती और वह खुशी होती। इस हाय-हाय किचकिच से भरी दुनिया में एक आदमी तो ऐसा मिला, जिससे दिल बहलाव का सामान हो सकता था। रेगिस्तान के प्यासे पथिक को अचानक ठंडा पानी मिलने पर जैसी खुशी होती है, वैसी ही खुशी शकुन्तला को भी हो रही थी।

सुबह उठकर वह नहाने के पहले आईने के सामने खड़ी हो गई। कुछ भी तो नहीं बिगड़ा था उसका। बड़ी-बड़ी आँखों में अब भी ऐसा ही रस था, जैसा तीन वर्ष पहले था। बालों में अब भी वैसी ही लहरें पड़ी थीं, शरीर की तन्वांगीयता जरूर कुछ कम हो गई थी, लेकिन क्या फर्क पड़ता है इससे? उसे किसी सौंदर्य प्रतियोगिता में थोड़े ही शामिल होना था, केवल छात्र-जीवन में बार-बार खेला हुआ खेल खेलना था। अब शकुन्तला को मालूम हुआ कि यह खेल ही उसके जीवन का सबसे बड़ा सहारा था और अभी तक उसे परेशानी यही थी कि उसके कामशर तरकश में पड़े-पड़े जंग खा रहे थे। उसने आइने में फिर एक बार अपनी आँखें देखीं और हँस पड़ी।

शाम को उसे माथुर साहब के स्वागत की तैयारी करनी थी। उसने शिष्टतावश उनसे कहा था कि कभी दर्शन दीजिए, तो उन्होंने दूसरे ही दिन का प्रोग्राम बना डाला। उँगली पकड़ते ही पहुँचा पकड़ने वाले इन सज्जन को शकुन्तला ने एक बार गौर से देखा, फिर खुशी से काफी खिल कर कहा कि आपके आने से मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। इस समय शकुन्तला को माथुर साहब की खीसें निपोरना याद करके फिर हँसी आ गई।

और वास्तव में चार बजते-बजते माथुर साहब की मोटर साइकिल मुंसिफ साहब के बँगले के द्वार पर आ रुकी। इस समय उनकी वेशभूषा में आमूल परिवर्तन हो गया था। स्याही मायल नीली सर्ज का सूट, लाल रंग की फ्रेंच टाई और

हाथ में श्री कैसिल्स सिगरेट का टिन। मालूम होता था कि केन्द्रीय सरकार का कोई डिप्टी सेक्रेटरी चला आ रहा है। शकुन्तला ने भी उन्हें हाथों-हाथ लिया, बँगले के नौकर-चाकरों पर भी रोब पड़ा (इस शान का 'अफसर' उन्होंने अभी तक नहीं देखा था)। संयोग से गोयल साहब भी मौजूद थे, उन्हें भी नगर के प्रमुख पत्रकार से हाथ मिलाकर 'बहुत खुशी' हुई, लेकिन वे इस खुशी को ज्यादा उठा न सके; क्योंकि उन्हें क्लब की 'बोरियत' में शामिल होना जरूरी था। उन्होंने हँस कर कहा, क्या बताएँ साहब, सरकारी नौकरी में चौबीस घंटों की दलेल होती है, कभी काम के बहाने, कभी तफरीह के बहाने। क्लब में आज चीफ जस्टिस आने वाले हैं, नहीं जाऊँगा तो नक्कू बनूँगा। उम्मीद है, आप मेरी बद-तहजीबी माफ करेंगे।"

दरअसल क्लब में कोई आने-जाने वाला नहीं था, गोयल साहब सिर्फ शकुन्तला की उपस्थिति में घर में कम-से-कम रहना चाहते थे। लेकिन, माथुर साहब को यह सब मालूम होता, तो भी वे क्यों उन्हें रोकते ? उन्होंने हँसकर 'बदतहजीबी' को माफ कर दिया।

चाय पीते समय उन्होंने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया कि शकुन्तला-जैसी साहित्यिक प्रतिभा सम्पन्न महिला अभी तक इलाहाबाद जैसे साहित्यिक केन्द्र के साहित्यिक जीवन से अलग-अलग कैसे पड़ी रही। शकुन्तला ने शिष्टतावश (या कुटिलतावश) यह नहीं पूछा कि जब मुझे खुद ही अपनी प्रतिभा का पता नहीं है तो आपको कैसे इसका पता चल गया ? वह केवल आँखों में रस भरकर और गर्दन न्योढ़ा कर शरमायी-सी हँसी हँसी और बोली, "आप तो मुझे लज्जित कर रहे हैं। मैं तो किसी योग्य नहीं हूँ। हाँ, आप लोगों के सान्निध्य से कुछ कर लूँ, तो कर लूँ।"

माथुर साहब ने उसे विश्वास दिलाया कि उसके लिए हिन्दी की प्रथम पंक्ति की लेखिकाओं में स्थान पाना बिल्कुल मुश्किल नहीं है। उन्होंने जोर देकर कहा कि आपने कुछ तो लिखा होगा (यह मानने को वे तैयार ही नहीं हुए कि उसने अभी तक कुछ नहीं लिखा है)। शकुन्तला के लिए बड़ी मुसीबत हो गई। क्रीम, पाउडर, रूज और लिपस्टिक की तैयारी उसने पूरे तौर पर की थी, लेकिन यह उसे ध्यान ही नहीं था कि साहित्य रसिक के लिए असली फंदा कागज पर लिखी हुई पंक्तियाँ होती हैं।

फिर भी, जैसा एक बार पहले कहा जा चुका है, शकुन्तला में त्वरित बुद्धि की कमी न थी। उसे अचानक तीन वर्ष पहले की एक बात याद आ गई। हास्टेल में उसकी एक सहछात्रा थी, जिसे कविता करने का शौक था। बेचारी

बहुत झेंपू किस्म की लड़की थी, अपनी रचनाएँ अपनी सहपाठिनों के अलावा किसी और को सुनाने की हिम्मत नहीं करती थी। उसने अपनी कुछ कविताएँ शकुन्तला को दी थीं कि वह रेडियो में उनके ब्रॉडकास्ट की जुगत बिठा दे। फिर अचानक शकुन्तला को यूनिवर्सिटी छोड़नी पड़ी और वे कविताएँ उस सीधी-सादी सहपाठिन की यादगार के तौर पर अब भी उसके पास पड़ी थीं।

शकुन्तला ने हँसते हुए कहा, "माथुर साहब! आप तो बड़ी ज्यादती करते हैं। मैंने वाकई कुछ कहने लायक नहीं लिखा। बरसों पहले स्कूली जीवन की लिखी हुई कुछ कविताएँ पड़ी हैं। बोर होना चाहें तो उन्हीं को सुना दूँ।"

माथुर साहब खुशी से बोर होने को तैयार हो गये।

कविताएँ सुनकर वे जैसे रस-विभोर हो उठे। उनकी आँखें बन्द हो गईं। मालूम नहीं, यह कविता के शब्दों का प्रभाव था, या शकुन्तला की सुरीली आवाज का था, या कविता पाठ के दरमियान उसकी बार-बार उठ जानेवाली कमल दल जैसी आँखों का। कुछ भी हो, ठोस नतीजा यह निकला की उन्होंने अपने यहाँ के हिन्दी पत्र में प्रकाशित करने के लिए इन कविताओं की माँग पेश कर दी। लेकिन शकुन्तला इतने बड़े छल के लिए तैयार नहीं हुई। उसने साफ इन्कार कर दिया कि ऐसी बचकानी कवितएँ वह अपने नाम से अब प्रकाशित नहीं कराएगी। दरअसल माथुर साहब को कविताओं में बचकानापन बिल्कुल नहीं मालूम हुआ था, लेकिन यह कहना उनकी रुचि में बट्टा लगाता। उन्होंने मंजूर किया कि हालां कि कविताएँ बहुत अच्छी हैं, लेकिन पुराने ढंग की हैं, उनमें आधुनिक भाव बोध नहीं है और शकुन्तला को आधुनिक प्रयोगवादी शैली की कविता करनी चाहिए; क्योंकि यह तो इन कविताओं से सिद्ध ही हो चुका था कि उसमें सृजनात्मक प्रतिभा है।

यहाँ पर शकुन्तला से थोड़ी सी गलती हो गई, जिसके फलस्वरूप अगले तीस मिनटों में उसे दस बार जम्हाइयाँ लेनी पड़ी। उसने यह कह दिया कि आधुनिक कविता के नाम पर पत्र-पत्रिकाओं में जो कुछ प्रकाशित होता है, वह समझ में नहीं आता। माथुर साहब ने आधुनिक भाव-बोध का मर्म समझाने के लिए एजरा पाउंड, टी० एस० इलियट, डायलन टॉमस ही नहीं ज्याँ पाल सात्र, कामू और कीर्के गार्ड-जैसे भारी-भारी गोला प्रयोग किया, तो शकुन्तला की सहज बुद्धि का महल धराशायी हो गया। उसने मान लिया कि प्रयोगवादी कविता से अधिक कठिन उसकी व्याख्या का समझना होता है। (बेचारी शकुन्तला को यह बिल्कुल नहीं मालूम था कि माथुर साहब ने भी इन लेखकों और कवियों का भी सिर्फ नाम ही सुना था, वरना वह जरा खोदकर पूछती

और रस लेती)। बहरहाल उसने घबड़ा कर कहा कि कविता से उसे पहले जरूर दिलचस्पी थी, लेकिन अब तो सिर्फ कहानियाँ उपन्यास पढ़ती हैं, वह भी घर-गृहस्थी के झंझटों में ज्यादा नहीं हो पाता।

शकुन्तला की अटकल इस बार भी गलत निकली। उसने सोचा था कि जो व्यक्ति कविता में इतनी अधिक रुचि रखता है उसे कथा-साहित्य पढ़ने की फ़ुर्सत कहाँ होगी। अपनी अनुभवहीनता में वह यह न समझ सकी कि साहित्यिक गप-शप की कला ही अलग होती है और जो इस कला में पारंगत हो जाता है, उसे कविता-कहानी कुछ भी पढ़ने की जरूरत नहीं रहती। माथुर साहब ने अब बंकिम, शरत और प्रेमचन्द की बखिया उधेड़नी शुरू की, दास्ता-एस्की और तालस्ताय की कुश्ती करवायी, विक्तर ह्यूगो, अलक्जांदर ड्यूमा और बाल जाक की टाँग पकड़कर घसीटी और साबित कर दिया कि जेम्सजॉयस, वर्जीनिया वुल्फ और डी० एच० लॉरेंस से बढ़कर संसार में न कोई कथाकार हुआ है, न होगा। इस बार वे पकड़ में आते-आते बचे। प्रेमचन्द की भर्त्सना शकुन्तला को बुरी मालूम हुई और वह पूछ बैठी कि यूलिसिस में क्या पठनीय है? उसने संयोग से यूलिसिस के कुछ पृष्ठ पढ़े थे और बाद में तबियत उलझने पर पुस्तक छोड़ दी थी। माथुर साहब ने उसका एक पृष्ठ भी नहीं पढ़ा था। अतः उन्होंने यह कह कर बात खत्म कर दी कि उत्कृष्ट साहित्य अक्सर पहली बार पढ़ने पर समझ में नहीं आता, उसे बार-बार पढ़ने की जरूरत होती है।

शकुन्तला ने भाग कर नाट्य और रंग-मंच की शरण ली; क्योंकि उसे विश्वास था कि माथुर साहब इस विषय में उसे व्याख्यान न दे सकेंगे। माथुर साहब मूर्ख न थे, जो हर बात पर व्याख्यान देते, लेकिन उन्होंने इस क्षेत्र में भी अपना महत्त्व साबित कर दिया। बताया कि अपने पत्र में कला का स्तंभ उन्हीं का लिखा होता है और पिछले पाँच वर्षों से नगर में जो भी नाटक अभिनीत हुए हैं (यद्यपि माथुर साहब की राय में सब के सब अति साधारण बल्कि निकृष्ट थे), उन सब की प्रशंसात्मक आलोचना उन्होंने की है। यह मालूम होने पर कि आगामी मास सांस्कृतिक केन्द्र जो नाटक प्रदर्शित करनेवाला है, वह शकुन्तला ही के निर्देशन में होगा और उसमें नायिका का अभिनय भी वही करेगी, माथुर साहब को हार्दिक प्रसन्नता हुई। उन्होंने अपनी ओर से अयाचित बरदान दिया कि इस नाटक की आलोचना न केवल लम्बी-चौड़ी होगी, बल्कि वे खुद अपने कैमरे से उसके भावपूर्ण दृश्यों के चित्र लेकर उन्हें प्रकाशित करेंगे। फलतः शकुन्तला को धन्यवाद देना ही पड़ा।

माथुर साहब को भी अनिच्छा पूर्वक उठना ही पड़ा, हालां कि उन्होंने

यह भी कहा अभी तो साढ़े आठ ही बजे हैं और बातचीत का असली समय शुरू हुआ है। लेकिन, शकुन्तला इस बात पर चुप रही और बार-बार कलाई घड़ी को देखने लगी तो उन्होंने विदा ली।

साढ़े चार घण्टे की लगातार बक-बक से शकुन्तला थकी ही नहीं, बल्कि ऊब भी चुकी थी। लेकिन घण्टे भर बाद जब वह सोने के लिए पलंग पर लेटी, तो उसने भविष्य की संभावनाओं पर विचार करना आरंभ कर दिया। भाग्य ने अनायास ही अन्धे के हाथ बटेर पकड़ा दी थी, माथुर साहब और उनका पत्र अब उसके हाथ में थे। अब वह उनके सहारे कृष्ण दत्त पाण्डेय को नीचा दिखा सकती है......और आशीष को भी......नहीं-नहीं, आशीष को हरगिज नहीं, हरगिज नहीं।

●●●

: १५ :

जनवरी का अन्त; रविवार; समय दिन के साढ़े चार बजे; स्थान खन्ना जी के ड्राइंग रूम के सामने का बरामदा; चाय की मेज के गिर्द तीन कुर्सियां, कुर्सियों पर बैठे हुए खन्ना जी, श्रीमती लीला खन्ना और बख्तियार; वार्ता का विषय, हर विषय।

खन्ना जी बोले, "बख्तियार साहब, कम्युनिस्ट पार्टी के नए रवैये के बारे में आपका क्या खयाल है? अब तो ये लोग बिल्कुल पागल हो गए मालूम होते हैं।"

"पागल नहीं, बदमाश हैं, एक नम्बर के। गुण्डागर्दी, आवारापन, गाली-गलौज इनके अलावा क्या आता है, इन लोगों को। मालूम नहीं यह पार्टी बैन क्यों नहीं कर दी जाती?"

"लेकिन साहब, बुरा न मानियेगा। यूँ तो कम्युनिस्टों ने जाती तौर पर हमेशा मुझे नुकसान ही पहुँचाया है, लेकिन दुश्मन की बहादुरी की कद्र की ही

जाती है। ऐसे जान हथेली पर रखने वाले नौजवान किस पार्टी में मिलेंगे ?" खन्ना जी ने कुर्सी पर आसन जमाकर कहा।

बख्तियार यूँ बहुत ठंडे दिमाग का आदमी था, लेकिन था तो आखिर सोशलिस्ट। कम्युनिस्टों की किसी भी तरह प्रशंसा की जाए, तो सोशलिस्ट आपे से बाहर हो ही जाता है। बख्तियार भी आपे से बाहर हो गया और यह न देख सका कि खन्ना जी सिर्फ समय काटने के लिए बहस करना चाहते हैं। दो ही महीने पहले आशीष कम्युनिस्टों की वकालत करके उसे बार लाइब्रेरी में सबके सामने जलील कर चुका था। उसकी कुढ़न इस समय उफन उठी। उसकी भवें तन गईं। गुर्राकर बोला, "आप भी अजीब बातें करते हैं, खन्ना जी! क्या बहादुरी देखी आपने उन लोगों में ? अँधेरी रात में चुप-चाप पीछे से आकर लाठी मार देने ही को आप बहादुरी कहते हैं ?"

"भई, वह बात नहीं, "खन्ना जी उसी मूड में बोले, "आपके साथ जो कुछ हुआ, वह तो सरासर गुण्डा-गर्दी थी। लेकिन, आप निष्पक्ष होकर देखें, तो यह भी दिखायी देगा कि कई जगह इन्होंने बहादुरी भी दिखायी है। हाल ही के कुड़वा मानिक पुर के मामले को लीजिए। सुभाष मुखर्जी ने जिस तरह निहत्थे ही पुलिस की हथियार बन्द टुकड़ी का मुकाबला करके जान दे दी, उसे आप हिमाकत कह लीजिए—हिमाकत तो खैर थी ही–लेकिन, उसकी बहादुरी तो साबित हो ही जाती है। मैं उसके बाप को जानता हूँ, पुरानी पहचान है। उसकी जबानी पूरा हाल सुना, तो मेरी आँखों में तो आँसू आ गए।"

बहस गंभीर होते देखकर बख्तियार भी सँभलकर बैठ गया। बोला, "सुभाष की बहादुरी या जाती तौर पर कुछ कम्युनिस्ट वर्कर्स की बहादुरी में कोई शक नहीं करता, खन्ना जी! लेकिन, यह सही मानों में बहादुरी नहीं है। इस तरह तो आप, आपस में लड़कर मर जाने वाले गुण्डों को भी बहादुर कह देंगे, लेकिन मैं उन्हें बहादुर कहने को तैयार नहीं हूँ। असली बात देखने की यह है कि कोई शख्स किस मकसद के लिए जान देता है।"

"सुभाष ने अपने फायदे के लिए तो जान नहीं दी!" खन्ना जी का स्वर तेज हो गया।

"मुझे सुभाष की जाँनिसारी में कोई शुबहा नहीं है, खन्ना साहब।" बख्तियार ने समझाते हुए कहा, "बात तो कम्युनिस्ट पार्टी की हो रही थी। सवाल यह है कि पार्टी किस मकसद के लिए यह खूँरेजी करवा रही है। क्या इस बात से आप इन्कार करेंगे कि कम्युनिस्ट लीडर खुद तो अण्डर ग्राउण्ड होकर हिफाजत से बैठे हैं और अपने पैरों नादान नौजवानों को अपने फायदे के लिए जान

लेने और जान देने के लिए मजबूर कर रहे हैं ? बलिया ही की बात लीजिए। सुभाष आपके दोस्त का बेटा था, उसकी मौत पर आपका नाराज होना ठीक ही है लेकिन, आपको यह भी मालूम है कि कम्युनिस्टों ने जिन गाँवों पर कुछ दिनों के लिए कब्जा कर लिया था, वहाँ उन्होंने कितने जुर्म ढाये हैं ? मालूम होता, तो आप इस तरह उनकी वकालत न करते। जमींदारों को ही नहीं, सैकड़ों गरीबों को भी जमींदारों और कांग्रेस का पिट्ठू कह कर इन लोगों को मौत के घाट उतार दिया। औरतों और बच्चों को भी बेदर्दी से मार डाला। तिलंगाना में तो इन्होंने जो कुछ किया है, वह बरतानवी फौजों ने भी सन बयालिस में नहीं किया, बल्कि फ्रांसीसी इनकलाब के सरफिरे लीडरों ने भी शायद ही इतना खून बहाया हो। जब आदमी बिल्कुल दरिंदा होकर कसूरवार और बेकसूर का फर्क किये बगैर सबको तलवार की घाट उतारता जाए, तो उसे बहादुर नहीं कहते।"

खन्ना जी का उद्देश्य पूरा हो चुका था। मौसम की ठंडक बहस की गर्मी से दूर हो चुकी थी। खन्ना जी इत्मीनान से सिगरेट की कश लगाते जा रहे थे। वे बख्तियार के चुप हो जाने पर भी कुछ न बोले, लेकिन मिसेज खन्ना ने भी अपने दृष्टिकोण से कम्युनिस्टों का विरोध भी जरूरी समझा। बोली, "मैं तो कहती हूँ कि अगर इन लोगों का यह दावा सही है कि जनता इनके साथ है, तो ये खून खराबी क्यों करते हैं ? अब कोई ब्रिटिश सरकार तो है नहीं कि जनता की कोई आवाज ही न उठने दे। अब तो कांस्टीट्यूशन पास हो गया है, ॲडल्ट फ्रैंचाइज मिल गया है, आम चुनाव भी जल्दी ही होंगे। हम भी देखें कि कम्युनिस्ट कितने पानी में हैं।"

खन्ना जी को इससे कोई दिलचस्पी न थी कि संविधान में जनता को क्या अधिकार दिए गए हैं। उन्हें तो सिर्फ बख्तियार को छेड़ना था। इसलिए बोले, "कम्युनिस्टों ने चुनाव लड़ा, तो और कुछ तो नहीं, सोशलिस्ट पार्टी को वो वे मिटा ही देंगे।"

लेकिन, इस बार खन्ना जी का लहजा छुप न सका। बख्तियार हँसकर बोला, "मालूम होता है, आप कम्युनिस्ट पार्टी की लीडरशिप के उम्मीदवार हैं। अच्छा ऐसा कीजिए, चुनाव में आप कम्युनिस्ट पार्टी की तरफ से खड़े हों, मैं सोशलिस्ट पार्टी की तरफ से। देखें, कौन जीतता है ?"

"जीतेंगे तो आप ही, यहाँ तो लंका ढानेवाले घर के भेदी बैठे हैं।" खन्ना जी ने अपनी पत्नी की ओर देखते हुए कहा।

सम्मिलित हास के बीच वातावरण बिल्कुल बदल गया।

बख्तियार बोला, "पॉलिटिक्स की बातों में बड़ा झगड़ा हो जाता है। किसी और टॉपिक पर बात होनी चाहिए। आप कुछ अपने आर्ट सर्किल्स की बातें बताएँ।"

बख्तियार को मालूम था कि खन्ना जी की कला क्षेत्रों में कितनी पहुँच है, लेकिन मजबूरी यह थी कि ले-देकर किसी तरह इसी क्षेत्र से उनका कोई सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता था। उसे उम्मीद थी कि खन्ना जी इस पर खिसियानी हँसी हँस देंगे। मगर, खन्ना जी उछल कर बोले, "अच्छी याद दिलायी। अगले शनिवार ही को सांस्कृतिक केन्द्र का नाटक होनेवाला है। शहर में उसकी बड़ी धूम है। आप देखने चलेंगे?"

बख्तियार को नाटक से कोई खास दिलचस्पी न थी, लेकिन खन्ना जी चाहते थे, तो वह जा भी सकता था। फिर भी वह बोला, "भई, चलूँ तो, लेकिन रात में सर्दी बहुत हो जाती है।"

श्रीमती खन्ना के चेहरे का रंग अब तक बदल चुका था। यूनिवर्सिटी में उन्हें मालूम हो चुका था कि नाटक का संचालन करने वाली और नायिका का अभिनय करने वाली कौन है। वे बोलीं, चले जाइए न, वर्ना खन्ना जी का दिल टूट जाएगा और जहाँ तक सर्दी का सम्बन्ध है, वहाँ इतनी आँखें सेंकने को मिलेंगी कि कई दिन तक सर्दी पास न फटकेगी।"

खन्ना जी अपनी पत्नी की वक्रोक्ति से बुरी तरह चौंक उठे। उन्हें यह न मालूम था कि लीला शकुन्तला के नाटक संचालन की कौन कहे, उसके इलाहाबाद में मौजूद होने के बारे में भी जानती है। वे इस तरह मुरझा गए जैसे रंगे हाथों चोरी करते पकड़े गए हों। बख्तियार को पृष्ठभूमि का कुछ पता न था। वह समझ ही न सका कि लीला जी इतनी कटु क्यों हो उठीं और खन्ना जी क्यों मुरझा गए। उसने बात खत्म करने के लिए कहा, "मैं जरूर चलूँगा खन्ना साहब। आपके साथ चलने में इस आर्ट का भी इलम हो जाएगा।"

फिर भी खन्ना साहब की स्वाभाविक मुद्रा वापस न लौटी। अचानक ही उन्हें याद आ गया कि स्टेशन पर उन्हें एक मित्र को देखने जाना है, जो बनारस से बम्बई जा रहा था। क्षमा याचना करके वे एकदम से उठे और पाँच मिनट में कपड़े बदल कर निकल गए।

बख्तियार ने भी विदा चाही, तो मिसेज खन्ना बोलीं, "क्यों? आपको मुँह छुपाकर भागने की क्या जरूरत पड़ गई? आप पर भी कभी मार पड़ी है क्या?"

बख्तियार को पूछना ही पड़ा कि आपका क्या मतलब है। एक शालीन

पत्नी के नाते लीला जी अपने पति की जिस बदनामी को बख्तियार से छुपा रही थीं, उसे अब न छुपा सकीं। इतना सब कुछ हो जाने के बाद भी खन्ना जी शकुन्तला के प्रति जो उत्साह दिखा रहे थे, उससे उन्हें गहरा आघात लगा था और वे अपनी शालीनता भूल चुकी थीं। उन्होंने बख्तियार को विस्तारपूर्वक सवा तीन वर्ष पहले की घटना बता दी। बख्तियार सुनकर गम्भीर हो गया। बोला, "लाहौल वलाकुव्वत! क्या हिमाकत है! आप उन्हें रोकती क्यों नहीं?"

"मैं उन्हें क्यों रोकूँ? उन्हें फिर अपनी तौहीनी करानी हो तो शौक से कराएँ; मैं क्यों बुरी बनूँ? और फिर आप समझते हैं मेरे रोकने से वह रुकेंगे? आप शायद उन्हें जानते नहीं हैं।"

"तो फिर आप भी साथ चलिए।" बख्तियार ने समस्या का समाधान करना चाहा।

"मैं? मैं तो मरे पर भी उस चुड़ैल का मुँह देखने न जाऊँ।" लीला मुँह बिचका कर बोली।

शनिवार भी आ ही गया। लीला जी अन्दर-अन्दर सुलगती रहीं, लेकिन उन्होंने ख़न्नाजी से सांस्कृतिक केन्द्र के नाटक के बारे में कोई बात नहीं की। एक-आध बार खन्नाजी नें दबी जबान से पूछा भी कि तुम भी क्यों नहीं चलतीं, तो लीला ने यह कहकर बात खत्म कर दी कि इस सर्दी के मौसम में नाट्यशाला के बजाय मैं लिहाफ के अन्दर रहना अधिक पसन्द करती हूँ। वस्तुतः खन्ना साहब इसके लिए भी तैयार थे कि अगर लीला मना करे, तो वे अपना भी नाटक देखने का प्रोग्राम रद कर दें। लेकिन लीला ने इस बात का इशारा भी नहीं किया और जब उसने इशारा नहीं किया, तो खन्ना साहब अपने अन्दर इतनी इच्छा शक्ति पैदा नहीं कर सके कि नाटक देखने न जाएं। इतने दिन बाद शकुन्तला कैसी लगती होगी यह देखने की इच्छा वे किसी तरह दबा नहीं पा रहे थे। यह बात नहीं कि वे सवा तीन वर्ष पुरानी बात भूल गए हों। लेकिन, उसे याद करने पर भी शकुन्तला पर नाराज होने की कोई वजह उन्हें दिखाई नहीं दी। नाराजी तो उन्हें दरअसल आशीष पर थी, जिसने ऐन वक्त पर आकर उनका बना-बनाया खेल बिगाड़ दिया, वर्ना चिड़िया तो फँस ही चुकी थी। आशीष को इस नाटक में शकुन्तला ने 'पास भी नहीं फटकने दिया था', यह खन्नाजी को मालूम था। शकुन्तला तो दरअसल पुराने मामले में रोष के बजाय सहानुभूति ही की पात्र अधिक थी। खन्नाजी का तो सिर्फ मुँह ही चिढ़ाया गया था, शकुन्तला बेचारी को तो यूनिवर्सिटी ही छोड़नी पड़ी।

भाग्य ही की बात है जो इसके बाद भी ऐसा खुले विचारों का और प्रभावशाली पति मिल गया, जिसके सहारे अब वह अपनी बदनामी करनेवालों के मुँह पर जूते मारने की भी स्थिति में हो गई। खन्ना जी सोचते थे कि शकुन्तला भी उनपर तो नाराज नहीं हो सकतीं। नाराज ही क्यों, वह तो····आखिर पुरानी भावनाएँ बिलकुल ही मिट तो नहीं जातीं····कुछ-न-कुछ तो····और इसीलिए खन्नाजी अपने को रोक नहीं पा रहे थे।

शनिवार के दिन खन्नाजी समय से काफी पहले ऑफिसर्स ट्रेनिंग स्कूल पहुँच गए। नाटक वहीं होनेवाला था। दस-दस रुपए वाले दो टिकट सबसे पहले उन्होंने खरीदे और सबसे आगेवाली पंक्ति के बीचवाले सोफे पर धँस गए। बख्तियार भी अपनी सबसे कीमती शेरवानी पहने था, जो उसने खन्नाजी के आग्रह पर इस विशेष अवसर के लिए धुलायी थी।

खन्नाजी लगभग एक घण्टे तक सिगरेट फूँकते रहे, तब जाकर वहाँ पर्दा उठा। संचालिका की हैसियत से नाटक का परिचय देने के लिए शकुन्तला माइक के सामने आ खड़ी हुई। काही रंग की साड़ी और हलके स्लेटी रंग के चेस्टर में वह इस समय अभिनेत्री से अधिक अध्यापिका लग रही थी। अध्यापिका ही की तरह उसने बोलने के पहले आँखें चारों ओर फिराकर ठसाठस भरे हुए हॉल को देखा। आखिरकार फर्स्टक्लास की एक कोनेवाली सीटपर उसकी नजर जम गई और उसकी आँखें चमक उठीं। आशीष वहाँ इस समय मुँह मोड़े हुए अपने को छुपाने का असफल प्रयत्न कर रहा था। शकुन्तला की नजरें फिर फर्स्टक्लास के दर्शकों के बीच घूमने लगीं। परिचित और अपरिचित अनेक अधिकारियों, अध्यापकों, वकीलों, व्यवसायियों, डॉक्टरों और उनकी पत्नियों, पुत्रियों आदि पर होती हुई उसकी नजर सामने के सोफे पर पड़ी। उसकी भवें कुछ टेढ़ी हुईं, फिर वह लगभग हँस पड़ी। खन्नाजी के होंठ भी बहुत काफी हद तक फैल गए। नाटक का परिचय तीन चार मिनट में देकर शकुन्तला हट गई। अधिक लम्बा भाषण करना उसे आता ही न था।

बख्तियार इस सारे समय शकुन्तला के शब्द सुनने के बजाय उसके चेहरे को गौर से देखता रहा। मिसेज खन्ना ने उसे शकुन्तला के बारे में बहुत कुछ बता दिया था और वह यह देखने का प्रयत्न कर रहा था कि इस 'काली-कलूटी' औरत में आखिर क्या है, जिसकी वजह से सारे इलाहाबाद के अभिजात वर्ग में हलचल पड़ी हुई है। दरअसल उसे ऐसा कुछ न दिखाई दिया और वह शकुन्तला के प्रशंसकों और निन्दकों की बुद्धि पर तरस खाकर रह गया।

लेकिन, आरम्भ के दो दृश्यों के बाद जब शकुन्तला मेहरुन्निसा की भूमिका में स्टेज पर आई (अभिनीत नाटक नूरजहाँ था), तो बख्तियार उसे देखता ही रह गया। बीस मिनट पहले की ढीलीढाली अनाकर्षक स्त्री इस समय चुस्त कपड़े पहने हुए ईरानी बालिका के रूप में खड़ी थी। मेकअप का तो कमाल था, वह था ही, बख्तियार आँखें फाड़े अभिनेत्री की आँखों का भोलापन देख रहा था। "ऐसे उड़ गया," कहकर जब मेहरुन्निसा ने शाहजादा सलीम का दूसरा कबूतर भी उड़ा दिया, तो सारे हॉल में हँसी की लहर दौड़ गई, लेकिन बख्तियार बिल्कुल न हँसा। दूसरे अंक में पिंजड़े में बन्द क्रुद्ध सिंहनी-जैसी मेहरुन्निसा और बाद में जहाँगीर जैसे कलाप्रिय विलासी के सौंदर्य बोध को पूर्णतः तृप्त करने के साथ ही विस्तृत मुगल साम्राज्य का संचालन करने वाली और मोरों की सुरभि सन्धियों का सामना करनेवाली साम्राज्ञी नूरजहाँ की भूमिका सन्तोषप्रद रूप से निभाना मजाक नहीं था लेकिन शकुन्तला जिस तरह से अपना पार्ट अदा कर रही थी, उससे मालूम होता था कि इतिहास की वह पात्री बनी ही इसलिए थी कि बीसवीं सदी में एक नाट्य मंच पर श्रीमती शकुन्तला गोयल को उसकी भूमिका निभानी थी। बख्तियार ने नूरजहाँ के बारे में बहुत कुछ पढ़ा था, लेकिन उसे मालूम हुआ कि अध्ययन के आधार पर उसनें नूरजहाँ का जो मानचित्र बनाया था, वह बिल्कुल गलत था, नूरजहाँ का असली रूप वही हो सकता था, जो इस समय स्टेज पर दिखाई दे रहा था।

अंक परिवर्तन में जो अवकाश मिलता था, उसमें खन्नाजी बख्तियार को नाटक के नाटकीय तत्व समझाते, अभिनेताओं के अभिनय, वेशभूषा, स्टेज सेटिंग, लाइटिंग आदि पर अपना मत व्यक्त करते। बख्तियार को अच्छी तरह मालूम था कि वे कितने पानी में हैं, फिर भी इनका इस क्षेत्र में उससे अधिक ही ज्ञान था और वह ध्यानपूर्वक उनकी बातें सुन रहा था। वह नाट्यकला की कुछ प्रारम्भिक बातें जान लेने को उत्सुक था।

जब नाटक खत्म हुआ, तो खन्ना जी संचालिका को बधाई देने से अपने को न रोक सके। बख्तियार को साथ लिए कार्यकर्ताओं के विरोध की उपेक्षा करते हुए वे ग्रीन रूम में घुस गए। शकुन्तला उस कक्ष की एकमात्र कुर्सी पर बैठी थी। बड़ी अजीब-सी लग रही थी—मेकअप नाटक की रानी का और पहने हुए साड़ी और चेस्टर। पास में खड़े थे माथुर साहब।

खन्ना साहब को देख कर एक बार उसकी भवों ने टेढ़ा होने का प्रयत्न किया, किन्तु उनके साथ के सज्जन को देख कर वह संयत हो गई। खन्ना साहब ने बख्तियार का परिचय कराया। शकुन्तला ने हाथ तो जोड़े, लेकिन उसे

निराशा-सी हुई। देखने में तो यह आदमी इतना सुसंस्कृत लगता है, लेकिन पेशा इसे राजनीति-जैसा ही पसंद आया। खैर!

खन्ना साहब ने कहा, "शकुन्तला जी! आज तो आपने कमाल ही कर दिया। इतने ऊँचे दरजे की ऐक्टिंग इलाहाबाद में तो किसी ने न देखी, न सुनी थी।"

"धन्यवाद, किस योग्य हूँ। सब आप लोगों ही के साथ का थोड़ा-बहुत असर है।"

"आप यहाँ डेढ़ साल से हैं, लेकिन पता ही नहीं चला। अभी महीने भर पहले मालूम हुआ.........।"

शकुन्तला के दिमाग में फिर सुरसुरी-सी उठने लगी। मुस्कुरा कर बोली, "महीने भर पहले मालूम होने पर भी दर्शन आज ही दिए हैं। नाटक न होता, तो इस समय भी क्यों आते?"

खन्ना जी समझ ही न सके कि क्या कहें। आशंका तो यह थी कि कहीं शकुन्तला रुखाई न दिखाने लगे। लेकिन, उनकी आशंका निर्मूल सिद्ध हो रही थी। उन्होंने ठीक ही आशा लगायी थी कि शकुन्तला के हृदय में अब भी उनका स्थान है। हमेशा की तरह ही-ही-ही करते हुए बोले, "कुछ इधर काम ही ऐसा लगा रहा, वर्ना सोचा तो कई बार.........।"

"अब तो काम खत्म हो गया है न? कल तो आपकी दुकान भी बन्द रहेगी। फुर्सत हो, तो शाम को मेरी कुटिया भी पवित्र कीजिए। इस समय तो थकावट के मारे दम निकल रहा है। ठीक तरह बात भी नहीं की जा रही है। कुर्सी से उठने की हिम्मत भी नहीं हो रही है।"

"एक प्याला चाय पी लीजिए" माथुर साहब ने अपनी सेवाएँ अर्पित करनी चाहीं।

"नहीं-नहीं," शकुन्तला घबड़ा कर बोली, "कहीं ले भी न आइएगा। वैसे भी चाय बहुत पी चुकी हूँ। चक्कर आ रहे हैं। हाँ पानी जरूर चाहती हूँ, किसी से कह दीजिएगा।"

माथुर साहब किसी से कहने के बजाय खुद पानी लेने चले गए।

"तो फिर कल चाय मेरे यहाँ ही पीजिए।" शकुन्तला बोली। सौजन्यता के नाते उसने बख्तियार को भी आमन्त्रित कर दिया। बख्तियार सोच ही रहा था कि प्रथम परिचय के बाद ही वह यह निमन्त्रण स्वीकार करे या नहीं, तभी

खन्ना साहब ने कहा, "बख्तियार साहब तो जरूर ही आएँगे, मैं इनका साथ बहुत मजबूरी ही में छोड़ता हूँ। क्यों बख्तियार साहब ? ही ही ही।"

यह बात शत-प्रतिशत सही नहीं थी। लेकिन खन्ना साहब इस समय सच-मुच ही बख्तियार का साथ छोड़ना नहीं चाहते थे ! लीला बिगड़ी हुई थी ही, न मालूम बख्तियार कों क्या-क्या पट्टी पढ़ाये और फिर भगवान जाने क्या हो। अभी तो खन्ना साहब को बख्तियार की तरफ से कोई शक नहीं था। लेकिन आदमी न मालूम कब क्या कर बैठे.......और आदमी भी मुसलमान।

खन्ना साहब को शकुन्तला ने विदा दी और इस बात को भूल कर कि माथुर साहब उसके लिए ठंडे पानी में गुन-गुना पानी मिलवा कर (सर्दियों की रात में एहतियात करनी ही पड़ती है) ला रहे हैं, उठ खड़ी हुई और सांस्कृतिक केन्द्र के एक उपमन्त्री को सामान वगैरह ठीक तरह लगवाने का आदेश देकर घर चली गई। बिस्तर पर जाते ही उसे गहरी नींद आ गई।

दूसरे दिन सुबह चाय पीने के बाद उसने सबसे पहले यह सोचा कि खन्ना जी के सत्कार के लिए क्या-क्या तैयारी करनी है। गोयल साहब से चार महीने पहले जैसे सम्बन्ध अब भी नहीं थे, लेकिन पिछला तनाव भी समय के जोर से कम हो गया था। शकुन्तला ने गोयल साहब से प्रार्थना की कि वे शाम को कहीं न जाएँ, बल्कि घर ही में चाय पियें, क्योंकि खन्ना जी आने वाले हैं। इस बात पर बहुत दिनों बाद पति-पत्नी का सम्मिलित हास सुनायी दिया। गोयल साहब को भी मजा आ गया; शाम के नाटक में अपना पार्ट अदा करने के लिए वे तैयार हो गये।

मिसेज लीला खन्ना शाम की चाय अकेले सिप करते हुए जलती-भुनती ही रहीं और खन्ना साहब की कार चैथम लाइंस की तरफ चल पड़ी। बख्तियार ने कल वाली शेरवानी पहनने की जरूरत न समझी, लेकिन खन्ना साहब आज फिर दूसरा बढ़िया सूट पहने थे। गोयल साहब से उन्होंने काफी झुक कर हाथ मिलाया; क्योंकि आखिरकार गोयल साहब मुंसिफ थे। किन्तु गोयल साहब ने उन्हें काफी निराश किया। खन्ना जी ने सुन रखा था कि वे अपनी पत्नी के मित्रों से अधिक बात नहीं करते। लेकिन इस समय तो वे सिगरेट फूँके और गप्पें लड़ाये ही चले जा रहे थे।

उन्होंने कहा, "खन्ना साहब ! मैंने तो सुना था कि आप को ड्रामेटिक आर्ट में बहुत ज्यादा दिलचस्पी है, लेकिन अफसोस यह देख कर हुआ कि अब लख-पति आदमी भी कंजूस होते जा रहे हैं। शकुन्तला को इस बार रुपए के लिए काफी दौड़-धूप करनी पड़ी। आप की तरफ से कानी कौड़ी नहीं आयी।"

इस बेतुकी बात का खन्ना जी सीधा-सा जवाब दे सकते थे कि शकुन्तला ने उनसे माँगा ही नहीं तो वे कैसे दे देते। लेकिन, यह सीधा जवाब उन्हें न सूझा। वे बहुत बुरी तरफ घबड़ा गये थे। शकुन्तला शरारत-भरी हँसी हँसे जा रहा थी। स्पष्ट था कि उसने अपने पति को सारी बात बता दी है। मुंसिफ साहब सोफे पर आधे लेटे हुए अधखुली आँखों से खन्ना जी की तरफ देखे जा रहे थे। खन्ना जी हकला कर बोले, "जी······जी····मुझे पता ही नहीं था।"

"अजी वाह साहब, कैसी बातें करते हैं आप! महीने भर से तो पब्लिसिटी हो रही है। अखबारों में कम से कम छः बार तो निकल चुका है।" मुंसिफ साहब ने 'फैसला' दिया।

"यह बात नहीं है," शकुन्तला चहकी, "आपको मालूम नहीं है शायद। एक बार खन्ना जी ने एक सांस्कृतिक कार्य के लिए दान दिया था, लेकिन उसका अनुभव कुछ कड़वा ही रहा।"

"तुम चुप रहो जी!" गोयल साहब जोश में आकर सोफे पर सीधे बैठ गए और बोले, "तुमसे बोलने को किसने कहा? हाँ, खन्ना जी! वह बात पुरानी थी, उसे भूल जाइए। अब आप दो हजार नहीं, पाँच हजार दीजिए। कसम खुदा की, अगर किसी ने आप पर उँगली भी उठायी, उसके हाथ-पांव तुड़वा डालूँगा।"

मुंसिफ साहब बोलते जा रहे थे, खन्ना जी का चेहरा तरह-तरह के रंग बदल रहा था, इधर शकुन्तला हँसते-हँसते लोट-पोट हुई जा रही थी। बख्तियार कुछ देर तक सिर्फ मुस्कुराता रहा, लेकिन फिर उससे भी जब्त न हुआ, वह भी खुल कर हँसने लगा।

खन्ना जी का बस चलता, तो मुंसिफ साहब और शकुन्तला दोनों को कच्चा चबा जाते, लेकिन समझदार आदमी थे। जानते थे कि अगर उल्टी-सीधी कोई बात की तो यह गजटेड अफसर एक बार तो जेल भिजवा ही देगा। अतः उन्होंने मन-ही-मन हनुमान चालीसा का पाठ आरम्भ कर दिया।

घण्टे भर की रगड़ाई के बाद गोयल साहब ने उनका पिण्ड छोड़ा। खन्ना जी वापसी में मुँह फुलाये हुए खामोशी से कार चलाते रहे, लेकिन बख्तियार का मूड दुरुस्त हो गया। आदमियों को कुत्ते की तरह खिलाने वाली इस औरत के घर आने में उसे जितनी खीझ मालूम हो रही थी, उतनी ही चाय के समय होने वाले काण्ड से उसे खुशी थी। शकुन्तला उसकी आशंका के अनुसार नीच नहीं थी।

●●●

: १६ :

"बख्तियार साहब, आज पॉलिटिक्स पर बात बिल्कुल नहीं होगी, अभी से कहे देती हूँ। आप लोग बात करते-करते गर्मी में आ जाते हैं और रंग बदरंग हो जाता है।" मिसेज खन्ना ने चायदानी से टीकोजी उतारते हुए कहा। स्पष्ट था कि वे बहुत अच्छे मूड में थीं।

बख्तियार भी काफी अच्छे मूड में था। उसे राजनीति पर बातें करने की कोई जरूरत भी नहीं थी। पिछले दो हफ्तों में उसकी कोशिशों से तहसील केन्द्रों में भी समाजवादी दल की शाखाएँ खुल गई थीं। इस अर्से में वह इतना व्यस्त रहा था कि पिछले रविवार को खन्ना साहब के यहाँ की हफ्तेवारी चाय में भी शामिल न हो सका था। उसे आशा थी कि आगामी वर्ष वह जिला समाजवादी दल का अध्यक्ष निर्वाचित हो जाएगा और दल की ओर से उसे संसद के लिए नहीं, तो विधान सभा के लिए निर्वाचन का टिकट जरूर मिल ही जाएगा। राजनीतिक कार्यकर्ता बेकार इधर-उधर राजनीति की बातें तभी करता है, जब उसे अपने क्षेत्र में सफलता नहीं मिलती और इस समय यह स्थिति बख्तियार के सामने थी नहीं।

उसने कहा, "लीला जी! आप खन्ना साहब का फेवर करें, यह बात तो ठीक है, लेकिन हर बात की एक हद होनी चाहिए। आप उनका कसूर मेरे सर न थोपिए। पॉलिटिक्स पर बात हमेशा खन्ना जी ही शुरू करते हैं। आप अपना हुक्म उधर ही सादिर फरमाएँ।"

लेकिन, खन्ना जी ने सम्मिलित हास्य में योग न दिया। पहली चोट की जगह दूसरी चोट पड़ी थी और वे अभी तक तिलमिला रहे थे। यह ठीक है कि इस बार उनकी आम लोगों में बदनामी नहीं हुई थी और लीला ने भी इस ओर न केवल संकेत किया था, बल्कि हर तरह से उन्हें प्रसन्न करने ही की कोशिश भी की थी। खन्ना जी अपनी व्यापारिक व्यवस्था में अपने नए अपमान को लगभग भूल ही चुके थे, लेकिन इस समय बख्तियार की उपस्थिति ने दो हफ्ते पहले चैथम लाइंस के लाल बँगले की दुखद स्मृतियाँ फिर उभार कर रख दी थीं। उन्होंने आज बख्तियार का स्वागत भी मुँह फुलाकर किया और अभी तक मुँह फुलाए ही सिगरेट पी रहे थे।

बख्तियार को भी उनकी भावनाओं का ख्याल था, इसीलिए वह यह तथ्य भूल कर कि मेजबान को मेहमान की तरफ बेरुखी नहीं दिखानी चाहिए, मिसेज खन्ना के मिस्टर खन्ना को प्रसन्न करने के प्रयत्न में पूरा सहयोग देने के लिए तैयार था। यूँ तो दो हफ्ते भर पहले वह अपनी स्वाभाविक गम्भीरता कायम न रख सका था और मुंसिफ साहब के यहाँ जाने के दूसरे ही दिन उसने खन्ना साहब की अनुपस्थिति में उनके घर आकर मिसेज खन्ना को पूरा हाल बता दिया था। उसे मिसेज खन्ना के साथ हमदर्दी थी। जिस समय खन्ना साहब, मुंसिफ साहब के बँगले की ओर तैयारी कर रहे थे, उस समय मिसेज खन्ना की आँखों में रोष मिश्रित विवशता का जो भाव दिखायी दिया था, वह बख्तियार को रात भर कचोटता रहा था। यद्यपि अपनी सारी आधुनिकता के बावजूद वह किसी पति की अनुपस्थिति में उसकी पत्नी से मिलने मे हमेशा हिचकता था (और इसी-लिए अभी तक सिर्फ एक बार सख्त जरूरत होने पर वह खन्ना साहब की अनुप-स्थिति में उनके घर आया था), फिर भी उसने मिसेज खन्ना के घावों पर तुरन्त ही मरहम लगाना इतना जरूरी समझा कि दूसरे ही दिन आकर अथ से इति तक सारा हाल उन्हें बता दिया। मिसेज खन्ना ने सब कुछ सुनकर कुछ कहा नहीं, कुछ खास हँसी-मुस्करायी भी नहीं; लेकिन बख्तियार की नजरों से यह न छुप सका था कि उनका बुझा-बुझा-सा चेहरा दमकने लगा था और इसके बाद वे बहुत देर तक बख्तियार से राजनीति की बातें करती रही थीं, शकुन्तला के बारे में उन्होंने एक भी शब्द नहीं कहा था।

इस समय मिसेज खन्ना बोलीं, "यह हो सकता है कि खन्ना साहब बात शुरू करते हों, लेकिन मिसरा तरह पर गजल तो आप ही कहते हैं। वही न कीजिएगा।"

इस कवित्वपूर्ण उपमा पर बख्तियार जी भर कर हँसा, लेकिन खन्ना जी फिर भी चुप ही रहे। बख्तियार ने कहा, "अच्छा मैं वादा करता हूँ कि पॉलि-टिक्स पर बात नहीं करूँगा, लेकिन किस सब्जेक्ट पर बात की जाए, यह आप ही को तय करना होगा। यहाँ तो मुल्ला की दौड़ मसजिद तक।"

यह समस्या मिसेज खन्ना के लिए भी गंभीर थी। राजनीति के अलावा किस मुद्दे पर बात की जा सकती है? ले-दे कर एक रंगमंच ही रहता है, उसकी बात होने से शकुन्तला का उल्लेख अनिवार्य था और खन्ना जी की वर्तमान मनः स्थिति में वह ठीक नहीं था। कुछ सोच कर मिसेज खन्ना ने कहा, "आप इतने दिनों से यहाँ आते हैं, कभी अपनी शायरी नहीं सुनायी।"

लेकिन आपकी उर्दू शायरी में कब से दिलचस्पी पैदा हो गई ? बख्तियार ने पूछा।

"उर्दू शायरी से किसे दिलचस्पी नहीं होती। यह दूसरी बात है कि कुछ शेर या कुछ शब्द समझ में न आयें। सो वह आप समझा ही देंगे," मिसेज खन्ना ने अपनी बात रखनी चाही। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने पति से भी कहलवा ही दिया कि बख्तियार की गजल होनी चाहिए।

बख्तियार धर्म-संकट में पड़ गया। वह पेशेवर शायर तो था नहीं। उसे इस बात की जरूरत नहीं थी कि हर जगह कविता ही के बल पर अपनी साख जमाये। इसी लिए वह ऐसे स्थानों में अपनी कविता नहीं सुनाता था, जहाँ काव्य मर्मज्ञ न हों। खन्ना जी के साथ साहित्यिक रुचि का सम्बन्ध स्थापित ही नहीं हो सकता था, लीला जी की दिलचस्पी इस तरफ थी नहीं। इस समय शायद वे समय काटने के लिए ही गजल की माँग कर बैठी थीं, और बख्तियार को अपनी कला का उपयोग इस स्तर पर सह्य ही नहीं था कि जब कुछ और करने को न रहे, तो शायरी की जाए।

लेकिन, लीला आसानी से पीछा छोड़ने वाली न थी। बख्तियार ने कहा कि मुझे इस वक्त कुछ याद नहीं है, तो वह नौकर को भेजकर बख्तियार की नोटबुक मँगाने को तैयार हो गई और बख्तियार से आलमारी की चाबी माँगने लगी। बख्तियार ने इतने झंझट की जरूरत न समझी और दो चार शेर सुनाकर मामला खत्म करने का इरादा कर लिया। एक गजल के कुछ शेर उसने सुनाए, तो लीला की रुचि के बारे में उसे अपनी राय बदल देनी पड़ी। यह ठीक है कि उसे कुछ अरबी-फारसी शब्दों का अर्थ बताना पड़ता था, लेकिन यह जाहिर हो गया कि वह प्रशंसा अच्छे शेरों ही की करती थी। यही नहीं, एक गजल के बाद उसने दूसरी गजल की फर्माइश करते हुए कहा कि इन पुरानी चीजों से काम नहीं चलेगा, कोई नई गजल होनी चाहिए।

बख्तियार बौखला कर बोला, "आपको कैसे मालूम हुआ कि यह गजल पुरानी है ?"

"आप कहना चाहते हैं कि यह गजल पुरानी नहीं है ?" वह भावों पर बल डालकर बोली।

"गजल तो पुरानी ही है। मैं तो यह पूछ रहा हूँ कि आपको यह बात कैसे मालूम हुई।"

लीला हँस पड़ी। बोली, "मैं उर्दू शायरी के बारे में कुछ नहीं जानती,

लेकिन थोड़ा-बहुत आपको जानती हूँ। गजल का टोन बता रहा है कि यह पुरानी रचना है। अब आप इस तरह नहीं सोचते।"

"सोचने की इसमें क्या बात है?" गजल तो कुछ बँधे-बँधाये रिवायती खयालातों का इजहार करती है। इसमें तो शायर इमेजिनेशन से काम लेता है.... ।" बख्तियार बोला।

लीला ने बात काटी, "देखिए, बख्तियार साहब! मैं साहित्य के नाम पर कुछ नहीं जानती, इसलिए बहस तो कर न सकूँगी। लेकिन, यह जानती हूँ कि गजलें दोनों तरह की होती हैं—परम्परागत बेजान भी और हृदय की भावनाओं को परम्परा के आवरण में पेश करने वाली भी। आपकी यह गजल भी बेजान नहीं थी, हाँ इसमें किशोरावस्था की भावनाएँ जरूर झलक रही थीं।"

बख्तियार मुँह फाड़ कर रह गया। उसने बड़े-बड़े दिग्गज आलोचकों को देखा था, जो बाल की खाल निकालनें, सैद्धान्तिक बहसें करने और हजारों को उदाहरण देने में सिद्धहस्त थे, लेकिन उसे कोई आदमी ऐसा न मिला था, जो सैद्धान्तिक नियमों और साहित्यिक परिभाषाओं का ज्ञान प्राप्त किए बगैर ही किसी कविता की आत्मा को इतनी सफलता के साथ पकड़ ले और अपनी पकड़ पर इतना विश्वास भी प्रकट कर सके। कुछ देर चुप रहने के बाद वह अचानक बोल पड़ा, "आप झूठ कहती हैं लीला जी! मैं नहीं मान सकता कि उर्दू शायरी में आपकी गहरी पैठ नहीं है। जिसे शायरी में दिलचस्पी न होगी, वह भला क्या खाकर... ।"

"मैंने यह तो नहीं कहा कि मुझे दिलचस्पी नहीं है, हाँ उसमें पैठ जरूर नहीं है।"

खन्ना साहब की जबान अब जाकर खुली। बोले, "यह रेडियो का कोई मुशायरा सुने बगैर नहीं छोड़तीं। जब भी मुशायरा हुआ, तो इन्होंने बारह बजे तक मेरी भी नींद हराम की।"

बख्तियार हँसने लगा, "देखिए मैं कहता न था? खैर, अब आपकी तारीफ करने के बजाय आपके हुक्म की तामील करता हूँ। बताइएगा, यह गजल कब कही गई थी।"

बख्तियार ने गजल सुनायी। लीला चुपचाप सुनती रही, उसने गजल की प्रशंसा में एक शब्द भी नहीं कहा। गजल खत्म होने पर चुप रही। बख्तियार को अपना सवाल दुहराना पड़ा।

बख्तियार ही की तरह कुछ देर चुप रहने के बाद लीला जैसे फट पड़ी, "यह आपने इन्हीं दो हफ्तों के अन्दर कही है····'नूरजहाँ' देखने के बाद ही की यह रचना है।"

बख्तियार के साथ खन्ना साहब भी चौंके। बख्तियार बोला, "आपने यह कैसे जाना?"

"जानना कतई मुश्किल नहीं है। घुँघराले बालों की घटनाओं का साया सांवली बिजली का इस गजल में भी वैसा ही साथ दे रहा है, जैसा स्टेज पर दे रहा था। बहुत कुशल चित्रकार हैं आप।"

लीला का स्वर कुछ ऐसा हो गया था और उसके चेहरे पर कुछ ऐसी रेखाएँ उभर आई थीं कि खन्ना साहब को अचानक फिर कोई जरूरी काम याद आ गया और वे क्षमा-याचना करके पलायन कर गए। मैदान में रह गया सिर्फ बख्तियार, लेकिन जबान उसकी भी बन्द थी।

कुछ देर बाद उसने पूछा, "क्या आप उस रोज ड्रामा देखने गई थीं?"

"क्या मतलब?" लीला जैसे तड़प उठी, "मुझे चोरी से ड्रामा देखने की क्या जरूरत थी?"

"नहीं, मैं यह नहीं कह रहा। मेरा मतलब है कि अपनी आँखों से देखे बगैर कोई·······।"

"मुझे प्रेत विद्या आती है।" लीला हँसकर बोली, "हरएक के दिल का हाल जान सकती हूँ मैं। कोई मुझसे उड़ नहीं सकता।"

यह बताने की उसने कोई जरूरत न समझी कि उसकी प्रेत विद्या की स्रोत उसकी वे सहपाठिनें थीं, जो 'नूरजहाँ' देखने गई थीं और जिनसे उसने खोद-खोदकर नाटक का छोटे से छोटा ब्योरा पूछ लिया था, यहाँ तक कि उसे यह भी मालूम हो गया था कि नाटक खत्म होने के बाद बख्तियार और खन्ना साहब ग्रीन रूम में गए थे।

कुछ देर की खामोशी के बाद वह बोली, "बख्तियार साहब! एक बात बताइए। उसमें ऐसी क्या बात है कि हरएक को मोह लेती है—नासमझ को भी और समझदार को भी?"

बख्तियार को बुरा मालूम हुआ। वह रुखाई से बोला, "मैं इस बात की जाँच करने नहीं गया था और अगर आपका यह ख्याल है कि उसने मुझे मोह लिया है, तो यह गलत खयाल है।"

"आप बुरा बेकार मान रहे हैं।" लीला बोली, "मुझे तो सिर्फ आपकी

गजल……खैर जाने दीजिए। देखिए बख्तियार साहब! मुझे आपसे कुछ लेना-देना तो है नहीं, लेकिन आपके कैरियर में कोई रुकावट न पड़े, इसी ख्याल से………। लेकिन, मुझे खुशी है कि मेरी आशंका गलत है, आप खुद समझदार हैं।"

"मुझे खुशी है कि आपको मेरा इतना ख्याल है। आपको आयंदा भी इस तरह का कोई अंदेशा करने की जरूरत नहीं है। एक बार फिर आपका शुक्रिया। अच्छा, इजाजत दीजिए।"

बख्तियार उठकर पार्टी ऑफिस चला गया। कोई खास काम न था, लेकिन इस वक्त उसका जी बहुत उखड़ा हुआ था। सिनेमा आदि से उसे कोई खास दिलचस्पी नहीं थी, वरना वह वहीं चला जाता। इस समय उसे यही सूझा कि पार्टी ऑफिस में जाकर कुछ समय बिता आए। उसने दफ्तर की फाइलों का निरीक्षण करना आरम्भ कर दिया। ऑफिस सेक्रेटरी की मुसीबत आ गई। हर फाइल अधूरी पड़ी थी। मिनट बुक में मीटिंगों की रिपोर्ट एक तो थी ही बहुत कम और जो थी भी वह बेगार जैसी थी। प्रान्तीय यूनिट से आए हुए आदेश काफी तलाश के बाद आदम-खर्च की फाइल में मिले और हिसाब-किताब के बारे में एक भी कागज नहीं मिला। बख्तियार ने पूछताछ की तो सेक्रेटरी साहब जबानी हिसाब समझाने लगे। मेम्बरशिप का रजिस्टर तो ठीक था, लेकिन रसीदों की काउण्टर फाइलों के बारे में कुछ पता न चला कि कहाँ गईं; सेक्रेटरी और ऑफिस सेक्रेटरी एक-दूसरे के पास उन्हें बता रहे थे। फलतः दल के सारे कार्यकर्ताओं को निकम्मा ठहराने के बाद बख्तियार जब आफिस के जीने से नीचे उतर कर सड़क पर आया तो उसका मूड खन्ना साहब के यहाँ से भी ज्यादा खराब हो गया था।

शाम के सात बज गए थे। ग्रैंडट्रंक रोड पर कोतवाली के सामने भीड़ के मारे रास्ता मिलना मुश्किल था। बख्तियार को सड़क पार करने में काफी समय लगा। वह जब इलाहाबाद आया था, तो उस समय इतनी बुरी हालत नहीं थी, कायदे का शहर मालूम होता था। 'इन कमबख्त रिफ्यूजियों ने आकर सबकी जिन्दगी हराम कर दी है। न रहने को मकान मिलता है, न चलने को रास्ता। अच्छा होता पाकिस्तान ही में सब मर-खप जाते।' कई रिक्शेवालों ने "बाबूजी! कहाँ चलना है?" की हाँक लगायी, लेकिन बख्तियार सबकी उपेक्षा करके आगे बढ़ गया। 'कमबख्तो! मुझे कहीं नहीं जाना है, मगर तुम्हें जहन्नम में जरूर भेजना चाहता हूँ। हरामी के बच्चे! चैन से रास्ता भी चलने नहीं देते।' आगे बढ़कर नखास कुहना पर आ गया। 'वाह! क्या खूबसूरत बस्ती है। मुसलमानों! तुम्हारे क्या कहने। बदबू देते हुए कपड़े, सूखे-साखे

जिस्म, दूकानों पर चाय के नाम पर मिलने वाला जहर, नालियों में कीचड़ और सड़क पर कूड़ा, मस्जिदों की दीवारों पर काली काई की तस्वीर कशी और वजू के लिए टूटी टोंटियों के काई से स्याह पड़े बधने और उसी रंग का मटका। इकबाल ने इन्हीं लोगों से उम्मीद लगायी थी कि दुनिया को आगे बढ़ायेंगे, पहले अपने घर में झाड़ू लगाना तो सीख लें। मालूम नहीं संघियों में १९४७ में क्यों इतनी बुजदिली आ गई थी, क्यों नहीं मुसलमानों का बिल्कुल सफाया कर दिया; कम से कम यह गन्दगी तो देखने को न मिलती।' बख्तियार और आगे बढ़ा। उसके कदम काल्विन अस्पताल की नर्सों के क्वार्टरों की तरफ अनजाने ही उठने लगे। लेकिन, फाटक की पुलिया पर उसकी चेतना झटके से लौट आई। 'लाहौल वलाकुव्वत! मुझे हो क्या गया है? क्यों इस कुतिया के पास जा रहा हूँ?........लेकिन मैं आखिर जा कहाँ रहा हूँ? कहाँ जाना चाहता हूँ?'

अब बख्तियार ने सोचना शुरू किया, तो उसे मालूम हुआ कि वह अपना जी बहलाने निकला था; क्योंकि खन्ना जो के यहाँ और पार्टी ऑफिस दोनों जगह उसका जी खट्टा हो गया था। लेकिन, जी बहलाने के लिए वह इस गन्दी-सी बस्ती में क्यों आ गया? खैर, कोई बात नहीं। उसने एक रिक्शा लिया और सिविल लाइंस की ओर चल दिया। सोचा था कि काफी हाउस में अच्छा समय बीतेगा, लेकिन वह काफी हाउस के पोर्टिको से वापस लौट आया। अन्दर होनेवाले शोरगुल से उसे वहशत होने लगी। वह लौटकर चौराहे पर आ गया और 'समाज' में घुस गया। एक केबिन में बैठकर उसने कॉफी का आर्डर दिया और गम्भीरतापूर्वक सोचने लगा कि उसे क्या हो गया है।

लेकिन उसे सोचने का मौका न मिल सका। पहला सिप लेकर उसने प्याला रखा और नजरें उठायीं, तो उसे श्रीमती शकुन्तला गोयल दिखायी दी। वह एक दम से चौंक पड़ा, उसकी समझ ही में न आया कि क्या करे। शकुन्तला ने उसे देख और पहचान लिया था, फिर भी वह आगे बढ़ जाना चाहती थी। अगर बख्तियार सर उठाकर उसे देख न लेता, तो शायद बढ़ ही जातीं, लेकिन अब वह एक क्षण के लिए तो कुछ झिझकी फिर मुस्कराती हुई केबिन में आ गई, "आज यहाँ कैसे? आप लोगों का रॉन्दिवू (अड्डा) तो काफी हाउस होता है।"

बख्तियार को उठ कर नमस्कार करना ही पड़ा।

बख्तियार की आर्डर की हुई काफी शकुन्तला पीने तो लगी, लेकिन केबिन में खामोशी छायी रही। किसी की समझ ही में न आ रहा था कि क्या बात

करे। स्वभावतः बातचीत खन्ना जी ही के उल्लेख से आरम्भ हो सकती थी। लेकिन, इस तरह का श्री गणेश करने में दोनों हिचकिचा रहे थे।

बख्तियार के चेहरे पर कुछ परेशानी झलकने लगी। ऐसी ही परेशानी उस समय उसके चेहरे पर दिखायी दी थी, जब गोयल साहब ने खन्ना जी का मजाक उड़ाना शुरू किया था। उसकी याद आते ही शकुन्तला हँस पड़ी। बख्तियार भी गंभीरता कायम न रख सका, खुल कर हँसने लगा।

"आप किस बात पर हँस रहे हैं ?" शकुन्तला ने हँसते हुए पूछा।

"मेरा ख्याल है जिस बात पर आप हँस रही हैं, उसी पर मैं भी हँस रहा हूँ।" अबकी बार दोनों इतनी जोर से हँसे कि हाल में बैठे हुए ग्राहक भी इस केबिन की ओर देखने लगे।

"माफ कीज़िएगा, लेकिन उस रोज आप लोगों ने खन्ना जी के साथ बड़ी ज्यादती की।"

"आप उनके दोस्त हैं, आपको उनका दर्द होना ही चाहिए। लेकिन, आपको बैक ग्राउण्ड का पता होता तो शायद आपकी इतनी हमदर्दी उनके साथ न होती।" शकुन्तला ने गम्भीर होते हुए कहा।

लेकिन इस बात पर जब बख्तियार आँखों से या मुँह से सवाल करने के बजाय मुस्कुरा कर रह गया, तो शकुन्तला बोली, इसका मतलब है कि आपको बैक ग्राउण्ड का पता है।"

"मुझे खन्ना जी के साथ कोई खास हमदर्दी नहीं है, गधों के साथ भला किसे हमदर्दी होगी। मैंने तो यूँही एक बात कही थी। वैसे जाती तौर पर तो मेरी उस रोज अच्छी खासी तफरीह हुई थी।"

"आपको सारा किस्सा किसने बताया ? खुद खन्ना साहब ने ?" शकुन्तला उसी बात पर अड़ी थी। उसने खोद-खोदकर पूछा तो बख्तियार को बताना ही पड़ा कि सारी बात उसे मिसेज लीला खन्ना ने बतायी थी। बात यहाँ खत्म हो जानी चाहिए थी, लेकिन न मालूम किस शक्ति के वशीभूत होकर उसने बगैर पूछे उसके बाद की—उस दिन शाम तक की घटनाएँ भी बतायीं, हालांकि वह बराबर समझ रहा था कि मिसेज खन्ना की शकुन्तला के प्रति क्या भावनाएँ हैं, यह शकुन्तला से कहने में कोई तुक की बात नहीं है।

शकुन्तला के चेहरे पर यह सब सुनकर कोई भाव न उभरा। उसने सिर्फ इतना कहा, "बख्तियार साहब ! आप आदमी माकूल हैं। लेकिन, माफ कीजि-एगा, आपकी दिलचस्पियाँ निहायत नामाकूल हैं। पहला शॉक तो मुझे इस बात

से लगा कि आप पॉलिटीशियन हैं, फिर उसपर आज आपने यह भी सुना दिया कि आप शायर हैं। मैं इन दोनों बातों से बेहद घबराती हूँ। मेरी समझ में नहीं आता कि आपसे किस आधार पर जान-पहचान बढ़ायी जाए। कोई भी तो कॉमन ग्राउण्ड नहीं है जिस पर.......।"

"कॉमन ग्राउण्ड होना क्या बहुत जरूरी है ?" बख्तियार ने मुस्कुराते हुए पूछा।

"मेरे ख्याल में तो जरूरी है। दो दोस्त मिलते हैं, तो किसी चीज के बारे में तो बात करते ही हैं। वर्ना क्या एक दूसरे की ओर देखकर बगैर बोले-चाले 'ही-ही' करते रहें ? यह तो अजीब सिचुएशन होगी।"

अब सचमुच ही दोनों 'ही-ही' करने लगे। बख्तियार ने कहा, "अच्छा, आपसे बहस नहीं करूँगा। हम दोनों में कॉमन ग्राउण्ड पैदा हो सकती है, अगर आप मुझे अपनी शागिर्दी में लेना कबूल करें।"

"मेरी आप काहे में शागिर्दी करेंगे ?" शकुन्तला ने हैरानी से पूछा।

"ड्रामेटिक आर्ट में।"

"इस आर्ट में आपको कब से दिलचस्पी पैदा हो गई ?" शकुन्तला ने मुस्कुरा कर पूछा।

"आपको स्टेज पर देखने के बाद।" बख्तियार ने बेझिझक तड़ाक से जवाब दिया।

शकुन्तला मुस्कुराती हुई काफी के प्याले की तरफ देखने लगी। बख्तियार बोला, "मैं इल्मे-गैब भी जानता हूँ। कहें तो बता दूँ कि इस वक्त कौन-सा ख्याल आपके दिल से गुजर रहा है।"

"बताइए।"

"आप सोच रही हैं कि खन्ना जी के यह साथी भी दूसरे खन्ना जी हैं।" बख्तियार ने कहा।

"आप बड़े खतरनाक आदमी हैं, बख्तियार साहब !" शकुन्तला हँसती हुई बोली, "हरएक की जबान बन्द कर देना आप खूब जानते हैं। मैं आपको क्या सिखा सकती हूँ ? आपसे कुछ सीखने के लायक हो सकूँ, यही बहुत होगा। लेकिन, आपसे मिलने में मुझे बहुत खुशी होगी। शायद आप ठीक ही कहते हैं, कॉमन ग्राउण्ड कोई बहुत जरूरी चीज नहीं है। आपकी लाइफ तो बहुत निजी होगी, यह मैं जानती हूँ, लेकिन फुर्सत मिले तो कभी-कभी मेरे गरीबखाने पर भी तशरीफ ले आया कीजिए। खन्ना जी के यहाँ तो आपका इतवार का फिक्स्ड प्रोग्राम होता है, मेरे घर किसी दिन भी आ सकते हैं......। अच्छा अब

उठा न जाए? देर तो काफी हो गई है।" कहने के साथ ही वह उठ भी पड़ी।

रिक्शे पर अपने घर की ओर जाते समय शकुन्तला सोच रही थी कि यह नया शिकार तो बहुत मजेदार मालूम होता है। अगर यह कहीं हाथ आ गया, तो देखूँ गोयल साहब क्या करते हैं। लेकिन बहुत चालाक मालूम होता है, मुश्किल ही है इसका हाथ आना। खैर, देखा जाएगा।

और जिला समाजवादी दल के भावी अध्यक्ष कॉमरेड बख्तियार रिजवी इस समय पैदल ही गोल गिरजे की तरफ से होकर स्टेशन जा रहे थे। उन्हें स्टेशन पर कुलियों के चौधरी से संगठन सम्बन्धी कोई बात करनी थी और पैदल इसलिए जा रहे थे कि फरवरी की हल्की सर्दी में चांद तारोंभरी रात का आनन्द वह रिक्शे में खराब करना नहीं चाहते थे। कुछ गुनगुना भी रहे थे····शायद चाँद-तारों के बारे में कोई नज्म कहने के मूड में हों। कुलियों के चौधरी ने उनसे बड़े आदर के साथ बातें कीं, लेकिन उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि कॉमरेड ने उसे सिगरेट भी पीने को दी हालांकि इसके बाद उनका पैकेट भी खतम हो गया था। उसे विश्वास हो गया कि कॉमरेड दिल से समाजवादी हैं।

बख्तियार साहब ने स्टेशन से घर तक भी रिक्शा करना जरूरी नहीं समझा। एक गन्दी-सी दुकान से उन्होंने सिगरेट ही नहीं खरीदी, बल्कि वहीं पान भी खाया। चाय की दुकान पर बेफिक्री से हँसते हुए नौजवानों को देखकर उनका दिल खुश हुआ और एक नाक बहाते हुए अधनंगे बच्चे को अपनी माँ को माँ की गाली देते हुए देखकर तो वे हँस ही पड़े।

आज रविवार था। सारे अखबारों के रविवासरीय परिशिष्ट निकले थे। खाना खाने के बाद बख्तियार ने सभी की कहानियां और हास्य स्तम्भ पढ़ डाले। इसके बाद बिस्तर पर लेट कर उसने बैंड स्विच ऑफ कर दी। लेकिन, अब अंधेरे में शकुन्तला की आकृति उभर कर आ गई। वह सोचने लगा क्या लीला ठीक ही कहती थी? नहीं जी····शायरी तो एक इम्प्रेशन को लेकर होती है, उस इम्प्रेशन से जिन्दगी थोड़े ही बँध जाती है···लेकिन अब यह क्या हो रहा है? यह सिविल लाइंस जाते वक्त की खीझ और आते वक्त की खुशी क्या मानी रखती है?····कुछ नहीं रक्त की कमजोरी है····लेकिन·····।'

बख्तियार को नींद फौरन आ जाती थी, चुनांचे वह जागता तो न रहा, लेकिन यह जरूर हुआ कि तीन-चार घण्टे तक वह जागने और सोने के बीच की हालत में रहा, उसके कानों में बराबर घण्टियाँ-सी बजती रहीं। ● ● ●

१७

बख्तियार जब रंगबिरंगे कपड़ों में सजा-धजा पहुँचा, तो शकुन्तला उसे देखकर हँस पड़ी। बोली, "सूरत तो बड़ी बढ़िया बना रखी है आपने। कौन कहेगा आपको देखकर कि आप मुसलमान हैं।"

"आज के दिन जब कोई मुसलमान रहने ही नहीं देता तो क्या किया जाए।" बख्तियार ने जवाब दिया।"

"अच्छा आप मेहरबानी करके गुसलखाने तो हो आइए, मुझे यह सब देखकर चक्कर आने लगता है…बल्कि थोड़ी देर के लिए खादी छोड़ सकें और यहाँ के मामूली कपड़े पहन सकें, तो इनायत होगी। मालूम नहीं आपलोग इस बदतमीजी में मजा क्यों लेने लगते हैं।"

बख्तियार कोई गांधीवादी तो था नहीं कि मिल का कपड़ा हाथ से भी न छू सके। उसे खुद भी उलझन हो रही थी। नहाकर उसने गोयल साहब का कुर्ता-पाजामा पहन लिया। दोनों का डील-डौल एक ही सा था। यह मालूम ही नहीं होता था कि किसी दूसरे के कपड़े पहनें हैं। शकुन्ता बोली, "बख्तियार साहब ! आप टाट पहनना छोड़ दीजिए। आईना देखिए, आपकी सूरत कितनी बदल गई है।"

बख्तियार खद्दर के महत्व पर लेक्चर देने को तैयार न था। बोला, "देखिए, पोलिटिक्स की बातें न कीजिए।"

"ओह सॉरी," शकुन्तला बनावटी गम्भीरता से बोली, "अच्छा आप इस त्योहार को कैसा समझते हैं ?"

"बहुत उम्दा, बहुत जरूरी। मेरा बस चले तो होली खेलना हर एक के लिए कम्पलसरी कर दूं।"

"अच्छा यह बात है ? कल आपने भी होली खेली होगी ? कहाँ खेली थी ?"

"भई मेरा घरबार तो यहाँ है नहीं…और होता भी तो होली क्यों खेलने देता ? यहाँ तो अपनी पार्टी के साथी ही अपने भाई-बंद हैं। उन्हीं के साथ दो-तीन घण्टे तक मुहल्ले में धमाचौकड़ी रही।"

"अच्छा, आपको कभी महसूस नहीं होता कि आपका अपना कोई नहीं है।"

बख्तियार की कनपटी गरमाने लगी। एक क्षण तक उसने शकुन्तला की ओर देखा फिर दृढ़ स्वर में बोला "इंसान को हर तरह रहने की आदत पड़ जाती है और एक बार आदत पड़ जाने पर वह उसी तरीके को अपने लिए नेचुरल समझने लगता है। मुझे अकेलापन ही अच्छा लगता है।"

शकुन्तला समझ गई कि उसका वार खाली गया। बोली, "आप आम इंसानों से बिल्कुल अलहदा हैं। मालूम नहीं दूसरे लोगों की तरह दो पैरों से चल कैसे लेते हैं। खैर निजी बातें छोड़िए। आप होली की तारीफ कर रहे थे, मुस्लिम संस्कारों में पले होने के बावजूद आप डटकर होली खेलते भी हैं। क्या आप मुझे समझा सकेंगे कि इस हुड़दंगे में क्या अच्छाई है?"

"आप चैलेंज कर रहीं हैं या वाकई इस मामले में मेरे खयालात जानना चाहती हैं?"

"बेकार झांय-झांय करने का मरज सिर्फ पॉलिटीशियन ही पाल सकते हैं। मैं तो सीधा-सा सवाल कर रही हूँ कि आप होली क्यों खेलते हैं और क्यों इसे जरूरी समझते हैं?"

"होली का पकवान खाये बगैर होली के मुतअल्लिक बात नहीं की जा सकती।" बख्तियार ने मुस्कुराकर कहा। शकुन्तला को भी अपनी भूल मालूम हुई, घनिष्ठता के यह मानी तो नहीं हैं कि साधारण शिष्टाचार भी भुला दिया जाए। देखते-देखते बख्तियार के सामने पकवान की सात आठ प्लेटें लग गईं।

"अब कुछ बोलिएगा भी कि खाते ही जाइएगा?" शकुन्तला ने मुस्कुरा कर कहा।

"डिस्टर्ब न कीजिए। आज इस वक्त के खाने के पैसे बचाने का इरादा है मेरा।"

नाश्ते के बाद बख्तियार ने सिगरेट सुलगायी, तो शकुन्तला ने फिर अपना सवाल दुहराया। वह यह बरदाश्त ही नहीं कर सकती थी कि उसकी छोटी-से-छोटी बात को भी यूं ही उड़ा दिया जाए।

"दरअस्ल मुझे ही आप से पूछना चाहिए कि इस त्योहार का मंशा क्या है? मैं तो सिर्फ वही कह सकता हूँ, जो मैं अपने तौर पर समझ सका हूँ। तहजीब ने इंसान की जिन्दगी बहुत मसनूई बना दी है, उसे अपने सैकड़ों जज्बात को दबाना-कुचलना पड़ता है। ऐसी हालत में यह जरूरी हो जाता है कि वह किसी बहाने कभी-कभी इस तनाव को खत्म करे। इसीलिए हर कौम में ऐसे

हँसी-खुशी के त्योहार बनाए गए हैं जब आदमी सारे तनावों को, सारी परेशानियों को खत्म कर सके।"

"लेकिन होली को मेल-मिलाप का त्योहार कहा गया है, उसके बारे में क्या खयाल है?"

"हँशी-खुशी का लाजिमी नतीजा मेल-मिलाप होता है। लेकिन, असली चीज बन्धन तोड़ना है। मेल मिलाप ही को होली का मकसद मानना इसलिए गलत हो जाता है कि हम इंडायरेक्टली यह मंजूर कर लेते हैं कि सिर्फ एक रोज मेल मिलाप होना चाहिए, बाकी दिनों में फसाद। अगर होली का मतलब महज मेल मिलाप है, तो मैं चाहूँगा कि हर रोज होली हो, लेकिन रंग खेलने के बारे में यह नहीं कहा जा सकता। कल खास धुलेंडी के रोज तो मैंने रंग को अनजॉय किया, लेकिन यह इलाहाबाद की दूसरे रोज की भी होली की रस्म मुझे खल गई।"

"बड़े ताज्जुब की बात है कि आप सिर्फ बदतहजीबी ही को होली का एसेंस मानते हैं।"

"मुझे ताज्जुब यह है कि आप इस 'बदतहजीबी' को जड़ से खोद कर क्यों फेंक देना चाहती हैं। आप यह क्यों नहीं देखतीं कि यह एक दिन का सोशल सेफ्टीवाल्व भी खत्म कर दिया जाए, तो लोग या तो पागल हो जाएँगे या फिर खून खराबी और जरायम की तादाद बहुत बढ़ जाएगी।"

बहस में इतनी गर्मी आ गई थी कि शकुन्तला यह भूल गई कि उसे बख्तियार को अपने प्रति आकृष्ट करना है और बख्तियार यह भूल गया कि उसे अपना बचाव करना है। शकुन्तला तेज स्वर में बोली, "सभ्य देशों में होली खेले बगैर भी लोग पागल क्यों नहीं हैं?"

"आप बहस को बहुत बढ़ा रही हैं," बख्तियार मुस्कुराकर बोला, "फिर बोर होने की शिकायत न कीजिएगा। मेरा तो पेशा ही बक-बक करने का है, हाँ आप जरूर ऊब जाएँगी।"

"मैं नहीं ऊबूँगी। आप पूरी तरह अपनी बात कहिए।" शकुन्तला गंभीरता पूर्वक बोली।

"पहली बात तो यह न भूलिए कि कोई तहजीब जितने कड़े बन्धन लगाती है, उसे उतना ही बड़ा समाजी सेफ्टीवाल्व खोलना पड़ता है। मगरिबी मुमालिक की तहजीब ने इंडिविजुअल फ्रीडम पर इतने बंधन नहीं लगाए हैं, लेकिन मशरिकी मुमालिक में—खास तौर पर सेक्स के मामले में—इतने कड़े बंधन

लगाए गए हैं कि फुहशबातें हर इंसान के अन्दर घुमड़ती ही रहती हैं। जब उन्हें खोला जाता है, तो वह यकायक हर तरह की अजीब-अजीब सूरतों में निकलने लगती हैं, इसीलिए कीचड़ फेंका जाता है, इसीलिए गधों की सवारी की जाती है और इसीलिए शराब में धुत होकर कपड़े फाड़ दिये जाते हैं। दूसरे रोज ये ही बदतहजीब फिर मामूली इंसान हो जाते हैं। अगर ये बदतहजीबियाँ एक दिन में न हों तो छिट पुट तरीके पर हमेशा होती रहें और इस तरह होती रहें जब कि दूसरे लोग उनके लिए तैयार न हों और नतीजा यह हो कि समाजी ढाँचा ही टूटने लगे।"

"मेरी समझ में यह बात बिल्कुल नहीं आई। क्या आपके खयाल में मैं सालभर··· ··।"

"आप जातिपात पर क्यों उतर रही हैं?" बख्तियार ने बीच ही में टोक दिया।

"मैं बात अच्छी तरह समझना चाहती हूँ। आप को जो कहना हो बेझिझक कहिए।"

"देखिए बुरा न मानिएगा। आपलोग तालीम याफ्ता ही नहीं हैं, तालीम को जज्ब भी किए हुए हैं। आपलोगों ने सारे गैर जरूरी बंधन पहले ही तोड़ रखे हैं। आप को दूसरे लोगों से अकेले मिलने, बातें और हँसी मजाक करने में बिलकुल झिझक नहीं होती। आप के दिल में कोई जज्बा घुट कर नहीं रह जाता। आप को किसी खास दिन अपने बंधनों को झटके के साथ तोड़ने की जरूरत नहीं होती; क्योंकि आपके बंधन अगर कुछ हैं भी, तो बहुत कसे हुए नहीं हैं। फिर आप लोगों के पास लिटरेचर है, ड्रामा है, डांस है, म्यूजिक है—हजार तरह अपने दबे हुए जज्बात को निकलने का रास्ता दे सकते हैं। लेकिन जरा उन गरीब औरतों की हालत का अन्दाजा लगाइए, जिनके पास लिटरेचर के नाम पर रामायन की चौपाइयाँ और पतीबरत धरम की नसीहतें हैं और समाजी तौर पर जिनका यह हाल है कि किसी मर्द की तरफ देखें तो शौहर हाथ-पाँव तोड़ दे। सोचिए कि अगर एक रोज भी उन्हें हया शर्म छोड़ कर होली खेलने के बहाने गैर मर्दों से हाथा-बाई करने को न मिले, तो उनके नर्वस टेंशन की क्या हालत हो जाएगी। चुनांचे होली में नए जमाने के लोगों के जोश में कमी और दकियानूसी किस्म के लोगों का जोशों-खरोश बिल्कुल नफसियाती जरूरत की बातें हैं। इस बात को अगर ठीक तरह से समझ लिया जाए, तो बदतहजीबियों से घबड़ाने की जरूरत न रहे।"

"मतलब यह है कि आप इस हुड़दंग के हमेशा कायम रहने में कोई बुराई नहीं देखते?"

"ऐसी बात नहीं है। चाहता तो मैं भी वही हूँ, जो आप चाहती हैं, सिर्फ अँप्रोच का फर्क है। आप कहती हैं कि ये बातें अभी रोक दी जाएँ। मैं कहता हूँ, इन्हें अभी एकदम रोकने का नतीजा खराब होगा, आमलोगों का तालीमी, तहजीबी और माली मेयार ऊँचा होगा, तो ये बातें खुदबखुद खत्म हो जाएँगी। कम से कम इस हद तक तो न रहेंगी कि तहजीबयाफ्ता लोगों को बुरा लगे।"

शकुन्तला बख्तियार की दलीलों से आश्वस्त न हुई थी और डट कर बहस करने के मूड में भी थी, लेकिन तभी बड़ा भारी व्याघात हो गया। गोयल साहब उसमानी साहब के यहाँ से वापस आ गए। आए ही नहीं, इस बुरी तरह आए कि एक बार बख्तियार को भी अपना संतुलन सँभालना मुश्किल हो गया। उसमानी साहब वैसे तो हिन्दू-मुस्लिम सांस्कृतिक एकता के कोई पृष्ठपोषक न थे (बल्कि दिल से घोर साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के आदमी थे) लेकिन सुरा देवी के अनन्य भक्त थे और पान गोष्ठी जमाने के लिए कोई मौका नहीं छोड़ना चाहते थे। जब से उन्हें गोयल साहब के नए शौक का पता चला था, तब से दोनों की मैत्री और भी गाढ़ी हो गई थी। इसीलिए गोयल साहब उसमानी साहब की होली की महफिल से एक अद्धा चढ़ा कर उठे थे।

बख्तियार जिस सोफे पर बैठा था उसकी पीठ दरवाजे की ओर थी। अपनी बात के जोश में न उसने गोयल साहब के पैरों की आहट सुनी, न शकुन्तला के चेहरे का बदलता हुआ भाव देखा। गोयल साहब चुपचाप बख्तियार के पीछे खड़े हो गए थे। उसके अंतिम वाक्य का अर्धांश ही उन्होंने सुना था। बख्तियार के चुप होते ही बोले, "अ····अजी बख्तियार आर साहआब, त···तहजीब याफ्ता लोगों····को बुरा लगेएए····तो तहजीब अपने पास रखें····अ···अपने राम तो····पियेंगे और जरूर पियेंगे····आप पीते हैं? त···तकल्लुफ न कीजियेगा ····आ····आज तो···पीने पिलाने का ही दिन है," कहते हुए बहकते कदमों से चल कर वे एक सोफे में जा गिरे।

"जी नहीं, शुक्रिया," बख्तियार मुस्कुरा कर बोला, "मैंने कभी यह शग्ल नहीं किया।"

" 'लुत्फे-मैं तुझ से क्या कहूँ जाहिद; हाय कमबख्त तूने पी ही नहीं।' वाकई बख्तियार साहब आप बदबख्त हैं, बिल्कुल बदबख्त हैं बल्कि कमबख्त हैं हः हः हः हः।"

बख्तियार को भी खिसियानी हँसी हँसनी पड़ी। शकुन्तला सोच ही रही

थी कि किस तरह हस्तक्षेप करे कि गोयल साहब फिर बहकते हुए स्वर में बोले, "देखिए बख्तियार साहब! आप नहीं पीते, अच्छा करते हैं; खुदा करे आप को शराब क्या पानी भी नसीब न हो। लेकिन मेरी बीबी को मेरे खिलाफ भड़काना ठीक नहीं है। इस बात पर ताजीरात हिन्द की दफा···कौन सी दफा है?····बताइए न साहब कौन-सी दफा है?··· खैर कोई होगी जिसके मातहत मैं आप पर केस दायर कर दूँगा कि आप तहजीब का हवाला दे-दे कर लोगों की बीबियों को पटाते···।"

"शट अप! यू ड्रंकर्ड," शकुन्तला चीखी, "गैट इंटू यौर बेड! गो अवे ऐट वंस!"

"ओ यस माई डार्लिंग, माई डोव, मई क्वीन, द क्वीन ऑफ द होल वर्ल्ड···।"

"आप जाते हैं या नहीं?" शकुन्तला फिर चीखी, "राम खिलावन! साहब को बेडरूम में ले जाओ।"

चपरासी गोयल साहब को घसट कर बेडरूम में ले गया, तो शकुन्तला ने आँखें उठायीं। बख्तियार ने उनमें क्रोध के आँसू देखे। वह उठने के लिए उपयुक्त वाक्य ढूँढ ही रहा था कि शकुन्तला बोली, "आप एजूकेटॅड लोगों की वकालत कर रहे थे। देखो ऐजुकेटॅड लोगों की हालत?"

बख्तियार हँसकर बोला, "आप गुस्से में हैं। आपका गुस्सा बिल्कुल बजा है, लेकिन गुस्से से फायदा कुछ नहीं होता। अच्छा, अब इजाजत दीजिए। आप भी मेरे ख्याल में आराम करें।"

"आराम तो बहुत है इस जिन्दगी में!" शकुन्तला किसी और तरफ देख कर बुदबुदायी। फिर बख्तियार की तरफ पलट कर बोली, "आप का खयाल गलत है बख्तियार साहब। शिक्षित वर्ग में भी घुटन होती है। उस घुटन को कोई सभ्यता और कोई कला दूर नहीं कर सकती। जो जितना बड़ा होता है, उसकी घुटन भी उतनी ही बड़ी होती है; क्योंकि उसकी लाइफ भी कम्प्लीकेटॅड हो जाती है। यह मरज लाइलाज है। अच्छा, नमस्ते।"

बख्तियार को विदा करके शकुन्तला भी अपने कमरे में चली गई। बिस्तर पर लेटी तो बदन में सुइयाँ-सी चुभने लगीं। उठ कर खिड़की से लॉन की तरफ देखने लगी, तो हरी घास के तिनके आँखों में चुभने लगे। गला सूखने पर पानी पिया, तो पानी कड़वा लगने लगा, आधा गिलास पीकर ही रख दिया। उसने अपने छोटे से जीवन में प्रशंसा भी सुनी थी, भर्त्सना भी, लेकिन आज जैसे अपमान का अनुभव उसे पहले कभी न हुआ था। उसका ऐसे मेहमान के सामने

अपमान हुआ था, जिससे सभ्यता के उच्चतम स्तर पर उसके सम्बन्ध थे। खैर बख्तियार ने जो खयाल बनाया होगा, वह तो गोयल साहब ही के बारे में होगा लेकिन यह तो वह सोचता ही होगा कि इस परिवार में पति-पत्नी में कितनी लचर बातचीत होती है, उस पर अभी तक पड़ा हुआ शकुन्तला का इम्प्रेशन क्या इस बात से घुल नहीं गया होगा ?

शकुन्तला ने कमरे में टहलना शुरू किया तो पाँवों की तेज गति ने उसके खौलते हुए दिमाग को कुछ आराम दिया और वह कुछ सोचने के काबिल हुई। 'आखिर गोयल साहब चाहते क्या हैं ? इनके मामलों में तो मैंने कभी हस्तक्षेप किया नहीं। वीणा के प्रति इनके आकर्षण पर भी मैंने कुछ न कहा। कौन स्त्री होगी जो इस बात को बरदाश्त करेगी, लेकिन मैंने वह भी किया। इनके बड़े से बड़े क्रोध पर भी कुछ न कहा। शराब पीने लगे, तब भी कुछ न कहा। बाहर की जिन्दगी में भाग लेने की अनुमति माँगी तो कहा कि मैं तो खुद यही चाहता था कि तुम चुल्हे-चक्की में अपनी जिन्दगी न खपाओ। और जब बाहर की जिन्दगी में हिस्सा लेने लगी, तो यह टेढ़ी-टेढ़ी बातें ! आशीष को लेकर इन्होंने लांछन लगाया, माथुर साहब के आने पर इन्होंने मुझे "चीफ ऐडीटर" की उपाधि दे दी, और अब बख्तियार जैसे कायदे के आदमी के सामने इस दरजे की बेहूदगी पर उतर आए। क्या चाहते हैं कि मैं घुट कर ही मर जाऊँ ? न खुद बोलेंगे, न दूसरों ही को बोलने देंगे। और यह भी नहीं कि साफ-साफ यही कह दें······इस मामले में बड़े प्रगतिशील बन जाएँगे, सहिष्णु बन जाएँगे, देवता बन जाएँगे। राक्षस के साथ तो निबाह हो सकता है, लेकिन बने हुए देवता के साथ कैसे निबाह हो ? राक्षस तो एक ही बार में मार डालता है; देवता मारता नहीं है, सिर्फ तिल-तिल करके जलाता है······बख्तियार पुराण पंथी परिवारों की स्त्रियों की दुर्दशा का रोना रो रहा था, उसे क्या मालूम कि हम लोगों के ऊपर चमक दमक वाले जीवन में अन्दर कितना जहर भरा हुआ है। उन्हें यह तो मालूम रहता है कि उनकी जिन्दगी किस ढर्रे पर चल सकती है, यहाँ तो यह भी बताने वाला कोई नहीं बताने वाला ही क्यों, जानने वाला भी कोई नहीं। मौत ही इस जिन्दगी का इलाज हो सकती है······मौत ही······ हाँ सिर्फ मौत ही।'

शकुन्तला के खौलते हुए मस्तिष्क में ठहराव आ गया। मृत्यु के विचार ने उसकी समस्या को हल तो कर दिया था, लेकिन यह विचार इतना नया था कि उसकी समझ ही में न आया कि क्या सोचे। जहाज डूबने पर छोटी-सी नाव में तूफानी लहरों से संघर्ष करता हुआ जहाजी जब किनारे आ लगता है, तो

उसका संघर्ष तो समाप्त हो जाता है, लेकिन आगे की राह भी रुक जाती है। शकुन्तला का यही हाल था। मृत्यु ही जीवन के दुखों से मुक्ति दिलाएगी, यह तो उसके लिए स्वयं सिद्ध बन गया था। लेकिन, मौत है क्या, कैसी, कब, क्यों और किस तरह होती है, उसके बारे में उसकी विचार शक्ति ने जवाब दे दिया। मृत्यु उसके लिए तूफान झेल कर किनारे लगे हुए जहाजी का अपरिचित द्वीप थी।

लेकिन, वह इस समय कुछ सोचने-विचारने, किसी तरह की उलझन में पड़ने के लिए बिल्कुल तैयार न थी। उसने तय कर लिया कि मौत का सहारा तो बाद में पकड़ना ही है, आएगी, तो मालूम हो जाएगा सब कुछ उसके बारे में। लेकिन, अभी तो जीवन के साथ दो-दो हाथ करने हैं। जिन्दगी के सामने बगैर कुछ किये-धरे घुटने टेक देना निहायत बेतुकी बात है। 'जीवन की कठिनाइयों! आओ, दिखूं तुम में कितना दम है। मेरे लिए तो मौत का सहारा है, तुम कहां जाती हो, यही मुझे देखना है।'

इस समय शकुन्तला को कोई भी देखता, तो उसे डर लगने लगता। इसी समय महराजिन यह पूछने को आई कि नाश्ते के लिए क्या बनाऊँ तो अपना यह रोज का सवाल बड़ी मुश्किल से रख सकी। शकुन्तला ने न उसकी झिझक देखी, न उसका सवाल सुना। महाराजिन अपने सवाल को दुहराये बगैर उसके सामने से हट गई।

लेकिन महाराजिन के जाने के वाद शकुन्तला को बोध हुआ कि रसोई घर में भी जाना चाहिए। उसने जाकर नाश्ते की हिदायते दीं और नौकर को भेज कर ढेर सारे संतरे और रसभरी मंगवा लीं। चाय के बजाय ठंडी काफी बनाने को कहा। गोयल साहब उठ गए थे, उनसे जाकर पूछा कि वे हमेशा की तरह चाय पियेंगे या फ्रूट जूस लेंगे? उन्होंने फ्रूट जूस लेने के विचार को बहुत पसन्द किया। शकुन्तला ने अपने हाथ से संतरे और रसभरी के रस का गिलास तैयार किया।

नाश्ते के समय बिल्कुल खामोशी रही। नशा उतरने के बाद गोयल साहब अपनी गलती महसूस तो कर रहे थे, लेकिन इस समय अपने मस्तिष्क पर जोर बिल्कुल नहीं डालना चाहते थे। खुमार ने उनके सर में बेहद दर्द पैदा कर दिया था। फ्रूट-जूस पीकर ही उन्हें चैन मिला था। शकुन्तला के मौन का उन्होंने स्वागत किया था। वे सोच रहे थे कि जरा देर को बाहर टहल आया जाए, तो तबियत ठीक हो जाएगी, रात में उन्हें कुछ काम भी करना था।

उन्हें जाने के लिए उद्यत देख कर शकुन्तला ने कहा, "मैं आप से कुछ बातें करना चाहती हूँ।"

गोयल साहब ने मन-ही-मन अपने भाग्य को कोसा। इस समय वे इस स्थिति में भी न थे कि अच्छी तरह रोष-प्रदर्शन कर सकें। परेशान होकर बोले, "कहो।"

"ऐसे नहीं, जरा इत्मीनान से बातें करनी है।" शकुन्तला बोली। गोयल साहब बैठ गए।

"मुझे साफ बताइए कि आप मुझसे चाहते क्या हैं? मैं किस तरह से रहूँ?"

मैं कुछ नहीं चाहता। तुम जैसे रहती हो, बिल्कुल ठीक तरह हो, वैसे ही रहो।"

"और इसी तरह मित्रों के सामने अपमान पीती रहूँ?" शकुन्तला ने पूछा।

गोयल साहब बात बढ़ाने के पक्ष में नहीं थे। हँस कर बोले, "जाने भी दो शकुन्तला। नशे में आदमी बहकता ही है, भला नशे की बातों का भी ख्याल किया जाता है?"

"देखिए, बात को यों हवा में न उड़ाइए। यह कोई कण्टेम्प्ट ऑफ कोर्ट का मामला तो है नहीं कि माफी माँग ली और बात खत्म हो गई। नशे में आदमी बात बेतुके ढंग से करता है, लेकिन उसके मुँह से वही बात निकलती है, जो उसके दिल में होती है। इस बात से आप इन्कार कर सकते हैं?"

गोयल साहब को यह बिल्कुल पसन्द न था कि उनसे कोई जिरह करे। इस समय ठंडे दिमाग से शकुन्तला को कुछ समझा सकने की स्थिति में भी वे न थे। खीझ कर बोले, "अच्छा फिर जो करना चाहो, वही करो। माफी देना मुमकिन नहीं है, तो सजा ही दे डालो।"

"जो कुछ करना है, वह तो करूँगी ही। मैं तो यह पूछती हूँ कि आप चाहते क्या हैं?"

"जब अपने मन ही की करनी है, तो पूछने की क्या जरूरत है?" गोयल साहब रुखाई से बोले।

"मैं आपके देवतापन की परतें हटाकर देखना चाहती हूँ कि उसके अन्दर क्या है; कहीं इंसानियत बाकी है या इस ऊपरी स्वास्थ्य के नीचे पीप और मवाद ही भरा है।"

"शकुन्तला ! तुम अपनी हद से बहुत आगे बढ़ रही हो।" गोयल साहब कड़क कर बोले।

शकुन्तला हँसी, जनाब मुंसिफ साहब ! यह टोन कोर्ट रूम ही के लिए रिजर्व रखिए। इस वक्त आपकी हैसियत हाकिम की नहीं है, मुल्जिम की है। आपसे सफाई माँगी जा रही है।"

"अदालत आप ही की है न ?" मुंसिफ साहब मुँह सिकोड़ कर बोले, हद हो गई। चोरी और सीनाजोरी इसी को कहते हैं। तुम किस मुँह से सफाई माँगती हो ? तुम्हारी अपनी हैसियत क्या है, यह तुम नहीं जानती ? अगर मुझसे शादी न होकर किसी और से हुई होती तो···।

"तो मैं इससे कहीं अधिक सुखी होती। कम-से-कम इतना कमीना आदमी मुझे न मिलता जो अपनी बहन पर हाथ साफ करने के लिए अपनी बीवी को दूसरे के हाथ में देने को तैयार हो जाए। समाजी हैसियत को मैं यहाँ जगह देती हूँ।" कहते हुए शकुन्तला ने अपने सैंडिल की ठोकर की तरफ इशारा किया। घृणा के आवेग से उसका चेहरा विकृत हो रहा था।

गोयल साहब का भी दिमाग खराब हो गया। बोले, "जिसे भी तुम्हारी जैसी बीबी मिलती, वह अपने भाग्य को सराहता। कौन यह बरदाश्त करता कि उसकी बीबी दो-दो बजे रात तक बाहर रहे और रोजाना एक नया आदमी फँसाकर ले आए ? कोठे पर जाकर क्यों नहीं बैठ जाती ?"

"मैं कोठे पर जाकर बैठूँ या गंगा में डूब मरूँ, इससे आपका कोई सम्बन्ध नहीं। आपके लिए इतना ही काफी है कि मैं आपका घर छोड़कर चली जाऊँ। लेकिन, अपने-आप नहीं जाऊँगी, आपको अपने मुँह से साफ-साफ कहना पड़ेगा। बोलिए, क्या कहते हैं ? चली जाऊँ· इसके बाद आप जो जी चाहे वह कर सकते हैं, चाहे जेल भेजवा दें, चाहे गुंडे लगवा कर मरवा दें।"

गोयल साहब का क्रोध अब हवा हो गया। उन्होंने शकुन्तला की ओर देखा, तो उन्हें डर लगा। उसके चेहरे पर मरने-मारने का भाव साफ झलक रहा था। उन्होंने सिगरेट सुलगाई और चार-पाँच कश लेने के बाद शान्त स्वर में बोले, "शकुन्तला ! मैं और तुम एक दूसरे को कभी नहीं समझ सकते। दिली मेल-मिलाप का सवाल नहीं है। फिर भी तुम्हारे लिए चाहे समाजी हैसियत का महत्त्व हो या न हो, मेरे लिए जरूर है। मेरे ख्याल में हमलोगों को एक वर्किंग कम्प्रोमाइज कर लेना चाहिए। इसमें दोनों का फायदा है। हमलोग एक दूसरे की आजादी में बिल्कुल दखल न दें, यहाँतक कि एक दूसरे के मित्रों से भी अधिक सम्बन्ध न रखें, तो ठीक रहेगा।"

शकुन्तला कुछ देर तक गोयल साहब की तरफ देखकर बोली, "मुझे बिल्कुल मंजूर है। मैंने कभी आपकी आजादी में दखल नहीं दिया। आप ही को ख्याल रखना है कि आयन्दा आज जैसी बात न हो।"

गोयल साहब टहलने चले गए। शकुन्तला अपने बिस्तर पर लेट गई। मानसिक संघर्ष समाप्त होने पर अब उसे बेहद कमजोरी लग रही थी। उसने खाना भी न खाया, आठ बजे ही सो गई।

●●●

१८

बख्तियार गोयल साहब के यहाँ से लौटा तो उसने अपने घर पर पार्टी के कुछ कार्यकर्त्ताओं को अपनी प्रतीक्षा में पाया। वे सब बेचैनी से उसकी राह देख रहे थे। कारण यह था कि आज सुबह ही प्रान्तीय यूनिट से चिट्ठी आई थी कि समाजवादी दल के प्रान्तीय सम्मेलन को इलाहाबाद में करने की इलाहाबाद यूनिट की प्रार्थना स्वीकार कर ली गई है। इस सम्बन्ध में कार्यक्रम निश्चित करने और आवश्यक आदेश देने के लिए प्रान्तीय दल के अध्यक्ष आ रहे हैं और खुशी की बात है कि उसके साथ अखिल भारतीय दल के मन्त्री श्रीप्रेम भसीन भी आएँगे। इन लोगों का कार्यक्रम दो अप्रैल को आने का बन चुका है, दूसरे ही दिन वे वापस लौटेंगे।

बात तो दरअसल खुशी की थी, किन्तु इलाहाबाद यूनिट पर यह कृपा इतनी आकस्मिक थी कि कार्यकर्त्ता परेशान हो गए। दो महीने पहले यहाँ की यूनिट ने सम्मेलन का निमन्त्रण जरूर दिया था, लेकिन यह इस आशा में दिया था कि प्रान्तीय यूनिट इसे मंजूर न करेगी, पूरी आशा थी कि यह सम्मेलन कानपुर में होगा। इलाहाबाद में दल की शक्ति काफी क्षीण थी। सम्मेलन का बोझ उठाना वैसे ही मुश्किल था, फिर इतनी जल्दी में भसीन साहब का उपयुक्त स्वागत किस तरह किया जाए, यह सेक्रेटरी साहब की समझ में नहीं आ रहा था। दल के बैंक अॅकाउंट में इस समय केवल पैंतीस-चालीस रुपए पड़े थे,

ऑफिस का किराया आठ महीने से चढ़ा था और चपरासी तीन महीने से वेतन न मिलने के कारण चुपचाप खिसक गया था। मसीन साहब की शान के लायक मीटिंग के प्रचार ही में तीस-चालीस से ज्यादा का खर्च था, फिर इन नेताओं को ठहराने का इंतजाम कैसे हो ? अध्यक्ष महोदय के घर तीन व्यक्ति खाट पकड़े थे, और किसी का घर इस योग्य नहीं था, जहाँ वे ठहराये जा सकें। किसी होटल में ठहराया जाता, तो भी बीस रुपए से कम का खर्च न था।

बख्तियार ने सारी बात सुनकर कहा, "आप लोगों ने भी तो अभी तक कुछ सोचा होगा ?"

सेक्रेटरी पंडित ओंकारनाथ ने कहा, "हम तो आप ही पर आशा लगाए थे, आप ही कुछ बताएँ।"

बख्तियार अन्दर ही अन्दर जल-भुनकर रह गया। वह घर से सौ-सवा सौ रुपए प्रतिमाह मँगवाया करता था। पहले उसका इतने में मजे में खर्च चलता था, लेकिन इधर दिक्कत रहने लगी थी। पार्टी में उसका सम्मान बढ़ा, तो सम्मान की कीमत भी उसे देनी पड़ी। दल के प्रायः सारे कार्यकर्ता नितान्त राजनीतिक कार्यकर्ता थे। उन्होंने अपना जीवन राजनीति को अर्पित कर दिया था इसलिए रोजी कमाने के लिए कुछ काम कर ही नहीं सकते थे। चूँकि पार्टी में कोई काम नहीं था, इसलिए वे हँसी-मजाक करके, कांग्रेसी नेताओं और कम्युनिस्टों को गालियाँ देकर और इधर-उधर घूमकर समाजवाद की सेवा किया करते थे। रहा खाने-पहनने का सवाल, सो बख्तियार साहब का बावर्चीखाना और कपड़ों का संदूक समाजवाद की उनकी अपनी व्याख्या के अनुसार सभी की सम्मिलित सम्पत्ति थे। फलतः बख्तियार को भी तीन महीने से बिल्कुल निरामिष भोगी हो जाना पड़ा था; क्योंकि सादे भोजन पर कार्यकर्ता जरा कम ही आया करते थे। बख्तियार वैसे भी इस 'समाजवादी शोषण' से ऊबा हुआ था, उस पर पंडित ओंकारनाथ यह भी इशारा कर रहे थे कि बख्तियार इस मौके पर अपनी जेब से पचास-साठ रुपए निकाल दे। समाजवादियों ने अपनी पंक्ति में एक ताल्लुकेदार को रखकर सम्मानित किया था। उसके बदले में क्या वे इतनी मामूली बात की भी उम्मीद नहीं कर सकते थे ? बख्तियार को वैसे रुपए की कोई कमी न थी, वह अगर अपने घरवालों पर जोर डालता तो सौ की जगह पाँच सौ रुपए मँगा सकता था। छह सौ रुपए महीना तो उसके पिता अपनी रखैलों (कानपुर वाली तीन वेश्याओं) को ही भेजा करते थे। बख्तियार से उसके राजनीतिक कार्य के कारण नाराज थे (दरअसल वे चाहते थे कि लड़के

को राजनीति ही में काम करना है तो कांग्रेस में करे जिसकी हुकूमत है) इसलिए उसे कुछ भी भेजना जरूरी न समझते थे। बख्तियार को जो कुछ भी रुपया मिलता था, वह उसकी माँ चुपके से भेज दिया करती थी और स्पष्ट है कि वह ज्यादा नहीं हो सकता था। बख्तियार अगर जाकर अपने पिता से बात करता तो उसे कोई दिक्कत न रहती, लेकिन वह उनसे ज्यादा ऐंठू था। छठे-छमाहे घर भी जाता, तो जाते समय और आते समय के सलाम अलैकुम के सिवा उनसे एक बात भी न करता। अपने खर्च को पूरा करने के लिए उसने पत्र-पत्रिकाओं में राजनीतिक लेख लिखना भी शुरू किया था, लेकिन एक तो सक्रिय राजनीति की व्यस्तता में यह काम सुचारु रूप से हो नहीं पाता था, दूसरे जो कुछ अतिरिक्त आय होती भी थी, वह समाजवादी सम्पत्ति बन जाती थी।

बख्तियार ने रुखाई से कहा, "मेरे पास हर मसले का हल थोड़े ही मौजूद है। आप लोग मेम्बरशिप का चन्दा क्यों नहीं इकट्ठा कर लेते। यूनियनों को भी टटोलें, शायद कुछ मिल जाए।"

"बकाया चन्दा इतनी जल्दी कौन इकट्ठा करेगा? यूनियनों की हालत भी क्या आपसे छुपी है?"

"तो फिर ऐसा कीजिए, डॉ० चड्ढा को अॅप्रोच कीजिए, वे कुछ न कुछ बात बना देंगे।"

सेक्रेटरी साहब इस पर कुछ कहें, इसके पहले ही तीन उग्रवादी कार्यकर्ता बोल उठे, "हम डॉ० चड्ढा के सामने हाथ नहीं फैलाएँगे। दक्षिणपंथी प्रतिक्रियावादी नेताओं के आगे.......।"

बख्तियार से अब सहन न हो सका। डॉ० चड्ढा शहर कांग्रेस के प्रमुख नेता थे और समाजवादी दल की स्थापना उन्हीं की परोक्ष सहायता से हुई थी। फिर भी ये गैरजिम्मेदार लोग ऐसे नखरे कर रहे हैं। वह बोला, "कुछ नहीं हो सकता तो प्रॉविंशियल यूनिट को तार दे दीजिए कि वे लोग यहाँ न आएँ, हम कोई इंतजाम नहीं कर सकेंगे और क्या किया जाए?"

बख्तियार को बिगड़ते देखकर कार्यकर्ता चुप हो गए। पंडित ओंकारनाथ बोले, "तो फिर डॉ० चड्ढा ही से मदद लेनी पड़ेगी। लेकिन, उनसे बात आप ही कीजिएगा।"

"क्यों? आप लोगों के मुँह में जबान नहीं है क्या? आप क्यों नहीं बात कर सकते?"

"भई हमलोगों का वह असर नहीं पड़ेगा। आपकी हैसियत दूसरी है।" पंडित जी बोले।

"मेरी हैसियत वही है, जो आप लोगों की है। फर्क सिर्फ यह है कि आप लोग भाषण करते वक्त ऊँच-नीच का ख्याल नहीं करते, गालियाँ देने पर आते हैं तो हरएक को सानतें चले जाते हैं। अब कुछ जिम्मेदारी से बात करना सीखिए। मैं कुछ नहीं कर सकता, मेरी तबियत ठीक नहीं है।"

यह कहकर बख्तियार अपने सोने के कमरे में चला गया। वह कमरा बैठक की बगल ही में था। पार्टीशनवॉल के पार इधर की आवाजें साफ-साफ उधर सुनायी पड़ती थीं।

यह हाल है हमारे नेताओं का। डॉट-डपट के समय आगे, काम के समय बेडरूम में।"

"मैंने तो पहले ही कहा था। यहाँ आए ही बेकार। मुझे तो इनके रंग-ढंग पहले ही से अजीब लग रहे हैं। महीने भर से पार्टी ऑफिस में सूरत नहीं दिखायी है।"

"भई ऐक ही जगह जा सकते हैं।" एक हँसी भरी आवाज आयी, "या तो पार्टी ऑफिस हो लें या चैथम लाइंस के चक्कर लगा लें।" और फिर सम्मिलित हास सुनायी दिया।

"बात तो ठीक कहते हो, आखिर जवान आदमी हैं। मुझे तो आज इनका अद्धी का कुर्ता देखकर ही मालूम हो गया था कि वहीं से आए होंगे। कहते हैं, तबियत ठीक नहीं है।"

"मिहनत पड़ती है, तो तबियत निहाल हो ही जाती है।" फिर सम्मिलित हँसी का स्वर।

तभी पीरू आकर बोला, "मालिक कहते हैं कि वह सोना चाहते हैं। आप लोग धीरे बोलें।"

समाजवादी कार्यकर्ता इस अपमान से क्षुब्ध होकर चले गए। ये लोग समाजवादी दल में उसी गुट के थे, जिसमें बख्तियार था और इस समय जिस तरह बख्तियार ने बर्ताव किया था, उसका लाजिमी नतीजा यही होना था कि छह महीने बाद होने वाले चुनाव में उसका अध्यक्ष बनना असंभव था। अध्यक्ष तो दूर वह कार्यकारिणी में आ सकेगा, यह भी संदिग्ध था।

लेकिन, बख्तियार को इस समय अपने राजनीतिक भविष्य के बारे में सोचने की फुर्सत नहीं थी। सोने की बात उसने उन लोगों से पीछा छुड़ाने के

लिए ही कही थी, वरना उसे दिन में सोने की कभी आदत नहीं थी। मई-जून में वह दोपहर को पन्द्रह-बीस मिनट की झपकी ले लेता था, लेकिन वैसे उसकी सारी दोपहर या तो लोगों से मिलने-जुलने में गुजर जाती थी या फिर लिखने-पढ़ने में। इस वक्त भी वह बिस्तर पर सिर्फ लेटा हुआ था। उसने यह तो तय ही कर लिया था कि उसे सक्रिय राजनीति में नहीं रहना है, अनिश्चित और अनियन्त्रित जीवन से वह ऊब चुका था और उसका पक्का इरादा था कि इस साल जुलाई में वह कानून के दर्जों में दाखिला ले ले और एल० एल० बी० करके वकालत शुरू कर दे। यू.पी. सरकार जमींदारियों को खत्म करने ही वाली थी। तत्सम्बन्धी विधेयक पास हो चुका था, सिर्फ उसके लागू होने की देर थी। बख्तियार के पिता ने काफी किसानों को बेदखल करके पहले ही सीर की जमीन काफी कर ली थी, जिसकी भूमिधरी भी प्राप्त कर ली गई थी। रुपये-पैसे की कोई खास चिन्ता बख्तियार को न थी, लेकिन अपने सारे समाजवादी विचारों के बावजूद वह सिर्फ किसान बनकर रह जाना पसन्द न करता था। वह शहर ही में रहना चाहता था और प्रतिष्ठित जीवन भी बिताना चाहता था। इतने वर्षों के अनुभव के बाद उसे मालूम हो गया था कि चौबीसों घंटे की नेतागीरी उसके आत्म-सम्मान और ईमानदारी के साथ बिल्कुल मेल नहीं खाती।

फिर भी इस समय उसके मन में यह बातें नहीं थीं। वह सोच रहा था—समाजवादी कार्यकर्ताओं में उसकी अनुपस्थिति में होने वाली बात-चीत। 'आखिर क्या मतलब है इसका ? ये लोग भी वही बात कहते हैं, गोयल साहब भी वही बात कहते हैं। मैं कितना बचाव रखता हूँ, इस बात का कि कम-से-कम इस तरह का लांछन मेरे ऊपर न लगे, लेकिन वह भी लग ही रहा है···अभी तक सब लोग बहुत खुश थे कि मैं किसी औरत से बात नहीं करता····तो क्या औरतों से बात करना भी जुर्म है ? क्या आज के जमाने में तालीम याफ्ता और तरक्की पसन्द लोग भी दिल से उसी तरह पुरानपंथी हैं जैसे हमारे बाप-दादे थे ?····बाप-दादे भी ऐसे कहाँ थे ? वे हमलोगों से ज्यादा हिम्मतवाले और ज्यादा ईमानदार थे····खुलकर ऐय्याशी करते थे और अपनी करनी को छुपाने की कोई जरूरत नहीं समझते थे····अब्बाजान को ही देखो, तीन-तीन तवाइफें रखें बैठे हैं और उनकी शराफत का डंका बजता है····एक मैं हूँ कि एक औरत से महज इसलिए दोस्ती रखता हूँ कि मुझे उसकी बात-चीत पसन्द है, तो लोग तरह-तरह की बातें बनाते हैं······क्या इसकी वजह यह है कि मैं मुसलमान हूँ और मुसलमानों पर हिन्दू लोग औरतों के बारे में यकीन कम करते हैं ?······शायद ऐसी बात हो······लेकिन मुंसिफ साहब या इन्हीं लोगों ने और किसी मामले में तो

ऐसा कुछ दिखाया नहीं कि मैं मुसलमान होने की वजह से उनसे मुख्तलिफ हूँ.... खन्ना साहब के यहाँ आने-जाने पर तो किसी ने कुछ नहीं कहा......फिर ?...... क्या इस वजह से कि मैं गैर शादी-शुदा हूँ...यह भी कोई समझ में आनेवाली बात नहीं है ? शादी-शुदा लोग क्या हमेशा अपनी बीवी के लिए वफादार रहते हैं ?... फिर क्या बात है ?......एक ही बात हो सकती है कि मिसेज गोयल बदनाम हैं और उनसे बात करने वाले हर आदमी को शक की निगाह से देखा जाता है...... लेकिन मिसेज गोयल की बदनामी की क्या वजह है......खन्ना साहब के साथ जो वाकिआ हुआ था उसके बाद तो यह साबित हो चुका कि उसमें शकुन्तला का कोई कसूर न था......वैसे भी अपने खाविन्द के साथ उनके अच्छे ताल्लुकात हैं......मैं इस अरसे में दस-बारह मर्तबा उनके घर गया हूँ और कभी कोई बात गैर मामूली नहीं देखी......गोयल साहब शराब पीते हैं, लेकिन तकरीबन सभी अफसर पीते हैं......यह भी ठीक है कि शकुन्तला ऐसे लोगों को उल्लू बनाने की कोशिश करती है, जो औरतों पर मुँह फैलाकर गिरें......माथुर साहब की सारी हरकतें उसने मुझे काफी मजा ले-ले कर बतायी हैं......लेकिन इससे उसकी बदचलनी तो साबित नहीं होती !......मेरे ख्याल में तो समाज की सेक्सलाइफ नॉर्मल करने के लिए ऐसी औरतों की और ज्यादा कद्र की जानी चाहिए थी......मुझ पर भी उसने पहले ऐसा ही फंदा डालने की कोशिश की थी......या शायद मेरा ख्याल ही ख्याल हो......लेकिन आज की बात-चीत से तो जाहिर हो गया कि वह बिल्कुल नॉर्मल किस्म की औरत है......सिर्फ पढ़ी-लिखी ही नहीं है, बल्कि सोचने-समझने वाली भी है......हर मसले पर उसकी पकड़ गहरी है ।

'अच्छा......शकुन्तला में कोई खराबी नहीं है तो मेरे बर्ताव में ही कुछ अजीब बात है ?......मैं क्यों उस खान-दान में ज्यादा घुलने-मिलने लगा...... शकुन्तला के लिए ?......हाँ, यह बात गलत नहीं है, लेकिन उस तरह सही भी नहीं है, जैसे लोग समझते हैं...... मैं गया था इस उम्मीद में कि उसे सोशलिस्ट पार्टी का हमदर्द बना लूँगा और शायद मेम्बर भी......लेकिन उसने पुठ्टे पर हाथ भी नहीं रखने दिया, पॉलिटिक्स पर बात करना उसने कभी पसंद नहीं किया......लेकिन यह बात तो शुरू की दो-एक मुलाकातों में ही जाहिर हो गई थी, फिर भी मैंने क्यों वहाँ जाने का सिलसिला बनाए रखा ?..... क्या यह सही नहीं है कि मुझे उसकी शर्बती आँखें देखे बगैर और उसकी मिसरी में घुली आवाज सुने बगैर जिन्दगी में काफी खालीपन महसूस होता है ?...... पहले यह साफ-साफ नहीं महसूस होता था, लेकिन जिन्दगी में कोई कमी तो

जरूर होगी, जिसकी वजह से पहले जूलिया और बाद में शकुन्तला का हो रहा ·····लेकिन हो क्या रहा ?······मैं क्या किसी बुरे इरादे के जाता था ?···· ऐसी बात तो हगिरज नहीं है········फिर ?·······फिर यही कि मर्द को औरत के जिस्म की जो ख्वाहिश होती है, उसे तो बहलाया भी जा सकता है। लेकिन उसकी कम्पेनियनशिप की, उसकी लताफत की जो नफसियाती भूख होती है, क्या उसे भी खत्म किया जा सकता है ?·······शायद यह मुमकिन भी हो, अगर आदमी बिल्कुल बहशी हो जाए, शराब पीकर कत्लोगारत करने लगे········लेकिन मुझे ऐसा करने की क्या जरूरत है ?·······समाजी नेकनामी ?·······लेकिन क्या समाज वाकई चाहता है कि इन्सान बहशी हो जाए तभी उसकी कद्र की जाए ?·······मुमकिन है ऐसा ही हो, कामयाब बहशी ही डिक्टेटर होकर समाज के लिए हीरो हो जाते हैं·······हो जाए, मुझे हीरो नहीं बनना। मुझे कद्रदानी के लिए बहशी होना मंजूर नहीं········मुझे तो रस से भरी जिन्दगी चाहिए जिसमें मैं भी खुश रहूँ, दूसरों को भी खुश रखूँ, अपने जजबात को भी न कुचलूँ, दूसरों के साथ भी इंसानी हमदर्दी रख सकूँ, सुबह उगते हुए सूरज, शाम के आसमान की सुर्खी, फूलों के रंग और खुशबू, सितार के नगमों और बहार की हवा की लतीफ ठंडक को अपने अन्दर जज्ब कर सकूँ······अगर एक औरत की आँखों की तरफ देख कर जिन्दगी—मुकम्मल जिन्दगी—के दरवाजे खुल जाते हैं, तो मैं जरूर उनकी तरफ देखूँगा·······अगर यह गुनाह है तो जिन्दगी ही गुनाह है, अहसास गुनाह है, रगों में खून का दौड़ना गुनाह है, दिल की धड़कन गुनाह है, साँस लेना गुनाह है ······।

'लेकिन यह सब कुछ गुनाह नहीं है········गुनाह है वह जेहनियत जो उम्मीद करती है कि आदमी सांस लिए बगैर भी जिन्दा रह सकता है; गुनाह है वह समझ, जो बेईमानी को बड़प्पन और दयानतदारी की सीधी-सादी फितरत परस्त जिन्दगी को जुर्म ठहराती है; गुनाह है वह दानिशमन्दी जिसके तहत इन्सान अपनी आँख का शहतीर न देखकर दूसरों की आंखों का तिनका देखा करता है········सारा समाज यही करता है ?······तो सारा समाज गुनाहगार है !···· सोशलिज्म जो कुछ कहता है, उसे कहने दो, उसकी बातें फुर्सत से सुनी जाएँगी ······अगर समाज गलत तरीके से, गैर फितरी तरके से एक जिन्दगी को भी कुचलना चाहता है, तो उस एक जिन्दगी को पूरा हक है कि सारे समाज को कुचल कर रख दे·······।'

बख्तियार उठ कर बैठ गया और कमरे में टहलने लगा।

इसी उधेड़बुन में शाम हो गई। गोयल साहब का कुर्ता बख्तियार के पसीने

से शराबोर हो गया। बख्तियार ने नहाया और कपड़े पीरू को दे दिए। आदेश दिया कि उन्हें अर्जेन्ट घुलवा कर गोयल साहब के यहाँ कल ही पहुँचा दे। नहाने के बाद जरा तबियत सँभली तो चाय पीकर घूमने चल दिया। लेकिन, घर से निकला तो खन्ना साहब से सड़क ही पर मुठभेड़ हो गई। वे शिकायत करने लगे कि कल त्योहार के दिन बख्तियार पिछले साल की तरह उनके घर क्यों नहीं आया। बख्तियार ने बहाना बनाया, तो खन्ना साहब बोले, "हाँ साहब, अबे आपको काहे को फुर्सत होगी, ही ही ही।"

बख्तियार ने कहा, "आज आप दुकान नहीं गए? आज तो मेरे ख्याल में बाजार बन्द नहीं है।"

"नहीं भाई बाजार खुला है, अपनी दुकान भी खुली है। मैं ही नहीं गया। रात को कुछ तबियत खराब हो गई थी, हरारत हो आई थी। आज सुबह भी सर में सख्त दर्द था। अभी घर से निकला हूँ। दुकान में आज जाना वैसे भी बेकार था। इन दो-तीन दिनों में तो बाजार सर्द हो रहता है। आप कहाँ जा रहे हैं?"

"कहीं नहीं, यूँ ही जरा घूमने निकला हूँ।"

"तो आइए न मेरे यहाँ, अभी जरा सिगरेट ले लें, फिर चलते हैं, चाय पियेंगे। लीला भी आपकी शिकायत कर रही थी। इधर तो आप ईद के चाँद हो गए; हफ्तों से दर्शन नहीं दिए, ही ही ही ही।"

बख्तियार को असली परेशानी इस 'ही ही ही' से थी। वह इसका मतलब समझता था और किसी तरह खूबसूरती से बचकर निकल जाना चाहता था। लेकिन, खन्ना साहब ने उसे मौका नहीं दिया, तो नहीं ही दिया। उन्होंने साफ कह दिया कि लीला की शिकायत दूर करना और इतने दिन न आने की कमी पूरी करना उसका नैतिक और सामाजिक कर्तव्य है। उसे चलना ही पड़ा। हाँ, उसकी समझ में यह बात नहीं आ रही थी कि खन्ना जी बार-बार लीला का नाम क्यों ले रहे हैं।

समझने में उसे बहुत देर न लगी। लीला ने मामूली तौर से शिकायत की कि आप इतने दिनों से क्यों नहीं आए, लेकिन यह स्पष्ट था कि उसे इतनी सख्त शिकायत नहीं थी जितनी खन्ना जी बताने की कोशिश कर रहे थे। होली का मौका था, इसलिए दस-बारह तरह के पकवान सामने आ गए। बख्तियार ने सुबह भी इन्हीं चीजों से पेट भरा था, इस समय फिर गुझियाँ, समोसे, सेव और पपड़ी सामने देखकर उसका जी फिरने लगा। उसने क्षम-याचना की

कि दो रोज से यही खाते-खाते उसका पेट खराब हो गया है इसलिए उसे कुछ सेव ही दे दिए जायें, सारा सामान न खराब किया जाय।

"अजी साहब, होली में यह मुसीबत तो उठानी ही पड़ती है। हरएक से मिलना भी जरूरी होता है और किसी जगह बगैर खाए गुजारा नहीं। मुझी को देखिए, तबियत खराब थी, फिर भी सुबह आठ-दस जगह यही खाना पड़ा। आप तो बस दो ही जगहों में बोल गए हैं।" खन्ना जी फिर 'ही ही' करने लगे।

"आप लोगों की दूसरी बात है, आप को बचपन से आदत है। मैं तो नया ही हिन्दू हुआ हूँ।"

"वह तो मैं जानता हूँ। लेकिन, अब तो आप पूरी तरह हिन्दू हो गए हैं, बल्कि हिन्दुओं से ज्यादा आगे बढ़ गए हैं। मसल मशहूर है कि नया मुसलमान ज्यादा प्याज खाता है। इसी के जवाब में यह मसल भी बननी चाहिए कि नया हिन्दू जियादा होली खेलता है। अच्छा, यह बताइए, आज सुबह की होली तो काफी मजेदार रही न। आज तो आपकी असली होली रही होगी। ही ही ही।"

मिसेज खन्ना चुपचाप चाय बना रही थीं। पति की बात सुन कर उनके चेहरे पर भी मुस्कान दौड़ गई। बख्तियार की कनपटी गरमाने लगी। 'आखिर यह हो क्या रहा है—हर आदमी एक ही बात कह रहा है। जैसे रेडियो पर खबर सुना दी गई हो कि मैं गोयल साहब के यहाँ गया था।' बख्तियार बेचारे को क्या मालूम कि यह सब पीरू की करामात है। पीरू को अपने छोटे मालिक और शकुन्तला की मित्रता की बात नहीं मालूम थी। लेकिन, ताल्लुकेदारों के घराने में पले उस नौकर के लिए आज सचमुच बड़ी खुशी का दिन था कि मालिक हमेशा की तरह 'भंगी चमारों' से न मिलकर 'हाकिम' से मिलने गये थे और वह आशा करता था कि अब मालिक की आदतें सुधर जाएँगी। वह अपनी खुशी अपने तक सीमित न रख सका था और उसने मुहल्ले में हर एक को बता दिया था कि 'मियाँ' आज 'मुंसिफ साहब बहादुर' से मिलने गए हैं। समाजवादी कार्यकर्त्ताओं को उसने यह शुभ सम्वाद देने की जरूरत नहीं समझी थी, लेकिन वे इतने घाघ थे कि खुद ही समझ गए थे।

खैर किसी ने भी कहा हो, बख्तियार इस समय उस बारे में बात नहीं करना चाहता था। उसने शान्तिपूर्वक कहा, "मैंने कल जरूर अपने मुहल्ले में होली खेली थी, आज कहीं नहीं खेली।"

लीला की दृष्टि तीक्ष्ण थी। वह समझ गई कि बख्तियार अच्छे मूड में नहीं है और बात को टालना चाहता है, तो बात टाल दी जानी चाहिए।

लेकिन, खन्ना साहब ने इस क्षण-भंगुर संसार में आते समय 'ट्रैविल लाइट' का सिद्धान्त अपनाया था और बुद्धि की गठरी पीछे ही छोड़ आये थे। मिसेज खन्ना ने कुछ कहना शुरू ही किया था कि बोल पड़े, "लेकिन गये तो आज आप रंग खेलने ही के समय थे।"

बख्तियार के संयम का बांध टूट गया। उसने गुर्रा कर खन्ना साहब की तरफ देखा। जहर में बुझे हुए स्वर में बोला, "जी हां, मैं शकुन्तला के यहाँ गया था। वह रंग नहीं खेलती, सिर्फ कुछ लोगों को पिटवाया था उनका मजाक उड़वाया करती है। लेकिन मुझे गरीब समझ कर उसने बख्श दिया।"

महफिल में अचानक जैसे आग बरस गई। मिसेज खन्ना की भी समझ में नहीं आया कि अब मामला कैसे सँभलें, वे कुर्सी से कस कर पीठ चिपका कर बैठ गई और दूसरी तरफ देखने लगीं। उन्होंने अपने पति के नए अपमान के बाद उन्हें क्षमा कर दिया था और किसी तरह उन्हें दुःख न पहुँचाना चाहती थीं। फिर इस समय उनकी समझ में नहीं आया कि पति का पक्ष लेकर बख्तियार से क्या कहें। वह ठीक ही तो कहता है, वहाँ जाता है तो किसी और को इससे क्या मतलब ?

खन्ना साहब हतबुद्ध थे। वे बख्तियार की कलई लीला के सामने इसी लिए खोलना चाहते थे कि उसे दिखा दें कि उसका आदर्श पुरुष कैसा है। लेकिन, उसने तो पलट कर डँस लिया।

बख्तियार बोला, "खन्ना साहब ! मैं आपका दोस्त हूँ, आप मुझे जो कुछ चाहें कह लें, मैं कतई बुरा न मानूंगा। लेकिन, मेहरबानी करके एसो बात न कहिए जिससे कोई शरीफ खातून लपेट में आए।"

अब खन्ना साहब की जबान खुली, क्या कहने हैं शरीफ खातून की शराफत के। रोज नए-नए मुरगे फँसाती हैं और छोड़ देती हैं। कभी आशीष मुखर्जी हैं, कभी बख्तियार रिजवी। मैं आपकी दोस्ती ही के नाते आप को उस फाहिशा के जाल से बचाना चाहता हूँ, वरना मुझे क्या लेना देना।"

"देखिए, खन्ना साहब ! अब आप बहुत कह चुके, अब बस कीजिए। आप की बातों का जो सही जवाब हो सकता है, वह इस वक्त मैं नहीं दे सकता; क्योंकि मिसेज खन्ना के सामने मैं कोई हलका लफज अपनी जबान से नहीं निकालना चाहता....रही आप से दोस्ती की बात, सो यकीन रखिए कि मैं कोई बच्चा नहीं हूँ और आप को अपने से ज्यादा समझदार भी नहीं समझता

हूँ। मैं आपका दोस्त था। अब आपका किरायेदार हूँ, इससे ज्यादा कुछ नहीं। आप दोस्ती क्या, बात करने के काबिल भी नहीं हैं।"

बख्तियार उठ बैठा, तो मिसेज खन्ना घबड़ा कर बोलीं, "अरे चाय तो पिये जाइए, साहब!"

"माफ कीजिएगा, मेरी तबियत ठीक नहीं है।" यह कह कर बख्तियार पलक मारते बाहर निकल गया।

● ● ●

१९

उस दिन से गोयल साहब का बर्ताव शकुन्तला के साथ वास्तव में बड़ा शालीन हो गया। वे उससे अधिक बात तो न करते, लेकिन जितनी देर करते, बड़ी हँसी-खुशी से करते। रुपया-पैसा पहले ही से उन्होंने शकुन्तला के हाथ में दे रखा था और इतनी तनातनी के दिनों में भी उसका हाथ रुपये, पैसे से तंग करने की बात भी न सोची थी, बल्कि इधर वे उसे और भी खुश करने की कोशिश करने लगे। उसके जरा-सा थके होने पर उसकी तबियत का हाल पूछना, नौकरों को हिदायतें देना कि उनसे भी अधिक वे मालकिन का ध्यान रखें, उसके कमरे की बत्ती को ठीक पढ़ने की जगह लगवा देना—बीसियों ऐसी-छोटी-छोटी बातों से उन्होंने साबित कर दिया कि जो कुछ भी हो शकुन्तला को उनसे अधिक प्रेम और सौहार्द कहीं और नहीं मिल सकता। कभी-कभी वे आकस्मिक रूप से उसके लिए कपड़े, मिठाई या इसी तरह के छोटे-मोटे उपहार भी ले आते थे।

शकुन्तला भी उनकी इन बातों को शालीनता पूर्वक स्वीकार करती। वह प्रत्येक उपहार को मुस्कुरा कर लेती और अपने लाभ के लिए मुंसिफ साहब के दिए हुए हर सुझाव को भी मान लेती। अपनी तरफ से वह कोई मौका ऐसा न आने देती, जिससे मुंसिफ साहब को कोई शिकायत पैदा हो। कहने का मतलब

यह कि गोयल परिवार की गृहस्थी की गाड़ी बड़े आदर्श ढंग से सीधी और साफ सड़क पर जा रही थी। यह ठीक है कि दोनों को मालूम था कि इस साफ सड़क पर कभी कभी कोई खतरनाक मोड़ आ सकता है जिस पर जरा-सा चूकने पर गाड़ी उलट कर चून-चूर भी हो सकती है। लेकिन, खतरनाक मोड़ों के भय से यात्रा तो नहीं रोकी जा सकती। दुर्घटनाएँ होती ही रहती हैं, पर रास्ता कभी बन्द नहीं होता और कम-से-कम अभी तो राह बड़े मजे में कट रही थी।

लेकिन, कुछ दिनों से गोयल साहब को एक बात बड़ी अजीब लग रही थी। जितना शकुन्तला का अधिक ध्यान रखते थे, उतनी ही वह अपनी तरफ से वेपरवा होती जा रही थी। अपने श्रृंगार के प्रति उसने कभी इतनी वेपरवाई नहीं बरती थी। शीशी में रखे-रखे नेल पॉलिश सूख गई थी, लिपास्टिक कहीं खो गई थी और क्रीम भी जम कर सेल खड़ी बन चुका था (क्योंकि शीशी कई हफ्तों तक खुली पड़ी रही थी)। पाउडर खत्म हुआ, तो फिर आया ही नहीं। नाखून काटने की कैंची महाराजिन का छोटा लड़का चोरी से उठा ले गया था और उससे फूल बनाने के लिए कागज काटते-काटते एक टीन का टुकड़ा भी काटने लगा था, कैंची उसी टूटी-फूटी हालत में थी। बाथरूम में शैम्पू की बोतल औंधे मुँह पड़ी थी। मामूली साबुन, तेल और माथे की बिन्दी के अलावा शकुन्तला के दैनिक व्यवहार में और कोई श्रृंगार प्रसाधन आता ही न था। गोयल साहब कई साड़ियाँ लाये थे। शकुन्तला ने उनका मन रखने के लिए उस समय उन्हें पहन भी लिया था, लेकिन फिर वे बक्स में गई तो बाहर निकली ही नहीं। शकुन्तला के शरीर पर अब सफेद या प्रिंटेड वॉयल, या ज्यादा से ज्यादा सफेद जॉर्जेट की साड़ी के अलावा कोई कीमती कपड़ा दिखायी ही नहीं देता था! रेशमी कपड़ों से जैसे उसे चिढ़ हो गई थी। हद तो यह हो गई कि कभी-कभी वह बाल सुखाने के बाद चोटी करना भी जरूरी नहीं समझती और उसके घने और लम्बे बाल उसके कंधों और पीठ को ढँके रहते।

किन्तु, यह न समझना चाहिए कि वह जीवन के प्रति उदासीन हो गई थी। आलोक को वह जी भर कर खिलाती; नौकरों से सहानुभूति पूर्ण व्यवहार भी करती और उनसे गलती होने पर उन्हें फटकार भी देती। नौकर-चाकर भी अब मालकिन के व्यवहार से पूर्ण संतुष्ट थे। मेहमानों का स्वागत वह उत्साह-पूर्वक करती। उसके सास-ससुर गंगा नहाने आए, तो उनके साथ वह भी पहली बार त्रिवेणी स्नान कर आई। स्थानीय मित्रगण भी आते ही रहते। मिस मेहता तो परीक्षा की कापियों की जाँच करते-करते थक जाने पर लगभग रोजाना ही शाम को उसके यहाँ आ बैठती। बख्तियार अक्सर आता ही रहता और आशीष

भी कभी-कभी आ जाता। कहने का मतलब यह कि शकुन्तला के जीवन में कोई ऐसा परिवर्तन नहीं दिखायी देता था, जिससे उसे दुखी समझा जाए।

हाँ, एक परिवर्तन उसके जीवन में अवश्य हो गया था, लेकिन उसका पता उसके बाहरी व्यवहार में बिल्कुल नहीं लगता था। उसे अध्ययन का शौक हो गया था। सिविल लाइन्स की पुस्तकों की दुकानों के सभी मालिक उसे नियमित ग्राहक की हैसियत से पहचान गए और उसकी अलमारियों में शरत के उपन्यासों, शॉ और इब्सन के नाटकों और हिन्दी अंग्रेजी के प्रमुख कवियों की कृतियों का ढेर बढ़ता जा रहा था। उसने उर्दू कविता की भी प्रशंसा सुनी थी, लेकिन इस मामले में मजबूरी थी। उर्दू वह जानती नहीं थी और दो-एक पुस्तकें जो हिन्दी में इस विषय पर थीं, उन्हें देख कर उर्दू-कविता के बारे में उसकी कुछ अच्छी राय नहीं बन सकी थी। अंग्रेजी की आधुनिक कविता भी उसके दिमाग को चकरा कर रख देती थी, इसलिए माथुर साहब के हजार जोर देने के बावजूद उसने इलियट की कविता-पुस्तक न खरीदी। एक बार खरीदने गई थी, तो उसके बजाय मोपासाँ की कहानियों का संग्रह खरीद लिया। रात के एक-एक बजे तक उसके कमरे की बत्ती जलती रहती। गोयल साहब सोते से उठ-उठ कर आते और समझाते, "अब बंद भी करो, तबियत खराब हो जाएँगी।" लेकिन उसका जवाब हमेशा यही होता, "बस एक पेज रह गया है।" घण्टे आध घंटे के बाद गोयल साहब फिर उठते, तो देखते कि अभी एक पेज खत्म नहीं है। जब वे बल्ब तोड़ने या पुस्तकें जलाने की बेबुनियाद धमकी देते, तभी शकुन्तला हँस कर पुस्तक बन्द करती और बत्ती बुझाती थी।

बात साहित्य के अध्ययन तक ही सीमित रहती, तो गनीमत थी। मॉम को पढ़ने के बाद उसे दर्शन शास्त्र पढ़ने का भी शौक चर्राया और अब उसकी ओर पुस्तक विक्रेताओं को भारतीय तथा पाश्चात्य दर्शन की पुस्तकों के आर्डर भी मिलने लगे। इसमें संदेह नहीं कि इनकी भारी पारिभाषिक शब्दावली, उलझे हुए वाक्य-विन्यास और दो-दो पृष्ठों के पैराग्राफ उसके दिमाग को बिल्कुल हिला कर रख देते थे और उसके पल्ले दस प्रतिशत से अधिक नहीं पड़ता था, लेकिन फिर भी न मालूम कौन-सा आकर्षण उसे इस विषय से बाँधे हुए थे। कविता उसे अब भी प्रिय थी, पर अब वह रवि बाबू से होते हुए अरविंद की कविताओं का रसास्वादन करने लगी थी।

गोयल साहब ने उसकी रुचि के इस परिवर्तन पर उसका काफी मजाक उड़ाया, लेकिन शकुन्तला पर सिवा मुस्कुराने के और कोई प्रतिक्रिया दिखायी

ही नहीं देती थी। सिर्फ उसी के सामने नहीं, बल्कि उसके परिचितों के सामने भी वे कभी-कभी उसे गार्गी और मैत्रेयी कहते, कभी पण्डित रमा देवी की महिमा मण्डित करते। लेकिन शकुन्तला मुस्कुराने के अलावा कोई जवाब न देती। और जब मजाक का जवाब न दिया जाए, तो मजाक स्वयं खत्म हो जाता है।

उसकी रुचि और व्यवहार के परिवर्तन की उसके मित्रों पर विभिन्न प्रतिक्रिया हुईं। बख्तियार ने इस बात को अपने-आप नोट नहीं किया। पहले भी उसने कभी इस पर ध्यान देने की जरूरत नहीं समझी कि क्या शकुन्तला पहनती-ओढ़ती है; इसलिए उसके कपड़े कब रंगीन से सफेद हो गए और होंठों से लिपस्टिक कब उड़ गई इसका उसे पता ही नहीं चला। वह आता, तो घुमा-फिराकर उसकी आंखों की ही ओर देखा करता। शकुन्तला की आंखों का रस जैसे का तैसा था, उसकी मुस्कुराहट में कोई कमी नहीं आई थी।

आशीष अब पहले से ज्यादा आने लगा था। उसके लिए शकुन्तला का वेश-परिवर्तन बिल्कुल नगण्य हो, ऐसी बात तो नहीं थी—उसकी गम्भीरता की ओर उन्मुख प्रवृत्ति देखकर उसे मानसिक सन्तोष जरूर होता था— लेकिन उसके लिए इसका विशेष महत्व न था। महत्त्वपूर्ण बात आशीष के लिए सिर्फ यह थी कि पति-पत्नी के सम्बन्ध फिर बहुत मधुर हो गए थे और आशीष को मालूम होता था, जैसे उसकी कोई बड़ी भारी प्रतिज्ञा पूरी हो गई है, हालांकि उसे अच्छी तरह मालूम था कि उसने किसी प्रकार की प्रतिज्ञा किसी के सामने नहीं की है, किन्तु बात तो ठोस तथ्य की नहीं; बल्कि अनुभूति की ही थी। सबसे ज्यादा यह परिवर्तन मिस मेहता को पसन्द आया था। वे पवित्रतावादी किस्म की महिला थीं। हॉस्टल की लड़कियों के बनाव-शृंगार से तो उनका जी ऊबा हुआ था ही, उन्हें यह देखकर और ज्यादा परेशानी होती थी कि यूनिवर्सिटी की लेडी प्रोफेसर्स भी जैसे पढ़ाने के उद्देश्य से नहीं, अपने शृंगार-प्रदर्शन के लिए आती हैं। चुनांचे शकुन्तला के, जिसे वे मान बैठी थीं कि कभी अच्छे ढंग नहीं अपना सकेगी, इस सहसा परिवर्तन से वे चकित हो उठीं और उन्हें विश्वास हो गया कि कोई भी व्यक्ति सुधार की सम्भावनाओं से परे नहीं है। (इस बात पर माथा-पच्ची करने की उन्होंने कोई जरूरत नहीं समझी कि यह 'सुधार' किसी के उपदेशों के जरिए हुआ हैं या अन्य परिस्थितिवश)। इसी कारण वे अब उसे दिल से अपनी बराबरी का समझने लगी थीं और उनका इधर की अधिक घनिष्ठता का यही रहस्य था।

मिस मेहता अपने सन्तोष को अपने हृदय तक ही सीमित नहीं रखती थीं। वे

शकुन्तला के इस प्रशंसनीय परिवर्तन की उसके सामने भी खुलकर प्रशंसा करती थीं और अपने अध्यापक वर्ग में भी। अध्यापकों को इससे मिस मेहता ही की भाँति सन्तोष हुआ था। पाण्डेय जी पहले तो कुछ न बोले थे, लेकिन जब शकुन्तला की प्रशंसा काफी अधिक होने लगी, तो उन्होंने बहती गंगा में हाथ धोने का अवसर छोड़ना ठीक न समझा। अब यह चर्चा उठने पर उनके रिमार्कों का तात्पर्य कुछ इस तरह का होता था—'शकुन्तला दरअसल बहुत अच्छी लड़की है। यह वह पहले से जानते थे और इसीलिए अन्य छात्राओं की अपेक्षा उसे अधिक प्यार करते थे। दुर्भाग्य से उसमें यह कमजोरी है कि गुस्से के झोंक में आगा-पीछा भूल जाती है और ऊटपटांग व्यवहार करने लगती है। लेकिन, फिर अपने को खुद ही सँभाल भी लेती है। उसका भविष्य उज्ज्वल है, इसमें सन्देह नहीं। उनसे पूछा जाता कि किस दिशा में शकुन्तला का भविष्य उज्ज्वल है, तो शायद वे बता न पाते। लेकिन, किसी ने उनसे जिरह करने की जरूरत न समझी। सभी जानते थे कि उनका क्या मतलब है।

मिस मेहता ने कई बार शकुन्तला को भी आश्वासन दिया कि उसकी तरफ से कुछ लोगों को जो गलतफहमी हो गई थी, वह अब दूर हो गई है और सभी लोग सम्मान से उसका नाम लेते हैं। शकुन्तला इन बातों पर सस्मित धन्यवाद देने के अलावा और कोई प्रतिक्रिया न दिखाती। मिस मेहता ने कई क्लबों में आने के लिए उसे निमन्त्रण दिया, लेकिन उसने हर बार माफी माँग ली। कहा, कि "घर-गृहस्थी के कामों के बाद सांस्कृतिक केन्द्र ही के लिए मुश्किल से थोड़ा-सा समय निकाल पाती हूँ, और कहाँ आ-जा सकती हूँ? फिर आजकल गर्मी भी पड़ने लगी है। घर से बाहर निकलने को जी ही नहीं चाहता।" मिस मेहता कहना चाहती थीं कि सांस्कृतिक केन्द्र के नाच-कूद में क्यों जिन्दगी बरबाद कर रही हो, कुछ इण्टलेकचुअल लाइफ भी अपनाओ। लेकिन शकुन्तला ने कुछ ऐसे लहजे में असमर्थता प्रकट की थी कि उन्होंने अपने दिल की बात कहना ठीक न समझा और उसके साथ इस बात में सहमति प्रकट कर दी कि हाँ, गर्मियों में कुछ नहीं होता।

मिस मेहता अगर यह समझती हों कि उनके आश्वासनों पर शकुन्तला को विश्वास हो गया है, तो यह उनका भ्रम था। शकुन्तला को मालूम था कि इस प्रशंसा का दूसरा रुख क्या है। उसे इस सिलसिले में प्रत्यक्ष अनुभव था। एक बार पुस्तकों की दुकान में उसे दो विद्यार्थी मिले। ये दोनों अभिन्न मित्र थे, हमेशा साथ रहते थे और साहित्य-निकेतन में अक्सर और सांस्कृतिक केन्द्र में कभी-कभी जाया करते थे। शकुन्तला को देखकर दोनों ने उससे दो-चार मिनट

अत्यन्त सम्मानपूर्वक बातें कीं। कुछ देर बाद कुछ और खरीदारी करके वह रिक्शे की तलाश में बढ़ रही थी, तो उससे दस कदम आगे दोनों जाते दिखायी दिए। उनकी बातें साफ सुनाई दे रही थीं। एक ने कहा, "अब तो शकुन्तला जी के रंग-ढंग ही बदल गए हैं।"

दूसरा बोला, "हाँ जी, नौ सौ चूहे खाकर बिल्लो रानी भगतिन बनी हैं।"

पहले ने कहा, "जवानी उतर रही है, तो भगतिन बनना ही चाहिए।"

दूसरा बोला, "जरूर ऐसी बात है। कद्रदानों ने आना कम कर दिया होगा।"

पहले ने कहा, "यह भी हो सकता है कि नई तरह के कद्रदानों के लिए नया स्वांग रचा जा रहा हो।"

इसी तरह की बातें करते-करते एक की निगाह पीछे की तरफ पड़ी, तो उसके मुँह का वाक्य झटके के साथ मुँह ही में रुक गया। दूसरे ने चौंक कर पीछे देखा, तो उसका भी खून सूख गया। 'बिल्लो रानी' दबे पैरों उनके पीछे ही आ रही थीं। दोनों लड़के जल्दी से पास वाले रेस्तराँ में घुसकर भीड़ में गायब हो गए। शकुन्तला हँस पड़ी।

शकुन्तला के स्वभाव में भी काफी परिवर्तन हो गया था। नौकरों को वह कभी-कभी डांट-फटकार दिया करती थी, लेकिन दरअसल उसे अब किसी बात पर गुस्सा आता ही नहीं था। डांट खाने के बाद जब कोई नौकर सामने से गर्दन झुकाये हुए हट जाता, तो वह मुस्कुरा उठती। मालूम होता था कि नाराज और खुश होने का दर्शन जीवन में भी वह इसी तरह करती है जैसे स्टेज पर हो। मनोविश्लेषण किया जाए, तो यह भी कहा जा सकता है कि अभिनय करते समय अभिनेता को अपने हृदय में भी वही भावनाएँ पैदा करनी पड़ती है, जो नाटक के पात्र की होती हैं। लेकिन, एक तो हमें इतने बारीक मनोविश्लेषण की जरूरत ही नहीं है, दूसरे चाहे प्रत्यक्ष जीवन में भी रंगमंच की तरह शकुन्तला के हृदय में नाराज और खुश होते वक्त असली गुस्सा या खुशी की असली अनुभूति होती हो, लेकिन होती वह रंगमंच की तरह क्षणिक ही थी, ठहरती जरा देर भी नहीं थी। ऐसा मालूम होता था कि वह अपने सारे जीवन को एक अभिनीत नाटक समझ रही है—अपने शरीर और मन को अभिनेता और अपनी आत्मा को दर्शक।

उसके लिए प्रेम और घृणा की अनुभूतियाँ किसी गुजरे हुए जमाने की यादगारें रह गई थीं। न किसी को देखकर अब उसका दिल धड़कता था, न दिमाग में कड़वापन भरता था।

इसीलिए सिविल लाइंस में घूमते समय एक दिन उसे अचानक घर के लिए कुछ जरूरी सामान खरीदने की याद आई, तो सबसे पास वाली दुकान में घुस गई। साइनबोर्ड के एक एक फुट लम्बाई के अक्षर दुकान के 'यूनिवर्सल प्रॉवीजंस' होने की घोषणा कर रहे थे, लेकिन उसके तेजी से बढ़ते हुए पैरों में वापस लौटने की तो क्या ठिठकने की थी इच्छा नहीं हुई। खन्ना जी ने उसे दूर से देखा, तो चौंक उठे। पहले तो उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ अपनी आँखों पर। शकुन्तला यहाँ क्या करने के लिए आ सकती है? लेकिन जब शकुन्तला ने खुद ही उनके पास आकर नमस्कार किया, तो उन्हें यह असंभव तथ्य भी स्वीकार करना पड़ा। वे दिल में कुछ डर रहे थे कि कहीं वह कोई नई शरारत करने के इरादे से तो नहीं आई है; लेकिन जब उसने सहज मुस्कान के साथ अपनी इच्छित वस्तुओं का आर्डर दिया और सामान आने और पैक होने के समय में खन्ना जी के स्वास्थ्य के बारे में साधारण-सा औपचारिक प्रश्न करके रह गई, तो खन्ना साहब के सामने स्वयं की आशंका निरर्थक हो गई। वे स्तम्भित थे—उन्होंने उसकी वेश-भूषा में भी कभी इतनी सादगी नहीं देखी थी और व्यवहार में तो इस गम्भीरता की कल्पना वे क्या, कोई भी नहीं कर सकता था। सामान लेकर वह चलने के लिए उद्यत हुई, तो खन्ना जी अपनी विस्मय की स्थिति से चौंके। उन्हें यह बात अजीब मालूम हुई कि शकुन्तला परिचय के इतने दिनों बाद उनकी दुकान में आई है, तो उसके साथ साधारण ग्राहकों जैसा व्यवहार किया जाए। उन्होंने दृढ़ स्वर में कहा, "यह बात बिल्कुल असंभव है कि आप चाय पिये बगैर चली जाएँ।"

शकुन्तला ने मुस्कुरा कर कहा, "आपका इरादा मेरे यहाँ की चाय का बदला लेने का तो नहीं है?"

"ही ही ही ही, कैसी बातें करती हैं आप भी? ही ही ही।" खन्ना जी को इसके अलावा कोई उत्तर न सूझा। साथ ही उन्हें यह भी खयाल हुआ कि दुकान में ऐसी कोई कायदे की जगह नहीं है, जहाँ उसे बिठाकर चाय पिलाई जाए। पुरुष मित्रों के लिए तो वे अपनी मेज ही पर चाय मँगा लिया करते थे, लेकिन उस कागज-पत्रों से भरी मेज पर शकुन्तला को चाय नहीं पिलानी चाहिए थी। साथ ही उन्हें यह भी पसन्द न था कि उनके इस अभ्यर्थना कर्तव्य की

ओर दुकान के नौकर-चाकर और ग्राहकगण चुराई चुराई नजरों से घूर-घूरकर देखें। चुनांचे उन्होंने प्रस्ताव किया कि 'रामाज' तो पास ही है, वहीं चलकर चाय क्यों न पी जाए। शकुन्तला को भी वापस लौटने की कोई खास जल्दी नहीं थी, इसलिए उसने यह बात मान ली।

'रामाज' में आकर बैठे, तो चाय आने तक बिल्कुल खामोशी रही। शकुन्तला आशा कर रही थी कि खन्ना जी कुछ कहेंगे; क्योंकि कुछ कहने ही के लिए तो वे उसे यहाँ लाए हैं और खन्ना जी की समझ ही में नहीं आ रहा था कि वे क्या कहें। इसलिए चाय आने पर शकुन्तला को ही बर्फ की दीवार तोड़नी पड़ी। बोली, "खन्ना साहब, उस दिन की बातों का आपने बुरा तो नहीं माना ? बुरा माना हो, तो मैं उसके लिए माफी माँगती हूँ। गोयल साहब की हँसोड़पन की आदत ही है, उनका कोई मतलब नहीं था। फिर भी मैं आपसे क्षमा याचना करती हूँ।"

"ही ही ही ही, आप तो बड़ा लज्जित कर रही हैं, ही ही ही ही," खन्ना जी बोले, "माफी माँगने की तो कोई बात ही नहीं है। गोयल साहब का नेचर वाकई बहुत अच्छा है, वरना अफसर लोग तो हमेशा अफसरी की शान में रहते हैं। मैं मजाक का कभी बुरा नहीं मानता। मुझे अपने कम्बख्त बिजिनेस से फुर्सत नहीं मिलती, वरना कभी आकर उनके दर्शन करता।"

खन्ना जी ने आशा की थी कि शकुन्तला इस पर फिर किसी इतवार को अपने यहाँ आने का निमन्त्रण देगी। उन्हें शकुन्तला से अब उस तरह की दिलचस्पी नहीं थी जैसी उसके घर पिछली बार जाते समय थी, लेकिन वे चाहते थे कि उसके सहारे गोयल साहब से दोस्ती हो जाए, तो अच्छा ही है। अफसर लोगों से जान-पहचान होना अच्छा ही होता है। लेकिन शकुन्तला नें तो खन्ना जी को अप्रत्याशित रूप से निराश कर दिया। इस बात पर वह सिर्फ मुस्कुरा कर रह गई।

फिर भी खन्ना जो को यह बिल्कुल सह्य न था कि इस अवसर पर वार्तालाप शकुन्तला की क्षमा याचना के साथ समाप्त हो जाए। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या बात करें, फिर भी कुछ बात करना तो जरूरी था, इसलिए बोले, "बख्तियार साहब से आप लोगों का हाल मालूम होता रहता है।" यह बात न केवल सुफैद झूठ थी, बल्कि शकुन्तला को भी मालूम था कि झूठ है। बख्तियार ने तीन महीने से खन्ना जी की तरफ झाँका भी नहीं था; हर महीने पीरू के हाथ किराया भिजवा कर रसीद मँगवा लिया करता था। उसने खन्ना जी से अपने टूटे हुए सम्बन्धों का किसी और बात के सिलसिले में

उल्लेख किया था, तो शकुन्तला ने खोद-खोदकर पूछ लिया था कि झगड़ा किस तरह हुआ? बख्तियार उस बात को बताना तो न चाहता था, लेकिन शकुन्तला इस तरह उसके पीछे पड़ी थी कि उसे कुछ-न-कुछ बताना ही पड़ता। वह वैसे भी झूठ बोलने का अभ्यस्त न था और शकुन्तला के सामने झूठ बोलने की तो वह कल्पना ही नहीं कर सकता था। इसलिए उसने सच्ची बात बता दी।

शकुन्तला ने खन्ना जी को झूठा साबित करने की जरूरत न समझी। सिर्फ मुस्कुराकर रह गई। सौजन्यता के नाते कुछ कहना भी जरूरी था, इसलिए बोली, "बख्तियार साहब बहुत अच्छे आदमी हैं।"

खन्ना जी बख्तियार की प्रशंसा के चलते-फिरते लहजे को न समझ पाये। उन्हें उसकी प्रशंसा का किसी-न-किसी रूप में विरोध करना जरूरी मालूम हुआ। बोले, "वैसे तो बहुत अच्छे आदमी हैं; लेकिन, एक बात मैं आपको बताऊँ, मुसलमानों का एतबार नहीं करना चाहिए।"

"लेकिन, आप भी तो उन्हें अपना किरायेदार बनाये हैं।" शकुन्तला ने मुस्कुराकर कहा।

"अरे साहब, मैं तो लोगों के कहने-सुनने में आ गया।" खन्ना जी को बातचीत का मौका मिला। उन्होंने बख्तियार की काल्पनिक बुराइयों का बखान करना शुरू किया और दस मिनट तक बोलने के बाद अपने भाषण का संक्षिप्तीकरण इस प्रकार किया, "और मेरी दूसरी बात है, मैं तो सेर के लिए सवा सेर हूँ। लेकिन, प्रतिष्ठित महिलाओं को ऐसे आदमी को मुँह न लगाना चाहिए।"

धैर्य पूर्वक उनकी पूरी बात सुनकर शकुन्तला ने पूछा, "खन्ना जी, आपकी उम्र कितनी होगी?"

खन्ना जी अचकचा गए। बख्तियार की बात का उनकी उम्र से क्या सम्बन्ध हो सकता है? उनकी उम्र! वे छियालीसवाँ वर्ष पार कर रहे थे, लेकिन व्यवसायी आदमी थे। अपनी सम्पत्ति को कम कहकर बताने के आदी। बोले, "चालिसवाँ रन कर रहा है.........लेकिन आपको मेरी उम्र.........!"

उनके प्रश्न की उपेक्षा करके शकुन्तला बोली' "मेरा पच्चीसवाँ चल रहा है। यानी मैं आप से पन्द्रह वर्ष छोटी हूँ। मुझे आपको कुछ समझाने-बुझाने का अधिकार तो नहीं है, लेकिन कभी-कभी कुछ बातों को प्रकाश में लाने की जरूरत पड़ ही जाती है। आप बुरा न मानें तो एक बात कहूँ।"

खन्ना साहब घबड़ाते हुए बोले, "नहीं साहब, बुरा क्यों मानूँगा ? आप जरूर कहिए।"

"देखिए, आपकी जवानी की उम्र बीत गई है, जब आदमियों की बेवकूफियों को भी हँसकर टाला जा सकता है। अब आप इधर-उधर की बातें छोड़कर मामूली तरह से रहिए।" शकुन्तला ने कहा।

खन्ना जी को यह उपदेश अच्छा न लगा। काफी रूखेपन से बोले, "क्या मतलब है आपका ?"

"आपको बुरा लग रहा हो तो मैं बगैर कुछ कहे-सुने क्षमा याचना करके जाने के लिए तैयार हूँ।"

खन्ना जी को झखमारकर रुखाई का लहजा छोड़ना पड़ा। बोले, "नहीं, आप अपनी बात जरूर कहिए।"

"मैं आप से वह बात कह रही हूँ, जो कोई भी औरत अपने लिए नहीं कह सकती। मैंने अपनी छोटी-सी जिन्दगी में बहुत शरारतें की है, लोगों की सेक्सुअल हंगर उभार कर और उन्हें अँगूठा दिखाकर उनके तिलमिलाने का तमाशा देखना मेरी खास हॉबी रहा है। पाण्डेय जो जैसे लोगों ने इसका फायदा भी उठाया है। लेकिन मेरा उद्देश्य उन्हें खुश करना नहीं, खुद मजा लेना रहा है। फिर भी हर बात की एक हद होती है, मैं भी अपनी शरारत से ऊब चुकी हूँ। दूसरे लोग मेरा रवैया समझ गए हैं, लेकिन शायद आप अभी तक नहीं समझे। देखिए, सन् छियालिस के शारदोत्सव में आपके साथ जो दुर्घटना हुई, उसके लिए मैं ही पूरी तरह जिम्मेदार हूँ। पाण्डेय जी ने आपसे रुपए ऐंठने के खिए मुझे आगे कर दिया और मैंने खुशी से वह काम किया। आपकी कलारुचि के बारे में वह उस समय क्या राय रखते थे और आज भी क्या राय रखते हैं, यह आप न जानें वही अच्छा रहेगा। जहाँ तक आपके प्रति मेरे आकर्षण का प्रश्न है, उसके बारे में·······मैं क्या कहूँ, आप खुद समझदार हैं; कभी ठंडे दिमाग से सोचिएगा तो इस बात का बेतुकापन जाहिर हो जाएगा। लेकिन फिर भी यह न समझिए कि मुझे आपके साथ कोई हमदर्दी नहीं है। ऐसी बात होती, तो आपके सामने झखमारने क्यों आती ? मामूली इन्सानी हमदर्दी के अलावा मैं यह भी महसूस करती हूँ कि आप को मेरी वजह से बहुत कष्ट हुआ है। मेरा कर्तव्य है कि जिस गलत रास्ते पर आप मेरी शरारत की वजह से बढ़े थे, उस पर और आगे बढ़ने से आप को रोक दूँ। आप यकीन रखिए कि मैं आप से अब भी सम्बन्ध रखूँगी—आप नहीं रखना चाहेंगे, तो भी अपनी तरफ से रखूँगी; क्योंकि मैं नहीं चाहती कि कोई मुझसे

नाखुश रहें। लेकिन, ये सम्बन्ध सीधी-सादी मित्रता के होंगे, अब इनमें किसी तरह की शरारत को दखल न होगा। मेरे घर का सौदा अब आप ही के यहाँ से जाया करेगा। मैं आपके घर जाकर मिसेज खन्ना का दिल अपनी तरह से साफ कर दूँगी। अच्छा, अब चलूँगी। कोई अनुचित बात मुँह से निकल गई हो, तो उसके लिए माफी माँगती हूँ।"

●●●

२०

यह न समझ लेना चाहिए कि शकुन्तला ने खन्ना जी से जो कुछ कहा, वह इस उम्मीद में कि खन्ना जी उसकी स्पष्टोक्ति से वाकई सीधे रास्ते पर लग जायेंगे। स्त्रियों में वैसे भी अंतर्दृष्टि पुरुषों से अधिक होती है और साधारणतः वे लोगों को पहचानने में भूल नहीं करतीं। अपरिपक्व नवोढ़ाओं की बात दूसरी है, वरना जिस स्त्री ने जरा-सी भी जिन्दगी देखी है, वह आदमियों के बारे में साधारणतः धोखा नहीं खाती—खाती भी है, तो उस समय, जब किसी तरह का झटका देकर प्रकृति उसके जीवन के संतुलन को किसी असाधारण रूप में कायम रखना चाहती है।

शकुन्तला को अच्छी तरह मालूम था कि नहलाने-धुलाने से गधे को घोड़ा बनाने की जितनी आशा की जा सकती है, उससे अधिक खन्ना जी के सुधार की आशा उपदेशों के आधार पर नहीं की जानी चाहिए। उसने खन्ना जी से जो कुछ कहा था, वह सिर्फ अपनी अंतरात्मा को संतुष्ट करने के लिए। इसीलिए वह मौका मिलते ही उनकी अनुपस्थिति में एक दिन वह उनके घर भी चली गई। खन्ना जी अपनी दुकान में थे। अभी यूनिवर्सिटी खुली नहीं थी, इसलिए मिसेज खन्ना अकेली ही घर पर मिल गईं। शकुन्तला उनसे अकेले में बात करना चाहती थी, इसीलिए वह जान-बूझकर ऐसे मौके पर आई थी।

तीन-चार महीने पहले शकुन्तला आती, तो मिसेज खन्ना को बगैर बताए ही अंदाजा हो जाता कि वह कौन है? लेकिन, इस समय वे उसे बिल्कुल नहीं पह-

चान सकीं। शकुन्तला के रहन-सहन के परिवर्तन को इधर दो महीने से ही लोगों ने नोट किया था। यूनिवर्सिटी बन्द ही थी, बख्तियार; खन्ना जी के यहाँ जाता नहीं था, उन्हें मालूम भी कैसे होता ?

इसलिए शकुन्तला ने जब अपना परिचय दिया, तो मिसेज खन्ना चकरा गईं। यह तो उन्हें किसी ने नहीं बताया था कि शकुन्तला इतनी सादगी से रहती है। सबों ने यही बताया था कि बहुत बनी-ठनी रहती है। उसके चरित्र के बारे में जो बातें मशहूर थीं, उनमें उसके बनाव-शृंगार की प्रवृत्ति तो मेल खाती थी, लेकिन उसकी सफेद वॉयल की धोती और पाँवों में छह रुपए वाली चप्पल का तो उस कल्पना चित्र से सामंजस्य ही नहीं स्थापित हो सकता था, जो लीला ने शकुन्तला के लिए बना रखा था।

लेकिन लीला कोई कलाकार न थी कि उसका भाव-बोध उसके सारे मानसिक जीवन को आच्छादित कर दे। बहरहाल शकुन्तला वही स्त्री थी, जिसने लीला को महीनों कुढ़ाया था। कौन जानता है यह सादगी का ढोंग भी नए लोगों को नई तरह फँसाने के लिए रचा गया हो। यह भी मुमकिन है कि शकुन्तला खासतौर से लीला को अपनी 'सच्चरित्रता' से प्रभावित करने के लिए यह बहुरूपियापन कर रही हो। कुल मिलाकर शकुन्तला की सादगी ने लीला के अन्दर उसके प्रति घृणा गहरी ही कर दी।

खैर घृणा बढ़ गई तो बढ़ जाए, लोक-व्यवहार भी कोई चीज हुआ करता है। लीला को जबरदस्ती मुस्कुरा कर कहना पड़ा, "आप के दर्शन करके बड़ी खुशी हुई। नाम तो बहुत सुना था आपका.......मैं आप से मिलना भी चाहती, थी लेकिन कोई अवसर नहीं मिलता था।"

"कोई खास काम था आपको मुझसे ?" शकुन्तला ने वास्तविक विस्मय के साथ पूछा।

लीला कुछ गड़बड़ा गई। वह इस सीधे-सादे प्रश्न की आशा नहीं कर रही थी, आशा कर रही थी किसी नई नाटकीयता की। उसने वही उत्तर दिया, जो देना चाहिए था, यानी यह कि कोई काम नहीं था, यूँ ही मिलना चाहती थी। लेकिन, यह बात भी उसने जिस बौखलाहट के साथ कही कि शकुन्तला पर उसका झूठ खुल गया। शकुन्तला पूरी तरह यह आशा करके आई थी कि लीला का व्यवहार उसके साथ काफी रुखाई का होगा। लेकिन, सीधे प्रश्न पर लीला की बौखलाहट देख कर उसे हँसी आ गई। वह बिल्कुल भूल गई कि वह किन ऊँचे उद्देश्यों से प्रेरित होकर अपनी महानता से अपने विरोधी का हृदय परिवर्तन करने के लिए आई थी। अब वह केवल एक नारी की हैसियत से अपनी प्रतिद्वंद्विनी को देख रही थी।

शब्द कमी-कमी वास्तविकता को सरकार करने में असमर्थ हो जाते हैं। शकुन्तला लीला को अपनी प्रतिद्वंद्विनी की तरह देख रही थी। इसका मतलब यह नहीं है कि उन दोनों में किसी पुरुष को लेकर प्रतिद्वंद्विना थी। बात सिर्फ इतनी थी कि लीला इस समय उसके सम्पूर्ण नारीत्व, बल्कि सारे व्यक्तित्व को चुनौती देती हुई मालूम हुई। शकुन्तला अपनी समस्त शालीनता और नई ओढी हुई गंभीरता के बावजूद अपने में इतना विश्वास नहीं पैदा कर सकी थी कि लीला की निगाहों की उपेक्षा कर जाती। पुरुषों का अपने प्रति जो भी मत हो उसकी उपेक्षा कर सकती थी, लेकिन एक नारी को उसकी समझ में उसकी तरफ से कोई भ्रम अपने मन में रखने का अधिकार नहीं था। लीला को समझ लेना चाहिए था कि वह किसलिए आई है और अगर वह नहीं समझी, तो इस नासमझी की उसे सजा मिलनी चाहिए।

शकुन्तला हँस कर बोली, "खैर आपस में मिल-जुल कर खुशी तो होती ही है। मैं भी आप से मिलता चाहती थी, इसीलिए आ गई। लेकिन, यह बताइए कि मेरे बारे में आपको किसने बताया। बल्कि मेरा कौतूहल क्षमा करें तो मैं यह मी पूछूँ कि मेरे बारे में आप को क्या बताया गया।"

अब लीला और घबड़ायी। यह तो अजीब तरह की स्त्री है! हर स्त्री अपने बारे में ऐसी-वैसी बात टालना ही चाहती है और यह है कि घर पर ही नहीं आई है, सर पर भी चढ़ी आती है। 'क्या किया जाए? कुछ गर्मागर्म सुना दी जाए इसे? लेकिन जो इतनी बेशर्म हो कि अपनी बदनामी को खोद-खोद कर उखाड़े, उस पर किसी बात का क्या असर पड़ेगा? और अगर इसने कहीं पलट कर कुछ कहना शुरू कर दिया, तो क्या मैं इसका मुकाबला कर सकूँगी? इसने तो अपनी इज्जत भून खायी है, मैं कैसे इस छीछालेदर से निकल सकूँगी।' चुनांचे लीला ने समझदारी के साथ बात को खत्म ही कर देना चाहा, इसलिए हँसकर बोली, "आप को कौन नहीं जानता? मैं यूनिवर्सिटी की स्टूडेण्ट हूँ और कम-से-कम संस्कृति सम्बन्धी इतना सामान्य ज्ञान तो रखती ही हूँ कि नगर की सबसे कुशल अभिनेत्री और नाटच संचालिका के नाम से परिचित हो जाऊँ।"

शकुन्तला को इस बनावटी और भारी भरकम शब्दावली के पीछे अनायास ही उभर आने वाला व्यंग साफ दिखायी देने लगा। वह डट कर दो-दो हाथ करने के लिए तैयार हो गई। बोली, 'सिर्फ इतनी ही बात है?"

"सिर्फ क्यों? इतनी बात क्या कम है?" लीला ने अपनी मुस्कान कायम रखते हुए कहा।

"इसका मतलब यह है कि आप को भी नाट्य-कला में काफी दिलचस्पी

है। यह तो बड़ी खुशी की बात है। इस कमबख्त शहर में अभिनेता बनने के इच्छुक लोग तो मक्खियों की तरह मँड़राया करते हैं, लेकिन अभिनेत्रियाँ ढूँढ़े भी नहीं मिलतीं। इसीलिए मैं हर एक ऐसी महिला को, जिसे इस ओर दिलचस्पी है, अपने साथ घसीटने की कोशिश करती हूँ। आप अगर हमारे साथ आ जाएँ तो सांस्कृतिक केन्द्र की बहुत सी मुश्किलें हल हो जाएँ। अब आप को मैं न छोड़ूँगी।"

यह कह कर शकुन्तला हँसने लगी। हँसी में थोड़ा साथ लीला ने भी दिया, लेकिन अब वह सचमुच डर गई थी। यह मुंसिफ की बीवी तो अच्छी-खासी जिरह कर रही है। क्या लड़ना ही चाहती है? कोई रास्ता नहीं रहेगा, तो लड़ना ही पड़ेगा। लेकिन बात टल जाए, तो अच्छा है। उसने कहा, "दिल तो बहुत करता है लेकिन गार्हस्थ्य जीवन की विवशताएँ बड़ी कठोर सावित हो रही हैं।"

शकुन्तला ने इस बात को और रगड़ने की कोई जरूरत न देखी। बोली, "घर-गृहस्थी का काम तो सभी के यहाँ होता है, यह जरूर है कि उसमें किसी का मन ज्यादा लगता है, किसी का कम। मैं इस बारे में फिर आप से बातें करूँगी कि आप घर-गृहस्थी चलाते हुए भी किस तरह हमें कुछ समय दे सकती हैं। अभी तो हमारे सामने किसी नाटक की योजना भी नहीं है।"

शकुन्तला ने यह झूठ बात सिर्फ लीला को बचने का मौका देने के लिए ही कही थी। नये नाटक की योजना बन चुकी थी। फिर वह हँस कर बोली, "मैं तो अपने को इतना प्रसिद्ध नहीं समझती कि हर आदमी मुझे जान ले, लेकिन आप जरूर अपने को ऐसा प्रसिद्ध समझती हैं।"

"यह मेरी किस बात से मालूम हुआ?" लीला के लिए यह वेतुकी बात नई मुसीबत थी।

"अगर ऐसा न होता, तो आप मुझसे पूछती न कि मैं आप को कैसे जानती हूँ?"

लीला हार गई। हँस कर बोली, "आप से पार पाना बड़ी मुश्किल है। अच्छा, अब पूछती हूँ।"

"आपकी प्रशंसा बख्तियार साहब बहुत किया करते थे। इसलिए आप से मिलने का शौक हुआ।"

मिसेज खन्ना सोच रही थीं कि यह मेरा परिचय देने वाला खन्ना जी के अलावा किसी और को बता ही नहीं सकती, उन्हीं का नाम लेगी। उन्होंने इस

'स्वीकारोक्ति' का उत्तर देने के लिए दो-एक चुस्त फिकरें भी सोच लिए थे; लेकिन, शकुन्तला ने उन्हें फिर धराशायी कर दिया। साश्चर्य बोलीं, "बख··· बख्तियार साहब मेरे बारे में ··।"

शकुन्तला मन-ही-मन हँसी। 'पकड़ लिया चोर! अब देखें कहाँ जाती है, बच्ची!'

जैसे उनके आश्चर्य पर उसने कोई ध्यान ही नहीं दिया। इस तरह का भाव प्रदर्शन करके शकुन्तला बोली, "जी हाँ! वे आप के पूरे भक्त हैं। कहते हैं, मैं ने औरतें बहुत देखीं, लेकिन मिसेज खन्ना जैसी समझदार और शरीफ औरत कोई नहीं देखी।"

सिर्फ कहा ही नहीं, कह कर हँस भी पड़ी कमबख्त। मिसेज खन्ना तिलमिला कर रह गईं. वे इसके लिए बिल्कुल तैयार नहीं थीं कि मियाँ की जूती मियाँ के ही सर पड़े। खन्ना साहब साफ-साफ कुछ नहीं कहते थे, लेकिन बख्तियार की तरफ उनके क्या-क्या संदेह थे, यह लीला से छुपा न था। वह अपना व्यवहार इतना संतुलित रखती थीं (और इसमें उन्हें बख्तियार का पूरा सहयोग भी मिलता था।) कि बात न तो बढ़ी थी और न इसकी आशंका ही थी। लेकिन जब इस जहर की पुड़िया ने भी उसी दुखती नस पर चोट की, तो उनसे बर्दास्त नहीं हुआ। रुखाई से बोलीं, "बख्तियार साहब खुद बहुत शरीफ आदमी हैं, इसीलिए किसी को नीचा नहीं समझते। वैसे वे यहाँ ज्यादा आते भी नहीं हैं, तीन महीने से तो इधर सूरत भी नहीं दिखायी। आप ही के यहाँ ज्यादा उनका आना-जाना रहता है। पहले यहाँ आते थे, तो आपकी भी तारीफ····।"

शकुन्तला ने इस बात को आगे न बढ़ने दिया। शरारत से मुस्कुरायी और बात काट कर बोली, "अब मेरे यहाँ आएँगे तो मैं उनसे कह दूँगी कि आप शिकायत कर रही थीं। सचमुच बड़ी बेजा बात है। लाख बिजी रहते हों, फिर भी, फिर भी दोस्ती को इतना तो न भुला देना चाहिए।"

मिसेज खन्ना गर्म हो उठीं, "आखिर आपका मतलब क्या है? आप क्या कहना चाहती हैं?"

"मैं तो कुछ भी नहीं कहना चाहती। आप बिगड़ क्यों रही हैं?" शकुन्तला मुस्कुराती हुई बोली।

मिसेज खन्ना आपे से बाहर हो गईं। फुफकारते हुए बोलीं, "मैं अपनी

शराफत के मारे अभी तक जबान बन्द किए थी, वरना आप-जैसी बदनाम औरत का क्या मुँह है, जो कोई ऐसी-वैसी बात कहे।''

शकुन्तला हँसकर बोली, ''मैं यह कहना चाहती थी, मिसेज खन्ना, कि हम सभी शीशे के मकानों में रहते हैं, पत्थर फेंकते समय इस बात का खयाल कर लेना चाहिए। आपके मुँह में जबान है, लेकिन दूसरों की जबानें भी कट नहीं गई हैं। खैर, आप परेशान मालूम होती हैं, अब आराम करें। नमस्ते।''

शकुन्तला के जाने के बाद मिसेज खन्ना ने सचमुच आराम करने की काफी कोशिश की, लेकिन असफल रहीं। शकुन्तला की जहर-भरी मुस्कान उन्हें चारों ओर से जैसे बेधे दे रही थी। यह कहना गलत होगा कि उन्हें शकुन्तला की धमकी से डर लग रहा था। उनके परिचितों की संख्या उँगली पर गिनने लायक थी और ये सभी परिचित मिसेज खन्ना के व्यक्तित्व से इतने प्रभावित हो चुके थे कि उनके दिल में किसी तरह की गलतफहमी उनकी तरफ से हो हो नहीं सकती थी। अपरिचितों में बदनामी होने का कोई मतलब ही नहीं है। मिसेज खन्ना किसी प्रकार का सामाजिक जीवन तो अपनाए हुए नहीं थीं, जो लोग उन्हें अपरिचित होते हुए भी थोड़ा-बहुत जानते। फिर सबसे बड़ी बात तो यह थी कि कर नहीं तो डर काहे का।

फिर भी तर्क-बुद्धि की यह सारी कोशिशें लीला के उद्विग्न मन को शान्ति न दे सकीं। कोई गन्दा आदमी आपको 'गन्दा' कहकर आपकी तरफ थूक दे, तो उसकी बात लाख बेतुकी सही, आपके मन के किसी कोने में जम कर बैठ ही जाती है और वितृष्णा का विष धीरे-धीरे छोड़ती रहती है। बाद में चाहे आदत पड़ जाने पर आपको कोई दिक्कत न महसूस हो, लेकिन शुरू में आप ऐसी बात की पूर्ण उपेक्षा नहीं कर सकते। मिसेज खन्ना को भी शकुन्तला की बेतुकी बात बेतरह साल रही थी। दोपहर में खन्ना जी आए, तो उन्होने भी पत्नी का उखड़ा हुआ मूड देखा। मिसेज खन्ना गुस्से में चाहे जितनी जल भुन रही हों, पर इतनी पागल न थी कि अपनी मनोदशा अपने पति से कहती। खन्ना साहब का दिमाग एक विशेष फैक्टरी में बना था। अगर यह बात उनसे कही जाती, तो वे उबल पड़ते—शायद 'बदला लेने' के लिए गोयल साहब के यहाँ जाकर बात का बतंगड़ बना देते। यह भी मुमकिन था कि बख्तियार से कुछ ऊटपटाँग 'सलाह' करने लगते और इतना सब कुछ करने-धरने के बाद सोचने लगते कि कहीं शकुन्तला की बात सच तो नहीं है।

फिर भी इतने बोझ को वे अकेले न सँभाल सकीं। खन्ना जी के दुकान चले जाने पर उन्होंने नौकर से बख्तियार को बुलवा भेजा। इस बुलावे पर बख्तियार को ताज्जुब था। किराया तो पीरू तीसरी तारीख ही को दे आया

था। क्या खन्ना जी मकान खाली कराना चाहते हैं ? लेकिन यह बात खन्ना जी को खुद ही करनी चाहिए, नौकर तो कह रहा है कि बहू जी ने बुलाया है। नौकर से यह पूछना वेतुकी बात थी कि बहू जी को मुझसे क्या काम है। फिर वह कह रहा है कि बहू जी ने कहा है कि खड़े-खड़े दो मिनट के लिए हो जाए। बख्तियार तर्क-वितर्क किए बगैर चल दिया।

लेकिन मिसेज खन्ना यकायक क्या कहतीं और कैसे कहतीं। चुनांचे उन्होंने यही कहा कि आप बहुत दिनों से नहीं आए थे, इसलिए बुला भेजा। बख्तियार अब बिल्कुल चकरा गया। तीन महीने पहले जिस प्रकार से वह इस घर से गया था, उसके बाद यह साधारण अभ्यर्थना बहुत ही असाधारण थी। फिर चाय ही पिलानी थी, तो इसके लिए धोखे से बुलाने की क्या जरूरत थी ? और बुलाया भी था तो कुछ बातचीत होनी थी; यह लाल पड़ा हुआ चेहरा, नीची नजर और चुप्पी क्या मानी रखती है ? इस उलझन को सुलझाने का कोई रास्ता नहीं दिखाई देता था। उसने आखिर हारकर कहा, "अभी मुझे कुछ काम है। फिर कभी वक्त दीजिए, तो इत्मीनान से बातें कर सकूँ।"

मिसेज खन्ना ने हँसकर कहा, "घर आपका है, जब जी चाहे आइए, समय देने की तो कोई बात ही नहीं है। इस समय मैं आपका अधिक समय नहीं लूँगी। सिर्फ एक बात पूछनी है।"

आधे मिनट की खामोशी के बाद बख्तियार बोला, "बड़ी भारी-भरकम बात मालूम होती है।"

मिसेज खन्ना इस मजाक पर हँस न सकीं, लेकिन उनकी जबान खुल गई। दूसरी तरफ देखते हुए बोली, "बुरा न मानिएगा। आपने मिसेज शकुन्तला गोयल से मेरे बारे में क्या कहा है ?"

"मैंने क्या कहा है ?" बख्तियार घबराकर बोला, "कुछ भी तो नहीं कहा मैंने। क्यों ?"

लीला ने उसे तेज नजरों से देखकर पूछा, "कभी कुछ नहीं कहा ? एक बार भी नहीं ?"

बख्तियार के स्वर में कड़वाहट आ गई, "कह तो रहा हूँ कि कभी कुछ नहीं कहा। यकीन न हो तो कुरान उठाकर कह दूँ। मिसेज गोयल के सामने आपके हस्बैंड की अक्सर बातें होती हैं, और आपको सुनकर बुरा तो लगेगा, लेकिन सच्ची बात यह है कि उनके जिक्र से हम लोगों की काफी तफरीह हो जाती है। मगर आपकी तो कभी कोई बात ही नहीं हुई। न कभी उन्होंने मुझसे आपके बारे में पूछा, न मैंने बगैर पूछे बताने की जरूरत समझी। आखिर

बात क्या है ? खन्ना जी ने आपसे कुछ कहा है ?" कहते-कहते बख्तियार की त्योरियाँ चढ़ने लगीं ।

"खन्ना जी पर न बिगड़िए, उनका इस मामले में कोई कसूर नहीं है ।" मिसेज खन्ना बोलीं ।

"मैं कसूरवार बेकसूर की जाँज नहीं कर रहा", बख्तियार ने बिगड़ते हुए कहा, -"सिर्फ यह जानना चाहता हूँ कि किस वजह से आप मुझे इन पंचायतपन की बातों में घसीटना चाहती हैं ।"

"आप बेकार नाराज हो रहे हैं ? आपके लिए तो किसी ने कुछ नहीं कहा । जो कुछ कहा गया है, वह तो मेरे लिए कहा गया है ।" कहते-कहते मिसेज खन्ना का गला भर आया ।

बख्तियार का क्रोध उतर गया । परेशान होकर बोला, "आप बताती क्यों नहीं, क्या बात है ?"

मिसेज खन्ना ने उसे पहले पहर की सारी बातचीत ब्योरेवार बता दी । खड़े-खड़े दो मिनट के लिए बात करने को बुलाया था, लेकिन उनकी बातें सुनते-सुनते बख्तियार को भी पता न चला कि एक घण्टा किस तरह बीत गया । इस अर्से में उसने खुद एक शब्द भी नहीं कहा ।

मिसेज खन्ना ने अपनी बात का अन्त किया, "बख्तियार साहब ! आप जानते हैं कि औरतों की पोजीशन कितनी नाजुक होती है । उसके बारे में कही गई बेकार बातों का भी कितना महत्त्व होता है ।"

"मैंने तो पहले ही से यहाँ आना छोड़ दिया है । अब और क्या करूँ, यह नहीं समझ पा रहा हूँ ।"

"कीजिए अपना सर ! आपसे कुछ करने या न करने के लिए कौन कह रहा है ? आपको सिर्फ अपनी पोजीशन की फिक्र है । लेकिन, उस पर तो कोई आँच नहीं आ रही ! मैंने तो सिर्फ आपसे यह पूछा था कि आपने मेरे बारे में कुछ कहा है या नहीं । बाकी बातें तो आप ही के जोर देने पर मैंने बताईं । दिल में भड़ास थी, इसलिए कुछ ज्यादा समय ले लिया आपका । आपको नाजुक तबियत को इन बातों से ठेस पहुँची हो, तो हजार बार माफी चाहती हूँ ।" लीला घुटे से स्वर में बोली ।

बख्तियार लज्जित से स्वर में बोला, "माफी तो मुझे माँगनी चाहिए और माँगता भी हूँ । लेकिन, आप परेशान क्यों हो रही हैं ? मालूम नहीं, मिसेज

गोयल को आज क्या हो गया। वैसे तो वे काफी समझदार हैं, बल्कि इधर तो उनका रवैया काफी संजीदा हो गया था। मैं उनसे बातें करूँगा।''

''नहीं बख्तियार साहब! अब उस बात को खत्म कीजिए। आपको मेरी बातों पर यकीन न हो, तो चाहें उनकी सच्चाई के बारे में उनसे पूछ लें। वरना मेरी भलाई इसी में है कि आप उनसे या किसी और से इस बारे में बात न करें।'' मिसेज खन्ना व्यथित स्वर में बोलीं।

बख्तियार ने उन्हें आश्वासन दिया कि वह किसी से इसके बारे में कुछ नहीं कहेगा। लेकिन, वह अपना वादा कायम न रख सका। मिसेज खन्ना की बात ने उसका मानसिक सन्तुलन बिगाड़-सा दिया। वह उस रात अपना कोई काम न कर सका। सोचता रहा, 'यह अच्छी मुसीबत है! मैंने शुरू से इस बात का ख्याल रखा कि औरतों के मामले में कोई मुझ पर उँगली न उठाए। लेकिन, यहाँ दूसरों की बात कौन करे, खुद औरतें ही एक दूसरे को गाली देने के लिए मेरा इस्तेमाल कर रही हैं। औरतों को आदमियों की बराबरी का दर्जा देना नए जमाने की बकवास है। इस्लामी तालीम ही ठीक है कि औरतों में अक्ल नहीं होती और वे मर्दों की बराबरी नहीं कर सकतीं। भाड़ में जाएँ दोनों! मर जाएँ आपस में लड़ते-लड़ते! मैं किसी से राहोरस्म नहीं रखूँगा!'

लेकिन, उसकी यह भीष्म-प्रतिज्ञा कायम न रही। दूसरे दिन वह 'जाऊँ, न जाऊँ' की स्थिति में रहा और तीसरे दिन तीसरे पहर वह चैथम लाइंस की तरफ चल दिया। उसने अपने मन को समझा लिया कि मिसेज खन्ना झूठ भी तो बोल सकती हैं। उनकी बातों की सच्चाई जाँचनी चाहिए।

किन्तु, जब शकुन्तला से इस बात का बख्तियार ने डरते-डरते उल्लेख किया, तो इसकी प्रतिक्रिया देखकर वह स्तम्भित हो गया। वह आशा कर रहा था कि शकुन्तला गम्भीरतापूर्वक कह देगी कि मिसेज खन्ना ने मेरी बात का गलत मतलब लगाया है, और बख्तियार पूर्णतः सन्तुष्ट होकर बात खत्म कर देगा। लेकिन, शकुन्तला यह सुनकर हँसी। उसकी पहले की स्वाभाविक शरारत उभर कर उसकी आँखों से झाँकने लगी। मुस्कुराकर बोली, ''मुझे आपके साथ हमदर्दी हैं। उन्हें बुरा लगा हैं, तो आपके दिल पर भी चोट लगनी चाहिए। लेकिन, मैंने उन्हें गाली तो नहीं दी थी, सिर्फ यही तो कहा था कि आप उनकी तारीफ करते हैं। इस पर उन्हें खुश होना चाहिए था, नाराज क्यों हो गईं?'' और वह हँसने लगी।

बख्तियार दो रोज से परेशान था। इस वक्त आपे से बाहर हो गया। तेज

स्वर में बोला, "आप लोग खुद चाहे जितना लड़ें-झगड़ें, पीठ-पीछे मुझे क्यों घसीटती हैं ? मुझे इन बातों से अलग ही रखिए।"

"आपको कौन घसीटता है ?" शकुन्तला हँसते हुए बोली, "आप तो खुद ही इलाहाबाद की सबसे बड़ी शरीफजादी की वकालत करने अतरसुइया से चैथम लाइंस तक दौड़े चले आए हैं।"

बख्तियार की समझ में न आया कि वह अपना सर फोड़े या शकुन्तला का। कुछ देर बाद बोला, "आपसे मुझे इतनी हलकी बातों की उम्मीद न थी। मिसेज खन्ना की बात और है। उनकी तालीमो तरबियत····।"

"मिसेज खन्ना के सात खून सिर्फ आप ही की नजर में माफ हो सकते हैं।" शकुन्तला ने बात काटी।

बख्तियार एक मिनट बाद बोला, "मेरा खयाल है मेरे यहाँ आने-जाने से कोई फायदा नहीं।"

"हाँ, हाँ; वे नहीं चाहतीं तो आप यहाँ क्यों आएँगे।" शकुन्तला हँसकर बोली।

● ● ●

२१

बख्तियार शकुन्तला के यहाँ से उठ तो आया, लेकिन अपने मन की शांति जैसे वहीं छोड़ आया। घर आकर उसने तय किया कि उसे शकुन्तला या लीला किसी से भी कोई सम्बन्ध नहीं रखना है। उसकी पहले जैसी सीधी-सादी जिन्दगी ही ठीक है। माना कि उस जिन्दगी में खालीपन होता है, लेकिन अगर खाली जगह भरने को बदबूदार कूड़ा ही मयस्सर हो, तो समझदारी का तकाजा यह है कि जगह खाली ही रहे। शकुन्तला की आँखों में उसे रसभरी जिन्दगी मिल रही थी। यह रस शराब बन कर उसे बदमस्त न कर दे, इसके लिए वह सतर्क था। लेकिन, उसे यह आशा नहीं थी कि यह रस पलक मारते ही इतने कड़वे विष में बदल जाएगा और उसके व्यक्तित्व के रोम-रोम को जलाने लगेगा।

उसने इस रस को अमृत समझ लिया था—सोचा था कि वह जिन्दगी ही दे सकता है। लेकिन जब इस रस ने ही उसके जीवन के सारे लालित्व पर जलती हुई मौत झोंक दी, तो वह यकायक तिलमिला उठा, उसका मानसिक संतुलन लगभग खो ही गया।

यह फैसला कर लेने के बाद भी कि उसने शकुन्तला को समझने में भूल की थी और शकुन्तला में हृदय की महानता की बात कौन कहे, साधारण व्यावहारिक शालीनता भी नहीं है, उसे चैन नहीं मिल रहा था। दोपहर को खाना खाकर वह पलंग पर पड़ रहा। इरादा था कि अच्छी खासी नींद ले, लेकिन बिस्तर पर लेटते ही नींद को भूल गया। दिमाग की खौलन कम होने ही को नहीं आती थी। सोचने लगा—'शकुन्तला को आखिर हो क्या गया है? इतनी बेवकूफ तो हरगिज नहीं है कि यह न समझ सके कि लीला का खयाल उसकी तरफ से अच्छा न होगा। फिर काहे के लिए बैठे-बिठाये उससे भिड़ने के लिए जा पहुँची? यह भी उसे अच्छी तरह मालूम है कि उसके चाल-चलन के बारे में लोगों का अच्छा खयाल नहीं है, लेकिन वह न सिर्फ इसकी परवा नहीं करती थी, बल्कि इस बात को अपनी तफरीह का सामान बनाए हुए थी....सिविल लाइंस में लड़कों के साथ पेश आने वाले वाकए को उसने खुद मजे ले-लेकर मुझे सुनाया था और हम दोनों जी भर कर इस पर हँसे थे। इस बात ने मेरे दिल में उसके लिए इज्जत और भी बढ़ा दी थी....मैंने सोचा था कि पढ़ी-लिखी लड़कियाँ तो बहुत होती हैं लेकिन वे सब सिर्फ डिग्री लेने के लिए ही पढ़ती हैं; पहली मर्तबा मुझे ऐसी औरत देखने को मिली थी, जिसके बारे में मैंने समझा था कि उसके करैक्टर ने तालीम को अच्छी तरहत जज्ब किया है और उसकी शख्सियत को निखारा है...लेकिन मुझ-सा अहमक भी और कौन होगा, मैं ऊपरी चमक-दमक ही में उलझकर रह गया...शकुन्तला आखिर क्या निकली?....उसमें और हाथ फटकार फटकार कर लड़ती हुई और एक दूसरे पर कीचड़ उछालती हुई भठियारिनों में क्या फर्क है?...फर्क क्या होना है! औरत चाहे जिस सोसाइटी में रहे, चाहे जितनी तालीम हासिल कर ले, रहती आखिरकार औरत ही है... और औरत होने का मतलब है खुदगरजी, तंग नजरी, हिमाकत। सभी औरतें ऐसी ही होती हैं और हमेशा-हमेशा के लिए ऐसी ही रहेंगी।

'सभी औरतें? क्या मिसेज खन्ना भी?....क्यों नहीं?...मिसेज खन्ना ही कौन दूध की धोयी हुई हैं?....एक तरह से देखा जाए, तो सारा तमाशा उन्हीं का शुरू किया हुआ है....ड्रामा खत्म होने के बाद दो दिन के बाकियात से उन्हें पूरा इत्मीनान हो जाना चाहिए था। खन्ना जी के साथ गोयल साहब ने जो बर्ताव किया था, उसके बाद खन्ना जी की इस मामले में हिमाकत खत्म हो ही

गई थी···इसके बाद मिसेज खन्ना को शकुन्तला से इतनी जलन रखने की क्या जरूरत थी ?····मेरी गजल में उन्होंने शकुन्तला का शायबा ढूँढ़ निकाला···· उनके अदबी मजाक की तो दाद देनी ही पड़ती है, लेकिन इस वाकिए से उनकी तनीत पर क्या रौशनी पड़ी ?···यही न कि जिस औरत की जात से उन्हें एक मर्तबा तकलीफ पहुँची थी, उसका जिक्र या उसकी शख्सियत का साया तक वे किसी चीज पर पड़ते देखना गवारा नहीं कर सकती थीं···शायद उनका बस चले, तो वे शकुन्तला को जान ही से मार दें और उसकी लाश को फूँक कर उसकी खाक के जर्रे आसमान में उड़ा दें !····किस जुर्म की कितनी सजा होनी चाहिए इसका औरतों के यहाँ कोई हिसाब नहीं। उनके क्रिमिनल कोड में हर जुर्म की सजा मौत ही मालूम होती है····खुदा बचाएँ ऐसी मखलूक से !···· मुंसिफाना नजर की उनसे उम्मीद ही फुजूल है··· ।

अच्छा यह भी माना कि उन्हें शकुन्तला से चिढ़ थी, तो भी उन्होंने मेरे सामने इस भद्दे तरीके से उसका इजहार क्यों किया ?····यह तो जाहिर है कि खन्ना जी का मेरे ताल्लुरात में कोई हिस्सा नहीं था····उस गरीब में अदबी मजाक ही कितना है, जो मेरी गजल को समझ सकता····समझा था सिर्फ मिसेज खन्ना ने····और जब उनकी तास्सुराती पकड़ इतनी जबरदस्त है तो वे यह भी समझती होंगी कि शायर किसी चीज का असर दायमी तौर पर नहीं लेता है··· उस गजल पर मामूली तौर पर तारीफ करके वे क्यों नहीं रह गईं ?····क्यों खोद-खोद कर गड़े मुर्दे उखाड़े और रंग में भंग कर दिया ?····और यह भी माना जाय कि मैं शकुन्तला ही का हो रहा था, तो भी मिसेज खन्ना को इससे क्या तकलीफ होती थी ?····क्या वे मेरी तरफ भी कुछ···? लाहौल वलाकुव्वत ! मेरा भी दिमाग खराब है। इससे भी ज्यादा बेतुका खयाल कोई हो सकता है।"

बख्तियार संवेदनशील तो बहुत था, लेकिन उसमें यह दुर्लभ गुण भी था कि वह जब चाहता, अपनी भावनाओं पर काबू पा लेता था। इस वक्त उसने यही तय किया कि इन बातों को सोचना परलेसिरे की बेवकूफी है इसलिए दूसरी—और ज्यादा काम की—बातों की तरफ ध्यान लगाना चाहिए। उसने यूनिवर्सिटी में लॉ में ऐडमिशन के लिए अर्जी दे ही रखी थी, डॉ० चड्ढा की मदद की वजह से यह उम्मीद भी थी कि दाखिला बगैर किसी दिक्कत के हो जाएगा। यह सही है कि डॉ० सिद्दिकी उससे और ज्यादा जल गए थे और उनसे यह आशंका थी कि पुरानी बातों का हवाला देकर उसके दाखिले में शायद अड़ंगा लगाएँ। यह डर होते हुए भी उसने सिद्दिकी साहब के पास जा कर अपनी तरफ से उनके दिल का मैल धोना ठीक न समझा। लेकिन, जल्द ही उसे मालूम हो गया कि उसकी आशंका निर्मूल थी। डॉ० सिद्दिकी अगले दिसम्बर

में रिटायर होने वाले थे और इस समय जी-जान से इस चेष्टा में लगे थे कि उन्हें कुछ दिनों का एक्सटेंशन मिल जाए। कम्युनिस्ट पार्टी के प्रति उनकी सहानुभूति और पार्टी के विरोधियों की जड़ खोदने की उनकी इच्छा इस समय सोयी पड़ी थी। वैसे भी कम्युनिस्ट पार्टी को अपने विरोधियों की इस समय इतनी चिन्ता न थी, जितनी अपने टूटते हुए अंदरूनी संगठन को बचाने की। विगत मार्च में अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट सूचना संघ के इशारे पर इस पार्टी ने अपनी उग्रनीति छोड़ दी थी और दो वर्ष की अति उग्रनीति की प्रतिक्रिया-स्वरूप पार्टी का दक्षिण पक्ष बड़े जोरों से उभर रहा था। स्थानीय से लेकर अखिल भारतीय कम्युनिस्ट संगठनों में अंदरूनी दलबंदी और रस्साकशी इतने जोरों से चल रही थी कि उन लोगों को अपने विरोधियों से कोई दुश्मनी न रह गई थी। यहाँ तक कि बख्तियार--जैसे घोर पार्टी विरोधी से भी वे लोग अत्यन्त मित्रता पूर्वक मिलने लगे थे।

चुनांचे यूनिवर्सिटी में अपने दाखिले की तरफ से पूर्णत: आश्वस्त होकर बख्तियार ने कानून की कुछ पुस्तकें भी खरीद ली थीं और उनका थोड़ा-बहुत अध्ययन भी आरम्भ कर दिया था। इस समय उसने ताजीरात हिन्द की मोटी-सी जिल्द खोल ली और पाँच ही मिनट में उसके मस्तिष्क से शकुन्तला और लीला दोनों के चित्र उड़ गए। फौजदारी कानून की नजीरों के दाँव-पेंच में उसे इतना मजा आने लगा कि उसे शाम के पाँच बजने का पता तभी चल सका, जब पीरू चाय ले आया।

शहर में रहते हुए बख्तियार को एक मुश्किल और भी थी। यहाँ के शोर-गुल में ठीक से पढ़ाई नहीं हो सकेगी, ऐसा उसे मालूम होने लगा। अपनी पार्टी से उसका सम्बन्ध अब तक लगभग टूट ही गया था, फिर भी कुछ कार्यकर्ता समय-असमय उसके पास विघ्न डालने के लिए आ ही जाते थे। उनको भी गरज थी। कभी किसी की माँ बीमार हो जाती थी, कभी बीबी; और बख्तियार दिल-ही-दिल में उन्हें लाख गालियां सुनाए उसे दो-चार पैसे से उनकी मदद करनी ही पड़ती थी। बात सिर्फ पैसे की ही न थी, बख्तियार के लिए महीने में दस-पन्द्रह रुपए निकालना इतना मुश्किल काम न था; असली परेशानी उसे उनकी गप्पों से होती थी। उन लोगों की समझ में समय का मूल्य कुछ भी न था और बख्तियार की शराफत उसकी जबान को बन्द रखती थी। इसीलिए उसने तय किया था कि वह हॉस्टल में रहेगा। थोड़ी-सी दौड़ धूप करने से यह मसला भी हल हो गया था और उसे हॉलैण्ड हॉल में जगह मिलना निश्चित ही था। बख्तियार को एक सन्तोष इससे यह भी था कि हॉस्टल में रहने पर उसे खन्ना जी जैसे नामाकूल आदमी से कोई सम्बन्ध रखनें को मजबूर न होना

पड़ेगा। इधर हाल में जो घटनाएँ हुई थीं, उससे उसे यह भी सन्तोष था कि वह मिसेज खन्ना से भी दूर रहेगा और जब वही इधर झांकने न आएगा, तो कोई क्या कहेगा। अभी तो उसे ऐसा मालूम होता था कि लोग उसे चारों ओर से घेर कर उसे बदनाम करने और बदनाम करने के बाद उसका सर गंजा करनें पर तुले हैं। इस मुसीबत से हॉस्टल ही छुटकारा दिला सकता था।

बख्तियार को अपनें प्रयत्नों में सफलता मिली। एक सप्ताह के बाद उसने पीरू के हाथ किराये के रुपए खन्ना जी के पास भिजवा दिए और एक पुरजा भी कि कल से मैं आपका मकान खाली कर रहा हूँ। खन्ना जी को इससे सन्तोष ही हुआ। मिसेज खन्ना द्वारा उनके पीछे बख्तियार को बुलाये जाने की बात किसी ने उनसे कह दी थी। मिसेज खन्ना के व्यवहार में अचानक इतनी गम्भीरता आ गई थी और वे उन्हीं से नहीं हरएक से इतना कम बोलती थीं कि खन्ना जी की उनसे कोई बात करने की हिम्मत ही नहीं होती थी। उन्हें शकुन्तला के अपने घर आने की बात नहीं मालूम थी। खुद उनकी हिम्मत लीला से यह पूछनें की नहीं पड़ती थी कि शकुन्तला ने मुझसे कहा था कि यहाँ आएगी, तो वह आई या नहीं? लीला उन्हें बताती हो क्यों? चुनांचे उन्होंने यह समझ लिया था कि शकुन्तला यहाँ नहीं आई, और उन्होंने उसकी बात भुला ही दी थी। हाँ, बख्तियार के 'चोरी से' उनके घर आने पर उन्हें जरूर परेशानी थी, लेकिन यह परेशानी भगवान स्वयं दूर कर रहे थे। साधारणत: खन्ना जी बख्तियार के पास जाकर कम से कम एक बार यह जरूर कहते कि हॉस्टल जाने की क्या जरूरत है, यहीं क्यों नहीं पढ़ सकते। लेकिन इस समय उन्होंने अपने लिए यह कांटे बोना ठीक न समझा (कौन जाने बख्तियार तकल्लुफ न कही हुई बात को मान ही न जाए)। अत: उन्होंने 'सधन्यवाद' कुल किराया पाने की रसीद लिख दी।

मिसेज खन्ना को भी बख्तियार के जाने से सन्तोष ही हुआ। पन्द्रह दिन पहले ऐसी बात होती तो वे बख्तियार को बुलाकर मीठा उलाहना जरूर देतीं कि हम लोगों से ऐसा क्या कसूर हुआ है कि आप भागे जा रहे हैं। लेकिन इस समय बख्तियार का दूर हो जाना ही ठीक लगा। आज शकुन्तला ने कहा है, कल चार आदमी और भी कह सकते हैं; किस-किस की जबान को रोकी जाएगी।

बख्तियार ने हॉस्टॅल में आकर अपना विद्यार्थी जीवन फिर से शुरू तो कर दिया, लेकिन अब उसे यह जगह बड़ी अजीब लगने लगी। ढाई-तीन वर्ष पहले जब वह इसी हॉस्टल में रहता था, तो यह जगह उसे अपनी जगह लगती थी, अब उसी हॉस्टल में उसे मालूम होता था कि किसी दूसरी दुनियाँ में आ गया

है। अन्य छात्रों की अवस्था में उससे कोई ऐसा अन्तर न था, फिर भी तीन वर्षों के सक्रिय राजनीतिक जीवन ने उसे मानसिक रूप से अत्यन्त प्रौढ़ बना दिया था और वह अन्य छात्रों के बीच अपने को अकेला पाता था। उसे यह मालूम था कि यह अलगाव ठीक नहीं है और उसने अन्य छात्रों से हेल-मेल बढ़ाने की कोशिश भी की, लेकिन उसे इसमें पूरी सफलता न मिली। एक तो अन्य छात्रों की तरह स्वच्छन्द हास-परिहास करने में उसकी अपनी जबान बन्द हो जाती थी; दूसरे अन्य छात्र भी उसके राजनीतिक जीवन के कारण उसे एक तरह से अपना बुजुर्ग मानने लगे थे और उससे हँसी-मजाक करने को कौन कहे, उसके सामने आपस में भी खुली-खुली बातें नहीं करते थे। उसके शिष्ट परिहासों पर वे हँसते जरूर थे, लेकिन यह हँसी भी उन्मुक्त न होती थी, शिष्टता के बंधन उसे कसे रहते थे।

कुछ भी हो, यह बख्तियार के लिए कोई गंभीर समस्या न थी। उसे जी लगा कर पढ़ना था, इसलिए अन्य छात्रों से उसका अलगाव उसे कुछ मानों में अच्छा भी लगता था। दिन भर की मेहनत के बाद जब जी घबड़ाता, तो शाम को वह कॉफी हाउस भी चला जाता, जहाँ उसके राजनीतिक और साहित्यिक संगी-साथी उसे मिल जाते थे और उसका जी बहल जाता था।

लेकिन, दो ही महीनों में उसके सहछात्रों ने एक अजीब बात नोट की। बख्तियार की उम्र काफी हो गई थी और उसने सक्रिय राजनीतिक जीवन भी बिताया था। इस लिहाज से उससे यह आशा की जाती थी कि अन्य छात्रों की अपेक्षा वह यूनिवर्सिटी की छात्राओं से खुल कर बात करेगा। छात्राएँ भी उसे सम्मान की दृष्टि से देखती थीं और अगर वह बात करता, तो उन्हें किसी प्रकार की उलझन न होती। लेकिन, बख्तियार साहब का यह हाल कि लड़कियों की परछाई से भी दूर भागते थे। अगस्त में यूनियन के चुनाव हुए, तो सारी महिला उम्मीदवारों को उनकी ओर से निराश होना पड़ा। एक-आध बार तो उन्होंने यहाँ तक कह दिया, "लड़कियों का काम घर-गृहस्थी सँभालना होता है, उन्हें यूनिवर्सिटी में पढ़ने ही न आना चाहिए; और आई हैं, तो चुपचाप पढ़ें और घर जाएँ, इस तरह हुड़दंग क्यों किया करती हैं।" बख्तियार के प्रशंसक छात्रों को उस समाजवादी के मुँह से यह फासिस्टों—जैसी बातें सुनकर सदमा पहुँचा था। उन्होंने बख्तियार से इस मामले में बहस भी करनी चाही लेकिन बख्तियार ने इस बात को मजाक में टाल दिया। हद यह हो गई कि जिस उम्मीदवार को लड़कियाँ कनवैसिंग करने लगतीं, उसका समर्थक होने के बावजूद बख्तियार उसका सक्रिय समर्थन न करता। कह देता, "आपकी जीत यकीनी है।" बात हँसी में टल जाती और छात्र समझते कि यह समाजवादी नेता कुछ झक्की किस्म

का है। उन बेचारों को क्या मालूम कि दूध का जला छाछ भी फूँक-फूँक कर पी रहा है। कभी कोई चंचल छात्र इस ओर इशारा भी करता, तो बख्तियार स्त्रियों के बारे में कोई अंग्रेजी चुटकुला सुना देता। छात्र ही नहीं, छात्राओं के बीच भी वह 'प्युरिटन सोशलिस्ट' के नाम से मशहूर होने लगा था।

कुछ भी हो, इस 'प्युरिटनिज्म' का बख्तियार के छात्र-जीवन पर अच्छा ही प्रभाव पड़ा। कक्षेतर कार्रवाइयों में शामिल होने के लिए अब उस पर कोई जोर नहीं डालता था; क्योंकि वह इन बातों से इसलिए भी कतराता था कि इनमें लड़कियों का साथ करने की सम्भावना बढ़ जाती थी। वह सारा समय अध्ययन में लगाता। नतीजा यह हुआ कि कुछ ही दिनों में अध्यापकों ने यह भविष्यवाणी तो कर ही दी कि बख्तियार का फर्स्ट क्लास आना निश्चित है, साथ ही यह ख्याल भी जोर पकड़ने लगा कि इस साल एल० एल० बी० प्रीवियस में बख्तियार ही टॉप करेगा। स्वयं बख्तियार को भी यह आशा थी। वह यूनिवर्सिटी में दुबारा प्रविष्ट हुआ था, तो उसे क्लास की चिन्ता न थी, वह सिर्फ वकालत पास करके वकील बनना चाहता था। लेकिन, जब यहाँ उसे मार-मार कर हकीम बनाया गया, तो वह बन भी गया और सोचने ही नहीं, कहने भी लगा, "सेकण्ड क्लास पाने के बजाय मैं फेल हो जाना ज्यादा पसन्द करूँगा।"

शुरू की अजनबीपन की भावना भी धीरे-धीरे खत्म हो गई और सितम्बर के महीने तक बख्तियार को अपना छात्र-जीवन बड़ा स्वाभाविक मालूम होने लगा। वह पूर्णतः सन्तुष्ट था। यूनिवर्सिटी में आने के बाद पिता से सम्बन्ध भी अच्छे हो गए थे। (वे एक बार उसके साथ दो दिन तक रह कर उसका हाल चाल पूछ ही नहीं, अपनी आँखों से भी देख गए थे)। छात्रों के बीच उसका सम्मान बढ़ गया था, प्राध्यापक उसे लगभग अपनी बराबरी का दर्जा देने लगे थे। कानून की किताबें उसके सामने नई दुनियाँ पेश कर रही थीं, पुराने साथी हँसने-हँसाने के लिए मौजूद ही थे। उसका जीवन शांत सरिता की भाँति मंथर गति से चला जा रहा था।

लेकिन एक दिन—दिन नहीं रात को—इस नदी में अचानक बाढ़ आ गई। उसने स्वप्न में देखा कि वह हवाई जहाज पर कहीं जा रहा है। उससे किसी ने कहा कि पाइलट ने तुम्हें बुलाया है। अजीब बात है····पाइलट को मुसाफिर से क्या काम? खैर बख्तियार पाइलट की सीट के पीछे पहुँचा, तो पाइलट ने हुक्म दिया कि बगल की सीट पर बैठ जाओ। बख्तियार बैठ गया, तो पाइलट ने घूम कर उसकी गर्दन में बाँह डाल दी। हैं!···मिसेज खन्ना! बख्तियार भी

'पाइलट' से लिपट गया। मिसेज खन्ना हँस कर बोलीं, "एयर क्रैश हो गया तो?" बख्तियार बोला, "बला से! एयर क्रैश से कौन मरदूद डरता है!"

बख्तियार की आँखें खुल गईं। दिल की धड़कन पूरी तेजी पर थी। उठ कर एक गिलास पानी पिया और सिगरेट सुलगा ली। सिगरेट खत्म होने पर बत्ती बुझा कर फिर सोने की तैयारी की, लेकिन नींद न जाने कहाँ डूब मरी। आँखें बन्द करते ही दिखायी दीं वही स्वप्न वाली हँसती हुई आँखें, होंठों पर मालूम हुई वही गोरे गुलाबी गालों की गर्म ताजगी। बख्तियार उठ कर बिस्तर पर बैठ गया।

इस समय वह कुछ सोचने की स्थिति में न था। लीला की आँखें, होंठ और बाल उसे चारों ओर से घेरे हुए थे। वह जितना अपने को छुड़ाना चाहता, उनमें और जकड़ता जाता। अपने पर झुँझलाहट भी पैदा होती, वह भी गुलाबी गालों की गर्मी में खो जाती। अतरसुइया छोड़ने के बाद उसे मिसेज खन्ना की याद कई बार आई—इतने जोरों में आई, जैसी अतरसुइया में रहते हुए कभी नहीं आई थी। लेकिन बख्तियार ने हमेशा इस 'वाहियात' खयाल को दिल से निकाल दिया था। एक बाल-बच्चे वाली हिन्दू औरत से मुहब्बत करने से ज्यादा बेतुकी बात क्या हो सकती थी? इसका नतीजा ख्वाहम ख्वाह स्कैंडॅल उछलने के अलावा और क्या हो सकता था? इसी लिए उसने हिन्दी डिपार्टमेंट की ओर (मिसेज खन्ना इस वर्ष हिन्दी के एम० ए० फाइनल की छात्रा थीं) जाना छोड़ दिया था—न मालूम कब क्या बात पैदा हो जाए। लेकिन मिसेज खन्ना ने फिर भी चैन न लेने दिया, और कुछ नहीं तो ख्वाब ही में आ गईं।

बख्तियार ने फिर बत्ती जला ली और उठ कर कमरे में टहलने लगा। टहलते-टहलते अपने ही कदमों की ताल पर वह गुनगुनाने लगा। गुनगुनाते-गुनगुनाते मेज पर जा बैठा और मतला लिखा—

खुदाया खुद से भी कोई न यूँ मजबूर हो जाये
उसी को दिल में बैठा पाये जिससे दूर हो जाये।

मतला उसे पसन्द आया। दो शेर और सोचे, लेकिन उसमें कुछ कमी मालूम हुई, इसलिए उन्हें लिखा नहीं (बख्तियार की आदत लिखकर काटने की न थी); ढेर-के-ढेर काफिए तेजी से मौजूँ होते चले जा रहे थे। बख्तियार को खुशी थी, आज नहीं तो कल सुबह जरूर गजल पूरी कर लेगा। मिसेज खन्ना तो खैर इसे क्या सुनेंगी, लेकिन और लोगों को जरूर पसन्द आएगी। वह गजल के ख्याल में मस्त हो गया। अनजाने ही फाउण्टेनपेन कागज पर चलने लगी और ब्लॉक टाइप में अँगरेजी के अक्षर बनने लगे—एल, ई, ई, एल, ए। 'अगर

दूसरी "ई" को "आई" कर दिया जाए तो "लीला" के बजाय "लैला" पढ़ा जाएगा। लाहौल वलाकुव्वत! मेरा दिमाग बिल्कुल खराब हो गया है।' उसने पैक कवर पर लिखे इस नाम को काट-काटकर अदृश्य कर दिया और बिस्तर पर जाकर लेट गया। लेकिन अब उसका दिल हलका हो गया था। पांच ही मिनट में वह गहरी नींद सो गया।

सुबह उठकर उसे रात के अपने स्वप्न पर हँसी आई, लेकिन कुछ ही घण्टों में उसे मालूम हो गया कि बात हँसने की नहीं है। बारह बजे के करीब लाइब्रेरी गया, तो पीछे से आवाज आई, "बख्तियार साहब! आदाब अर्ज है।" पलट कर देखा तो मिसेज खन्ना हँस रही थीं—वही स्वप्न जैसी हँसी। बख्तियार का सर झुक गया। मिसेज खन्ना कह रही थीं, "आप तो बिल्कुल ईद के चांद हो गए जनाब! लॉ की पढ़ाई बड़ी जबरदस्त होती है शायद।" और वे फिर हँस पड़ीं उसी तरह।

मिसेज खन्ना ने अपनी सहपाठिनी मिसेज सूद से बख्तियार का परिचय कराया। मिसेज सूद भी उनकी तरह बाल-बच्चे वाली और उनकी समवयस्का थीं। इसी से दोनों में खूब पटती थी। हाँ, चंचलता में मिसेज सूद मिसेज खन्ना से कहीं बढ़ी-चढ़ी थीं, इसलिए पांच मिनट बाद बोलीं, "लीला! तुमने तो कहा था कि बख्तियार साहब बड़े लीडर हैं, बड़े तीसमार खाँ हैं। लेकिन यह तो शर्मीलेपन में लड़कियों को मात कर रहे हैं।"

मिसेज खन्ना फिर हँस पड़ीं, हालाँकि उन्होंने कहा कुछ नहीं। बख्तियार के होश-हवाश और भी गायब हो गए।

उस दिन बख्तियार ने सारे क्लास छोड़ दिये। कमरे में आकर तकिए में मुँह छुपाकर पड़ रहा।

● ● ●

२२

बख्तियार की जिन्दगी चाहे इस अर्से में बिल्कुल बदल गई हो, लेकिन आशीष की जिन्दगी सीधे सादे ढर्रे पर चल रही थी। आशीष को इससे सन्तोष ही था। उसकी वकालत पहले से काफी अच्छी चलने लगी थी, चार-पांच सौ

रुपए माहवार पैदा ही कर लेता था। इरादा था कि वर्ष खत्म होने पर जनवरी १९५१ से वह ऐडवोकेसी की सनद ले लेगा और जिला अदालत की प्रैक्टिस छोड़ देगा। उसके पिता शुरू से ही चाहते थे कि वह ऐडवोकेसी की ट्रेनिंग लेकर हाईकोर्ट में प्रैक्टिस करे और उनके काम में हाथ बँटाए, लेकिन खुद आशीष ने तय किया था कि तीन वर्ष तक जिला अदालत का अनुभव करके फिर वह हाईकोर्ट में जाएगा। पेशे की नजर से इस बात में कोई खास फायदा न दिखाई देता था, लेकिन चारू बाबू ने इसमें कोई आपत्ति नहीं की थी। वे वैसे भी आशीष को—आशीष ही को क्यों, घर में हरएक को—मनमानी करने देते थे। और फिर इधर उन्हें अपने एकमात्र पुत्र की प्रगति पर पूरा सन्तोष था। वकालत के पेशे में इतनी जल्दी तरक्की कर लेना लगभग अचंभे की ही बात थी। इधर आशीष ने वकील की हैसियत से न सही, दर्शक की ही हैसियत से, हाईकोर्ट के मामलों को देखना शुरू कर दिया था, दो-चार जजों और दस-पन्द्रह चोटी के ऐडवोकेटों से भी जान-पहचान बढ़ा ली थी, जो उस पर जिला अदालत की प्रैक्टिस जल्दी-से-जल्दी छोड़ने पर जोर दे रहे थे। किस्सा मुख्तसर यह कि दो तीन महीनों बाद ऐडवोकेट बनने के लिए वह पूरी तरह तैयार हो गया था। मुंशी हरदयाल भी खुशी के मारे फूले न समा रहे थे।

इधर की तरफ उसके पेशे के काम में केवल एक व्याघात मालूम हो रहा था। वह यह कि शकुन्तला, जिसे उसके वकालती जीवन से बिल्कुल दिलचस्पी नहीं मालूम होती थी, उस पर सांस्कृतिक केन्द्र की कार्रवाइयों में भाग लेने को बराबर जोर डाल रही थी। आशीष की सारी वकालत इस जगह असफल हो जाती थी। वह शकुन्तला को न यह समझा पाता था कि इस तरह की बातें नौजवानों के लिए ही ठीक होती हैं, न यहाँ कि वकालत का पेशा आदमी को बिल्कुल नीरस बना देता है। जाहिर है कि वकील की हैसियत से आशीष को अपनी इन दलीलों की सत्यता पर उतना ही अविश्वास था, जितनी अदालत में दी जानेवाली दलीलों पर। लेकिन यह अदालत किसी लिखित कानून से बँधी हुई न थी। आशीष की हर दरख्वास्त रद हो जाती थी। अजीब मजबूरी थी।

सांस्कृतिक केन्द्र का अगला नाटक नवम्बर में होनेवाला था और इसकी तैयारियाँ अभी से शुरू हो गई थीं। यह बात तो खुद शकुन्तला ने कह दी थी कि आशीष का स्टेज पर उतरना जरूरी नहीं है, लेकिन नाटक के संचालन का भार उसी के कन्धे पर डाल दिया। इस बार सांस्कृतिक केन्द्र ने शेक्सपियर के 'हेमलेट' को अभिनीत करना निश्चित किया था। पिछली गर्मियों में एक साहित्यकार से इसका अनुवाद भी करा लिया गया था, लेकिन शकुन्तला को

महसूस हुआ कि इस नाटक का निर्देशन उसके वस की बात नहीं है। विदेशी चेतना को हिन्दी मंच पर प्रदर्शित करने के लिए जिस कौशल की आवश्यकता थी, उसका उसने अपने में अभाव महसूस किया और नाटक के अनुवाद को आशीष के सर पर डाल दिया, ताकि वह इसे हिन्दी मंच पर प्रस्तुत करने की दृष्टि से इसका उचित सम्पादन करे। दरअसल यह काम पाण्डेय जी स्वयं करना चाहते थे। उन्होंने कहा भी कि आशीष का हिन्दी ज्ञान अल्प है और वह इसमें हिन्दी की आत्मा प्रविष्ट करने में सफल न होगा। लेकिन, शकुन्तला कड़ी पड़ गई। उसने साफ कह दिया कि नाटक के रूपान्तर के लिए हिन्दी के शास्त्रीय साहित्य और संस्कृत भाषा का ज्ञान इतना जरूरी नहीं है जितनी कलात्मक चेतना और यह चेतना आशीष ही में सबसे अधिक है। पाण्डेय जी ने उसे और समझाना चाहा, तो उसने वहस का दरवाजा ही बन्द कर दिया। बोली, "आप जैसा चाहें करें, मैं कुछ न कहूँगी। लेकिन अगर आशीष के अलावा और किसी ने नाटक का संचालन या सम्पादन भी किया, तो मैं इसमें भाग न ले सकूँगी।"

सुनने वाले स्तब्ध रह गए थे। हद हो गई वेशर्मी की! लेकिन, कोई कर भी क्या सकता था? हेमलेट की माँ की भूमिका निभाना शकुन्तला के अलावा और किसके बस का रोग था? पाण्डेय जी चुप ही नहीं हो गए, वल्कि उन्होंने सांस्कृतिक केन्द्र में आना भी छोड़ दिया। ऐसे निरादर के स्थानों में विद्वानों के जाने का क्या काम? शकुन्तला ने सन्तोष की सांस ली।

इन सब बातों का नतीजा यह हुआ कि आशीष को अपना काफी समय 'हेमलेट' की तैयारी में लगाना पड़ा। सबसे बड़ी मुश्किल थी अभिनेताओं, बल्कि अभिनेत्रियों के चयन की। रानी माँ की भूमिका की समस्या तो हल हो गई थी, अब रह गई थी समस्या; ओफीलिया की। इसके लिए भी काफी कुशल अभिनेत्री की जरूरत थी; क्योंकि पिता की हत्या के बाद ओफीलिया की जो दशा हो गई थी, वह संवेदना के एक ऐसे स्तर पर थी, जहाँ साधारण कलाकार का पहुँचना सम्भव नहीं होता। आशीष ने शकुन्तला से राय ली, तो उसने मजवूरी जाहिर की। कहा, "आदमी तो फिर भी मुझसे बात कर लेते हैं, स्त्रियो में मेरा कोई स्थान नहीं। मेरा किसी लड़की पर कोई प्रभाव नहीं है।"

सांस्कृतिक केन्द्र की दो-एक सदस्याएँ उपलब्ध थीं, लेकिन वे इस भूमिका के लिए विल्कुल अनुपयुक्त थीं। यद्यपि पहले जोर बहुत लगा रही थीं कि उन्हें भी कोई मुख्य भूमिका मिल जाए। वे सब पाण्डेय जी की ही छात्राएँ थीं और पाण्डेय जी के सांस्कृतिक केन्द्र से विमुख होते ही उनकी आशा पर तुषारापात

हो गया और अपने गुरु के अनुसरण में वे भी आना छोड़ बैठी थीं। अब वह भी संदिग्ध था कि हारे दर्जे अगर उन्हीं की खुशामद की जाती तो भी वे उपलब्ध होतीं या नहीं। लेकिन आशीष इस समय भी उनकी बात नहीं सोच रहा था। उसकी नजर में बिल्कुल बेकार थीं।

एक दिन (रविवार को) आशीष इसी समस्या पर विचार कर रहा था ! सोचने लगा कि ओफीलिया की भूमिका के लिए कैसी अभिनेत्री होनी चाहिए। उसे अंगरेजी फिल्म 'हेमलेट' का ध्यान आया, जो उसने कुछ ही दिन पहले देखी थी। उसमें ओफीलिया की भूमिका लेनेवाली अभिनेत्री का उसे नाम याद नहीं था, लेकिन उसकी शक्ल-सूरत, चाल-ढाल आदि को वह नहीं भूल सका था। फिल्म देखते समय उसे लग रहा था कि यह सूरत जानी-पहचानी है। लेकिन, उस समय फिल्म के भावनात्मक बहाव में उसे यह सोचने की फुर्सत नहीं थी कि ऐसी सूरत कब और कहाँ देखी है। इस समय वह फिर उसी बात पर गौर करने लगा, तो विस्मृति के पर्दे अचानक ही फट गए। वह अपने भुलक्कड़पन पर खुद ही हँस पड़ा। उस अभिनेत्री का डील-डौल, मुँह और आँखों की बनावट, चाल-ढाल सब कुछ जूलिया से मिलता-जुलता था। आशीष जोश के मारे टहलने लगा। अगर इस मामले में जूलिया का सहयोग मिल गया, तो पौबारह हैं। वह उसी समय उठकर चैथम लाइंस चल दिया।

शकुन्तला उसकी ओर सिगरेट का टीन खिसकाकर बोली, "अचानक ही कैसे कृपा कर दी ?"

"शकुन्तला जी ! ओफीलिया की समस्या हल हो गई है। लेकिन आपकी अनुमति जरूरी है।"

"आप पीकर तो नहीं आए हैं ? भला मैं अनुमति देनेवाली कौन होती हूँ आपको ?"

"नहीं, अनुमति जरूरी है···बात ही कुछ इस ढंग की है।" आशीष मुस्कुराकर बोला।

"पहेलियाँ न बुझाइए। साफ कहिए क्या बात है। कौन है वह ?" शकुन्तला परेशान होकर बोली।

"देखिए पहले तो यह वादा कीजिए कि आप अनुमति दें या न दें, मुझ पर बिगड़ेंगी नहीं···।"

"ओफ्फोह ! कुछ कहिएगा भी या सिर्फ भूमिका बाँधते जाइएगा ?" शकुन्तला झुंझला गई।

"देखिए आप अभी से बिगड़ने लगीं···अच्छा सुनिए। आपको पारसाल की याद है जब आपने मुझे लोलैविल का आदमी कहा था और कहा था कि मुझे शरीफों के यहाँ नहीं आना····।"

शकुन्तला ने हँसकर बात काटी, "आपके दिल में हर बात बड़ी गहरी गड़ जाती है। उसके लिए हजार बार तो माँफी माँग चुकी हूँ····लेकिन ओफीलिया से उस बात क्या सम्बन्ध है ?"

"है, तभी तो कह रहा हूँ। माफी माँगने की कोई बात नहीं है। बात सिर्फ इतनी है कि मैंने हजार सर मारा, लेकिन सारे शहर में इस भूमिका के लिए सबसे उपयुक्त मुझे वही नर्स दिखाई दी, जिसके साथ शायद कभी आपने मुझे देखा था। मेरा ख्याल है कि वह मंजूर भी कर लेगी। सिर्फ आपकी···।"

"आपने तय कर लिया है तो फिर ठीक ही है।" शकुन्तला मुँह फेरकर उठते हुए बोली।

"मैंने सिर्फ सोचा है। तय आपको करना है। आप भागी कहाँ जा रही हैं ? बैठिए न।"

"आप नाटक के संचालक हैं। कौन क्या पार्ट लेगा यह आप ही को तय करना चाहिए, मुझे नहीं, हाँ यह तय करने का मुझे जरूर हक है कि विशेष परिस्थिति में मैं भाग लूँ या नहीं।"

आशीष हँसने लगा। बोला, "अब आप समझीं कि मैं क्यों आपकी इजाजत चाहता था ? जूलिया रहे या न रहे, आपके बगैर नाटक नहीं हो सकता। रही संचालक होने की बात, सो सभी लोग इस बात को जानते हैं कि मुझे संचालक आप ही ने बनाया है। लेकिन मैं एक बात जरूर पूछना चाहता हूँ, सिर्फ अपने कौतूहल की शान्ति के लिए। आपको उसके साथ काम करने में क्या आपत्ति है ?"

"मुझे आपके प्रश्न पर आश्चर्य है। किस रैंस्पैक्टेब्ल् फेमिली की औरत को इसमें आपत्ति न होगी ?"

"यह आपने अच्छा बता दिया। मुझे मालूम हो गया कि आप पहले रैंस्पैक्टेब्ल् हैं, बाद में कलाकार।"

"आप कुछ भी कहें, मुझे यह मंजूर नहीं कि मैं एक छिछोरी नर्स के साथ स्टेज पर उतरूँ।"

"खैर, अब उसके पार्ट लेने का तो सवाल ही नहीं है। लेकिन मुझे आपके

रिमार्क पर प्रोटेस्ट जरूर करना है। जिसे आप शुरू से जानती ही नहीं उसे छिछोरा किस विश्वास के साथ कह सकती हैं ?"

"सभी लोग जानते हैं कि नर्सों की क्या करतूतें होती हैं, उनकी जिन्दगी कैसी होती है।"

"सभी लोग गधे हैं", आशीष काफी तैश मे आ गया, "आप सभी लोगों में शामिल नहीं हैं। सभी लोग आपके बारे में भी ऊटपटांग बकते हैं लेकिन मैं और आप दोनों ही उसे कोरी बकवास समझते हैं।"

शकुन्तला को लगा कि जैसे उसके दोनों गालों पर आशीष ने कस-कसकर तमाचे जड़ दिए हों। उसके हृदय में क्रोध का ज्वार उठा, लेकिन तुरन्त ही न जाने कहाँ तिरोहित हो गया। उसकी सारी इन्द्रियाँ शिथिल हो गईं। उसने कुछ कहना चाहा, लेकिन सिर्फ कातर दृष्टि से आशीष की ओर देखकर रह गई।

आशीष का तैश भी उतर गया। लज्जित से स्वर में बोला, "माफ कीजिएगा। मेरा कोई मतलब····।"

"नहीं, आपने ठीक ही कहा है। माफी मैं माँगती हूँ····लेकिन···आप बुरा न मानें तो···आप जूलिया के बारे में कुछ और ब्योरेवार बता सकते हैं, ताकि मुझे भी तसल्ली हो सके ?"

आशीष ने जूलिया का जीवन-वृत्त सुनाया, अपने साथ उसकी मित्रता को आरम्भ से लेकर अन्त तक ब्योरेवार रूप में बताया। लगभग एक घण्टा लगा इस बात में। शकुन्तला ठोढ़ी पर हाथ रखे आशीष की ओर एकटक देखती हुई चुपचाप सुनती रही। वृत्तान्त खत्म होने पर उसने कहा, "अब चाय पी लीजिए।"

चाय पर इधर-उधर की मामूली बातें होने लगीं। कुछ देर में आशीष ने विदा चाही, तो शकुन्तला उठती हुई बोली, "तो फिर आप जूलिया से ड्रामे के बारे में कब बात करेंगे ?"

आशीष जाते-जाते ठिठक गया। बोला, "क्या मतलब ? उसका न आना तो तय ही हो चुका है !"

"किसने तय किया उसका न आना ?" शकुन्तला हँसकर बोली, "मैंने तो अपनी सब बातें वापस ले ली हैं।"

"लेकिन···क्या···आपका····।" आशीष की समझ ही में न आया कि क्या कहे।

"मेरा मतलब यह है कि आप उसे जरूर लाएँ। मैं भ्रम में थी। रंगमंच पर कोई ऊँच-नीच नहीं होता, वहाँ सिर्फ यह देखा जाता है कि कौन अच्छा कलाकार है। मैं उसके साथ ज़रूर काम करूँगी।"

"यह तो खुशी की बात है कि आपके विचार परिवर्तित हो गए हैं···फिर भी····क्या यह ठीक रहेगा!"

"नो आर्गूमैंट्स, आशीष!" शकुन्तला हँसकर बोली, "दिस इज माई ऑर्डर ·······गुड बाई!"

आशीष बँगले के बाहर निकला, तो उसका सर चकरा रहा था। वह क्या होकर आया था और क्या होकर निकला? गुरु बनकर आया था, हुक्म बजाने वाला नौकर बनकर रह गया। 'जी' या 'बाबू' से रहित सिर्फ 'आशीष' सम्बोधन उसके कानों में बराबर गूँज रहा था, दिल की धड़कन बढ़ गई थी, कानों में घंटियाँ बज रही थीं। उसने सोचा कि घर चलकर आराम करें, या कॉफी हाउस जाकर गपशप ही करें। जूलिया से मिलने को कोई जल्दी नहीं थी। कोई आग नहीं लगी थी, कभी भी उससे बात की जा सकती थी। वैसे भी आशीष का सिद्धांत था कि जल्दी का काम शैतान का होता है। लेकिन इस समय 'दिस', 'इज', 'माई' और 'ऑर्डर' के चार शब्दों ने उसे चारों ओर से घेरकर उसके लिए घर और काफी हाउस दोनों का रास्ता बन्द कर दिया। वह हाथ-पाँव मारता ही रहा, घिसटता ही रहा, लेकिन ये चार शब्द उसे खींचकर काल्विन अस्पताल की नर्सों के क्वार्टर तक ले ही गये।

जूलिया को आशीष के आगमन पर बड़ा आश्चर्य हुआ। साल भर पहले उसने आशीष के साथ जो व्यवहार किया था, उस पर उसे बाद में बड़ा पछतावा हुआ था। आशीष प्रेमी के रूप में तो नहीं, मित्र के रूप में उसके जीवन का अनिवार्य-सा अंग बन गया था। उसने आना बिल्कुल छोड़ दिया, तो जूलिया को अपना जीवन पहले से भी अधिक खाली लगने लगा। वह अपने पर झुंझलाती, 'नाहक ही मैंने इस तरह उसके साथ बेहूदगी की। उसकी बात लाख गलत सही लेकिन, किसी की गलती बताने का यह तरीका तो नहीं होता। प्रेम भी एक रोग होता है। मुझे तो हर रोग के साथ सहानुभूति का बर्ताव करना चाहिए। अगर मैं उस समय हँसकर बात आयंदा के लिए टाल देती, तो दो-चार दिनों में आशीष के सर का भूत भी उसी तरह उतर जाता, जैसे और सब का उतर जाता है। हम लोगों को ट्रेनिंग में यही तो सिखाया जाता है कि रोगी अगर प्रेम प्रदर्शन करने लगे, तो उसे कभी न दुतकारो; क्योंकि यह भी उसके रोग का एक मानसिक पहलू होता है और रोग समाप्त होने पर उसकी मुहब्बत भी खत्म हो जाती

है। आशीष को भी निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है, किसी तरह का मानसिक रोग ही था। उसका क्या रोग था, यह मुझे नहीं मालूम। लेकिन नर्सों का काम रोग को पहचानना नहीं, रोगी की परिचर्या करना होता है और मैंने कैसी बढ़िया नर्सिंग की!'

इसीलिए महीने भर बाद उसने वॉल्टर को सारी बात बताकर आशीष की टोह लेने को कहा; क्योंकि स्वयं उसका तो आशीष के बँगले पर जाना सम्भव ही न था। वॉल्टर ने आकर जब बताया कि जूलिया को अब कोई उम्मीद नहीं रखनी चाहिए; क्योंकि आशीष उसका नाम सुनते ही भड़क उठता है, तो वह मुरझाकर रह गई। वॉल्टर जब उसके बाद भी बहुत-सी बकवास करने लगा, तो जूलिया ने उससे साफ-साफ कह दिया कि अब अगर आशीष के बारे में उसने कोई भी बात की, तो वह उसे पिटवा कर निकलवा देगी; क्योंकि वह एक पागल आदमी के बारे में—चाहे वह पागल हिन्दुस्तान का सबसे बड़ा वकील ही क्यों न हो—कोई बात नहीं करना चाहती।

लेकिन, इस समय उसी पागल की जूलिया ने खूब अभ्यर्थना की। उसका प्रोग्राम अपनी सहेलियों के साथ पिक्चर देखने का बन चुका था। लेकिन, उसने सहेलियों से जाकर माफी माँग ली और उसकी सहेलियों ने उसके गाल मसल कर 'रूठे साजन' के 'घर आने' पर मुबारकबाद दी। जूलिया ने आशीष के हजार मना करने पर भी न सिर्फ चाय बनायी, बल्कि कुछ सटर-पटर नाश्ता भी तैयार कर लिया। चाय का प्याला बढ़ाती हुई बोली, "मुखर्जी साहब! आप तो इतने नाराज हो गए कि मुझे माँफी माँगने का भी मौका न दिया। इंसान ही से गलती·······।"

"देखो भई जूलिया!" आशीष हँसकर बोला, "इस वक्त मैं रूठने, मनाने या मनाये जाने के मूड में बिल्कुल नहीं हूँ। ये शिकवे-शिकायतें तो कभी फुर्सत के वक्त अच्छी तरह की जा सकती हैं। इस वक्त तुमसे बहुत जरूरी काम है, तुम्हारी मदद की सख्त जरूरत है।"

जूलिया ने एक क्षण उसकी ओर देखा, फिर शरारत से बोली, "कोई केस हो गया है क्या?"

आशीष पहले तो उसकी बात का मतलब ही नहीं समझा और जब समझा, तो एक चपत मार दी। बोला, "आप को अपनी तरफ से गलत फहमी है हुजूर। आप ऐसे कामों के लिय काफी क्वालिफाइड नहीं हैं। कहीं ऐसे मामलों में हाथ की सफाई भी न दिखाने लगना, वरना किसी बेगुनाह को जान पर आ बनेगी! नीम हकीम खतर ए-जान।"

जूलिया ने कहा, "आप मुझे समझते क्या हैं ? कोइ केस कर लीजिए, तो मैं भी अपने हाथ का कमाल दिखाऊँ। हाँ, फीस भरपूर लूँगी। दोस्ती इन मामलों में नहीं चलती।"

"अच्छा बकवास बन्द करो। काम की बात सुनो, जिसके लिए मैं आया हूँ।"

लेकिन, काम की बात सुनकर जूलिया सूखी-सी हँस पड़ी। बोली, "मुखर्जी साहब ! आपका सुक्रिया किस जबान से अदा करूँ कि आप मुझे किसी काबिल समझते हैं। लेकिन, काश मैं आपकी बात मान सकती ! हम नर्सों की किस्मत में यह प्रिविलेंज कहाँ है ?"

आशीष की समझ में बात न आई, तो जूलिया ने बताया, "आप लोग शायद यह समझे हुए हैं कि हम नर्सें बिल्कुल आजाद होती हैं। आपको क्या मालूम कि इस ऊपरी आजादी के नीचे कितनी बंदिशें रहती हैं। एक तो ड्यूटी ही इतनी जानलेवा होती है कि और कोई काम हो ही नहीं सकता। फिर उस पर मैट्रन साहिबा की सख्ती से तो खुदा बचाये। जिनकी शादी नहीं हुई, उनकी तो मुसीबत है। मैट्रन समझती है कि लड़की हर आदमी के साथ भाग जाएगी। आप लोगों के यहाँ लड़कियों को इतनी जली-कटी सुनने को कभी नहीं मिलती होंगी। यहाँ तो मैट्रन साहिबा मरियम बनी हुई हैं, चाहे जवानी में कुछ भी किया हो।"

"लेकिन ड्रामे में हिस्सा लेना तो कोई गुनाह नहीं है।" आशीष ने हैरानी से पूछा।

"मैं तो समझती हूँ, लेकिन सवाल यह है कि आप उस जाहिल को भी समझा सकेंगे ? मैं तो सर के बल आने को तैयार हूँ। स्टूडेंट लाइफ में काफी इन ऐक्टिविटीज में हिस्सा लेती थी। लेकिन अब तो दूर ही से देख लेती हूँ। रिहर्सलों में बराबर जाने की इजाजत किसी सूरत में नहीं मिल सकती।"

आशीष ने उसकी मजबूरी समझ ली लेकिन परम्परागत शब्दों में सहानुभूति प्रकट करना उसे अच्छा न लगा। कुछ देर बाद बोला, "मालूम होता है बंदिशों से बहुत परेशान हो।"

"बंदिशें किसे पसंद होती हैं ?" जूलिया झुंझला कर बोली, "आप पसन्द करेंगे ?"

"शादी क्यों नहीं कर लेती ?" आशीष हँसकर बोला, "मुझ से नहीं; अपनी पसंद के किसी आदमी से।"

जूलिया खिलखिला कर हँस पड़ी। बोली, "खुदरा फजीहत दीगरांरा नसीहत! आपका क्या मुँह यह सलाह देने का! पहले घर में तो चिराग जला लीजिए फिर मस्जिद की फिक्र कीजिए।"

आशीष तो हँस कर चुप रह गया, लेकिन जूलिया की जो जबान खुली, तो खुल ही गई। उन्मुक्त हास का स्थान व्यंग्यात्मक हास ने लिया। टेढ़ी नजरों से देख कर बोली, "लेकिन आप काहे को शादी का झंझट मोल लेंगे? आपको वैसे ही कौन कमी है? शादी के बाद यह आजादी......।"

आशीष के कान खड़े हुए। वह बात काट कर बोला, "क्या बकवास कर रही हो तुम?"

"बन्दा परवर! आपकी शान में गुस्ताखी कभी नहीं कर सकती। सिर्फ यह अर्ज करना चाहती हूँ कि आप ने गलत जगह तलाश की है। आप जिसे पानी समझ रहे हैं, वह सुराब (मृगजल) है। दौड़ते-दौड़ते मर जाइएगा, गला कभी तर न होगा। आप लाख तीसमारखाँ हों, लेकिन जहाँगीर नहीं है कि शेर अफगन को मरवा कर मेहरुन्निसा को नूरजहाँ बना कर रख सकें।"

"शट अप यूसिली गर्ल!" आशीष जोर से चीख पड़ा, "डोन्ट टॉक रॉट ऐनी मोर!"

जूलिया ने संयत स्वर में कहा, "नाराज न हों, मुखर्जी साहब! मैं सिर्फ दोस्ती के लिहाज से कहना चाहती हूँ कि आप गलत रास्ते पर जा रहे हैं और अपनी हरी भरी जिन्दगी बरबाद कर रहे हैं। आप शादी कीजिए और आराम से रहिए। हम नर्सें तो बदनाम होती ही हैं, हमसे आप को कोई खतरा नहीं हो सकता, सारी बात खुली होती है। दिक्कत तो उन शरीफजादियों के साथ होती है, जिनमें शरारत हम से दस गुनी होती है और जो आप जैसे सादा लौहों को अपनी शरारत और शराफत के दरम्यान शटलकॉक की तरह इधर से उधर फेंकने का खेल खेला करती हैं।"

"देखो, जूलिया। वॉल्टर ने मुझे तुम्हारे बारे में जो कुछ बताया है, उससे तुम्हारी इज्जत मेरे दिल में बहुत बढ़ गई है, लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि तुम्हारी हर बात बरदाश्त कर लूँ।"

"वॉल्टर ने मुझे जो कुछ आप के बारे में बताया है, उसके बावजूद मैं आप की इज्जत करती हूँ और आपके लिए मेरे दिल में हमदर्दी और बढ़ गई है। मैं वही कहूँगी, जिसमे आप का फायदा है।"

"आई विल किल दैट डॉग।" आशीष फिर चीख पड़ा, "उसे मेरे बारे

में या किसी और के बारे में इधर-उधर बेबुनियाद अफवाहें उड़ाने का क्या हक है ? ब्लडी स्काउंड्रल ।"

आशीष जूलिया के कमरे से उठा, तो उसके पाँव ठीक तरह नहीं पड़ रहे थे । जूलिया ने उसे ठंडा करने की कोशिश की, लेकिन वह कोशिश बेकार गई। आशीष ने कोई भी बात करने से इन्कार कर दिया । जूलिया "सुनिए तो! सुनिए तो !" कहती ही रह गई और वह उठ आया ।

शामत का मारा वॉल्टर उसी के घर में उस की प्रतीक्षा में बैठा था । उसे फिर शराब पीने के लिए पैसे की जरूरत पड़ गई थी। वह कुछ कह भी न पाया कि आशीष बोला, "वॉल्टर, चले जाओ यहाँ से। नॉट ऐनअदर वर्ड ! बस चले जाओ फौरन ।"

वॉल्टर घबड़ा कर बोला, "क्या बात है आशीष ? तुम्हें आज हो क्या गया है आखिर ?"

"निकल जाओ !" आशीष चीखा, "और फिर कभी इधर आए, तो कुत्तों से नुचवा दूँगा, समझे ?"

● ● ●

२३

"फिर अब क्या किया जाए आशीष जी ?" शकुन्तला ने परेशान होकर पूछा, "अब तो मालूम होता है कि कोई दूसरा ही ड्रामा रखना पड़ेगा या फिर पाण्डेय जी ही की किसी शिष्या को पकड़ा जाये ।"

"दोनों में से एक बात भी मुमकिन नहीं है । अगर हमें नवम्बर के आखीर में ड्रामा करना है, तो अगले ही हफ्ते से रिहर्सल शुरू हो जानें चाहिए । एक हफ्ते में नया ड्रामा तैयार हो नहीं सकता । रही पाण्डेय जी की किसी शिष्या को पकड़ने की बात, सो मैं अब उनसे और उनकी शिष्याओं से दूर ही रहना चाहता हूँ । पाण्डेय जी छाँट-छाँट कर कूढ़मग्ज लड़कियों को चुनते हैं और कला के सर पर थोपना.... ।"

"आप बिल्कुल ठीक कहते हैं," शकुन्तला शरारत से मुस्कुरा कर बोली।

आशीष हँस पड़ा। बोला, "अपवादों से नियम सिद्ध ही होता है, उसका काट नहीं होता।"

"धन्यवाद !" शकुन्तला बोली, "लेकिन किसी नियम के एक से अधिक भी अपवाद हो सकते हैं।"

"मुमकिन है; लेकिन इन अपवादों को तलाश करने की जिम्मेदारी भी आप ही लीजिए।"

"मुझे तो पाण्डेय जी की शिष्याएँ फाड़ ही खाएँगी। हां, आपकी बात ही दूसरी है।"

"मेरी बात क्या दूसरी है ?" आशीष शकुन्तला के गंभीरता विहीन लहजे से परेशान हो उठा।

"यह तो आप उन्हीं से पूछिए। जब तक आप की शादी नहीं होती तब तक लड़कियाँ आपकी हर बात मानने को तैयार हो जाएँगी—खासतौर से पाण्डेय जी की शिष्याएँ।" शकुन्तला बोली।

"आप या तो मजाक ही कर लीजिए या काम की बात ही।" आशीष सचमुच झुंझला गया।

"भाई, कमाल है। इतने हँसी-मजाक से तो औरतें भी नहीं परेशान होतीं। खैर, जाने दीजिए, माफ कीजिए। लेकिन आप खुद ही बताइए कि जब यह भी नहीं हो सकता और वह भी नहीं हो सकता, तो आखिर हो क्या सकता है। आयोजन ही रद कर दिया जाए ? मेरा तो इसमें कोई नुकसान नहीं है, लेकिन आपकी प्रतिष्ठा क्या रह जाएगी ? लोग क्या कहेगें कि केन्द्र को अच्छे बंटाढार संचालक मिले।"

"मेरी प्रतिष्ठा मेरी ही निगाहों में कुछ नहीं है, तो औरों की निगाहों में क्या हो सकती है।"

"यह तो कोई बात नहीं हुई। आप अपने को सम्माननीय नहीं समझते, इसका मतलब यह तो नहीं है कि कोई दूसरा भी आपको सम्माननीय न समझे" कहते-कहते शकुन्तला की आँखें नीची हो गईं।

आशीष की समझ में नहीं आ रहा था कि क्या कहे। मूल समस्या का समाधान कोई नजर ही नहीं आता था, इधर-उधर की बेमतलब बातें होती चली जा रही थीं। वह सिगरेट सुलगा कर अपने दिमाग पर जोर देने लगा। तभी नौकर ने शाम की डाक लाकर शकुन्तला के आगे रख दी। पांच मिनट

बाद शकुन्तला बोली, "आपकी मुश्किल का हल दिखाई देने लगा है आशीष बाबू !"

पूछने पर उसने बताया कि इसी सप्ताह के अन्त में वीणा आ रही है, उसने लिखा है कि एक महीने के लिए यहाँ रहेगी। शकुन्तला ने कहा कि कोई मुश्किल काम नहीं है, उसे दो महीने को भी रोका जा सकता है।

यकबारगी ही आशीष का शरीर सर से पाँव तक झनझना उठा। वीणा को गए साल भर हो गया था। इस अर्से में न उसने शकुन्तला से उसके बारे में एक भी शब्द पूछा था, न शकुन्तला ने ही अपनी ओर से कुछ बताया था। चाहता वह बहुत था कि शकुन्तला खुद ही उसके बारे में कुछ बताएँ, लेकिन शकुन्तला तो वीणा का जैसे अस्तित्व ही भुला बैठी थी। दो-एक मर्तबा आशीष ने चाहा कि परोक्ष रूप ही से—इधर-उधर की बातों में—वीणा का जिक्र करे, तो शकुन्तला शायद उसके बारे में कुछ बताएँ। लेकिन वह ऐसा भी न कर पाता। कोई चीज गले में अटक जाती, दिल इतने जोर से धड़कता कि जान पड़ता कि लगता, मुँह में ही आ रहेगा और आशीष को इस स्थिति से छुटकारा तभी मिलता, जब वह यह इरादा छोड़ कर कोई बहुत ही गम्भीर विषय उठा लेता——हालाँकि बाद में उसे अपनी 'कायरता' पर झुँझलाहट होती। फिर भी हर मर्तबा इरादा करने पर यह 'कायरता' उसके सर पर सवार हो जाती।

इस समय फिर उसकी स्थिति लगभग वैसा ही हो गई। लेकिन, वह यह नहीं चाहता था कि उसकी 'कायरता' शकुन्तला के सामने भी आए। गले को थूक से तर करके बोला, "यह तो खुशी की बात है कि वीणा जी आ रहीं हैं, मगर उनके आने से ड्रामे की समस्या का समाधान कैसे हो जाएगा ?"

शकुन्तला को इस बनावटी भोलेपन पर मजा आ गया। आशीष का फँसा हुआ गला और थरथराती आवाज उसकी निगाहों से छुपने वाली चीजें न थीं। लेकिन, उसे आशीष पर तरस आ गया। बेचारा अपनी भावनाओं ही से कितना डर रहा है, मतलब समझ कर भी न समझने का अभिनय कर रहा है। ऐसी हालत में छेड़-छाड़ करना मुए पर सौ दुर्रे वाली बात हो जाएगी, जिसमें कुछ मजा नहीं। उसने कहा, "ताज्जुब है आप अभी तक नहीं समझे। ओफी-लिया की भूमिका उसी से करायी जाएगी।"

"लेकिन वे क्या यह झंझट मोल लेना पसन्द करेंगी ?" आशीष ने स्वस्थ होते हुए कहा।

"क्यों ?" शकुन्तला ने भवें चढ़ाकर पूछा, "उसके सर पर तो कोई मैट्रन सवार नहीं है।"

"यह तो ठीक है," आशीष ने हँस कर कहा, "लेकिन•••मैं••••मैं सोचता हूँ•••• ।"

"अरे साहब कह भी डालिए क्या सोचते हैं।" शकुन्तला शरारतभरी खीझ के साथ बोली।

"मेरा मतलब है पार्ट दो ही सीनों का है लेकिन••••लेकिन जरा मुश्किल काम है। मालूम नहीं वीणा जी इससे पहले कभी स्टेज पर उतरी हैं या नहीं। वैसे भी इसमें काफी ट्रेनिंग की•••• ।"

"आप काहे के लिए संचालक बने हैं ? ट्रेनिंग तो आप दे ही लेंगे। और यह आप मानेंगे ही कि जूलिया की शक्ल-सूरत चाहे फिल्म अभिनेत्री से मिलती हो, लेकिन डील-डौल में वह हमारे हेमलेट टंडन जी से सवाई बैठेगी। यह आप खुद ही कह चुके हैं। इस लिहाज से वह हमारे मंच के उपयुक्त वैसे भी नहीं थी। मैंने आपसे यह इसलिए नहीं कहा था कि आपको शायद बुरा लगे। वीणा का डील-डौल भी ठीक है और उसके चेहरे पर वह भोलापन भी स्वाभाविक रूप में रहता है, जो इस भूमिका के लिए जरूरी है।"

आशीष को हार माननी ही पड़ी। बोला, "बातें तो आपकी बावन तोले पाव रत्ती ठीक हैं, लेकिन यह जिम्मेदारी आप ही को लेनी पड़ेगी कि वीणा जी को इसके लिए तैयार कर लें।"

"वह जिम्मेदारी बिल्कुल मेरी," शकुन्तला बोली, "आपको इस मामले में थोड़ा-सा सहयोग देना होगा। वीणा शनिवार की रात को साढ़े नौ बजे पैसेंजर से आ रही है। स्टेशन पर उसे लेने के लिए आपको भी चलना होगा।" कहते-कहते शकुन्तला की आँखों में शरारत फिर झलक आई।

"मैं स्टेशन पर जाकर क्या करूँगा ?" आशीष जैसे अचानक ही घबड़ा उठा।

"देखिए, आप हर बात पर इस तरह अड़ेंगे, तो काम न बनेगा। आप किसी महिला के स्वागत के लिए स्टेशन जाएँ, तो इसमें आप की क्या बेइज्जती होती है ? और फिर इस तरह छोटी-छोटी बातों में नकफुसड़ापन करना हो, तो अपना काम आप ही सँभालिए, मुझे कोई मतलब नहीं।"

स्पष्ट था कि शकुन्तला का रोष बिल्कुल बनावटी और उसकी शरारत का एक हिस्सा था। लेकिन, आशीष इस अवसर को न छोड़ सका। उसने शकुन्तला को 'मना' लिया और तय हो गया कि शनिवार को शकुन्तला और आशीष दोनों ही स्टेशन पर वीणा को लेने के लिए पहुँचेंगे।

आशीष ने अब पूछा, "वीणा जी तो इस साल एम० ए० कर रही होंगी न ?"

"ज्वायन तो किया था, लेकिन एक महीने पहले उसे पढ़ाई से उठा लिया गया।" शकुन्तला ने बताया। कारण पूछने पर उसने कहा कि वीणा की शादी तय हो गई है। वर का परिवार तो अच्छा-खासा है और उन्हें लड़की पसंद भी आ गई है, लेकिन वर की शिक्षा केवल बी० ए० तक है और उसे या उसके माँ-बाप को पसंद नहीं कि लड़की लड़के से ज्यादा पढ़ी-लिखी आए,। इसी लिए उन्होंने यह शर्त रखी कि वीणा को एम० ए० न करने दिया जाए; और वीणा के पिता ने इस बात को खुशी से मंजूर कर लिया।

"अजीब बात है !" आशीष हँस कर बोला, "अजीब घनचक्कर लोग होते हैं दुनियाँ में। वीणा ने क्या कहा ?"

"उसके कहने या न कहने का क्या सवाल है ? हमारे यहाँ तो लड़कियों को पढ़ाया इसीलिए जाता है कि शादी के बाजार में उनका भाव ऊँचा हो सके। और जब शिक्षा के कारण भाव उठने के बजाय गिरने लगे, तो होशियार व्यापारी क्यों ऐसा घाटे का सौदा मंजूर करेगा ?" शकुन्तला हँसकर बोली।

"यानी लड़कियों की शिक्षा न हुई, बिकाऊ माल का विज्ञापन हो गई।" आशीष बोला।

"शिक्षा का और महत्व ही क्या है आम लोगों के लिए ? शिक्षित होने के लिए कौन कमबख्त पढ़ता है ? लड़कियाँ पढ़ती हैं शादी करने के लिए, लड़के पढ़ते हैं नौकरी के लिए। लड़कियों का उद्देश्य अपने पतियों की गुलामी करना होता है, लड़कों का उद्देश्य दूसरों की गुलामी करना होता है। हालत कमी-बेश दोनों की एक ही है। शिक्षा के महान् उद्देश्य तो कनवोकेशन ऐड्रेसों तक ही सीमित रहते हैं।"

"फिर भी यह शादी खुद वीणा जी ने तो तय नहीं की है। उन्हें तो पढ़ाई छोड़ते समय बुरा लगा ही होगा।"

"तो आप मुझसे जिरह क्यों कर रहे हैं ? मैं ने तो उसकी एजुकेशन नहीं छुड़वाई ! और फिर अब तो वह खुद ही आ रही है। जितनी हमदर्दी दिखाना चाहें, दिखा लीजिएगा। पूछ लीजिएगा कि यह शादी उसे पसंद है या नहीं; न पसंद हो तो इन्कार करवा दीजिएगा उससे। मेरी जान क्यों खा रहे हैं ?" शकुन्तला ने बात खत्म कर दी।

आशीष की समझ ही में न आया कि कभी-कभी शकुन्तला को क्या हो जाता है। उसने तो एक मामूली बात ही कही थी, इस पर नाराज होने से

ज्यादा बेतुकी बात और क्या हो सकती थी ? लेकिन, उसने अपनी सफाई देकर आग में घी डालना ठीक न समझा। कुछ देर बाद बोला, "एक बात मैं कुछ दिनों से नोट कर रहा हूँ, शकुन्तला जी ! आप नाराज न होने का वादा करें, तो कहने की हिम्मत करूँ।"

आश्वासन पाने पर उसने कहा, "आप अपने स्वास्थ्य की ओर से लापरवाह हो गईं हैं शायद इधर।"

शकुन्तला हँस पड़ी, "बड़ा तकल्लुफ करने लगे हैं आप तो। इस बात पर मैं क्यों नाराज होती ? मेरा दिमाग खराब है क्या ? लेकिन, आपका खयाल गलत है। मुझे तो अपना स्वास्थ्य ठीक ही लगता है।"

"मुझे तो नहीं लगता।...देखिए....आप पढ़ाई-लिखाई पर इतनी मिहनत न किया कीजिए। आपकी आँखों के नीचे गड्ढे पड़ रहे हैं यह कोई भी देखकर बता सकता है। इधर आपने अपना वजन लिया है ?"

"हाँ, परसाल से पाँच पौण्ड कम हो गयी हूँ।" शकुन्तला बोली, "लेकिन यह तो कोई घबड़ाने की बात नहीं है, खुशी ही की बात है। परसाल मैं काफी मोटी हो गई थी। बदन पर चर्बी चढ़ाना अच्छा है क्या ?"

"लेकिन चर्बी गलाने का यह तरीका तो ठीक नहीं है। इससे तो बड़ा इम्बैलेंस पैदा......।"

"आप अपनी हमदर्दी अपने ही पास रखिए।" शकुन्तला हँसती हुई बोली, "आपका भी डबल स्टैण्डर्ड है। किसी की कालेज की पढ़ाई छूटने पर अफसोस, किसी की प्राइवेट ड्यूटी पर भी एतराज।"

आशीष हँसकर चुप रह गया। उसका उद्देश्य शकुन्तला का रोष दूर करना था, वह पूरा हो गया था। अब बात करने के लिए कुछ बचा भी न था। दो-एक इधर-उधर की बातें करके—गोयल साहब और आलोक का हालचाल पूछ कर—आशीष उठ आया।

रात को खाना खाने के बाद शकुन्तला ने अपनी आदत के अनुसार दर्शन शास्त्र की एक पुस्तक उठायी। उसे बार-बार खोला, फिर बन्द कर दिया। बत्ती बुझाकर लेट रही। सोने का समय न था और इधर महीनों से उसकी आदत हो गई थी कि बगैर पढ़े उसे नींद नहीं आती थी। उसने तय किया कि न पढ़ूँगी, न सोऊँगी। लेकिन पन्द्रह मिनट ही में वह सो गई।

शनिवार को आशीष को भी अपने स्वागत के लिए आया देखकर वीणा चौंक उठी। उसने हाथ भी जोड़े, आशीष ने उसका हालचाल पूछा, तो कह भी

दिया कि अच्छी तरह हूँ, लेकिन और कोई बात उससे नहीं की; अपनी भाभी से ही छेड़छाड़ करती रही। आशीष सिर्फ सुनता और मुस्कुराता रहा। वीणा उसकी आशा के विपरीत काफी स्वस्थ दिखायी दे रही थी, बल्कि आशीष को पहले से कुछ लम्बी भी लग रही थी। चालढाल में पारसाल जैसी चंचलता तो न थी, लेकिन कोई भारीपन भी नहीं आया था। आशीष को यह देखकर सन्तोष हुआ। चलते समय शकुन्तला ने आशीष से दोपहर और शाम चैथमलाइंस ही में बिताने का वादा ले लिया।

लेकिन दूसरे दिन यह हालत न रही। खाने की मेज पर मामूली शिष्टाचार की निरर्थक बातें हुईं, जिनमें शकुन्तला और आशीष दोनों ने ही "जी हाँ" और "जी नहीं" से ज्यादा हिस्सा नहीं लिया। गोयल साहब को आज सोने की भी फुर्सत नहीं थी; क्योंकि उन्हें उसी दिन एक मुकदमे का फैसला लिखना जरूरी मालूम हुआ (हालाँकि फैसले की तारीख पन्द्रह दिन बाद पड़ती थी)। उन्होंने सुबह ही चपरासी भेज कर स्टेनो को बुलवा लिया था। स्टेनो पहले तो इस बात पर काफी झुझलाया था कि साहब इतवार के दिन भी क्यों चैन नहीं लेने देते, लेकिन यहाँ आकर जब उसे मालूम हुआ कि पन्द्रह दिन बाद सुनाया जानेवाला फैसला आज लिखना है, तो उसकी बाँछें खिल गईं। अब उसके लिए यह सम्भव था कि विजयी पक्ष से यह कहकर बीस-पचीस रुपए झाड़ सके कि मैं साहब को 'समझा-बुझाकर' तुम्हारे हक में फैसला दिला दूँगा। गोयल साहब साधारणतः उसे इस बात का मौका न देते थे और जिस दिन फैसला सुनाना होता, उसी दिन उसे लिखवाते थे। स्टैनों ने दीनबंधु भगवान को लाख-लाख धन्यवाद दिया।

इधर ड्राइंग रूम में शकुन्तला, वीणा और आशीष डट गए। शकुन्तला ने कहा, "वीणा ! तुम्हें यहाँ एक महीने नहीं, दो महीने तक रुकना है। अभी से बताए देती हूँ। चाचाजी को खत डाल दो, बल्कि मैं भी लिख दूँगी।"

"ऐसी क्या मुसीबत आ गई ?" वीणा हँसकर बोली। उसके एक-दूसरे पर चढ़े दाँत फिर दिखायी देने लगे। शकुन्तला ने उसे रोकने का उद्देश्य बताया, तो कुछ क्षणों के लिए वह चुप रह गई। फिर बोली, "मैं कर भी सकूँगी यह काम ? अभी तक तो स्टेज पर कभी नहीं आई हूँ। डर के मारे बेहोश तो नहीं हो जाऊँगी ?"

"उसकी फिक्र न करो," शकुन्तला हँसती हुई बोली, "सँभालने वाले तुम्हारे सामने ही बैठे हैं।"

आशीष परेशान होने लगा, लेकिन वीणा पारसाल की वीणा न रह गई थी।

बोली, "मुझे तो न गिरने का तजुर्बा है, न सँभलने का। यह तो आप ही वता सकती हैं जनाव, कि कैसे गिरा जाता है कैसे सँभला जाता है।"

आशीष सन्न रह गया। शकुन्तला की भी हँसी गायव हो गई। वोली, "क्या मतलव है तुम्हारा?"

वीणा आदतन वक जरूर गई थी, लेकिन महसूस उसे भी हो गया कि गलत वात मुँह से निकल गई है। पर, उसमें इतना आत्म-विश्वास हो गया था और इतनी त्वरित बुद्धि भी थी कि बिगड़ी बात को सँभाल ले। बोली, "मतलब तो साफ है। तुम्हें हर-हर कदम पर सँभालने वाले, सहारा देनेवाले, दुलारने वाले, पुचकारने वाले तो मौजूद ही हैं, जो इस वक्त किसी केस का जजमेंट लिखवा रहे हैं।"

वातावरण का तनाव खत्म हो गया। आशीष मुस्कुरा उठा। शकुन्तला ने वीणा के गाल में चिकोटी काटकर कहा, "घवड़ा क्यों रहो हो, लल्ली? तुम्हें भी दुलारने-पुचकारने वाले जल्द ही मिलने वाले हैं।"

"वह तो जब होगा तव होगा और न जाने हो भी या नहीं। मैं तो अभी की वात कह रही हूँ।" वीणा ने कहा और फिर शकुन्तला को जवाव देने का मौका दिये वगैर बोली, "वहुत लम्बा तो नहीं है पार्ट? मैं तो...।"

"तुम तो गँवारों की-सी बातें करने लगी हो," शकुन्तला ने कहा, "तुमने 'हेमलेट' नहीं पढ़ा क्या?"

"नहीं भाई, इण्टर में 'टैम्पैस्ट' पढ़ाया गया था और बी० ए० के कोर्स में 'अँथैलो' था। वीणा ने कहा।

"अरे तो भली आदमिन! कोर्स के बाहर भी तो कुछ पढ़ा जाता है।" शकुन्तला ने झुंझला कर कहा, "तुम्हारे अँगरेजी के प्रोफेसर ने क्या सिर्फ कोर्स ही रटने को कहा था? 'हेमलेट', 'मेकवॅथ' जैसे खास ड्रामे तो हर स्टूडेण्ट को पढ़ने चाहिए वरना शेक्सपियर क्या समझ में आएगा? ड्रामे का पर्चा तुमने क्या खाक किया होगा। सिर्फ कोर्स पढ़कर....।"

"देखो भाभी, बोर न करो। अपने राम को न फर्स्ट डिवीजन लाना था, न रिसर्च करना था। बस इम्तहान पास करना था, सो कर लिया। दो साल उन घोंघा बसंत प्रोफेसर की किचकिच सुनी, अब तुम वही चर्चा लेकर वैठ गई।"

शकुन्तला ने इस बात का कुछ जवाव न दिया। सिर्फ आशीष की तरफ देखकर मुस्कुरा दी। आशीष भी समझ गया कि ताने दे रही है कि इसी के

लिए कह रहे थे कि पढ़ाई छूटने पर अफसोस हुआ होगा। वह बोला, "वीणा जी, मुझे जहाँ तक याद पड़ता है, आपने पारसाल मुझसे सायकालॉजी पढ़ते समय यह इच्छा प्रकट की थी कि आप फर्स्ट डिवीजन पाना चाहती हैं। आश्चर्य है, साल ही भर में आपमें यह परिवर्तन हो गया!"

"वह तो ठीक है मि० मुखर्जी! लेकिन, अनुभवहीनता के कारण कभी-कभी ऐसी इच्छाएँ भी होने लगती हैं, जो कभी पूरी नहीं हो सकतीं। इन इच्छाओं से जितनी जल्दी पीछा छुड़ा लिया जाए, उतना ही अच्छा। समझदारी इसी में है कि मृगजल के पीछे न दौड़ा जाए।" वीणा ने इत्मीनान से कहा।

आशीष चौंक उठा। यह क्या बात है? पिछले सप्ताह भी उसे यह सुनने को मिला था, आज भी यही सुनने को मिला है। लेकिन, क्या वह वास्तव में मृगजल के पीछे दौड़ रहा है? मृगजल के पीछे ही नहीं, क्या वह कहीं भी दौड़ रहा है। उसके जीवन का तो जैसे बहाव ही बन्द हो गया है, उसमें तालाब की तरह हवा से लहरें तो उठती हैं, लेकिन पानी का ठहराव तो जैसे का तैसा है।

खैर, मौका न दार्शनिक गुत्थियाँ सुलझाने का था, न वीणा की खैरख्वाही करने का। आशीष ने कहा, "खैर यह आपका निजी मामला है। अच्छा, ड्रामे के बारे में आपने क्या सोचा!"

"भई क्या बताऊँ?·······बड़े झंझट का काम मालूम होता है।" वीणा ने नखरे के साथ कहा।

आशीष के अंग-प्रत्यंग में आग लग गई। यही वह भोलापन है, जिसके आधार पर शकुन्तला ने वीणा को ओफीलिया की भूमिका के उपयुक्त समझा था और फिर आशीष वही व्यक्ति था जिसकी विद्वता की एक ही साल पहले इसने इतनी प्रशंसा की थी। आज क्या चाहती है कि वह इसके नखरे उठाए, इसकी खुशामद करे, इसके सामने गिड़गिड़ाए? उसने शकुन्तला की ओर देखा।

शकुन्तला को अपने खामोश ताने का जवाब मिल गया था। उसने कहा, "क्या झंझट है इसमें? इतनी नजाकत तो तुममें पहले नहीं थी। जरा-सी शादी क्या तय हुई, नखरों का ठिकाना नहीं रहा। आशीष बाबू के लिए सारे ड्रामे का बोझ ढोना खेल है, इन फूल परी के लिए जरा-सा दो लाइन का पार्ट नामुमकिन बात है। क्या कहते हैं?"

वीणा को यह आशा न थी कि कला-संसार के प्राणी इतने मुँहफट होते

हैं। उसने वाकई यह सोचा था कि आशीष कुछ खुशामद करेगा और मैं मान लूँगी। इस वक्त तो पासा ही पलटा जा रहा था। उसने फिर बात सँभाली, "भाभी ! तुम तो बेकार बिगड़ने लगती हो। मैंने यह कहाँ कहा है कि मैं काम नहीं करूँगी ? मैं तो सिर्फ यह कह रही थी कि कभी स्टेज पर नहीं उतरी, इसलिए जी घबराता है। यह कहना भी गुनाह है ?"

चलिए साहब, तय हो गया कि वीणा ओफीलिया का पार्ट करेगी। ड्रामे की स्क्रिप्ट शकुन्तला के ही पास थी; क्योंकि इसके रिहर्सल भी यहाँ होने वाले थे। स्क्रिप्ट मँगा कर आशीष ने कहा, "ट्रायल अभी हो जाए न ? इसमें दो सीन हैं, जिनमें ओफीलिया आती है—एक पिता की मृत्यु के पहले, एक बाद में। कहानी इन तीन पृष्ठों में लिखी है। इसे ध्यान से पढ़ लीजिए। इसके बाद यह लीजिए ओफीलिया के सम्वाद हैं। मैं पहले सीन में हेमलेट का पार्ट करूँगा, आप ओफीलिया का कीजिए। थोड़ा ही काम है।"

वीणा ने बड़े अंदाज से कागज उठाए, तीन पृष्ठ पढ़ने में पाँच बार पैंतरा बदला, सात बार गर्दन टेढ़ी की और दस बार मुँह और आँखें सिकोड़ीं, जैसे बड़ी तकलीफ का काम है। आशीष चुप-चाप देखता रहा। इसके बाद संवादों को देखा और पार्ट अदा करने को खड़ी हो गई। आशीष भी हेमलेट की स्क्रिप्ट लेकर खड़ा हो गया। दृश्य दोनों के प्रेम संवादों का था और चार-छः लाइनें पढ़ते हुए वीणा ने इतने हाव-भाव दिखाए, इतनी गर्दन और आँखें मटकायीं कि आशीष अन्दर-ही-अन्दर उफन कर रह गया। दो-चार मिनट के लिए वीणा बाथरूम गई, तो आशीष बोला, "बेकार है। चलेगी नहीं।"

"वह तो मैं भी देख रही हूँ।" शकुन्तला बोली, "लेकिन किया क्या जाए ? अब तो इससे कह ही दिया है।"

"मेरी समझ में नहीं आता कि इसे क्या हो गया है ? पारसाल से बिल्कुल बदल गई है।"

शकुन्तला हँसकर बोली, "बदल तो खैर गई है, लेकिन आप को देखकर खास तौर पर बदल जाती है। सुबह से दोपहर तक—जब तक आप नहीं आए थे—इतने हाव-भाव नहीं दिखा रही थी।"

आशीष के हृदय में क्रोध का दूसरा ज्वार उठा। वह वीणा के साथ ही शकुन्तला के लिए भी कुछ कहने वाला था कि वीणा बाथरूम से वापस आ गई। आशीष दिल-ही-दिल घुटकर रह गया।

प्रकट में उसने कहा, "कोई बात नहीं, वीणा जी। आप का पहला अवसर है, इस लिहाज से आपकी ऐक्टिंग अच्छी रही है। आपकी कुछ गलतियाँ अभी

शकुन्तला जी बता देंगी, बाकी सब रिहर्सलों में ठीक कर दिया जाएगा। परसों से यहीं पर बाकायदा हफ्ते में दो रोज रिहर्सल हुआ करेंगे।"

"कुछ आप भी तो बताए जाइए; मेरी गलतियाँ।" वीणा ने बड़े लटके के साथ शिकायत-सी की।

"वह तो मैं रिहर्सलों में ब्योरेवार बता दूँगा। अभी तो आज्ञा दीजिए। काफी देर हो गई है।"

घर जाते समय आशीष सोच रहा था कि उसका दिमाग तो नहीं खराब हो गया है। 'इसी गर्दन मटकाने वाली स्प्रिंगदार गुड़िया के बारे में मैं शकुन्तला से कह बैठा था कि मैं इससे प्रेम करता हूँ? इससे प्रेम करना संभव भी है?········ शकुन्तला कहती थी कि यह मुझे देखकर और नखरे करने लगती है······लेकिन क्यों?········इसकी शादी भी तय हो चुकी है और इस बात से असंतुष्ट भी नहीं है······तो क्या सोचती है कि पारसाल मैंने प्रेम की भूमिका बांधने के लिए ही इसे पढ़ाया था?········और क्या इसी आधार पर मुझे नचाना चाहती है?······· लाहौल वलाकुव्वत······वीणा जी! यह खेल खेलना शकुन्तला के ही बस का काम है, तुम्हारी जैसी गधियों के बस का नहीं······मुँह के बल गिरोगी और हाथ पांव तुड़वा लोगी······कोई ठिकाने का आदमी मिल गया, तो जूलिया-जैसी किसी नर्स की मुट्ठी गर्म होने का काफी सामान हो जाएगा और सारा खेल धरा रह जाएगा······खैर अपने को क्या लेना-देना है?······मुझे तो उससे सम्पर्क बढ़ाना ही नहीं है··· ···ऐक्टिंग शकुन्तला ही ठीक कर लेगी।'

लेकिन, उसकी आशा फलवती नहीं हुई। दस-बारह दिन बाद शकुन्तला से उसने कहा कि यह कुछ सँभल नहीं रही है, तो वह बोली, "मैं क्या करूँ? मैं कुछ बताती हूँ, तो लड़ने लगती है, कहती है; तुम एक बार स्टेज पर जाकर न जाने अपने को क्या समझने लगी हो; मेरी कोई गलती होती, तो आशीष जी बताते न?·······यही नहीं, मेरे काले रंग का मजाक भी उड़ाने लगी है।" कह कर शकुन्तला हँसने लगी।

अब आशीष बरदाश्त न कर सका। उसने फैसला कर लिया कि दो टूक बात हो जानी चाहिए, चाहे वीणा ही नहीं शकुन्तला भी नाराज क्यों न हो जाए? नाट्य कला के साथ मजाक कब तक चल सकता है?

अगले रिहर्सल में उसने वीणा पर काफी डांट-फटकार की। कह दिया, "आप बेकार सर मार रही हैं, यह आपके बस का रोग नहीं है।" संयोग से उस दिन अभिनेता गण कम ही आए थे और रिहर्सल कुछ ही दृश्यों का होकर

जल्दी ही खत्म हो गया था। डांट पड़ने पर वीणा चुप-चाप जाकर बैठ गई, आशीष ने संवाद बोलने के लिए बुलाया तो भी न आई। आशीष ने भी एक बार कहकर दुबारा न कहा और उसका सीन छोड़कर शेष कार्यक्रम पूरा कर लिया।

रिहर्सल खत्म होने के बाद शकुन्तला ने विराम सन्धि करवानी चाही। बोली, "वीणा, तुम्हें इस तरह नहीं रूठना चाहिए। सिखाने वाला डांट भी देता है, वह भी सीखने वाले को लाभ ही देता है।"

"मुझे नहीं सीखना।" वीणा आँखें तरेर कर बोली। गुस्से के मारे उसकी आवाज कांप रही थी। बोली, "तुम्हीं को गालियां खाना, पीटना, तलवे चाटना, लोगों में अपनी बदनामी कराना मुबारक रहे।"

"शकुन्तला जी !" आशीष की गम्भीर आवाज सुनायी दी, "वीणा जी, इस ड्रामे में नहीं आएँगी। अगर आप इनके रहने पर इंसिस्ट करती हों, तो मुझे छुट्टी दीजिए। मैं इनसे बिल्कुल काम न ले सकूँगा।"

"फिर मुझे दो महीने के लिए रोका काहे को था ?" वीणा तड़प कर उठ खड़ी हुई।

"मैंने न आपको बुलाया है, न रोका है। जिसने रोका हो, उससे शिकायत कीजिए।"

"यू आर ए स्काउंड्रल, ए डर्टी स्वाइन।" वीणा ने गुस्से में हांफते हुए कहा।

"थैंक यू !" आशीष ने ठंडे स्वर में कहा और सिगरेट जलाकर कश लेने लगा।

शकुन्तला ने आशीष को ठंडा करने की कोशिश की, "लेकिन ड्रामा कैसे होगा ? यह भी तो सोचिए।"

"यह पार्ट वन्दना करेगी। मैंने माता जी को तैयार कर लिया है। इस बात का यकीन रखिए कि मेरी बहन, गोयल साहब की बहन से अच्छा काम करेगी। उसे मेरी डांट क्या, मार तक सहने में एतराज नहीं होगा।"

● ● ●

२४

वीणा ने तय किया कि दो महीने क्या, मुझे यहाँ पूर्व निश्चित योजना के अनुसार एक महीने भी नहीं रुकना चाहिए। अपने घर में सब से बड़ी लड़की होने की वजह से उसकी तूती बोलती थी, वहाँ उसकी जायज-नाजायज हर जिद पूरी की जाती थी। लखनऊ में भी कमोवेश सभी लोग उससे शिष्टता पूर्वक व्यवहार करते थे और एक है यह वेतुका शहर! एक बाहरी आदमी ने घर ही में आकर उसका इतना बड़ा अपमान कर दिया और उसी आदमी के तलवे सहलाए जा रहे हैं। नहीं अब यहाँ रहना नहीं हो सकता। शकुन्तला ने रात को वीणा को फिर समझाने की कोशिश की। वीणा ने उसे बुरी तरह झिड़क दिया। शकुन्तला इस पर चुप हो गई। झगड़ा न बढ़ने की वजह से वीणा का क्रोध और बढ़ा। गत वर्ष अगर वीणा ने इससे आधा भी गुस्सा दिखाया होता, तो शकुन्तला उसकी धज्जियाँ उड़ा डालती। लेकिन इस वर्ष न मालूम उसके स्वाभाव में कैसा परिवर्तन आ गया था कि उसे क्रोध आता ही न था और अपना मान-अपमान जैसे उसके लिए कोई चीज ही नहीं रह गए थे। दर्शन के अध्ययन ने इस मानसिक परिवर्तन को और भी पुष्ट कर दिया था, लेकिन वेचारी वीणा इन बातों को क्या समझती। उसने सोचा कि यह दिल का चोर है, जो शकुन्तला की जबान वन्द किए है। उसकी हिम्मत अब आशीष से कुछ कहने की रही नहीं थी (आशीष की नजरें जैसे उससे कहती रहती थीं कि अगर और मिट्टी खराब न करानी हो, तो अब मुझ से न उलझना) वीणा के लिए इलाहाबाद में अब कोई आकर्षण बाकी न रहा था।

लेकिन, रात को काफी देर उवलने-उफनने के बाद वीणा ने सोचा कि यूँही इलाहाबाद से चले जाना भी ठीक नहीं है। इसका मतलब तो यह होगा कि मैंने स्वीकार कर लिया कि मेरा अपमान ठीक ही हुआ। अपमान करने वालों को उनकी हरकत का कुछ मजा तो चखाना चाहिए।

उसे गोयल साहब से भी हमदर्दी होने लगी, वल्कि कुछ गुस्सा भी आने लगा। इतना सीधापन भी किस काम का कि लगभग उनकी आँखों के आगे ही नंगनाच होता रहे और वे दम साधे वैठे रहें। अपनी पत्नी के आवारापन पर वे रोक न लगाएँगे, तो खान-दान की इज्जत कैसे कायम रहेगी? उन्हें

आशीष का आना-जाना बन्द करना ही होगा। वीणा ने तय किया कि मौका मिलते ही उनसे बात करेगी। भाग्यवश दो ही दिन बाद उसे ऐसा मौका मिल गया। शकुन्तला को शॉपिंग करना था। उसने शिष्टता वश वीणा से भी साथ चलने को कहा, लेकिन वीणा ने कह दिया कि उसे यह बिल्कुल पसंद नहीं है कि नौकर-चाकरों के होते हुए बाजारों में दौड़ती फिरे।' शकुन्तला अकेली ही बाजार चली गई। सात बजे के करीब गोयल साहब आए। पूछा "शकुन्तला कहाँ है ? वीणा ने कह दिया, मुझे नहीं मालूम कहाँ गई है।"

गोयल साहब चुपचाप अपने कमरे में चले गए।

वीणा को मालूम हुआ कि गोयल साहब की तबियत ठीक नहीं है। उन्हें शायद बुखार हो। उनका चेहरा लाल पड़ा था, आँखें भारी हो रही थीं और वे ठीक तरह चल भी नहीं पा रहे थे। वीणा को शकुन्तला पर गुस्सा आया। पति की यह दशा है और आप बाहर गुलछर्रे उड़ा रही हैं। खैर शकुन्तला को गोयल साहब का ख्याल हो या न हो, वीणा को जरूर था। कुछ भी हो, वे उसके भाई थे और वह उनसे गैरियत नहीं बरत सकती थी। तबियत खराब होने पर भी उन्हें कोई एक गिलास पानी के लिए पूछने वाला न हो यह बात ठीक नहीं है। वीणा उनके कमरे में चली गई।

गोयल साहब ने कुर्ता-पैजामा पहन लिया था और ईजो चेयर पर आँखें बन्द किए लेटे थे। उंगलियों में दबी हुई सिगरेट जलती ही चली जा रही थी। वीणा ने पूछा, "कैसी तबियत है भाई साहब ?"

गोयल साहब ने लाल-लाल आँखें खोल कर वीणा को देखा। बोले, "क्या कहती हो ?"

"आपकी तबियत कैसी है ?" वीणा ने पास आते हुए अपना प्रश्न दुहराया।

"तबियत...तबियत तो ...ठीक हो है मेरी।...तुम्हारी तबियत कैसी है मिस्टर वीणा ?"

गोयल साहब हे-हे-हे-हे करने लगे। वीणा चकरा गई। यह कैसी बीमारी है ? बीमारी की हाल पूछने पर हँसना, उसे 'मिस्टर' कहना ! इनके दिमाग पर तो असर नहीं हो गया ? बुखार की बड़बड़ाहट तो ऐसी नहीं होती। वीणा परेशान होकर बोली, "मेरी तबियत तो बिल्कुल ठीक है।"

"वेरी गुड़ ! वेरी फाइन ! एक्सेलैंट ! तबियत ठीक ही रहनी चाहिए... बीमारी से बढ़कर कोई गुनाह नहीं। बुजुर्गों ने कहा है 'तन्दुरुश्ती हजार नेमत है'।....तन्दुरुस्ती से बड़ी कोई चीज नहीं।"

स्वास्थ्य के महत्त्व पर होनेवाले इस बेमौके भाषण से वीणा की परेशानी और बढ़ी। उसने कहा, "भाई साहब! आपकी तबियत्त वाकई खराब मालूम होती है। आप पलँग पर लेटिए।"

"तबियत तो खराब रहती ही है मेरी, वीणा। कहा है कि 'सारे जहाँ का दर्द हमारे जिगर में है।' एक और भी मसल है कि काजी क्यों दुबले, शहर के अन्देशे से। तो समझे आप वीणा गोपाल जी?"

वीणा उनकी बात तो न समझी, पर इतना जरूर समझ गई कि गोयल साहब की तबियत ठीक है। कोई बीमार इतनी मस्ती से बातें नहीं कर सकता। वह एक कुर्सी पर बैठ गई। शकुन्तला घर में थी नहीं, गोयल साहब से बात करने का इससे अच्छा क्या मौका हो सकता था। कुछ क्षण मौन रहकर वह बोली, "भाई साहब! बहुत दिनों से एक बात कहना चाहती थी। नाराज न हों, तो कहूँ।"

"डर बहुत बुरी बात है," गोयल साहब ईजी चेयर पर और फैलकर बोले, "नेपोलियन ने कहा है····।"

वीणा झुँझला गई। अजीब पागलों के शहर में आ गई थी वह। बात काट कर बोली, "नेपोलियन ने जो कहा होगा, वह कहा होगा। इस वक्त मैं कुछ कहना चाहती हूँ। आप सुनना चाहें तो कहूँ, वर्ना जाऊँ।"

"नहीं····नहीं····कहो····जरूर कहो···जाओगी क्यों।" गोयल साहब आँखें बन्द करके बोले।

वीणा ने कहा, "भाई साहब! मैं आपकी बहन हूँ। हो सकता है कि कभी आपकी शान के खिलाफ कुछ कह जाऊँ। लेकिन यह यकीन रखिए कि जो कुछ कहूँगी, वह आपके भले के लिए ही होगा।"

"इन्सान को हमेशा दूसरों की भलाई ही सोचनी चाहिए। तुम वाकई बहुत अच्छी लड़की हो, वीणा।···कहा भी है कि 'दर्दे-दिल के वास्ते पैदा किया इंसान को'···कहो, कहो, चुप क्यों हो गई?"

वीणा शेरों के उद्धरणों से ऊब चुकी थी। बोली, "मैं क्या कहूँ? आप तो न कुछ सुनना चाहते हैं, न समझना चाहते हैं···आपको अपने घरबार की फिक्र तो मालूम नहीं होती।"

"घर की बात करनी हो, तो घरवाली से करो; मुझसे तो बाहर की बातें ही करनी चाहिए।।"

"भाई साहब ! डोंट बी सिली !" वीणा लगभग चीखकर बोली, "यू मस्ट स्टॉप दिस रॉट ।"

"ह्वाट रॉट !" गोयल साहब ने निर्विकार भाव से पूछा।

"आप आशीष बाबू का आना बन्द क्यों नहीं कर देते ? तमाम बदनामी हो रही है घर की ।"

"मैं नहीं बन्द कर सकता···क्यों बन्द करूँ ? आशीष इज एफाइन चैप ! शकुन्तला उसे लाइक करती है । शकुन्तला बहुत अच्छी औरत है···मैं उसे लाइक करता हूँ ।" गोयल साहब ने 'फैसला' दिया ।

वीणा गुस्से के मारे पागल-सी हो गई। बोली, "आपका तो दिमाग बिल्कुल खराब हो गया है। कोई बात आपकी समझ ही में नहीं आती है। मैं इस पागलखाने में नहीं रह सकती । मैं कल ही चली जाऊँगी ।"

तब तक शकुन्तला भी कमरे में आ गई, बोली, क्यों परेशान कर रहे हैं आप लड़की को ? बेचारी दो दिन के लिए आई है उसे चैन से तो रह लेने दीजिए । चलो वीणा ! इनकी हालत तो यही रहती है ।"

शकुन्तला ने कमरे में आते हुए वीणा का क्रुद्ध स्वर और अन्तिम वाक्य ही सुना था । समझी थी कि नशे के झोंक में गोयल साहब ने वीणा से कुछ ऊटपटांग बात कह दी होगी, जिस पर यह बिगड़ी है। अपने कमरे में वीणा को लाकर शकुन्तला ने पूछा, "क्या कहा था इन्होंने तुमसे ?"

वीणा का दिमाग खराब हो ही रहा था। बोली, "अब तुम भी मुझसे कैफियत तलब करोगी ?"

"बात क्या है वीणा ?" शकुन्तला झुँझला गई, "यह तो पीते ही हैं, क्या तुम्हें भी पिला दी इन्होंने ?"

वीणा आसमान से गिर पड़ी। "पूछा, "क्या कहा भाभी ? भाई साहब शराब भी पीने लगे हैं !"

शकुन्तला हँसने लगी। बोली, "तुम इतनी देर से यह भी न समझ सकीं ? बड़ी बुद्धू हो !"

"मुझे क्या मालूम ? मैंने तो किसी शराबी को इससे पहले देखा नहीं था···· तभी भाई साहब ऐसी बहकी-बहकी बातें कर रहे थे। तुम थी नहीं। यह आए, तो मैंने इनका लाल चेहरा देखकर सोचा कि तबियत खराब होगी। हाल पूछने आई, तो हर बात पर कोई-न-कोई शेर पढ़ने लगे । मैं परेशान हो गई ।"

"खैरियत थी कि शेर पढ़ने का ही मूड था, वर्ना यह भी हो सकता था कि हाथ पकड़ लेते और दूसरी ही शायरी करने लगते। जरा बचकर रहा करो, बड़े दिल वाले हैं तुम्हारे भाई साहब। किसी दिन....।"

वीणा ने शकुन्तला का मुँह बन्द कर दिया। बोली, "हटो भी भाभी! तुम्हें हर वक्त मजाक सूझता है।"

फिर बोली, "कब से डाल ली यह लत इन्होंने? पहले तो बड़े सीधे-सादे आदमी थे, स्मोक भी नहीं करते थे।"

"पारसाल से यह शग्ल शुरू किया है इन्होंने...जब तुम इन्हें जबर्दस्ती छोड़कर चली गई थी।"

वीणा ने आँख भरकर शकुन्तला की तरफ देखा। उसकी स्मरण-शक्ति इतनी कमजोर न थी कि वह एक साल पहले की बातें भूल जाती। इस बार इलाहाबाद आते समय कुछ-कुछ डर भी रही थी, लेकिन यूनिवर्सिटी छोड़ने के बाद दो महीने ही में फर्रूखाबाद जैसे छोटे कस्बे में ऊब गई थी और मन बहलाने के लिए आ गई थी। सोचा था कि कोई बात गलत होगी भी, तो ठीक कर लूँगी, अब तो शादी भी तय हो गई है। लेकिन, यहाँ आकर उसे कोई खतरे की बात मालूम ही न हुई। मुंसिफ साहब का व्यवहार सभी लोगों से अच्छा हो गया था, लेकिन वे मितभाषी भी बहुत हो गए थे। वीणा से तो जरूरी बातों के अलावा एक शब्द भी नहीं कहते थे। वीणा ने सोच लिया कि पारसाल चाहे किसी वजह से कोई क्षणिक कमजोरी आ गई हो, लेकिन वैसे गोयल साहब का चरित्र बहुत अच्छा है। कहने की जरूरत नहीं कि उसकी राय ठीक भी थी।

इस समय शकुन्तला के मुँह से उसी बात का इशारा पाकर वीणा भड़क उठी। इससे पहले जो कुछ कहा गया था, वह मजाक था। लेकिन, यह मजाक नहीं था। वीणा को गुस्सा आया कि यह अपने करतब तो देखती नहीं है, मुझ पर ताना कसने की हिम्मत करती हैं, यह नहीं कि चुपचाप सब बात दबी-ढँकी रखें। खैर, आग में हाथ डाला है, तो जलेगी भी। बोली, "भाभी! मजाक 'मजाक' ही तक ठीक रहता है। तुम्हें अगर कुछ सुनना ही मंजूर हो, तो दूसरी बात है, वरना कायदे की बात यह है कि मुझसे कुछ न कहा करो।"

शकुन्तला एक क्षण उसकी ओर देखती रही, फिर बोली, "मैं तो मजाक ही कर रही थी, लेकिन तुम्हें जो कुछ कहना है, वह कह लो। तुम्हारे दिल की भी दिल में क्यों रह जाए? मैं तो हमेशा सुनती ही रहती हूँ।"

"तब ठीक है। जब सभी से सुनती रहती हो और फिर भी कुछ असर

नहीं होता, तो मेरे कहने का भी क्या असर होगा ? ठीक ही है—उतर गई लोई तो क्या करेगा कोई ।'' वीणा जहर बुझे स्वर में बोली ।

शकुन्तला ने इस बात पर झगड़ा तो न किया, लेकिन विचलित जरूर हो गई । वीणा को शुरू से उसनें अपनी छोटी बहन की तरह प्यार किया था । उसी के मुँह से ऐसी बातें ? दूसरे लोगों की जबानी जिस बात को सुनकर वह हँस पड़ती थी, उसी को वीणा के मुँह से सुनकर परेशान हो गई । खाना खाने के बाद लेटी, तो बारह बजे तक वीणा की बातें उसे कचोटती रहीं । उसे यह ध्यान ही न आया कि पुस्तकों से जी बहला ले ।

दूसरे दिन कोर्ट जाने के पहले गोयल साहब शकुन्तला को अपने कमरे में ले गए । टाई बांधते-बांधते बोले, "शकुन्तला ! वीणा को फर्रूखाबाद वापस भेज दो । उसका इलाहाबाद में रहना ठीक नहीं है ।"

"क्यों ?'' शकुन्तला ने हँसकर कहा, "आपका दिमाग तो अब खराब होता दिखाई नहीं देता ।''

"बकवास न करो । दिमाग मेरा नहीं, उसका खराब है । कल शाम को वह तुम्हें और आशीष को लेकर मुझसे न जाने क्या-क्या ऊटपटांग बातें करने लगी थी । आज मुझसे कहा है, कल इधर-उधर कहती फिरेगी ।"

"मुझे कहने-सुनने की कोई चिन्ता नहीं, कहती रहे । मैंने उसे खुद रोका है, अब खुद नहीं भगा सकती ।"

वीणा चुपचाप इन लोगों के पीछे चली आई थी और किवाड़ों के पीछे खड़ी होकर बातें सुनने लगी थी । उसे खुशी थी कि हालाँ कि गोयल साहब पिछली शाम को नशे में बहक रहे थे, किन्तु उन्होंने वीणा की बात याद रखी थी और उस समय निश्चय ही पति-पत्नी में काफी तू-तू मैं-मैं होगी । इसे अपने कानों से सुनने का लोभ वह संवरण नहीं कर सकी थी । लेकिन, जो कुछ सुना, उससे उसके मन-प्राण विचलित हो उठे । उसे इस बँगले के अजीब दिमाग के प्राणियों के बीच रहने में भय-सा लगने लगा था ।

शकुन्तला के और कुछ कहने से पहले ही वह वहाँ से हट आई थी और बरामदे में पड़ी कुर्सी पर बैठकर सोचने लगी कि उसे क्या करना चाहिए । करने को अब क्या रहा था । सवाल जाने ही का था । हाँ कब जाए, यही तय करना था । गोयल साहब ने जब साफ-साफ कह दिया कि वे उसे यहाँ नहीं रखना चाहते, तो फिर रहने का सवाल ही नहीं है । वीणा की आँखों में आँसू आ गए । गोयल साहब उसे घर में नहीं रखना चाहते, आशीष ने ड्रामे से निकाल दिया । जैसें दुनिया में हर आदमी उसे अपने पास से हटाना चाहता है ।

गोयल साहब या आशीष किसी का भी उसने क्या बिगाड़ा था, क्यों ये लोग उसे अपना दुश्मन मान बैठे हैं ? क्यों ?

गोयल साहब कपड़े पहन कर बाहर निकले और रिक्शे पर बैठकर अदालत चले गए। शकुन्तला सारे बँगले में उसे ढूँढ़ती हुई आई तो बरामदे में उसे बैठी देखकर हँस पड़ी। बोली, "क्यों, रानी जी ! किसका इन्तजार हो रहा है ? बिल्कुल विरहिन बनी हो। नहाया-धोया भी नहीं है।"

वीणा ने मजाक का कोई जवाब नहीं दिया। बोली, "भाभी, घर तार दिलवा दो कि मैं वापस आ रही हूँ। आज शाम की गाड़ी से चल दूँ, तो रात को बारह बजे कानपुर में गाड़ी मिल जाएगी।"

"पागल तो नहीं हो गई हो ? ऐसी क्या मुसीबत आ गई है ?" शकुन्तला ने कहा।

"बुरी बात तो जरूर है, लेकिन मैंने छुपकर आप लोगों की बातें सुन ली है। मुझे जाना ही है।"

शकुन्तला उसे अपने कमरे में ले गई। बहुत समझाया-बुझाया, लेकिन वीणा नहीं मानी। कहने लगी, "भाभी ! मैं तुमसे हजार बार माफी माँगती हूँ। तुम्हारे लिए मैंने बहुत कुछ कहा-सुना, इसका मुझे बहुत अफसोस है। यह ठीक है कि तुमने मुझसे कुछ नहीं कहा, बल्कि तुमने मेरी हर बुरी-भली बात बरदाश्त की, मैं तुम्हारा बड़प्पन वास्तव में मान गई हूँ। यह भी समझ गई हूँ कि अपने-पराये सभी तुम पर क्यों जान देते हैं। लेकिन मुझे रोको नहीं, रुकना मेरे लिए मुमकिन नहीं है।"

वीणा चली गई, तो शकुन्तला को कई दिन तक बुरा मालूम होता रहा। जाते समय वह शकुन्तला से लिपट कर रोने भी लगी थी। शकुन्तला को बराबर महसूस हो रहा था कि वीणा के साथ बहुत ही अधिक दुर्व्यवहार हुआ है। यह ठीक है कि उसने खुद अपना व्यवहार ठीक रखा था, बल्कि आशीष और गोयल साहब दोनों के सामने वीणा का पक्ष भी लिया था; लेकिन यह कोई भूलने वाली बात नहीं थी कि जो कुछ हुआ, उसी की वजह से हुआ। शकुन्तला को इसकी कचोट सालती रहती।

उसने किसी से कह-सुनकर अपने जी को हलका करना चाहा; क्योंकि दो दिन बाद उसे उठते-बैठते वीणा का खयाल सताने लगा था। पहले उसने सोचा कि गोयल साहब से यह बात कहें। लेकिन, गोयल साहब से यह डर था कि वे अदालती किस्म की दलीलें देने लगेंगे, समझेंगे कि शकुन्तला उन पर दुर्व्यवहार करने का आरोप लगा रही है। वे अपनी ओर ही से नहीं शकुन्तला

की ओर से भी सफाई दे डालेंगे कि इस मामले में दोनों में से किसी का कसूर नहीं है। शकुन्तला उनकी बात मान ही जाएगी, कह भी क्या सकेगी इसके विरुद्ध ? इस तरह बात भी खत्म हो जाएगी और शकुन्तला की तसल्ली भी न होगी।

अतः अब आशीष ही रह गया था, जिससे कुछ कहा-सुना जा सकता था। एक दिन फिर रिहर्सल जल्दी खत्म हो गया, तो शकुन्तला ने प्रस्ताव रखा कि कुछ देर के लिए घूम आया जाए; क्योंकि उसकी तबियत बंगले की चहारदीवारी में घबड़ा रही है। आशीष के पास आज ही अमरीकी न्याय व्यवस्था के बारे में एक दुर्लभ पुस्तक आई थी और वह रात में उसका अध्ययन करना चाहता था। लेकिन जानता था कि शकुन्तला के सामने कोई दलील नहीं चल सकती। ऐसा मौका आता, तो वह बगैर कुछ प्रतिवाद किए कह देती, "तो फिर आप जाइए। जरूरी काम क्यों छोड़ेंगे ?" लेकिन किसी ऐसे स्वर में यह बात कहती कि आशीष को हर जरूरी काम छोड़ कर रुकना ही पड़ता।

फलतः पन्द्रह मिनट के बाद दोनों हरिजन आश्रम की ओर जाने वाली सड़क पर चल पड़े। अव्वल तो इस बियाबान् से हिस्से में टहलने के लिए आना ही बेतुकी बात थी, फिर अँधेरा होने के बावजूद शकुन्तला आगे ही बढ़ती जा रही थी। आशीष ने कहा, "लौट चलिए, अब आप थक जाएँगी।"

शकुन्तला हँसकर बोली, "वकीलों की बातें खूब होती हैं! यह क्यों नहीं कहते कि आप थकने लगे हैं ?"

"यह आप मेरी बेइज्जती कर रही हैं। आप कुछ भी सही, लेकिन मैं आखिरकार एक पुरुष हूँ।"

"पुरुषों में क्या सहनशक्ति स्त्रियों से अधिक होती है ?" शकुन्तला ने अजीब-सा सवाल किया।

"आप पुरुष होतीं, तो जानतीं कि पुरुषों को कैसा पत्थर का कलेजा रखना पड़ता है।"

"तभी आप वीणा के मामले में बिलकुल पत्थर बन गए थे। उसने आप का क्या बिगाड़ा था ?"

आशीष ने उसकी ओर देखा। आँखों ने आँखों को बता दिया कि वीणा ने आशीष का क्या बिगाड़ा था। मुँह से आशीष ने यह कहा, "देखिए, बुरा न मानिएगा; मैं उनकी कोई बात नहीं सुनना चाहता।"

"बड़े बेरहम हैं आप ! मुझे तो रात-दिन उसकी आँसुओं में डूबी आँखें याद आती रहती हैं।"

"नॉन सैंस !" आशीष ने एक शब्द में बात खत्म कर दी। ऊपरी तौर ही से नहीं, वास्तव में बात खत्म हो गई। शकुन्तला को महसूस होने लगा कि उसका सारा पश्चाताप, वीणा के लिए सारी हमदर्दी, सारा शालीन व्यवहार सारा अध्ययन, सारी दार्शनिकता—सब कुछ ढोंग मात्र था। उसे जिस चीज की तलाश थी, वह इस 'नानसैंस' में मिल गई थी। उसके साथ आज एक पुरुष था—नितान्त पुरुष--जिसे इसके सिवा और कोई बोध न था कि वह पुरुष है और शकुन्तला स्त्री। वह स्वस्थ है, सुन्दर है, सच्चरित्र है, कलाकार है, विद्वान है—यह सब तो शकुन्तला को वर्षों से ज्ञात था। वह उसे इतना सम्मान भी देता है कि उसकी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए, औरतों और, अपनी कोमलतम भावनाओं को--कलाकार हृदय की कोमलतम भावनाओं को--बगैर झिझक कुचल देता है। लेकिन यह उसे आज ही मालूम हुआ कि वह उसकी बात पर 'नॉनसैंस भी कह सकता है।

शकुन्तला पर नशा-सा छाने लगा। वह बिल्कुल भूल गई कि वह एक गजेटॅड अफसर की पत्नी है और लोग उसकी पीठ पीछे चाहे जो कुछ कहते रहें, अपने पति के पद की प्रतिष्ठा के कारण ही उसे ऐसा सामाजिक सम्मान मिला हुआ है कि हर छोटा-बड़ा उसके सामने खीसें निपोरता ही आता है। इस समय तो वह एक बलिष्ठ, आत्मविश्वासी पुरुष के साथ चल रही थी, जिसकी नजर में न उसका सामाजिक मान कुछ मानी रखता था, न उसके पति का। शक्ति की अनाम सी तरंगें उसे चारों ओर से घेरे हुए थीं और उनकी मजबूत जकड़ उसके दिमाग में हलका खुमार-सा भरे दे रही थी। उसकी आँखें भारी हो गईं। वह आशीष से और सटकर चलने लगी।

आशीष को यह सब कुछ न मालूम हुआ। उसे वीणा की हरकतें याद आ रही थीं और उन पर गुस्सा और हँसी दोनों आ रहे थे। कमबख्त दो दिन के लिए आई और कितना मूड खराब कर गई। निहायत बदतमीज और दिमाग से खाली लड़की है। उसके साथ जो कुछ हुआ, ठीक ही हुआ, उसे अपने झूठे आत्मविश्वास को--अपने बाह्य सौन्दर्य और यौवन पर आधारित गर्व को—छोड़ना ही चाहिए। इसी में उसका कल्याण है। आशीष वीणा का कल्याण ही तो चाहता था।

उसे अब वीणा के मामले में शकुन्तला की चुप्पी खलने लगी थी। उसने खुद ही कुछ बात करने के लिए इधर मुँह किया, तो चौंक पड़ा। शकुन्तला

चलते-चलते उससे लगभग सटी ही जा रही थी। आशीष के दिमाग से वीणा का चित्र जादू की तरह उड़ गया। दिमाग में सन-सन होने लगी। शकुन्तला ने उसकी ओर देखा। आशीष को शकुन्तला की आँखें सारे मन प्राण को आच्छादित करती हुई दिखायी दीं। वह बिल्कुल भूल गया कि उसकी स्थिति क्या है? पक्की सड़क खत्म होकर कच्ची आ गई थी। स्थान बिल्कुल निर्जन था और घोर नीरवता व्याप्त थी। मानव सभ्यता से दूर प्रकृति माता की गोद पूर्णतः खुली हुई थी और अनजानी भाषा में सृष्टि के पहले नाटक—आदम और हव्वा के मिलन का संचालन कर रही थी। आशीष ने शकुन्तला को बाँहों में भर लिया और उसके होंठो पर होंठ रख दिये।

शकुन्तला उससे कसकर लिपट गई। आशीष ने उसके होठों से अपने होंठ हटाए, तो उसकी आँखों में आँखें डालकर फुसफुसायी, "मुझे कब तक भटकाओगे आशीष? मुझे मंजिल तक पहुँचा दोगे न!"

आशीष ने उसे छोड़ दिया। बोला, "मैं हर बात के लिए तैयार हूँ। जो भी चाहो हो जाएगा।"

"मुझे क्या मालूम क्या ठीक रहेगा? तुम्हारे ही हाथ में सब कुछ है, जो चाहो करो।"

"अदालत में तुम्हारे से परेशान की अर्जी दिलवा दूँ?" आशीष ने चाव से पूछा।

शकुन्तला झटके से इस संसार में लौट आई। विवाह-विच्छेद?…पति-गृह का त्याग?…दूसरे आदमी के साथ पत्नी बनकर रहना?…सामाजिक झंझा-वात?…व्यंग्य वाणों की वर्षा?

ठंडी साँस भरकर बोली, "काश मैं इसके लिए खुद को तैयार कर पाती! मुझे अपनी चिन्ता कभी नहीं रही है, लेकिन आलोक का क्या होगा? उस बेचारे के सामने तो सारी जिन्दगी पड़ी है।"

आशीष झुँझला पड़ा, "फिर क्या बकवास कर रही थीं? किस मंजिल की बात कर रही थीं? तुम्हारी मंजिल जहन्नम मालूम होती है। वहाँ जाने के लिए किसी और का सहारा पकड़ो।"

"नाराज न हो, आशीष!" शकुन्तला रुआँसे स्वर में बोली, "मैं वैसे ही बहुत दुखी हूँ।"

"दुखी होने के लिए यह कोई ठीक जगह नहीं है। घर में अच्छी तरह दुखी होना। चलो वापस चलें।"

२५

आशीष को उस रात बहुत देर तक नींद नहीं आई। उसे क्रोध तो आ रहा था, लेकिन शकुन्तला के ऊपर नहीं, अपने ऊपर। आखिर वही हुआ न, जिसे आशीष नहीं चाहता था। इसमें संदेह नहीं कि विगत दो वर्षों से शकुन्तला उसके मन-प्राण पर छायी थी। कभी-कभी निष्क्रियता के क्षणों में वह दिवास्वप्न देखने लगता, तो अपने को शकुन्तला के साथ एक प्रेम-संसार में—सारी दुनिया से अलग रह कर—पाता, जहाँ उन दोनों के अलावा कोई न होता। वह कल्पना करता कि अपना घर-बार छोड़कर वह शकुन्तला के साथ किसी ऐसे शहर में रहेगा, जहाँ पर वह कोई मामूली-सी नौकरी के गुमनामी की जिन्दगी बसर कर सके, जहाँ उसकी कलाप्रियता तो क्या वकालत तक का लोगों को पता न हो, जहाँ के लोग उसे और शकुन्तला को साधारण पति-पत्नी समझें—जैसे दुनिया में अरबों जोड़े होते हैं। जहाँ कोई तीसरा आदमी उन दोनों के बीच में न आए और वे दोनों एक दूसरे के जीवन में असीमित माधुर्य भरते हुए उस तरह अनंत की गोद में खो जाएँ कि किसी और को तो क्या, खुद उन्हें भी पता न चले कि क्या हुआ।

लेकिन, वह जनता था कि यह दिवास्वप्न मात्र है, जिसका जीवन की ठोस वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि ठोस वास्तविकता तो यह थी कि उसका और शकुन्तला दोनों का अपनी-अपनी जगह समाज में इतना गहरा से संबंध है, जो टूट ही नहीं सकता। सपने देखने की बात दूसरी है, लेकिन वैसे आशीष का मस्तिष्क एक क्षण के लिए भी यह मानने को तैयार नहीं हो सकता था कि वह सामाजिक प्रतिष्ठा, कला के वातावरण और आर्थिक निश्चितता के बगैर एक दिन भी जी सकता है। शकुन्तला से तो ऐसी आशा करना निपट मूर्खता थी। कौन स्त्री ऐसी होगी, जो अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा और आर्थिक सम्पन्नता को छोड़ कर, प्रेम के पीछे अपनी जिन्दगी बरबाद कर ले। यह ठीक है कि कुछ स्त्रियों पर जब सामाजिक बंधन बहुत कस दिए जाते हैं, तो उनकी प्रतिक्रिया ऐसी होती है कि उनका मानसिक संतुलन बिल्कुल बिगड़ जाता है और आर्थिक सम्पन्नता को लात मार कर अपने प्रेमी के साथ निकल जाती है।

लेकिन, शकुन्तला के साथ तो कोई ऐसी बात नहीं है। उसे तो किसी से मिलने-जुलने से नहीं रोका जाता। वह क्यों अपने पाँव पर कुल्हाड़ी मारेगी ?

इसीलिए उसने तय किया था कि कोई ऐसा कमजोरी का मौका न आने दिया जाए, जिससे बात बढ जाए और फिर टांय-टांय फिस्स होने पर आत्म-ग्लानि ही हाथ लगे। वह शकुन्तला की हर संभव तरीके से सेवा करके अपने हृदय को संतोष दे दिया करता था कि इससे अधिक न कुछ हो सकता है, न होना ही चाहिए। शकुन्तला को भी इससे आत्म-संतोष हो जाएगा कि आशीष को आकृष्ट करने का उसका प्रयत्न असफल नहीं हुआ है, साथ ही उसे किसी प्रकार की वास्तविक हानि होने की भी संभावना नहीं रहेगी। आशीष को अपने इस प्रयत्न में पूरी तरह सफलता मिली थी; सब कुछ बिल्कुल ठीक-ठाक चल रहा था और शकुन्तला भी पूर्णतः संतुष्ट मालूम होती थी।

लेकिन, आज शाम को न मालूम क्या हुआ था, जिससे बौद्धिक नियोजन का यह विशाल प्रासाद धराशायी हो गया था ? शकुन्तला के घर से चलते समय आशीष को शकुन्तला का ध्यान भी उतना नहीं था, जितना वीणा का। अन्त समय तक कोई खास बात न हुई। फिर न मालूम उसे क्या सूझा कि उसने शकुन्तला को बाँहों में भर लिया। यह सही है कि शकुन्तला ने उसका कोई अप-मान नहीं किया (अपमान तो बेचारी ने खुद सहा था), लेकिन यही क्या कम डूब मरने की बात है कि आशीष से ऐसी हरकत हो गई, जिसका औचित्य खुद उसी की नजर में कुछ नहीं था। 'क्यों मैंने उसे चूम लिया, क्यों उससे कहा कि तुम अपने पति के घर को छोड़ कर मेरी रखैल बन कर रहो ? इससे भी ज्यादा पागलपन की कोई बात हो सकती है ? वह तो खैरियत थी कि शकु-न्तला का दिमाग मेरी तरह खराब नहीं था वर्ना बात न जाने कहाँ पहुँचती !'

आशीष के सामने सबसे बड़ी दिक्कत यह थी कि तीसरे दिन वह रिहर्सल में शकुन्तला का सामना कैसे कर सकेगा। शाम को घर लौटते समय तक शकु-न्तला उससे कुछ नहीं बोली थी, वह भी गुस्से में उफनता हुआ चुप-चाप चला आया था। बँगले के फाटक ही से उसने उसे अन्दर भेज दिया था। शकुन्तला ने भी उससे अन्दर आने को न कहा था। सिर्फ यह पूछा था, "परसों तो आप रिहर्सल में आएँगे न ?" और उसने कह दिया था कि आऊँगा, क्यों कि इन व्यक्तिगत बातों से एक ऐसा आयोजन तो छोड़ा नहीं जा सकता, जिससे अन्य लोग भी सम्बद्ध हों। अतः जाना भी जरूरी था, लेकिन शकुन्तला ने अगर आँखों ही आँखों में उसका मजाक उड़ाया तो उसे डूब मरने के लिए कहाँ जगह मिलेगी ? वह सोच रहा था—यह तो जाहिर है कि शकुन्तला का दिमाग मेरी तरह कभी खराब नहीं हुआ था, उसने तो आज भी समझदारी की ही बात

की थी, सिर्फ मैं ही यह पागलपन कर बैठा। अब तो उससे निगाहें भी न मिलायी जाएँगी। फिर? क्या बीमारी का बहाना करके घर बैठ रहूँ? समय तो काफी है, दूसरे लोगों को समय से सूचना दी भी जा सकती है। लेकिन नहीं अदालत जाना तो नहीं रुक सकता। कल और परसों दोनों ही दिनों में बहुत जरूरी मुकदमों की तारीखें लगी हुई हैं। यह बहाना चल ही नहीं सकता है। और अगर कहीं शकुन्तला सचमुच मेरी बीमारी पर यकीन कर बैठी और हाल-चाल पूछने के लिए यहाँ आ गई, तो कैसी फजीहत होगी? वह यहाँ कई बार आ भी चुकी है। माता जी और वंदना दोनों उसकी भक्त हो गई हैं। दिमाग में शैतानी तो भरी ही रहती है। उसने अगर यहाँ कह दिया कि इन्होंने बीमारी का झूठा बहाना बनाया था, तो वंदना भी मेरे पागलपन पर हँसेगी। नहीं, बहाना नहीं चलेगा।......और फिर ऐसी मुसीबत भी क्या है? शकुन्तला आँखों-आँखों में मजाक उड़ाएगी, तो उड़ा लेगी। वह तो मेरा पागलपन जानती ही है......कोई बात हुई तो कह भी दूँगा कि मेरा दिमाग खराब हो गया था, माफी भी माँग लूँगा। इससे ज्यादा क्या होगा।

लेकिन, जब दो दिन बाद शाम को जब वह रिहर्सल के लिए पहुँचा, तो उसे मालूम हुआ कि उसकी आशंका निर्मूल थी। शकुन्तला का व्यवहार पूर्ववत् था। वस्तुतः शकुन्तला यह डर रही थी कि आशीष नाराज होकर कहीं घर ही न बैठ रहे और शकुन्लला की बेवकूफी से कहीं नाटक का आयोजन ही चौपट न हो जाए। यह मान भी लिया जाए कि नाटक आशीष के संचालन के बिना चल सकता है, तो भी वन्दना तो आशीष के साथ ही आ सकती थी। वन्दना का आना अब अनिवार्य था, वीणा जा ही चुकी थी और ओफीलिया के पार्ट के लिए इतने थोड़े समय में कोई लड़की तो क्या, बँदरिया तक न मिल सकती थी।

रिहर्सल बड़ी अच्छी तरह से हुआ। वन्दना ने अपना पार्ट खूब अच्छी तरह समझ लिया था। आशीष और शकुन्तला दोनों ही मन लगाकर काम कर रहे थे। वे आवश्यकतावश ही एक दूसरे की तरफ देखते थे, लेकिन जरूरत पड़ती, तो एक-दूसरे से निगाहें भी नही चुराते थे। अन्य अभिनेता भी पक्के हो गए थे। आशीष को सिर्फ दो बार बीच मे अभिनय का सुधार करने की जरूरत पड़ी थी। अगर इस तरह के चार फुल रिहर्सल भी हो गए, तो नाटक अत्यन्त सफलता के साथ अभिनीत किया जा सकता था।

रिहर्सल खत्म होने के बाद हमेशा की तरह चाय पी गई और आशीष वन्दना को लेकर अन्य कलाकारों के साथ ही वहाँ से उठ आया। उसे हर बात से पूर्ण सन्तोष था, सब कुछ ठीक चल रहा था।

इसके बाद तीसरे रिहर्सल में शकुन्तला को यह सीधा-सादापन खल गया। उसके दिमाग में फिर कीड़े कुलबुलाने लगे। आशीष की गम्भीरता और शालीनता बढ़ती ही जाती थी, इसका अन्त करना भी उसे जरूरी मालूम हुआ। उसके ऐक्टिंग में कुछ ढिलाई हुई, तो आशीष ने कहा, "शकुन्तला जी! यह न भूलिए कि गर्ट्रूड (हेमलेट की माँ) बराबर द्वन्द्व की स्थिति में रहती है। न तो वह अपने पुत्र को छोड़ सकती है और न पति को ही। साथ ही उसके दिल में यह चोर भी है कि पुत्र का क्रोध उचित है और उसके सर पर अपने पहले पति की हत्या में भाग लेने का पाप भी चढ़ा है। उसकी मनोदशा....।"

शकुन्तला बात काटकर बोली, "बिल्कुल सही कहा आपने, आशीष जी! मालूम नहीं क्यों, इतने झंझट की सिचुएशन पैदा की है शेक्सपियर ने। अगर वह गर्ट्रूड का अपने पहले पति से लीगल सेपेरेशन करा देता, तो उसका क्या नुकसान था? हेमलेट सारे मानसिक संघर्ष से बच जाता और उसकी हत्या भी न होती।"

अन्य कलाकार हो-हो करके हँस पड़े। मध्ययुगीन रानी के राजा से अदालती तलाक लेने की सूझ बिल्कुल मौलिक थी। शकुन्तला अक्सर इसी तरह हँस-हँसाकर रिहर्सल की उबानेवाली एकरसता खत्म कर देती थी। लेकिन, आशीष हँसी में शामिल न हो सका। उसने एक बार शकुन्तला की तरफ आँख भरकर देखा और फिर स्क्रिप्ट देखने लगा। बाकी रिहर्सल भर उसने किसी से कुछ टोका-टाकी न की।

रिहर्सल खत्म होने पर वह अन्य लोगों के साथ जाना चाहता था, लेकिन शकुन्तला ने उसे यह कहकर रोक लिया कि कुछ जरूरी बातें करनी हैं। वन्दना भी आज आशीष के साथ न थी। आशीष बेगार में पकड़े गए देहाती मजदूरों की तरह बैठ गया। शकुन्तला बोली, "बहुत नाराज हो गए हो क्या?"

आशीष अब भुँझला कर उठ खड़ा हुआ। बोला, "यही जरूरी बातें करनी थीं आपको?"

शकुन्तला बोली, "देखो, आशीष! अगर तुम चाहते हो कि कोई सीन क्रिपेट न हो, तो चुपचाप बैठ जाओ। भागने की कोशिश की, तो तुम्हारी कमर पकड़ लूँगी और फिर जो कुछ होगा, वह तुम्हारी ही जिम्मेदारी होगी....हाँ, और दूसरों के सामने चाहे जैसे बात करो, अकेले में मुझे 'आप' न कहा करो।"

आशीष ने एक क्षण उसकी ओर देखा, फिर मुस्कुराकर बोला, "बड़ी नादिरशाही करने लगी हो?"

"क्या किया जाए ? जब शराफत से काम नहीं चलता, तो जोर जबरदस्ती करनी ही पड़ती है।"

"क्या काम नहीं चलता शराफत से ?" आशीष ने रुखाई से पूछा, "मैंने किस बात से इनकार किया ?"

"फिर भागे-भागे क्यों फिर रहे हो इतने दिनों से ? ठीक तरह से बात क्यों नहीं करना चाहते ?"

"क्या बात करूँ ? तुमने तो सारे रास्ते ही बन्द कर दिए मेरे लिए।' आशीष ने उलाहना दिया।"

"आशीष, तुम बिल्कुल बच्चे मालूम होते हो। तुम ऐक्सट्रीम्स के सिवा किसी रास्ते को अपनाना ही नहीं चाहते। या तो आदमी पत्थर हो बन जाए या अपने को बरबाद ही कर ले। जिन्दगी कहीं इस तरह चलती है ?"

"क्या मतलब है तुम्हारा ?" आशीष यकायक गर्म हो उठा, हमलोग भी दूसरों की तरह लुका-छिपी का खेल खेलें ? मुंसिफ साहब मेरे बच्चे को अपना बच्चा कहकर पालें-पोसें ? मुझसे यह उम्मीद न रखो।"

"गधे हो बिल्कुल ! बेतुकी बकवास करने लगते हो। यह किसने कहा ? क्या समझते हो कि मुझे आदमी की जरूरत है ? मुंसिफ साहब नपुंसक नहीं हैं। हाँ, तुम्हें जरूर यह जरूरत होगी; सो उसके लिए मैं ही नहीं रह गई हूँ, तुम्हारी जूलिया ही इसके लिए ठीक है। मैं तो तुम्हारा सिर्फ साथ चाहती हूँ और वह मुझे मिलेगा ही। नहीं दोगे तो जी ले ही लूँगी, जबरदस्ती ले लूँगी। तुम मुझसे भागकर नहीं जा सकते।" शकुन्तला बोली।

"अच्छा साहब, हाजिर हूँ कीजिए मेरा साथ।" आशीष ने सोफे पर फैलते हुए कहा।

इस पर शकुन्तला ने जो हरकत की, वह एक सुशिक्षित और प्रतिष्ठित परिवार की गृहस्वामिनी और इलाहाबाद की एक प्रमुख अभिनेत्री की शान के लायक हर्गिज नहीं थी। उसने जीभ निकालकर आशीष को मुंह चिढ़ा दिया। आशीष हँस पड़ा और सीधा होकर बैठा तो उठकर भागने लगी। आशीष भी उछला और उसने शकुन्तला के दरवाजे के पास पहुँचते-पहुँचते उसे धर दबोचा। शकुन्तला छूटने का प्रयत्न करने लगी, लेकिन आशीष ने उसके गाल पर दाँत गड़ा ही दिए।

शकुन्तला तड़पकर उसकी बाँहों से निकल गई। घबड़ाकर इधर-उधर देखा

और साड़ी के पल्ले से चेहरा साफ करती हुई फुसफुसाई, "बड़े पागल आदमी हो ! कोई देख लेता तो ?"

"देख लेता तो देख लेता। मैं क्या करूँ, मेरा साथ तो ऐसा ही होता है।" आशीष बोला।

"अच्छा, आप भाग तो जाइए," शकुन्तला चिढ़े हुए से स्वर में बोली, "गोयल साहब आते होंगे।"

"गाल का निशान भर जाए तब जाना उनके सामने।" आशीष हँसकर बोला और उठकर चल दिया।

'हेमलेट' नवम्बर के महीने में अभिनीत हुआ और खूब जोरों में हुआ। यह शायद पहला ही नाटक था, जिसके संचालन की पूरी स्वतन्त्रता आशीष को मिली थी और उसने पूरे मन से इसमें काम भी किया था। शकुन्तला का अभिनय हर दृष्टि से लाजवाब रहा था। अन्य पात्रों के अभिनय भी त्रुटिहीन थे। आशीष की आशा से कहीं अधिक सफलता मिली थी इस नाटक में।

नाटक समाप्त होने के बाद शकुन्तला फिर पहले की तरह ग्रीन रूम में आकर बैठ गई और पहले ही की तरह माथुर साहब उसके पीछे लगे चले आए। अन्य कलाकार मुँह-हाथ धोकर कपड़े बदलकर चाय पीने के लिए बाहर चले गए थे। कुछ ही देर में चाय का प्याला लिए हुए आशीष अन्दर आया। बोला, "जनाब रानी साहिबा ! हुजूर बाहर चलकर चाय क्यों नहीं पीतीं ?"

"परेशान न करो आशीष, जरा साँस ले लेने दो। दम तो निकाल डाला है ड्रामे में तुमने।"

"मैं आपके लिए यहीं चाय लिए आता हूँ।" माथुर साहब ने अपनी सेवाएँ अर्पित कीं।

आशीष ने उनकी ओर एक क्षण देखा और फिर हँस पड़ा। बोला, माथुर साहब ! आदमी हो तो आप जैसा। इनके लिए चाय लाएँ, तो जरा एक प्याला मेरे लिए और लेते आइएगा। कुछ खाने को भी ले आएँ, तो क्या कहना है। और तकलीफ तो होगी जरा यह प्याला लेते भी जाइएगा।"

माथुर साहब प्रतिष्ठित आदमी थे। नौकर की तरह आदेश लेने में उन्हें बहुत बुरा मालूम हुआ। लेकिन, अचानक समझ में भी न आया कि प्रतिवाद कैसे करें। फलतः वे प्याला लेकर चले गए।

"अच्छा कुत्ता पाला है तुमने, शकुन्तला।" आशीष ने मौज में आकर कहा।

"बेकार बका न करो," शकुन्तला मुस्कुराकर बोली, "माथुर साहब बहुत शरीफ आदमी हैं।"

"शराफत से मैं कब इनकार करता हूँ। जो शरीफ न होगा, वह तुम्हारे पास क्यों आएगा?"

"हमेशा ऐसा नहीं होता। कभी-कभी आप जैसे लुच्चे-लफाड़िए भी आ जाते हैं।"

आशीष ने शकुन्तला की गर्दन पकड़ ली। वह "अरे रे रे! गर्दन टूट जाएगी" करने लगी। तभी ग्रीन रूम का दरवाजा खुला। अन्दर आनेवाले ने एक क्षण तक यह दृश्य देखा, फिर वह उल्टे पांव वापस चला गया।

"यह कौन आदमी था? शक्ल तो कुछ जानी-पहचानी लग रही थी।" आशीष ने कहा।

"मुझे भी ऐसा ही लगा। लेकिन याद नहीं आता कि इसे कहाँ देखा है।" शकुन्तला ने जवाब दिया।

"उँह, होगा कोई....लो, चाय पियो।" आशीष ने तश्तरियों से लदे-फँदे माथुर साहब को देखकर कहा।

एक क्षण के लिए जो व्यक्ति अन्दर आया था, उसने सड़क पर आकर रिक्शा किया। छतरी तानते हुए बोला, "यूनिवर्सिटी। हॉलैंड हॉल हॉस्टल। बस, चल दो हवा की रफ्तार से, एकदम अभी।"

रिक्शे वाला नौजवान था, उसने वाकई रफ्तार दिखाई। नवम्बर की रात की ठंडी हवा तीर की तरह लगने लगी, लेकिन सवारी के दिमाग में लू के थपेड़े लग रहे थे। हॉस्टल आकर उसने चौकीदार से फाटक खुलवाया और रिक्शे वाले के हाथ में रुपया ठूँसकर बाकी पैसे लिए बगैर अन्दर चला गया।

शकुन्तला और आशीष दोनों ही को अगर बख्तियार को पहचानने में असफलता हुई, तो इसका कारण केवल यह था कि वह इस समय सूटेड बूटेड था और इन लोगों ने उसे कभी नेताशाही पोशाक के अलावा और किसी तरह के कपड़े पहने देखा ही न था। लेकिन बख्तियार को इस समय अपने कीमती सूट की बिल्कुल चिन्ता नहीं थी। उसने उसे यूँ ही कुर्सी पर दे मारा और बेड शीट फेंककर लिहाफ के अन्दर घुस गया। साँस फूल रही थी, फिर भी लिहाफ सर से ओढ़ लिया।

बख्तियार जानता था कि शकुन्तला कोई नेक नाम की स्त्री नहीं है। खन्ना साहब ने तो उस दिन कहा ही था "कभी आशीष मुखर्जी हैं तो कभी बख्तियार

रिजवी,'' अन्य लोगों को भी जब मालूम होता कि बख्तियार का शकुन्तला का व्यक्तिगत सम्पर्क है तो हँसकर यही कहते, "बख्तियार साहब ! फिर तो आपके पौबारह हैं। पाँचों अँगुली घी में और सर कढ़ाई में।'' बख्तियार हँसकर रह जाता।

बख्तियार सोच रहा था—यह तो सब ठीक है, लेकिन आज तो हद ही कर दी इन लोगों ने। औरतों का हँसना, खिल-खिलाना, लटके के साथ बोलना, जबानी छेड़-छाड़ करना—ये सब तो समझ में आने वाली बातें हैं। ऐसा हर जगह होता है। लेकिन इस तरह की हाथा-पाई भी कहीं शरीफ लोगों में हुआ करती है ? ऐसे सीन तो रंडियों के कोठों पर देखे जाते हैं.......हद हो गई बेशर्मी की और ऊपर से दिखाने को यह ढोंग कि सफेद कपड़े पहनेंगी, पाउडर और लिपस्टिक इस्तेमाल न करेंगी !

बख्तियार ने लाख अपने को समझाया कि तुम्हें क्या लेना-देना, वे लोग चाहे खुली सड़क पर चूमा-चाटी करें, तुमसे क्या मतलब ! लेकिन, दिल को तसल्ली न होती। 'इस औरत को आखिर हो क्या गया है ? मैं जब तक जाता था, तब तक इसकी यह हालत नहीं थी—उठने, बैठने, बात करने, सभी में एक शायस्तगी थी। शरारत भी करती थी, तो ढंग से। मैं महीनों इसके यहाँ आया-गया, लेकिन कभी यह न देखा कि जिस्मानीतौर पर पास आने की कोशिश कर रही हो......मगर, उसका भी क्या कसूर ? जैसी संगत मिलेगी, वैसी ही तो हो जाएगी। शौहर की यह हालत है कि शराब ही में धुत रहते हैं, बीवी से कभी बात नहीं करते। और कोई ढंग का साथ नहीं है। पढ़े-लिखे लोगों के बीच रहती थी, तो उन्हीं जैसा बर्ताव करती थी। अब सिवाय स्टेज पर नाचने-गाने वालों के और कोई नहीं रहा, तो खरबूजे को देखकर रंग बदलेगा ही। सारा कियाधरा तो उन वकील साहब का है।.......लोग कहते हैं, बंगाली बड़े शरारती होते हैं ! होते होंगे.......यह हजरत तो तहजीब के नाम से एक हर्फ तक नहीं जानते। पारसाल बार ऍसोसिएशन की लाइब्रेरी में मुझसे किस बदतहजीबी से बातें की थीं !......माना कि आम मालूमात और लोगों से ज्यादा हैं, वकालत के लायक लियाकत भी होगी......लेकिन मालूमात ही से तो तहजीब नहीं आती। वह तो उस माहौल की पैदावार होती है, जिसमें आदमी बचपन से रहता है। वह कहाँ से आए इनके पास ?'

बख्तियार को एक तो किसी पर गुस्सा आना ही नहीं चाहिए था, और आता भी तो शकुन्तला पर। यह सही है कि उसने अब उससे सम्बन्ध तोड़ लिया था, लेकिन इसमें संदेह किया ही नहीं जा सकता कि उसी ने बख्तियार के जीवन को

नई दृष्टि से देखने की क्षमता दी थी। उसी की आँखों की खिड़कियों से उसे उस नई दुनिया की राह दिखाई दी थी, जिसमें आदमी सामाजिक सम्मान के थोथे आडंबर से अलग रह कर भी अपने में मस्त रह सकता है। उसके दिल में शकुन्तला के लिए नफरत पैदा होती ही न थी। शकुन्तला ने मिसेज खन्ना का जो अपमान किया था, वह बख्तियार को बहुत बुरा लगा था। वह मिसेज खन्ना को देवी की तरह पूजने लगा था और शकुन्तला उसकी नजर में बहरहाल औरत ही थी। लेकिन, देवी का अपमान करने वाली औरत भी बख्तियार के दिल में इस तरह जड़ें जमाए बैठी थी कि वह उसे हानि पहुँचाने या उससे घृणा करने की बात भी नहीं सोच पाता था। फलतः दोनों के संघर्ष में वह खुद ही तटस्थ होकर अलग हो गया था।

लेकिन आशीष को माफ करने की उसे कोई वजह न दिखाई दी। संयोग से जब भी आशीष से उसका सामना हुआ था, तब किसी-न-किसी प्रतिद्वंद्वी की हैसियत से हुआ था। इस समय आशीष के प्रति उसकी सारी घृणा यकबारगी ही उमड़ आई। आशीष यदि शकुन्तला को प्रेम करता, तो बख्तियार को खुशी ही होती। वह प्रेम प्रतिद्वंद्विता को शालीन स्तर पर रखना जानता था। लेकिन, उसकी नजर में तो आशीष प्रेम नहीं गुण्डा भर था। प्रेमी की यही सूरत होती है? प्रेम करना कोई बख्तियार से सीखे! इन दो महीनों में कभी मिसेज खन्ना से आँखें मिला सका है वह? मिलता है तो उसके पैरों की तरफ ही देखता रहता है। एक यह साहब हैं, हाथा-पाई से कम कुछ कर ही नहीं सकते। खुद तो जैसे हैं, वैसे हैं ही, शकुन्तला को भी न जाने किस स्तर पर ला पटका।

बख्तियार की यह हालत एक दिन नहीं, दस बारह दिन रही। उसने अपने को लाख बहलाना चाहा, लेकिन आशीष का कल्पना-चित्र उसके दिमाग को खौलाता ही रहता, उसके दिल को जलाता ही रहता।

एक दिन कॉफी हाउस में दोनों की भिड़न्त हो गई। दोनों के कुछ दोस्त भी जमा थे। आशीष को बताया गया कि बख्तियार भी वकील बनने के लिए पढ़ने लगा है, तो उसे बड़ी खुशी हुई कि वह राजनीतिक दल से अपने को निकाल ले गया है। दो-तीन वर्ष से वकालत करते हुए आशीष ने अपना कर्तव्य समझा कि बख्तियार को इस पेशे के बारे में कुछ 'नसीहतें' दे। उसने कहा, "बख्तियार साहब! इस प्रोफेशन की कामयाबी इस बात पर भी मुनहसिर है कि वकील पब्लिक में अपने लिए जगह पैदा करे।"

बख्तियार कृतज्ञता प्रकाशन के मूड में बिल्कुल नहीं था। बोला, "यह तो

मैं जानता हूँ मुखर्जी साहब ! लेकिन आपने जो तरीका स्टैंडिंग बनाने का अपनाया है, उसे मैं गलत समझता हूँ।"

"मैं आपका मतलब नहीं समझा ? मैंने क्या गलत तरीका स्टैंडिंग बनाने का अपनाया है ?"

"आप की तरह मैं स्टेज पर उछल-कूद नहीं सकता।" बख्तियार ने कड़वे स्वर में कहा।

आशीष अप्रतिभ होकर बोला, "यह तो जाहिर है कि आदमी ड्रामेटिक आर्ट के अलावा हजार तरह से स्टैंडिंग बना सकता है। लेकिन, आपकी बातों से तो लगता है जैसे यह कोई गुनाह हो।"

"गुनाह यह खुद हो या न हो, गुनाहों के लिए रास्ता जरूर खोल देता है। आदमी मुहब्बत की ऐक्टिंग स्टेज पर करते-करते असली जिन्दगी में भी करने लगता है।" बख्तियार ने कहा।

आशीष ने उसे भवें चढ़ाकर देखा। बख्तियार उसके मित्रों के सामने ही उसका अपमान कर रहा था। लेकिन उसने बात न बढ़ानी चाही। हँसकर बोला, "ड्रामा होता है, तो देखने तो आप भी जाते हैं।"

"ड्रामा देखने में कोई बुरी बात नहीं। एतराज की बात ऐक्ट्रैसों से हाथापाई करने में होती है।"

अब आशीष समझा कि इस समय कुर्ता सदरी पहने जो व्यक्ति उस पर विषबाण छोड़ रहा है, उसी ने सूट पहन कर ग्रीन रूम में झांका था। वह अन्दर-ही-अन्दर उफनने लगा, लेकिन बात बढ़ाने का मौका न था। हँसकर बोला, "भई, हम गुनाहगार हैं। परहेजगारी आप ही को मुबारक हो। जन्नत के कोतवाल से मेरा भी सलाम कह दीजिएगा।"

●●●

२६

जो लोग दया और क्षमा को जीवन का सबसे बड़ा गुण मानते हैं, वे शायद किसी और संसार के निवासी हैं, जो या तो भटक कर इस संघर्ष की दुनिया में आ गए हैं या फिर हजरत ईसामसीह की भाँति किसी विशेष उद्देश्य से यहां कुछ दिनों के लिए भेजे गए हैं और जितने दिन इस दुनिया में रहते हैं, अपने को परदेशी महसूस करते हैं। अगर बाइबिल की कथाएँ सत्य समझी जाएँ (हमें उन्हें झूठा समझने की ऐसी क्या गरज पड़ी है ?) तो मालूम होगा कि यद्यपि उन्होंने आततायी यहूदी धर्म व्यवस्थापकों के सारे अत्याचारों और तमाशबीनों के व्यंग्य बाणों को अत्यन्त धैर्यपूर्वक सहा था और शूली पर चढ़ते-चढ़ते भी कहा था "पिता इन्हें क्षमा कर, ये नहीं जानते कि यह क्या कर रहे हैं।" फिर भी एक समय ऐसा आया था, जब वे विचलित हो गए थे और जब शूली की यातना असह्य हो गई थी, तो चिल्ला उठे थे कि क्या तू मुझे भूल गया ? परमपिता उन्हें भूला नहीं था, उसने उनकी आत्मा को अपने पास बुला लिया। बाद में..... लेकिन हमें यहां ईसामसीह का चरित्र-वर्णन करना अभीष्ट नहीं है, हम सिर्फ यह कहना चाहते हैं कि अगर कहीं स्थिति यह होती कि ईसामसीह की प्रतीक्षा स्वर्ग के राज्य का सिंहासन न कर रहा होता, तो क्या वे अपने हत्यारों को इस प्रकार क्षमा कर सकते थे जैसे उन्होंने किया। समझदार आदमी परदेश में लोगों की दो कड़वी बातें भी बर्दाश्त कर लेता है और क्षुब्ध नहीं होता; क्योंकि जानता है कि इन लोगों का दो-दिन का ही साथ है; लेकिन अपने घर में सारे झगड़े उसे निपटाने ही पड़ते हैं। अगर वह ऐसा नहीं करता तो उसे रात को नींद नहीं आती।

लेकिन यह बताने की जरूरत नहीं है कि ईसा, बुद्ध और गांधी जैसे लोग—जो चौबीस घण्टे यह महसूस करें कि उनका संसार में जीवन परदेशी के आवास की तरह है—सदियों में कहीं एकाध पैदा होते हैं। बाकी तो हम और आप जैसे सांसारिक जीव हैं, जिनकी जबान पर रहता है "जगत का झूठा सब धन्धा" और दिल में सारी बातें जगत ही की होती हैं। हम और आप इसी दुनिया को अपनी असली जगह समझते हैं (चाहे जबान से मंजूर न करें) और स्वर्ग-नर्क में विश्वास भी करते हैं, तो उस कस्बाती लड़के की तरह जो पुस्तकों में वर्णित

लन्दन की जमीन के अन्दर चलने वाली रेलों और न्यूयार्क की अस्सी-अस्सी मंजिल की इमारतों के अस्तित्व पर बौद्धिक रूप से पूरा विश्वास करते हुए भी अपने जीवन में उनका महत्व एक स्वप्न से अधिक नहीं समझता। उन शहरों की जिन्दगी लाख चमकदार सही, लेकिन कोई उसे उसके अनाकर्षक कस्बे से उठाकर उन शहरों में ले जाना चाहेगा, तो उसे मालूम होगा कि उसका सब कुछ छूटा जा रहा है। यकीन न हो तो किसी बड़े से बड़े ईश्वर विश्वासी से पूछ लीजिए कि क्या वह अभी और इसी समय इस पापी संसार को छोड़कर स्वर्ग चलने के लिए तैयार है ?

स्पष्ट है कि जब बुद्ध, ईसा और गाँधी के आदर्श हमारे और आपके जैसे ईश्वर-भक्तों तक के लिए केवल अप्राप्य आदर्श भर हैं, तो घोर भौतिकवादी और नास्तिक बख्तियार के लिए तो उनका कोई महत्व ही नहीं हो सकता था। उसके लिए जीवन का सबसे बड़ा सत्य बदला लेना था। उसका कहना था कि क्षमा जैसी किसी वस्तु का कहीं अस्तित्व ही नहीं है, प्रकृति कहीं क्षमा नहीं करती। वह दार्शनिक या मनोवैज्ञानिक नहीं था, वरना अपनी बात को यूँ भी कह देता कि जो व्यक्ति भी दया या क्षमा के द्वारा किसी अन्य व्यक्ति को प्रकृति की ओर से दिए जाने वाले उचित दण्ड को रोकता है, वह स्वयं दण्ड का भागी बन जाता है—ठीक इसी तरह जैसे कोई फौजी संतरी अगर किसी ऐसे युद्धबंदी पर रहम खाकर जिसे दूसरे दिन गोली मारी जानेवाली है, उसे भाग जाने देता है तो उसे इस दया के फलस्वरूप खुद ही निशानेबाज दस्ते के सामने खड़ा होना पड़ता है। बख्तियार को कोई दार्शनिक सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं करना था, इसलिए उसे इस दृष्टिकोण के प्रचार की जरूरत नहीं थी, लेकिन वह दिल से इसपर विश्वास करता था (चाहे बौद्धिक और तार्किक रूप से यह तथ्य उसके सामने पूर्णतः स्पष्ट न हो)।

इसीलिए आशीष को जली-कटी सुनाकर उसकी उद्विग्नता पहले से बहुत कम जरूर हो गई और वह अध्ययन में अपना ध्यान लगाने में भी समर्थ हो गया था (जो पिछले दस-बारह दिनों में न लगा सका था)। लेकिन, फिर भी वह अपने को जीवन के साधारण ढर्रे पर न लगा सका था। उसे महसूस होता कि आशीष को अभी पूरी तरह सजा नहीं मिली है। जितना बड़ा उसका दोष है उसके लिहाज से उसके हृदय को पीड़ा अभी नहीं पहुँची और इस समय बख्तियार के हृदय को वही बची हुई पीड़ा कचोट रही थी। उसे महसूस होता था कि वह तब तक संतोष प्राप्त नहीं कर सकता, जब तक आशीष को आठ-आठ आँसू ढला न ले। प्रकृति का न्याय पूरा ही होना चाहिए।

हाँ, यह स्थिति उसकी अवश्य थी कि अब उसका दिमाग नहीं खौल रहा

था, बल्कि वह ठण्डे दिल से यह सोचने लगा था कि आशीष को किस तरह नीचा दिखा सकता है। इस सोच-विचार में कभी-कभी उसकी तर्क-बुद्धि आड़े आने लगती—तुम्हें क्या मतलब इन बातों से? तुमने क्या सारी दुनिया का चाल-चलन सँभालने का ठेका ले रखा है? अपने काम से काम रखो और आशीष तथा शकुन्तला को जहन्नम में जाने दो। मान लिया कि वे जो कुछ कर रहे हैं, बहुत ही बुरा कर रहे हैं, लेकिन तुम्हें क्या हक है उनकी इस्लाह का? तुम क्यों जबरदस्ती खुदाई फौजदार बने हुए हो?

लेकिन दो क्षण भी ये दलीलें उसके दिमाग में नहीं टिक पातीं। वह फिर सोचता—ये तो वे तसल्लियाँ हैं, जो कमजोर आदमी अपने दिल को दिया करता है। अगर सभी लोग मेरी तरह सोचने लगें कि हमें किसी से कोई मतलब नहीं, तो दुनिया का काम दो दिन भी न चले; दुनिया में शरारती लोगों का ही बोलबाला हो जाए। अगर आशीष को मैं सजा न दूँगा, तो कौन देगा? अगर यह बात सही है कि मुझे उसकी इस्लाह का हक कुदरत की तरफ से हासिल नहीं है, तो मुझे उसकी हरकतें इतनी अखर क्यों रही हैं? मैं भी और लोगों की तरह इन बातों पर जी-भरकर हँसने के बाद चैन से सो क्यों नहीं सकता? क्यों रात-दिन जी में कुढ़न होती रहती है?.......और फिर हक हो या न हो, बात जायज हो या नाजायज, मैं उसे माफ नहीं कर सकता, उसे सजा जरूर दूँगा।

बख्तियार के सामने यह उधेड़-बुन तो न रही कि उसे कुछ करना भी चाहिए या नहीं; मगर हाँ, यह समस्या जरूर थी कि कौन-सा कदम उठाया जाए और किस तरह। आशीष का राजनीतिक क्षेत्र से कोई सम्बन्ध ही नहीं था, जहाँ उसकी किसी तरह मिट्टी खराब की जाती; वकालत के मैदान में उसकी जड़ें गहरी जमी हुई थीं और फिर उस खुदगरजी और जाती लूट-खसोट की दुनियाँ में, जहाँ कोई आदमी अपने तात्कालिक लाभ के आगे किसी बात को देख-समझ ही नहीं पाता, कौन ऐसा सरफिरा मिलेगा, जो दूसरों का बोझ अपने ऊपर लादे। कला-क्षेत्रों में एक तो आशीष की धाक जमी थी और बख्तियार को कोई जानता ही नहीं था, बल्कि आगे भी कोई जानेगा, इसकी कोई आशा न थी; फिर सबसे बड़ी बात यह थी कि उस दुनियाँ के लिए ये बातें स्वाभाविक हैं, बख्तियार की खुदाई फौजदारी की कद्र वहाँ क्या होगी? 'फिर? खन्ना साहब से कुछ सलाह-मशविरा किया जाए? लाहौल वलाकुव्वत! वह गधे का बच्चा खुद भी मार खाएगा और मैं भी लपेट में आ जाऊँगा। मिसेज खन्ना को कॉनफीडेंस में लिया जाए? वे शकुन्तला को जक जरूर पहुँचाना चाहेंगी, लेकिन आशीष का क्या कर सकेंगी? नहीं, उनके बस की बात नहीं है....और फिर

सबसे बड़ी बात यह है कि अब मैं वैसे भी उनसे मामूली तौर पर बात नहीं कर पाता हूँ, इस तरह की बातें खुद कैसे करूंगा ? अगर गोयल साहब से कुछ बात की जाए तो ? लेकिन गोयल साहब तो बिल्कुल अफसर आदमी हैं, अपनी बीबी के चाल-चलन की उन्हें क्या फिक्र होगी अपने अफसराना पोजीशन के सामने ? वे क्या यह सब जानते नहीं हैं ? और जानबूझकर सब कुछ बरदाश्त कर रहे हैं तो मेरे ही कहने से कौन-सी नई गैरत आ जाएगी उनके दिल में ? नहीं, उन्हें शराब में मस्त रहने देना ही ठीक है।

सोचते-सोचते बख्तियार का ध्यान एक जगह आकर रुक गया--अगर जूलिया को टटोला जाए तो ? लेकिन जूलिया क्यों आशीष को नुकसान पहुँचाना चाहेगी ? वह तो पहले ही उसे ठुकरा चुकी है। लेकिन जूलिया के लिए तो यह मजेदार खेल ही रहेगा।

वह बख्तियार को अब भी मानती थी, खुद बख्तियार ही ने तो उसके पास जाना इसलिए छोड़ दिया था कि वह जूलिया के अन्दर जरा-सी भी राजनीतिक चेतना पैदा करने में समर्थ न हो सका था और बख्तियार को खयाल हुआ था कि बगैर राजनीतिक कार्य के अगर किसी नर्स से सम्पर्क बढ़ाया जाए, तो राजनीतिक विरोधी इस बात का ढिंढोरा पीटने लगते हैं। लेकिन अब तो स्थिति बदल गई थी। बख्तियार उसके पास किसी राजनीतिक काम को लेकर नहीं जा रहा था। साथ ही अब उसे इस बात की परेशानी भी न थी कि उसके जूलिया से सम्पर्क रखने पर कोई क्या कहेगा। यह सही है कि विद्यार्थीगण अब भी उसके राजनीतिक बलिदानों के अलावा उसकी सच्चरित्रता का सम्मान करते थे और यह बात फैली, तो विद्यार्थी के बहुत बड़े भाग में चर्चा का विषय बन जाएगी; लेकिन अब बख्तियार को इस बात की बिल्कुल चिन्ता न थी। उसे अब नेतागीरी की इच्छा तो रही नहीं थी। विद्यार्थियों से उसका व्यक्तिगत सम्बन्ध अब नगण्य था। वे उसका जयकार करें या उसके नाम पर थूकें, क्या फर्क पड़ता था उसके लिए ? अतः, उसने जूलिया ही को टटोलना ठीक समझा।

कुछ दिन तक और इस बात को अच्छी तरह सोचने-समझने के बाद बख्तियार नर्सेज होम की तरफ चल दिया। एक बार सामने से निकल कर आगे बढ़ आया और स्टेशन पहुँच गया। प्लैटफार्म के अन्दर जाकर रिफ्रैशमेंट रूम में चाय पी। चाय पीता-पीता सोचता रहा कि जूलिया के पास जाना ठीक रहेगा या नहीं। फिर उसे अपनी कमजोरी पर झुँझलाहट होने लगी। भला इतने गावदीपन से कहीं काम चल सकता है ? और वह उठ कर जूलिया के यहाँ पहुँच गया।

जूलिया अपने कमरे में न थी। मालूम हुआ कि उसकी ड्यूटी आध घण्टे बाद खत्म होगी जिसके बाद तीन घण्टे के लिए उसे छुट्टी रहेगी, फिर शाम की ड्यूटी पर जाना होगा। एक नर्स ने अस्पताल जाकर जूलिया को बताया कि बख्तियार साहब आए हैं। ऐसा करना दो वजहों से जरूरी था। एक तो जूलिया का कमरा खोलने के लिए उसकी चाबी माँगना था, ताकि बख्तियार को आराम से बिठाया जा सके, दूसरे यह भी अक्सर होता था कि छुट्टी रहने पर भी वह अस्पताल ही में रह जाती थी और यूँ ही अपनी साथिनों का हाथ बटाने लगती थी। बख्तियार इस आध घण्टे में सोचता रहा कि जूलिया के आने पर वह क्या कहे, किस तरह अपनी बात रखे। फिर भी वह कुछ निश्चित न कर पाया था। उसे एक तरह अफसोस होने लगा कि क्यों इस जगह आया।

जूलिया ने आकर नर्सेज कैप उतारते हुए कहा, "कैसे याद आ गई इधर आने को हुजूर?"

बख्तियार हँस कर रह गया। जूलिया बोली, "ठीक है, नेता लोगों को फुर्सत कहाँ रहती है?"

"अब मैं नेता नहीं रहा, मिस रॉबिसन!" बख्तियार ने कहा, अब फुर्सत-ही-फुर्सत है?"

"क्या मतलब?" जूलिया चौंक कर बोली। पहली बार उसने नोट किया कि बख्तियार सूट और टाई पहने बैठा है। हँसकर बोली, "पोलिटीकल वर्क बिल्कुल छोड़ दिया क्या? बिल्कुल साहब हो गए।"

बख्तियार ने बताया कि उसने यूनिवर्सिटी में दाखिला ले लिया है और उसका इरादा वकालत करने का है। जूलिया यह सुनकर खुश हुई। कहने लगी, "वकालत बड़ा अच्छा पेशा है, इसमे नाम और पैसा दोनों मिलता है। मेरे एक और फ्रेंड वकील हैं मि० आशीष मुखर्जी। उनसे आप को मिलाऊँगी।"

"उनसे तो आप एक बार मिला चुकी हैं, अब दुबारा मिलवाकर क्या कीजिएगा?"

"मैं उनसे आपको मिलवा चुकी हूँ?...हाय रे! मैं तो वाकई भूल गई थी। हाँ, उस दिन तो आप खड़े-खड़े ही चले गए और उसके बाद तकरीबन आए ही नहीं इधर।" जूलिया ने कहा।

जूलिया खूँटी पर टँगी हुई धोती उठाकर बगल में अपनी सहेली के कमरे में कपड़ बदलने चली गई। बख्तियार जी में खुश हुआ कि इसने खुद ही आशीष की चर्चा छेड़कर बात शुरू करने का मौका दे दिया। सहेली के कमरे से

लौटकर जूलिया चाय बनाने लगी, तो बख्तियार ने सख्ती से मना कर दिया। फिर भी जूलिया ने एक तश्तरी में बिस्कुट रख दिये और दूसरी में अमरूद काटने लगी।

उसने अपना प्रश्न दुहराया, "कैसे भूल पड़े आखिर इधर की तरफ, बख्तियार साहब ?"

"कुछ नहीं, यूँ ही मिलने आया था। आप कुछ बिजी हैं किसी काम में क्या ?"

"नहीं नहीं, मुझे क्या काम होगा सिवाय अस्पताल की ड्यूटी के," जूलिया बोली, आप बैठिए; उठे क्यों जा रहे हो ? मैंने तो इसलिए पूछा था कि महीनों से इधर नहीं आए हालांकि आपका मकान यहां से चार-पांच फर्लांग भी नहीं है। अब तो आप शाम को आ ही सकते हैं।"

"मैंने वह पहले वाला मकान छोड़ दिया। अब हॉलैण्ड हॉल में रहता हूँ।" बख्तियार ने बताया।

"अच्छा ! तो पूरे तौर पर स्टूडेण्ट हो गए हैं।" जूलिया ने कहा। पूछना वह अब भी चाहती थी कि इतनी दूर से यहाँ आने की याद आज अचानक कैसे आई, लेकिन शिष्टतावश चुप रही।

किन्तु, बख्तियार अपने हाथ से छूटते हुए सूत्र को पकड़ने की कोशिश में लगा था। कुछ देर बाद बोला, "आशीष बाबू तो यहाँ अक्सर आते होंगे। मेरा मतलब है कि…।"

जूलिया ने कहा, "नहीं, वे भी कई महीने से नहीं आए। शायद वकालत में ज्यादा बिजी हो गये हैं। हाँ, दो महीने पहले जरूर एक बार आए थे। उसके बाद अभी तक नहीं आए।"

बख्तियार ने मन ही मन कुछ हिसाब लगाकर कहा, "दो महीने पहले किसी काम से आए थे ?"

जूलिया को यह जिरह जैसा सवाल अच्छा न लगा। बोली, "उन्हें शायद कोई ड्रामा करना था। उसके लिए ऐक्ट्रैस की तलाश में वे यहाँ आए थे। पता नहीं, ड्रामा हुआ या नहीं।"

बख्तियार ने हँसकर कहा, "जब ड्रामे में बिजी रहते हैं, तो वकालत पर क्या ध्यान देते होंगे ?"

जूलिया की समझ में न आया कि बख्तियार आशीष में क्यों इतनी दिलचस्पी

ले रहा है और उससे क्यों जिरह किए चला जा रहा है। परेशान-सी होकर बोली, "मैं क्या जानूँ कि ध्यान देते हैं या नहीं। मुझसे तो वॉल्टर साहब ने कहा था कि वे वकालत पर बहुत ध्यान देने लगे हैं और उनकी प्रैक्टिस अच्छी चलने लगी है। चार-पाँच सौ रुपये महीने पैदा कर लेते हैं। नयी वकालत में इतना....।"

"वॉल्टर साहब कौन हैं ?" बख्तियार ने आशीष के गुणगान को बीच ही में टोक दिया।

"हमलोगों के कामन फ्रेण्ड हैं। उन्होंने मि० मुखर्जी से मेरा इन्ट्रोडक्शन कराया था।

"अच्छा, पहले तो वे यहाँ काफी आया करते थे। उनके बारे में क्या ख्याल है आपका ?"

"ख्याल क्या होगा साहब ? मेरे दोस्त हैं। बहुत शरीफ और सुलझे हुए आदमी हैं।" जूलिया बोली।

बख्तियार को परेशानी होने लगी। यह लड़की तो किसी तरह हाथ ही नहीं रखने देती। आशीष की तारीफ ही किए चली जाती है। लेकिन, बात शुरू की है तो उसे आखीर तक पहुँचाना चाहिए। बोला, "मिस रॉबिसन ! आप मेरी जिरह से परेशान तो हो रही होंगी। इसके लिए मैं माफी माँगता हूँ। लेकिन—आप चाहें तो कुछ समझें—मैं आपको अपना दोस्त समझता हूँ। मैं आपके इन दोस्त की तरफ से कुछ अच्छा ख्याल नहीं रखता हूँ, उन्हें अच्छे चाल-चलन का नहीं समझता।"

जूलिया को मजा भी आया और बुरा भी लगा। मजा इसलिए आया कि यह नेताजी जो पहले समाजवाद पर लेक्चर देने के अलावा और कोई बात ही नहीं करते थे, अब मालूम होता है, प्रेम निवेदन के लिए जमीन तैयार करते दिखाई दे रहे हैं। बुरा इसलिए लगा कि वह आशीष का हृदय से सम्मान करती थी—विशेषतः अन्तिम भेंट में उसने जूलिया पर बहुत अच्छा प्रभाव छोड़ा था। वह बोली, "आपका मतलब क्या है ? कोई लाख बदचलन हो, लेकिन मेरा क्या कर लेगा ?"

"वह तो मैं जानता हूँ। आप खुली दुनिया में रहती हैं, हजार आदमियों से मिलती हैं, सबकी नजरें पहचानती हैं। आपका कोई क्या कर लेगा ? वैसे भी आपकी जिन्दगी के बारे में जिसे न मालूम हो, उसे ही कोई ऐसा-वैसा शक हो सकता है। मैं तो यह कहना चाहता हूँ कि दूसरी औरतें तो आपकी

तरह दुनिया नहीं देखे हुई हैं और मि० मुखर्जी जैसे आदमी उन लोगों के मामले में खतरनाक हो सकते हैं।"

अब जूलिया को मालूम हुआ कि बख्तियार किसी प्रेम-निवेदन की भूमिका नहीं बांध रहा था, बल्कि आशीष की बुराई करना चाहता था। लेकिन क्यों? उसने इसका क्या बिगाड़ा है? क्या यह भी शकुन्तला के प्रति आकृष्ट है? लेकिन यह शकुन्तला को क्या जाने? कुछ भी हो, पूछना तो चाहिए।

मुस्कुरा कर बोली, "आप तो पहेलियाँ-सी बुझा रहे हैं। कुछ साफ कहिए तो समझ में आए।"

बख्तियार यही चाहता था। बोला, "मैं तो आपको बताना ही चाहता था, आप ही नाराज होने लगती थीं। बात यह है कि मैं आशीष साहब से कई बार मुलाकात कर चुका हूँ। वे वकालत पर ध्यान-व्यान कुछ नहीं देते। बाप की चलती हुई वकालत है, इसी से इन्हें भी कुछ आमदनी हो जाती है। इनका काम तो नाटक करने के बहाने नई-नई औरतों को फँसाना है। वैसे तो मुझे क्या करना है, लेकिन इधर उन्होंने एक शरीफ खानदान की खातून पर भी डोरे डालने शुरू किए हैं। मैं उस औरत की इज्जत करता हूँ। हर माने में इज्जत के काबिल है वह। अफसोस यही है कि ड्रामेटिक आर्ट की दीवानी है, इसी से इनका जादू चलता जा रहा है और वह इनके चंगुल में फँसती जा रही है। यह हजरत एक शरीफ घराने को बरबाद करके छोड़ेंगे।"

"होने दीजिए उस घराने को बरबाद। आपने क्या दुनिया के सुधार का ठेका ले रखा है?"

"कहती तो आप ठीक हैं, लेकिन वही मसल है कि चोर चोरी से जाए तो क्या हेराफेरी से भी जाए? पॉलिटिक्स में रहकर आदमी में यही रोग तो पैदा हो जाता है कि दूसरों से हमदर्दी बढ़ जाती है।"

जूलिया मन ही मन इस 'हमदर्दी' पर हँसी। बोली, "कौन साहिबा हैं वह? कुछ बता सकते हैं?"

बख्तियार ने शकुन्तला गोयल का नाम लिया। बताया कि उसके मकान मालिक खन्ना साहब ने, जो मशहूर "आर्ट क्रिटिक" है, मिसेज गोयल से उस का परिचय कराया था; मिसेज गोयल बहुत ही शरीफ और तालीमयाफ्ता खातून हैं, बाल-बच्चे वाली है, खाविंद से उनके बहुत अच्छे ताल्लुकात हैं; और इधर आशीष ने उनका 'नूरजहाँ' में ऐक्टिंग देखने के बाद उनसे ताल्लुकात बढ़ाना शुरू कर दिए हैं। आशीष बदनाम आदमी हैं, इसलिए शकुन्तला की भी

बदनामी शुरू हो गई है; बख्तियार ने शकुन्तला को इशारे से समझाना चाहा, लेकिन वह इतनी सादा दिल है कि समझी ही नहीं।

वॉल्टर के ज्ञान-भण्डार में कोई ऐसा तथ्य न था, जो जूलिया को न मालूम हो। उसे वह सब कुछ मालूम था, जो वॉल्टर ने खुद देखा था या जो शकुन्तला के बारे में उसे आशीष ने बताया था। शकुन्तला के प्रति आशीष के प्रगाढ़ प्रेम की भावना उसने खुद देखी थी। उसे स्त्रियोचित ईर्ष्या का कुछ अनुभव जरूर हुआ था, मगर वह समझदार थी, जानती थी कि जब वह खुद शकुन्तला का स्थान पाकर ठुकरा चुकी है—बल्कि अब भी नहीं लेना चाहती—तो आशीष पर इस मामले में नाराज होना बेकार है; बल्कि आशीष के प्रेम की शुद्धता देख कर उसकी नजर में आशीष का मान और बढ़ गया था। स्पष्ट था कि बख्तियार शकुन्तला के प्रति आकृष्ट है और चूँकि खुद उसे आकृष्ट नहीं कर सका है, इसलिए दिल की कुढ़न ने उसे इतनी कमीनगी पर उतार दिया है कि आशीष से बेकार ही उलझना चाहता है।

मुस्कुरा कर बोली, "यह तो वाकई बहुत बुरी बात है। मुझे मिसेज गोयल से हमदर्दी है।"

"जबानी हमदर्दी से क्या होगा मिस रॉबिसन ? कुछ करें तो मैं भी जानूँ फिर आप में कुछ दम है।"

"मैं क्या कर सकती हूँ इस मामले में ? आशीष बाबू मेरे समझाने से समझेंगे ?"

"बहुत कुछ कर सकती हैं आप," बख्तियार बोला। "नाराज न हो जाएँ तो कहूँ।"

"नहीं, नाराज होने की क्या बात है ? आप कहिए।" जूलिया ने आश्वासन दिया।

बख्तियार ने हँस कर कहा, "आप को थोड़ी-सी ऐक्टिंग करनी पड़ेगी। आशीष बाबू को थोड़ा-सा अपनी ओर से प्यार का जलवा दिखलाइए, तो वे शकुन्तला को छोड़ देंगे। बाद में तो आप उन्हें सबक दे ही देंगी।"

जूलिया मुस्कुराकर दूसरी तरफ देखने लगी। बख्तियार खुश हुआ कि इसे मेरी बात पसन्द आई है। जूलिया सोच रही थी कि इसीलिए यह नेता यूनिवर्सिटी से यहाँ तक दौड़े आए हैं। इन्हें राजनीति ने षड़यन्त्र करना सिखा तो दिया है, लेकिन अभी कच्चे हैं, आदमी नहीं पहचान पाते। बोली, "अच्छा, बख्तियार साहब ! अब तो देर हो गई है; चाय पीनी ही पड़ेगी आपको।"

बख्तियार ने खुशी से चाय पीने की मंजूरी दे दी। जूलिया को वह अपनी तरफ से शिकायत करने का कोई मौका नहीं देना चाहता था। लेकिन, उसे यह देखकर परेशानी होने लगी कि चाय पीने के बाद जूलिया इधर-उधर की बातें करने लगी है। बख्तियार को अपनी योजना के कार्यान्वयन के मामले में कोई खास जल्दी नहीं थी, लेकिन, वह यह जरूर चाहता था कि समझौते पर जूलिया की स्पष्ट स्वीकृति मिल जाए। इसलिए उसने पूछा—आप ने उस बारे में कुछ राय नहीं दी ?"

जूलिया बात को टाल ही जाना चाहती थी। उसका एक बार जी हुआ कि कह दे कि फिर सोच कर बताऊँगी। किन्तु बख्तियार इस पर उसके क्वार्टर के चक्कर लगाने लगता और इतनी देर की बात-चीत के बाद जूलिया को बख्तियार का किसी तरह का भी साथ बिल्कुल पसन्द नहीं रह गया था। उसने कहा, "आप मुझे अपना दोस्त समझते हैं न ? मैं जो कुछ कहूँगी, आप के भले ही के लिए।"

बख्तियार अप्रतिभ-सा होकर बोला, "मेरे भले की बात ? खैर, आप क्या कहना चाहती हैं ?

"आप यूनिवर्सिटी फिर छोड़ दीजिए और ऐक्टिव पॉलिटिक्स में दुबारा आ जाइए।" जूलिया बोली।

"इसका उस बात से क्या ताल्लुक ?" बख्तियार ने बिगड़ते हुए कहा।

"ताल्लुक यह है कि आप यूनिवर्सिटी में जाकर बिल्कुल लौंडे हो गए हैं। पॉलिटिक्स में थे, तो मिजाज में एक संजीदगी थी। अब लौंडों की संगत में रह कर लौंडों-जैसी बातें करने लगे हैं।"

"क्या मतलब है आप का ? यह बात आप को लौंडों-जैसी मालूम हो रही हैं ?"

"बिल्कुल लौंडों-जैसी बात है," जूलिया गर्म होकर बोली, "आप ने जो कुछ भी कहा है, हर बात में अस्लियत को तोड़ा-मरोड़ा है, इस ख्याल में कि मैं आशीष बाबू की बातों और मिसेज गोयल की शख्सियत से नावाकिफ रहूँगी। लेकिन, मुझे सब मालूम है। मैं आप की इस बात से मुत्तफिक हूँ कि मिसेज गोयल बहुत ही शरीफ खातून हैं। लेकिन उनकी गलती यह नहीं है कि उनके आशीष बाबू से दोस्ताना ताल्लुकात हैं, उनकी गलती यह है कि उन्होंने आप जैसे आदमी को मुँह लगाया। उनकी शराफत का मतलब आप ने यह लिया कि उनसे इश्क फरमाने लगे। आपकी हिम्मत शायद साफ-साफ कुछ कहने की नहीं हुई होगी, वरना आप के साथ भी वही बर्ताव होता जो आप के नेक नाम

मकान मालिक खन्ना साहब के साथ सवा चार साल पहले हुआ था। खैर, यह तो अच्छा ही हुआ, लेकिन आपकी इस कुढ़न का नतीजा यह हुआ कि आप आशीष बाबू जैसे फारिश्ता खसलत इंसान के खिलाफ इस हद तक जलील साजिश करने पर उतर आए। आप आशीष बाबू को बिल्कुल नहीं जानते हैं। आप की साजिश में मैं तो शामिल हो ही नहीं सकती, साथ ही यह भी बता देना चाहती हूँ कि एक क्या, दस लड़कियाँ भी उन्हें इस तरह शिकस्त नहीं दे सकतीं जिस तरह आप चाहते हैं। यह सब तमाशा न कीजिए, शराफत से रहिए, वरना नुकसान उठाइएगा।''

"खुदा की शान है कि एक बदनाम और आवारा नर्स मुझे शराफत का सबक दे रही है।''

''मुझे सबक देने का कोई शौक नहीं है। आप को अपनी मौजूदा चाल ही ठीक मालूम पड़े, तो उसी पर चलिए, लेकिन ऐसी हालत में इधर आने की तकलीफ गवारा न फरमाइएगा। अच्छा इजाजत दीजिए। मेरी दूसरी ड्यूटी का वक्त हो गया है।'' कह कर जूलिया यूनिफॉर्म पहनने चली गई।

●●●

२७

बख्तियार ने कॉफी हाउस में जो कुछ कहा था, उसका मतलब आशीष के अलावा किसी ने नहीं समझा। आशीष इस बात पर तो भगवान को धन्यवाद दे हीं रहा था कि समाज में उसकी प्रतिष्ठा अब भी पहले की तरह कायम है, लेकिन उसे भविष्य के लिए घबड़ाहट जरूर होने लगी थी। बख्तियार के बारे में स्पष्ट था कि वह शकुन्तला के प्रति आकृष्ट है (कौन ऐसा आदमी होगा जो उस मायाविनी के इतने अधिक सम्पर्क में रहकर उसी का न हो जाए?) और इसीलिए आशीष से जला बैठा हैं। मालूम नहीं कितने महीने से उसकी यह हालत हो, हालाँ कि दिल की भड़ास उसने हाल ही में निकाली है। दुर्भाग्यवश उसने आशीष और शकुन्तला को ऐसी स्थिति में देख लिया था, जो आपत्ति-

जनक नहीं तो अत्यन्त अशोभनीय थी। आशीष को अपने पर झुँझलाहट होती थी कि क्यों वह ऐसी बचकाना हरकत ग्रीन रूम में हो कर बैठा। बख्तियार ने यह बात कही चाहे जिस इरादे से हो, यह तय है कि बात सही थी। किसी स्त्री तो क्या पुरुष से भी घनिष्ठ मैत्री यदि हाँथ-पाँव की हरकत पर उतर आए, तो सिवा इसके क्या मालूम होगा कि आदमी का मानसिक स्तर काफी नीचा है। आशीष ने तो अपने विद्यार्थी जीवन में भी कभी अपने साथियों के गले में हाथ न डाला था। बचपन में जब वह अखाड़े में जाया करता, तो पहलवानों को ऐसी हरकतें करते देखता और यह समझता कि अशिक्षित होने के कारण ही वे ऐसा व्यवहार करते हैं। बचपन के इन दृश्यों की उस पर ऐसी प्रतिक्रिया हुई कि कुश्ती के अलावा खुलेआम किसी दूसरे व्यक्ति के शरीर-स्पर्श को भी वह अचेतन रूप से घृणास्पद समझने लगा। अखाड़े में तो 'बाबूजी' की नफासत पसन्दी पर किसी को आश्चर्य होता ही न था, बाद में यूनिवर्सिटी के छात्र जीवन में भी उसके साथी इसी कारण उसे छुई-मुई जैसे नाम देने लगे थे। रंगमंच के साथियों का भी आपसी व्यवहार बहुत शालीनतापूर्ण न होता था; लेकिन आशीष का व्यवहार उन लोगों के बीच भी सबसे अलग रहता था। वह कभी इसकी जरूरत ही महसूस नहीं करता था कि हृदय के आह्लाद को हाथ-पाँव की हरकतों के जरिए जाहिर किया जाए। उसमें हाजिर जवाबी की कमी न थी और जो भाव और लोग उछल-कूद के द्वारा प्रकट करते थे, वह भाव आशीष एक चिपकते हुए वाक्य से ही पैदा कर लेता था।

फिर भी उस दिन ग्रीन रूम में उससे यह हरकत हो ही गई। किसी आदमी के साथ होती, तो भी गनीमत थी, वहाँ तो एक औरत का मामला था। बख्तियार ने अगर उसे इस हालत में देखकर बुरा माना, तो ठीक ही था। आशीष के दिमाग में एक पल के लिए भी यह खयाल न आया कि बख्तियार के सामने जाकर इस बात की सफाई दे (सफाई देने का मतलब तो यही लगाया जाएगा कि उसके दिल में पाप है), लेकिन उसे बख्तियार पर गुस्सा नहीं आ रहा था। एक तरह से वह उसके प्रति कृतज्ञता का अनुभव करने लगा था; क्योंकि बख्तियार ही की चली-कटी बातों ने उसे यह महसूस कराया था कि उसका व्यवहार आपत्तिजनक होने लगा है।

आखिर उसे उस दिन हो क्या गया था? सिवा इसके और क्या कहा जा सकता है कि नाटक की अप्रत्याशित सफलता ने दोनों को पागल बना रखा था। यूँ शकुन्तला का शरीर-स्पर्श अब उसके लिए कोई नई बात नहीं रह गई थी। हर चार-छः रोज के बाद मौका निकालकर शकुन्तला आशीष के साथ छेड़छाड़

मकान मालिक खन्ना साहब के साथ सवा चार साल पहले हुआ था। खैर, यह तो अच्छा ही हुआ, लेकिन आपकी इस कुढ़न का नतीजा यह हुआ कि आप आशीष बाबू जैसे फरिश्ता खसलत इंसान के खिलाफ इस हद तक जलील साजिश करने पर उतर आए। आप आशीष बाबू को बिल्कुल नहीं जानते हैं। आप की साजिश में मैं तो शामिल हो ही नहीं सकती, साथ ही यह भी बता देना चाहती हूँ कि एक क्या, दस लड़कियाँ भी उन्हें इस तरह शिकस्त नहीं दे सकतीं जिस तरह आप चाहते हैं। यह सब तमाशा न कीजिए, शराफत से रहिए, वरना नुकसान उठाइएगा।''

''खुदा की शान है कि एक बदनाम और आवारा नर्स मुझे शराफत का सबक दे रही है।''

''मुझे सबक देने का कोई शौक नहीं है। आप को अपनी मौजूदा चाल ही ठीक मालूम पड़े, तो उसी पर चलिए, लेकिन ऐसी हालत में इधर आने की तकलीफ गवारा न फरमाइएगा। अच्छा इजाजत दीजिए। मेरी दूसरी ड्यूटी का वक्त हो गया है।'' कह कर जूलिया यूनिफॉर्म पहनने चली गई।

● ● ●

२७

बख्तियार ने कॉफी हाउस में जो कुछ कहा था, उसका मतलब आशीष के अलावा किसी ने नहीं समझा। आशीष इस बात पर तो भगवान को धन्यवाद दे ही रहा था कि समाज में उसकी प्रतिष्ठा अब भी पहले की तरह कायम है, लेकिन उसे भविष्य के लिए घबड़ाहट जरूर होने लगी थी। बख्तियार के बारे में स्पष्ट था कि वह शकुन्तला के प्रति आकृष्ट है (कौन ऐसा आदमी होगा जो उस मायाविनी के इतने अधिक सम्पर्क में रहकर उसी का न हो जाए?) और इसीलिए आशीष से जला बैठा हैं। मालूम नहीं कितने महीने से उसकी यह हालत हो, हालाँ कि दिल की भड़ास उसने हाल ही में निकाली है। दुर्भाग्यवश उसने आशीष और शकुन्तला को ऐसी स्थिति में देख लिया था, जो आपत्ति-

जनक नहीं तो अत्यन्त अशोभनीय थी। आशीष को अपने पर झुंझलाहट होती थी कि क्यों वह ऐसी बचकाना हरकत ग्रीन रूम में हो कर बैठा। बख्तियार ने यह बात कही चाहे जिस इरादे से हो, यह तय है कि बात सही थी। किसी स्त्री तो क्या पुरुष से भी घनिष्ठ मैत्री यदि हांथ-पांव की हरकत पर उतर आए, तो सिवा इसके क्या मालूम होगा कि आदमी का मानसिक स्तर काफी नीचा है। आशीष ने तो अपने विद्यार्थी जीवन में भी कभी अपने साथियों के गले में हाथ न डाला था। बचपन में जब वह अखाड़े में जाया करता, तो पहलवानों को ऐसी हरकतें करते देखता और यह समझता कि अशिक्षित होने के कारण ही वे ऐसा व्यवहार करते हैं। बचपन के इन दृश्यों की उस पर ऐसी प्रतिक्रिया हुई कि कुश्ती के अलावा खुलेआम किसी दूसरे व्यक्ति के शरीर-स्पर्श को भी वह अचेतन रूप से घृणास्पद समझने लगा। अखाड़े में तो 'बाबूजी' की नफासत पसन्दी पर किसी को आश्चर्य होता ही न था, बाद में यूनिवर्सिटी के छात्र जीवन में भी उसके साथी इसी कारण उसे छुई-मुई जैसे नाम देने लगे थे। रंगमंच के साथियों का भी आपसी व्यवहार बहुत शालीनतापूर्ण न होता था; लेकिन आशीष का व्यवहार उन लोगों के बीच भी सबसे अलग रहता था। वह कभी इसकी जरूरत ही महसूस नहीं करता था कि हृदय के आह्लाद को हाथ-पांव की हरकतों के जरिए जाहिर किया जाए। उसमें हाजिर जवाबी की कमी न थी और जो भाव और लोग उछल-कूद के द्वारा प्रकट करते थे, वह भाव आशीष एक चिपकते हुए वाक्य से ही पैदा कर लेता था।

फिर भी उस दिन ग्रीन रूम में उससे यह हरकत हो ही गई। किसी आदमी के साथ होती, तो भी गनीमत थी, वहां तो एक औरत का मामला था। बख्तियार ने अगर उसे इस हालत में देखकर बुरा माना, तो ठीक ही था। आशीष के दिमाग में एक पल के लिए भी यह खयाल न आया कि बख्तियार के सामने जाकर इस बात की सफाई दे (सफाई देने का मतलब तो यही लगाया जाएगा कि उसके दिल में पाप है), लेकिन उसे बख्तियार पर गुस्सा नहीं आ रहा था। एक तरह से वह उसके प्रति कृतज्ञता का अनुभव करने लगा था; क्योंकि बख्तियार ही की चली-कटी बातों ने उसे यह महसूस कराया था कि उसका व्यवहार आपत्तिजनक होने लगा है।

आखिर उसे उस दिन हो क्या गया था ? सिवा इसके और क्या कहा जा सकता है कि नाटक की अप्रत्याशित सफलता ने दोनों को पागल बना रखा था। यूं शकुन्तला का शरीर-स्पर्श अब उसके लिए कोई नई बात नहीं रह गई थी। हर चार-छः रोज के बाद मौका निकालकर शकुन्तला आशीष के साथ छेड़छाड़

कर देती और आलिंगन-चुम्बन जैसी कोई चीज हो रहती। लेकिन हमेशा मामला यहीं पर खत्म हो जाता। शकुन्तला इसके बाद बिल्कुल गम्भीर हो जाती और काम की बात करने लगती। दो-एक मर्तबा आशीष ने आगे भी बढ़ना चाहा, तो शकुन्तला की ओर से कोई प्रोत्साहन न मिला। आशीष को भी बात बढ़ाने की कोई गरज नहीं थी।

कुछ भी हो, अब आशीष ने तय किया कि वह इस मामले में सतर्क रहेगा। अगर कोई उसे चुम्बन करते हुए देख लेता, तो उसे उतनी आपत्ति नहीं थी। वह इस बात से किसी के सामने इन्कार नहीं करना चाहता था कि शकुन्तला के साथ उसके कैसे सम्बन्ध हैं। छुपाने की क्या बात है, वह तो चाहता था कि सारी बातें इतनी खुली हो जाएँ कि सारे समाज को चुनौती देकर वह घोषणा कर सके कि शकुन्तला सिर्फ उसी की है। शकुन्तला ही इसके लिए राजी नहीं हुई और आशीष ने भी यह मंजूर कर लिया कि शकुन्तला को उसकी जितनी जरूरत है, वह उसे देगा। लेकिन यह तो जरूरत की बात है। स्त्री-पुरुष के मिलन के क्षण तो ऐसे होते हैं जो उन्हें शेष जीवन से बिल्कुल अलग कर देते हैं। उन क्षणों में तो शिक्षित-अशिक्षित में कोई अन्तर ही नहीं रह जाता। सभ्यता की सारी प्रगति सिकुड़ कर एक बिन्दुमात्र रह जाती है। उन क्षणों में तो कुछ भी लक्ष्य है। लेकिन इसका यह मतलब तो नहीं हुआ कि शेष जीवन में भी सभ्यता के बन्धन तोड़ दिये जाएँ और व्यवहार के क्षेत्र में अराजकता पैदा कर दी जाए ? इसी लिए आशीष को अपने व्यवहार पर ग्लानि हो रही थी।

उसने कॉफी हाउस की बातचीत को दो दिन बाद शकुन्तला से बताया। उसका खयाल था कि यह सुन कर शकुन्तला भी उसकी तरह गंभीर हो जाएगी; लेकिन उसे यह देखकर निराशा-सी हुई कि शकुन्तला इस पर एक बार हँसकर रह गई और फिर इधर-उधर की बातें करने लगी।

"यह भी कोई हँसने की बात है ?" आशीष ने स्वर में कुछ झुँझलाहट भर कर कहा।

"तो क्या रोने की बात है ?" शकुन्तला हँसती हुई बोली, "और रोने की बात होगी, तो वह तुम्हारे लिए होगी। तुम्हीं ने तो मेरी गर्दन पकड़ी थी, मैंने तो नहीं कहा था कि यह जंगलीपन करो। अच्छा हुआ बख्तियार साहब ने तुम्हें इस पर बुरा-भला कहा; मैं तो और खुश होती अगर तुम पर मार पड़ती। इतनी जोर से उस दिन गर्दन दबायी थी कि दो दिन तक दर्द होता रहा था।"

आशीष का जी चाहने लगा कि वह फिर शकुन्तला की गर्दन पकड़ कर जोर से हिला दे और उसके गाल पर दो चपतें लगाए, लेकिन उसने अपने को

रोक लिया। सिर्फ जबान से कहा, "हँस लो अभी। अबकी बार गर्दन दबायो, तो दबाता ही चला जाऊँगा। सारे दुःख-दर्द हमेशा के लिए खत्म हो जाएँगे।"

"फाँसी की रस्सी से लटकते हुए बड़े अच्छे लगोगे न!" शकुन्तला का जवाब था।

"अच्छा लगूं या बुरा, तुम तो देखने के लिए बैठी नहीं रहेगी तब तक।"

शकुन्तला हँसकर रह गई। आशीष ने फिर कहा, "अच्छा शकुन्तला! मान लो किसी और की हत्या करने पर मुझे फांसी हो जाए, या कोई दूसरा आदमी ही मुझे मार डाले, तो तुम क्या करोगी?"

"करूंगी तुम्हारा सर!" शकुन्तला झुँझला कर बोली, "बेकार बकवास मत किया करो।"

"बकवास की क्या बात है इसमें? क्या यह हो नहीं सकता? दुनिया में कौन-सी बात असम्भव है?"

"तुम चुप रहोगे या नहीं?" शकुन्तला लगभग रूआंसी होकर बोली, तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है क्या?"

आशीष ने कहा, "तुम बड़ी पागल मालूम होती हो। हँसी की बात में भी गम्भीर हो जाती हो।"

"तुम आदमियों के लिए जीने-मरने की बातें हँसी की बातें हो सकती हैं। औरतों के लिए नहीं होती।"

"अच्छा, नहीं करूंगा यह बात। चलो माफ करो, गुस्सा थूक दो।.... लेकिन यह खयाल इसलिए आया था कि कुछ लोग अब मुझसे बेहद जलने लगे हैं। उनका बस चले, तो मुझे कच्चा चबा जाएँ।"

"जलने लगे हैं तो मैं क्या करूं? क्यों करते हो ऐसी हरकतें जिससे किसी का दिल जलने लगे?"

मैं तो कुछ भी नहीं करता, फिर भी लोग जलने लगते हैं। इन्हीं बख्तियार को देखो। मैंने इनका क्या बिगाड़ा था? बल्कि जिस समय बात हुई थी, तो मैं उन्हें वकालत के मामले में सीरियसली सलाह ही दे रहा था। उसका जवाब उन्होंने यह दिया कि मुझे आवारा और लफंगा बनाकर रख दिया।"

"क्या गलत कहा?" शकुन्तला मुस्कुरा कर बोली, "काने को काना कहने पर उसे बुरा तो लगना स्वाभाविक है, लेकिन वह इस वास्तविकता से इन्कार तो नहीं करता कि वह काना है।"

शकुन्तला की यह छेड़ भी खली गई। आशीष के हाथ ने अब भी उठने से इन्कार कर दिया। वह सिर्फ हँस कर बोला, "तब तो मैं बेकार ही यहाँ झख मार रहा हूँ। तुम भी मुझे आवारा और लफंगा समझती हो।"

"नहीं नहीं, साहब, यह कैसे हो सकता है? कहिए तो लिख कर दे दूँ "मैं यह प्रमाणित करते हुए हर्ष का अनुभव करती हूँ कि श्री श्री १०८ श्री आशीष मुखर्जी इस संसार के सबसे सज्जन व्यक्ति हैं। उनके चेहरे से शराफत हमेशा टप टप करके चूती रहती है। वे किसी पर-स्त्री पर बुरी नजर नहीं डालते, सभी को माँ-बहन समझते हैं। यहाँ तक कि'....अरे अरे, छोड़ो! यह क्या बदतमीजी है!"

लेकिन आशीष ने उसे उछल कर पकड़ा, तो उसी समय छोड़ा जब उसके गाल पर फिर दाँतों के निशान बन गए। शकुन्तला दूर जाकर बोली, "एकदम जंगली आदमी हो। नौकर को आवाज देनी पड़ेगी।"

"पहले मेरा सर्टीफिकेट तो दे दो, फिर नौकर को आवाज देना।" आशीष हँसते हुए बोला।

"आप भाग जाइए," शकुन्तला नाराज होकर बोली, "बेशर्म कहीं के! गेट आउट ऐटवंस।"

"कहाँ से? इस कमरे ही से निकल जाऊं या दुनिया ही छोड़ दूँ?" आशीष अभी तक हँस रहा था।

"तुम्हें हो क्या गया है, आशीष?" शकुन्तला परेशान होकर बोली, "क्यों ऐसी बातें करते जा रहे हो?"

"कुछ भी तो नहीं हुआ है मुझे। तुम क्यों....अहाहा।" उसने खिड़की के बाहर देखते हुए कहा, "हुजूर के बुलडॉग साहब दुम हिलाते हुए तशरीफ ला रहे हैं। उनके लिए छिछड़े तैयार रखिए।"

शकुन्तला ने भी घूमकर खिड़की के बाहर देखा। श्री सर्वेश कुमार माथुर लपकते हुए चले आ रहे थे। वे तेजी से चलते थे तो उनका बायाँ हाथ उनके शरीर के पीछे आवश्यकता से अधिक चला जाता था और इस समय चूंकि उनका दाहिना पहलू ही ज्यादा दिखायी दे रहा था, इसलिए बाएँ हाथ के हिलाने के कारण आशीष की दुम हिलने की फबती चिपक कर बैठ गई। शकुन्तला बेइख्तियार हँस पड़ी। बोली, "बड़े शैतान हो!....देखो माथुर साहब को परेशान न करना। यह अच्छी बात नहीं है।"

इस 'चेतावनी' का ठोस नतीजा यह निकला कि आशीष ने पन्द्रह मिनट तक

माथुर साहब की वह आवभगत की कि माथुर साहब भी बर्दाश्त न कर सके। बोले, "आई डोंट वांट टु टॉक टु यू!"

शकुन्तला को हँसते हुए हस्तक्षेप करना पड़ा, "माथुर साहब! आप इनकी बातों का खयाल क्यों करते हैं? यह वकीलों की सारी कौम ही बदतमीज होती है। बिल्कुल फक्कड़ होते हैं ये लोग।" यही नहीं, उसने आशीष को बाँह पकड़ कर सोफे से उठा दिया और पीठ पर धक्का लगा कर कमरे के बाहर कर दरवाजा बन्द कर लिया। आशीष हँसता हुआ अपने घर की ओर चल दिया।

शकुन्तला के घर से निकलकर आशीष को बहुत दूर तक कोई रिक्शा न मिला। वैसे प्रयाग स्टेशन के आस-पास कोई-न-कोई रिक्शे वाला सवारी की तलाश में घूमता मिल ही जाता था, लेकिन आज न जाने सारे रिक्शे वाले कहाँ गायब हो गए थे। आशीष ने सोचा कि शायद यूनिवर्सिटी की तरफ कोई रिक्शा मिल जाए, लेकिन उसकी यह आशा भी फलवती न हुई। अब कोई और सूरत इसके अलावा न थी कि चार फर्लांग और चलकर बाजार में कोई और रिक्शा तलाश करें। फिर भी उसे कोई परेशानी न थी। उसका मूड इतना अच्छा हो गया था कि उसका जी चाहता था कि सड़क ही पर गाना शुरू कर दे। उसने यह तो न किया, हाँ उसकी चाल में और मस्ती जरूर आ गई और वह गुन-गुनाने लगा।

एक पान की दुकान पर नजर डाली, तो आशीष हँस पड़ा। चार बरस पहले डिस्पोजल्स में खरीदी हुई पतलून के ऊपर एक ऐसा कपड़ा पहने (जिसे मजबूरी में ओवरकोट कहना ही पड़ेगा) मिस्टर वॉल्टर कुछ खरीददारी फरमा रहे थे। आशीष उसे एक बार घर से निकाल चुका था और वॉल्टर भी इतना पक्का निकला कि उसने आशीष के यहाँ झांकने का नाम नहीं लिया। आशीष का गुस्सा तो बहुत दिन पहले ही उतर गया था (इससे ज्यादा बेतुकी बात क्या हो सकती थी कि वॉल्टर पर इसलिए नाराज हुआ जाए कि वह बकता फिरता है; बकना ही तो उसके जीवन का उद्देश्य था)। आशीष को यह चिन्ता भी होने लगी थी कि वॉल्टर का ऊपर का खर्च कैसे चलता होगा। खाना-पीना तो बहन के घर से मिल ही जाता था (यह दूसरी बात है कि रोटियों के साथ वह बहनोई की गालियाँ भी खाता जाता था), लेकिन चाय, पान, सिगरेट भी तो जरूरी चीजें होती हैं दुनिया में, और वॉल्टर के लिए तो इनसे भी जरूरी चीज थी ठर्रा—पनवाड़ी तो उधार भी देता है, ठेकेदार तो नकद और पेशगी दाम धरवाता है।

आशीष जब तक पहुँचा, तब तक वॉल्टर पनवाड़ी की दुकान से आगे बढ़

गया था। आशीष उसके पीछे लपका और आवाज दी, "अजी जनाब वॉल्टर साहब ! मैंने कहा आदाब अर्ज है !"

वॉल्टर ने पहले ही आशीष को देख लिया था और उसके आह्वान की उपेक्षा करके बढ़ जाना चाहता था। लेकिन आशीष ने फिर आवाज लगायी, "अबे ओ वॉल्टर के बच्चे ! बहरा है क्या ?"

वॉल्टर रुक गया। आशीष पास आया तो रुखे स्वर में बोला, "कहो, क्या बात है ?"

"बात-वात कुछ नहीं है। दिखाई क्यों नहीं दिए अभी तक ? कहाँ घूमते रहते हो ?"

वॉल्टर चुप रहा। आशीष ने कहा, "अच्छा अब चलो मेरे साथ। घर पर ही बात होगी।"

"यहीं क्यों नहीं ?" वाल्टर का रोष अभी कायम था।

लेकिन आशोष इस रोष के लिए तैयार था। उसनें सामने जाते हुए रिक्शे को आवाज दी और वॉल्टर के सारे प्रतिरोधों की उपेक्षा करके उसे अपने साथ घसीट कर बिठा लिया।

घर पहुँचकर आशीष ने कपड़े बदले। धोती-कुर्ते के ऊपर लोई डाल कर वह ड्राइंगरूम में आ गया। दिसम्बर के अन्तिम दिनों में शाम ही से काफी सर्दी पड़ने लगती है। बिजली का हीटर खोल दिया गया और घर में चाय बनाने के लिए आर्डर दे दिया गया। वॉल्टर का रोष न जाने कहाँ गायब हो गया था। लेकिन, उसकी समझ में न आता था कि आशीष से क्या कहे।

आशीष ने कहा, "अभी तक चुप्पी नहीं टूटी ? मार खाओगे तभी बोलोगे क्या ?"

"मेरी समझ में नहीं आता मैं क्या बोलूँ। तुम्हीं ने उस दिन बिला वजह-बगैर कुछ बात किये—मुझे घर से निकाल दिया, तुम्हीं आज घसीट कर ले आए हो। तुम्हीं बात करो, जो करना चाहो। मुझे जब न निकाले जाने की वजह मालूम है न बुलाये जाने की, तो मैं क्या कहूँ।"

"खैरियत समझो कि मैंने उस दिन तुम्हें घर ही से निकाला था," आशीष हँसते हुए बोला।

"यह भी हो सकता था कि उस दिन तुम पर बहुत मार पड़ती। तुमने हरकत ही ऐसी की थी।"

"क्या किया था मैंने ? कुछ मालूम तो हो।" वॉल्टर के स्वर में अब तक रुखाई थी !

"वह सब मालूम हो जाएगा। पहले यह बताओ कि तुमने पी कब से नहीं है ?" आशीष बोला।

"मजाक न करो, आशीष। तुम्हें जो कुछ और कहना-सुनना है, कह लो और फिर जाने दो।"

लेकिन वॉल्टर को दो मिनट ही में मालूम हो गया कि आशीष मजाक नहीं कर रहा है। वह उसे अपने कमरे में ले गया और दरवाजा बन्द करके ह्विस्की की बोतल खोल दी। शराब की महक पाते ही वॉल्टर का मिजाज बिल्कुल ठीक हो गया। आशीष ने खुद न पी। वॉल्टर ने भी एक बार तो कहा कि मैं अकेले पीना पसन्द नहीं करता। लेकिन उसके सामाजिक संस्कार इतने गहरे न थे कि साथी न होने की वजह से शराब पीने ही से इनकार कर दे। फलतः वह पीने लगा।

दो-तीन घूँट लेने के थोड़ी देर बाद जब सुरूर चढ़ा तो वॉल्टर बोला, "अब बताओ आशीष !"

"तुमने जूलिया से मेरे और शकुन्तला के बारे में क्या कहा था ?" आशीष ने पूछा।

"मैंने ? मैंने क्या कहा था ? कुछ भी तो नहीं कहा था। तुम्हारा मतलब क्या है आखिर ?"

"कुछ भी नहीं कहा था ? शकुन्तला का कोई जिक्र नहीं किया था जूलिया के सामने ?"

"जिक्र क्यों नहीं किया था ? कई बार किया था। लेकिन कोई बुरी बात तो नहीं कही थी मैंनें !"

मैं यह कहाँ कह रहा हूँ कि तुमने कोई बुरी बात की ? यह पूछता हूँ कि तुमने क्या कहा ? जो कहा हो वह बताओ।"

वॉल्टर ने अब दूसरा पेग भी पीना शुरू कर दिया था। उसके स्वर में बहक आने लगी थी। बोला, "अरे भाई······कहा था वही जो सच्ची बात थी······ वॉल्टर को कभी झूठ बोलते भी सुना है ?······कहना क्या था, मुझे सिवा इसके कि तुम शकुन्तला के पीछे मजनूँ बने घूमते हो।"

"और ?" आशीष मुस्कुराकर बोला, "शकुन्तला के बारे में क्या कहा था कि उसका क्या······?"

"उसका रवैया मैं क्या जानूँ ? जो बात नहीं जानता उसके बारे में क्या कहूँगा ?······लेकिन तुम्हारा इस जि·······जि······जिरह से मतलब क्या है····हिक·······मेरा मतलब है·······हिक·······।"

"अब बस करो वॉल्टर।" आशीष ने कहा, "बहुत हिचकियाँ आने लगीं हैं। अब उल्टी कर दोगे।"

"अजी नहीं·······हिक·······तुम मुझे समझते क्या हो·······हिक·······एक बोतल तो यूँ ही·······हिक······· हिक·······।"

लेकिन, वाल्टर के सारे प्रतिरोध के बावजूद आशीष ने बोतल उठाकर आलमारी में बन्द कर दी और ताला लगा दिया। वॉल्टर को उसने आदेश दिया कि बाहर बाग से लगे हुए नल से मुँह धो आए। वॉल्टर को अब उसने फिर ड्राइंग रूम में बिठा दिया और पीने के लिए सिगरेट दी।

वॉल्टर अब बिल्कुल वॉल्टर हो गया था। उसने आलाप भरना शुरू किया, तो आशीष ने डाँटा, "अबे ओ तानसेन के भतीजे ! सीधे आदमी की तरह बैठ, गधे की तरह रेंगता क्यों है ?"

"तुम कुछ बोलते ही नहीं हो तो मजबूरी में गाना ही पड़ता है और आशीष मैं तुम्हारी बात के खिलाफ सख्त प्रोटेस्ट करता हूँ। सारे इलाहाबाद में वॉल्टर मैसी से बढ़कर कोई गाने वाला नहीं है।"

"अच्छा साहब ! मान लिया कि सारी दुनिया में आप से बढ़कर गाने वाला नहीं है। लेकिन इस वक्त यह इनायत न कीजिए। चुप-चाप कान खोलकर मेरी बात सुनिए, वरना·······।"

"अरे भई, तो कुछ कहोगे भी ?" वॉल्टर ने कहा और उसने फिर दूसरी सिगरेट जला ली।

"कहना मुझे यह है वॉल्टर, कि तुम जूलिया से शादी कर लो और भले आदमी की तरह रहो।"

"क्या ?·······पी मैंने है और चढ़ी तुम्हें है ?" वॉल्टर ने ठहाका लगाते हुए कहा।

"नहीं वॉल्टर, हँसने की कोई बात नहीं है। यह तुम मानोगे ही कि जूलिया से अच्छी लड़की तुम्हें कभी नहीं मिल सकती·······इस दुनिया में उससे अच्छी लड़कियाँ कम ही मिलेंगी।"

"इसमें किस कमबख्त को शक है ?·······और आशीष······मैं तुमसे छुपाऊँगा नहीं······मैं जूलिया से बहुत मुहब्बत करता हूँ·······आज से नहीं, बरसों

से करता हूँ······लेकिन खाली मुहब्बत से क्या होता है······बेजर इश्क यानी महजटेंटें······जूलिया मुझे क्यों मुँह लगाएगी ?" वॉल्टर रोने लगा।

आशीष हँसने लगा। बोला, "वॉल्टर ! तुम गधे की तरह सिर्फ रेंगते ही नहीं हो, दिमाग भी गधे की तरह ही रखते हो। मेरे ड्राइंग रूम में बैठकर यह रोने की ऐक्टिंग न करो। मैंने जूलिया से बात की है। साफ-साफ बात नहीं की उसने, लेकिन मुझे मालूम हो गया कि वह भी तुम्हें बहुत पसन्द करती है।"

"लेकिन फिलिप·······।"

"फिलिप का महज ढाँचा कब्र में रह गया होगा, या फिर उसकी याद भर बाकी है। जूलिया की रगों में खून दौड़ता है, उसे किसी गर्म खून का सहारा चाहिए। सिर्फ किसी की याद ही जिन्दगी की जरूरतें पूरी नहीं कर सकती। हाँ, यह जरूर है·······तुम्हें बता देना जरूरी है; क्योंकि तुम गधे तो हो ही—कि न कभी फिलिप की कोई बुराई किसी तरह करना, न जूलिया से नर्सिंग का पेशा छोड़ने को कहना।"

"फिलिप की बात छोड़ो। तुम्हें खुद तो बुरा न मालूम होगा ?" वॉल्टर ने हँसकर कहा।

गधे हो तुम······मुझे बुरा लगेगा ? तुम्हें तो बुरा लगा नहीं, उसे मेरे पास लाने में, मुझे बुरा लगेगा ?"

"मेरी बात दूसरी है आशीष·······वॉल्टर ने जिन्दगी में शुरू ही से चरके सहे हैं और चरके सहने का आदी है। मैं जूलिया से मुहब्बत जरूर करता था, लेकिन अपने को उसके लायक नहीं समझता था।"

"नालायक हो न ? इसीलिए तो। खैर, अब यह नालायकी बहुत हो ली। अब मेरी बात मान लो।"

"लेकिन आशीष, कैसी बातें कर रहे हो तुम ? मैं बेकार निठल्ला आदमी किस बूते पर······।"

"वह भी मैंने सोच लिया है, वॉल्टर। तुम बेकार महज इसलिए हो कि तुमने अपने को बेकार रखना चाहा। वैसे पढ़े-लिखे हो·······आठवीं तो पास ही हो। करना चाहते तो क्या कुछ नहीं कर सकते थे ?"

"थे की बात छोड़ो। अब क्या हो सकता है ? अब तो नौकरी के लिए भी उम्र निकल गई।"

"नौकरी के अलावा और कुछ भी हो सकता है दुनिया में। शर्त यही है कि तुम सीरियस बनो।"

"मान ली यह शर्त। लेकिन यह बताओ कि मैं क्या करूँ ?" वॉल्टर ने उत्सुकता से कहा।

"करो यह कि कल से ही हिन्दी लिखना शुरू करो। मेरे साथ इतने दिन रहते-रहते तुम्हें अदालत की काफी बातें मालूम हो गई हैं। मेरा काम बढ़ गया है और मुझे एक और मुन्शी की जरूरत है, जो होशियार भी हो और रिलाइबल भी। तुम यह काम अच्छी तरह कर सकते हो। कल से दिन में मेरे बस्ते पर बैठा करो। मुन्शी हरदयाल तुम्हें सारा काम सिखा देंगे। उनसे लड़ाई न करना और शाम को हिन्दी पढ़ा करना। अदालत का सारा काम अब हिन्दी में होने लगा है। जब हिन्दी सीख जाओ, तो हाई स्कूल की परीक्षा की तैयारी करो। सन् १९५२ के इम्तहान में—अगर मेहनत कर ली—तो हाई स्कूल भी पास कर लोगे। इसके बाद टाइप सीख लिया, तो तुम्हें हाईकोर्ट में ले जाऊँगा। खैर, यह तो बाद की बात है। अभी तो कल ही से जिला अदालत ही में आओ। तीस रुपए महीना बँधी तनख्वाह मिलेगी, मुअक्किलों से तहरीर वगैरह अलग मिलेगी। जो मुकदमें तुम खुद लाओगे; उनमें कमीशन मिलेगा। कुछ नहीं तो अस्सी-नब्बे का डौल अभी से हो जाएगा।"

वॉल्टर आँखें फाड़कर आशीष को देखने लगा। क्या सचमुच उसकी किस्मत ने पलटा खाया है? कुछ देर बाद बोला, "तुम तो मुझे जानते हो आशीष। तुम्हें यकीन है कि मैं लग कर काम कर सकूँगा ?"

आशीष ने हँसकर कहा, "और जूलिया से शादी करने को क्यों कह रहा हूँ ? वह तो तुम्हें ठीक कर देगी ?"

● ● ●

२८

आशीष ने इसके बाद भी वॉल्टर को नहीं छोड़ा। बराबर उसके पीछे पड़ा रहा। बल्कि वॉल्टर भागने लगा, तो उसे घेर कर जा पकड़ा। उसके घर जाकर उसकी बहन और बहनोई को अपना प्रस्ताव बताया। बहनोई ने तो कहा कि वह आवारा कुछ नहीं कर सकता, उसके साथ आप का काम ही ठप

हो जाएगा। लेकिन बहन अधिक समझदार थी। वह एक स्थानीय कन्या विद्यालय में अध्यापिका थी : घर की आमदनी कुछ अधिक न थी, पति भी किसी फर्म में क्लर्क ही थे। तीन बच्चे भी थे। कोरियाई युद्ध के फलस्वरूप मँहगाई फिर बढ़ने लगी थी। वॉल्टर की बहन को पिछले महायुद्ध की याद थी, जब कि अचानक मँहगाई बढ़ जाने की वजह से यह समस्या आ गई थी कि दोनों समय की रोटियाँ कैसे चलेंगी। वह तो कहिए कि उसी समय उसे नौकरी मिल गई और तीन प्राणियों का—खुद अपना, पति का और भाई का—पेट भरने की जुगत हो गई। वॉल्टर की बहन लिजी वैसे तो बड़े उग्र स्वभाव की महिला थी, लेकिन अपने बड़े भाई—वॉल्टर उनसे दो साल बड़ा था—की मुहब्बत को अपने दिल से न निकाल सकीं। उनके पिता की यही दो संतानें थीं। माँ का देहांत तभी हो गया था, जब दोनों छोटे थे, पिता ने उसके बाद शादी नहीं की या यूँ समझिए कि हुई ही नहीं, क्योंकि उनकी अवस्था भी अधिक हो गई थी और आमदनी भी माशा अल्लाह ही थी—थे तो बिशप साहब के रसोइए ही। बिशप साहब ने दोनों बच्चों को सँभालने की कोशिश की, लेकिन उन्हें सफलता केवल लिजी ही के साथ मिली और फिर आ गया महायुद्ध का जमाना। वॉल्टर के पिता अधिक वेतन के लालच में अमरीकी फौज के मेस में नौकरी कर ली, बल्कि लाम पर भी चले गए और वहाँ से उनका कोई समाचार न मिला। न मालूम मर गए या बर्मा में ही कहीं घर बसा लिया।

संयोग से उसी समय बिशप साहब की तरक्की हो गई और वे अमरीका वापस बुला लिए गए। जाने से पहले उन्होंने लिजी की शादी एक भले घर के लड़के चार्ल्स घोष से करवा दी और वॉल्टर को अपने साथ अमरीका ले जाना चाहा। लेकिन लिजी रो पड़ी। वॉल्टर लाख निकम्मा सही, उसके माँ-बाप की अकेली यादगार वही तो था। फलतः वॉल्टर साहब जूतियाँ चटखाने के लिए यहीं रह गए।

युद्ध-काल में लिजी को नौकरी भी मिल गई और घर का काम मजे में चलने लगा। लेकिन, साथ ही माल्थस का जनसंख्या सम्बंधी अर्थशास्त्रीय सिद्धांत भी उसके मामले में सच्चा साबित हुआ। इस सिद्धांत के अनुसार संसार में खाद्य सामग्री के उत्पादन की वृद्धि अंकगणितीय प्रगति (एक, दो, तीन, चार·····) के साथ होती है और जनसंख्या की वृद्धि ज्यामितिक प्रगति (एक, दो, चार, आठ·······) के साथ होती है। चार्ल्स और लिजी के वेतनों में वार्षिक वृद्धि कुल मिला कर भी दस रुपए से अधिक न होती थी और बच्चे हर तीसरे साल आ ही जाते थे। नतीजा यह हुआ कि चर्ल्स के पास एक ही गर्म सूट रह गया था, वह भी पाँच वर्ष पुराना, और लिजी को भी पेट काट कर ही विद्यालय

की अन्य अध्यापिकाओं के सामने लाज रखनी पड़ती थी। ऐसी हालत में वॉल्टर के कपड़े लत्तों की क्या हालत होगी, यह बताने की जरूरत नहीं है।

इसीलिए जब आशीष ने उससे आकर कहा कि मैं वॉल्टर को ढर्रे पर लगाना चाहता हूँ, क्योंकि वह मेरा पुराना दोस्त है, तो लिजी ने उससे एक मिनट के लिए माफी माँगी और अंदर के कमरे में आकर पति के हाथ में कुछ पैसे पकड़ाए और उसे दो अंडे लाने के लिए ठेल कर बाहर भेज दिया। चार्ल्स बेचारे को खुद तो यह तर माल चखने को न मिला, लेकिन बच्चों को दो-तीन महीने बाद ऑमलेट का एक-एक टुकड़ा मिला था और उन्होंने अपनी गोष्ठी में एक मत से निश्चित किया था कि अंकिल मुखर्जी का घर में आना बहुत अच्छा होता है, घर अंडे में आते हैं।

यही नहीं लिजी ने आशीष को दो दिन बाद क्रिसमस पर शाम के खाने की भी दावत दे डाली। चार्ल्स की जान सूखने लगी। इसका मतलब था कि कम से कम एक मुर्गी खरीदनी पड़ेगी, वैसे तो पावभर गोश्त से काम चल जाता।

आशीष ने हैरानी से पूछा, "लेकिन मिसेज घोष ! आप क्या कर रही हैं? क्रिसमस के दिन तो मैंने सुना है सिर्फ फैमिली गैदरिंग हुआ करती हैं। फ्रैंड्स को तो इसके बाद इनवाइट किया जाता है?"

"हम तो आपको अपने घर ही का आदमी समझते हैं।" लिजी ने हँसते हुए कहा।

आशीष ने लिजी की तरफ देखा। यह वॉल्टर से दो बरस छोटी है, इसका मतलब यह है कि छब्बीस-सत्ताईस से ज्यादा उम्र नहीं होगी इसकी। शकुन्तला की भी तो लगभग यही अवस्था है, लेकिन कितना फर्क है दोनों में। रंग रूप में तो उन्नीस-बीस ही का फर्क होगा, लेकिन वैसे कितना फर्क है दोनों में। वह कहीं जाती है तो मालूम होता है गर्मियों की दोपहर में अचानक काले-काले बादल छा गए और ठण्डी-ठण्डी हवा चलने लगी। इसकी तरफ देखो तो मालूम होता है कि जिन्दगी-मौत के थपेड़े खाती हुई गिरती-पड़ती चली जा रही है। चेहरे पर झुर्रियाँ दिखायी देने लगी हैं, गालों पर अस्वस्थता सूचक धब्बे, आँखों के नीचे गड्ढे। गौर से देखा जाए तो दो-चार सफेद बाल भी दिखाई दे जाते थे।

आशीष की समझ में न आया कि क्रिसमस का निमन्त्रण स्वीकार करे या नहीं। यूँ तो कोई बात नहीं, दोस्त ही का घर है, जहाँ से आग्रहपूर्वक निमन्त्रण मिल रहा है। लेकिन, यह टूटा-सा पलंग, रंग उड़े हुए से कैलेण्डर, सूखे-साखे

बच्चे, कच्चा आँगन, गन्दा रसोई घर—क्या यह सब किसी अच्छे-खासे हँसते-बोलते इंसान को अचानक ही कब्र की अँधेरी सीलन की याद दिलाने के लिए काफी नहीं हैं? यहाँ इंसान रह ही कैसे सकते हैं? यहाँ तो सिर्फ भूत-प्रेत हो रह सकते हैं। लेकिन नहीं, वॉल्टर भी तो यहीं रहता है, वही वॉल्टर जिसके चेहरे पर कभी कोई फिक्र नहीं दिखायी देती। तो क्या जिन्दगी कब्र ही में फलती-फूलती है?

वह बोला, कोई बात नहीं, मैं जरूर आऊँगा। थैंक यू वैरी मच फॉर द काइंड इन्वीटेशन!........हाँ, वॉल्टर के बारे में बात कर ली जाए। खैरियत है कि हजरत इस वक्त यहाँ नहीं हैं, वरना उनके सामने तो सेंट टॉमस को भी अपनी गम्भीरता कायम रखने के लिए खामोश ही हो जाना पड़ता।

लिजी हँस पड़ी। लेकिन उसने कहा, "मि० मुखर्जी! उसके लिए तो आपने सब कुछ सोच ही लिया है।"

"सोच तो लिया है, लेकिन कुछ करना भी तो है। बाहर से मैं सँभाल लूँगा लेकिन अन्दर से भी ठेलनेवाला भी तो कोई चाहिए। यह तो आप मानेंगी ही कि आदमी के बल सिर्फ औरत ही निकाल सकती है। हः हः हः।"

"बल निकाल सकती है?" चार्ल्स बोला, "अजी साहब! मार-मारकर हकीम बना देती है। आपको खुद तजुर्बा नहीं है, फिर भी आपका ऑब्जर्वेशन गजब का है। देखिए, मेरी हालत मैडम ने क्या कर रखी है।"

"चुप क्यों नहीं बैठते, चार्ल्स?" लिजी झुंझलाकर बोली, "सीरियस बातों में भी ठिठोली सूझती है। हाँ मि० मुखर्जी! मैं आपकी बात अच्छी तरह नहीं समझी। किस औरत से आपका मतलब है?"

आशीष ने मतलब बताया, तो लिजी को बात बहुत पसन्द न आई। बोली, जूलिया से मैं मिली हूँ।....वैसे बहुत अच्छी लड़की है, लेकिन....वह नर्सिंग छोड़ने को तैयार नहीं है।"

"तो क्या हुआ, मिसेज घोष?" आशीष ने कहा, "आपलोग तो ईसाई हैं, आपको तो इस पेशे से कोई नफरत नहीं होनी चाहिए। जहाँ तक मैं जानता हूँ, क्राइस्ट भी यही करते थे।"

"वह तो ठीक है साहब। लेकिन........मेरा मतलब है कि सोशली...... देखिए, साफ ही कह दूँ। ईसाइयों की बात ठीक है, लेकिन मेरी सोसाइटी दूसरी ही है, मेरे साथ की सभी टिचर्स हिन्दू हैं और मुझे उन्हीं का साथ

पसन्द है·······यूँ तो कोई खास बात नहीं है, कोई बुरी बात नहीं है······ लेकिन·······।''

''लेकिन-वेकिन कुछ नहीं, मिसेज घोष!'' आशीष बोला, आपने मुझे अपने घर का आदमी कहा है। उसी हैसियत से मैं जोर देकर कहता हूँ कि जूलिया के बगैर वॉल्टर का सँभलना नामुमकिन है। फिर आप जैसा चाहें।''

मरता क्या न करता। लिजी को डर था कि आशीष बिगड़ गया तो फिर वॉल्टर के सामने मुसीबत ही है। फलतः वह जूलिया के पास जाकर 'प्रोपोज' करने को तैयार हो गई। थोड़ी-सी खींचतान, थोड़े से नाज-नखरे के बाद जूलिया ने मंजूर कर लिया। महीने भर बाद कटरा चर्च में वाल्टर और जूलिया की शादी हो गई। जूलिया ने तो अपनी बचत का इस मौके पर इस्तेमाल किया ही, आशीष को भी सौ-सवा सौ रुपए अपने पास से खर्च करनें पड़े; क्योंकि घोष साहब ने आशीष के रहते हुए खुद कुछ खर्च करना फिजूलखर्ची समझी और मियाँ वाल्टर तो फटकचन्द गिरधारी थे ही।

इस सारे अर्से में आशीष चैथम लाइंस न जा सका। वाल्टर की शादी ने तो उसका अधिक समय नहीं लिया, लेकिन अपने पेशे में वह इधर अधिक व्यस्त रहा। अक्तूबर और नवम्बर के महीनों में नाटक के कारण वह इधर अपेक्षित ध्यान न लगा सका था। इसकी सारी कसर उसे इन्हीं दिनों निकालनी थी। दिसम्बर का सारा महीना उसे ऐडवोकेसी में दाखिला लेने में लगाना पड़ा। फिर जनवरी भर उसे हाईकोर्ट के वकीलों और जजों से जान-पहचान के वकीलों को मुकदमों की अपीलों के सिलसिले में पटाने और इसके बदले में उनके मुकदमों में सलाह देने आदि में बीता। नया संविधान लागू हुए लगभग सालभर बीत चुका था और हाईकोर्ट की ओरिजिनल साइड में 'रिट पिटीशनों' की धूम थी। संविधान की धारा २२६ का लाभ हर बर्खास्त राज्य कर्मचारी और परीक्षा से निकाला हुआ हरएक विद्यार्थी उठाना चाहता था और ऐडवोकेट लोगों के लिए खासतौर से नए ऐडवोकेटों के लिए—इस क्षेत्र में आमदनी की काफी गुंजाइश मालूम होती थी। चाहे बाद में यह बाढ़ खत्म ही होनेवाली हो, फिर भी इसे छोड़ा तो नहीं जा सकता था। इसीलिए आशीष अपना सारा बचा हुआ समय वैधानिक कानून के अध्ययन ही में लगाता था। बार लाइब्रेरी में इस विषय पर होने वाली आपसी बहसों मे वह खूब हिस्सा लेता था और पुराने ऐडवोकेट इस मामलों में उसके अध्ययन का लोहा मानने लगे थे। बात यह थी कि अभी तक इस क्षेत्र में मुकदमे ही कम होते थ। पुराने संविधान में प्रशासन के हाथ में लगभग असीमित अधिकार थे। उस समय सरकारी आदेशों को अदालती

चुनौती देना लगभग असंभव था लेकिन अब संविधान ही ऐसा बन गया था कि सरकारी आदेशों को कौन कहे, बिलों और कानूनों तक को अदालत में चुनौती दी जा सकती थी। इस मामले में पुराने वकीलों का तजुर्बा कुछ ज्यादा काम नहीं देता था और इस क्षेत्र में नए-पुराने वकीलों में कोई खास फर्क न था क्योंकि दोनों को नये सिरे ही से अध्ययन करना था। इसीलिए आशीष के भाग्य से उसे ऐडवोकेसी में दाखिल होते ही ऐसा क्षेत्र मिल गया था जिसमें वह तुरन्त ही चमक सकता था और इसी की चेष्टा में वह इन दिनों प्राणपण से लगा हुआ था।

यह बात नहीं थी कि उसे इस अरसे में शकुन्तला की याद न आई हो। आई थी, और कई बार आई थी। लेकिन, आधी रात को सोते समय ही थी। कई बार ऐसा हुआ कि उसने सोचा कि शकुन्तला से शाम को जरूर मिलने जाऊँगा, लेकिन हमेशा यह होता कि दूसरे दिन या तो उसके पिता के कोई मित्र वकील उसे अपने यहाँ चाय पर बुला लेते या फिर कोई जज साहब ही उससे इतने कृपा पूर्वक बातें करने लगते कि उसे शाम को उनके यहाँ हाजिरी देना जरूरी हो जाता। और कुछ नहीं तो मुंशी हरदयाल ही किसी नए मुवक्किल को फँसाए हुए चले आते और चूँकि नए वकालत का मामला था, इसलिए आशीष किसी मुवक्किल से यह नहीं कह पाता कि उसके मामले में कोई दम नहीं है और हर बेतुकी अपील पर उसे उसी समय सर मार कर (मुवक्किल को प्रभावित करने के लिए) फैसले में से अपील के आधार निकालने पड़ते थे।

लेकिन जनवरी के आखिर में एक दिन दोपहर के समय वह शकुन्तला के घर पहुँच गया। हुआ यह था कि उसने रात को सपने में देखा था कि शकुन्तला को टी॰ बी॰ हो गया है। सपना तो सपना ही था। उस समय आशीष जागकर फिर सो गया, लेकिन सुबह जागने के बाद वह उसका सपने में दिखाई देने वाला सूखा चेहरा और उसके लकड़ी जैसे हाथ पाँव न भुला सका। उसका जी उस दिन न ऑल इंडिया रिपोर्टर की नजीरों में लगा, न बार लाइब्रेरी में संविधान की धारा २२६ के प्रभाव क्षेत्र के सम्बन्ध में होने वाली बहसों में। रह-रह कर उसे सपने में दिखाई देने वाली शकुन्तला की आँखें—जिनमें मृत्युच्छाया साफ दिखाई दे रही थी—याद आ जाती। शाम का समय उसे एक वकील साहब को देना था, जिनके यहाँ मुंडन, जनेऊ जैसा कोई संस्कार होना था (वस्तुतः क्या संस्कार था, यह आशीष को याद नहीं रहा था)। फलतः वह ग्यारह बजे ही हाईकोर्ट से चल दिया। मुंशी हरदयाल समझे कि वकील साहब किसी काम से जिला अदालत को गए हैं। उन्हें ताज्जुब तो था कि ऐसा क्या काम हो सकता है जिला अदालत में, जो उन्हें नहीं मालूम। फिर भी उन्होंने इस बात में ज्यादा

सर नहीं मारा। सोचा होगा कोई काम। और फिर छोटी-मोटी जरूरतें पूरी करने के लिए तो जिला अदालत के बस्ते पर वॉल्टर बैठा ही था।

आशीष पहुँचा, तो गोयल साहब ने ड्राइंगरूम में उसका स्वागत किया। आशीष को ताज्जुब था कि इस समय शकुन्तला कहाँ गई। और वह गई तो गई, इस समय गोयल साहब घर पर क्या कर रहे हैं? इन्हें तो अदालत में होना चाहिए। यह तो ठीक समय पर अपनी सीट पर पहुँच जाने के मामले में इतने बदनाम हैं कि पेशकार हमेशा इन्हें कोसा करता है; क्योंकि इनके जल्दी आ जाने की वजह से पेशकार को मुवक्किलों से अपना 'हक' हासिल करने का मौका नहीं मिल पाता और उसे चोरी छुपे जो कुछ मिल जाए, उसी पर संतोष करना पड़ता है। और आजकल के मुवक्किल तो आप जानते ही हैं कितने नादहिन्दे होते हैं, जब तक गर्दन पकड़ कर वसूल न करो, कुछ देना ही नहीं चाहते। खैर, आशीष को पेशकार की तो कोई चिन्ता नहीं थी, यह ताज्जुब जरूर था कि इस समय गोयल साहब घर में क्या कर रहे हैं।

गोयल साहब ने आशीष की शंका का शीघ्र ही समाधान कर दिया। बताया कि उनकी तबियत खराब थी, इसलिए उन्होंने तीन दिन की छुट्टी ले रखी थी। आज तबियत ठीक है, लेकिन फिर भी गोयल साहब ने एक दिन की छुट्टी कैंसिल कराने के बजाय आराम करना ही ठीक समझा।

"अरे, मुझे तो मालूम ही नहीं था," आशीष ने कहा, आई एम वैरी सॉरी। आपने भी कोई इत्तिला नहीं दी, वरना परसों ही देखने आता। क्या तबियत खराब थी आपकी?"

गोयल साहब हँसकर बोले, आप अब बड़े आदमी हो गए हैं। काहे को आते?"

"देखिए गोयल साहब, ऐसी बातें न कीजिए। आप जानते हैं कि आपके सामने न पहले मैं छोटा था, न अब बड़ा हूँ। और फिर," आशीष हँसा, "मैं बड़ा आदमी कब से हो गया। आप बहरहाल हाकिम हैं, आपकी अदालत में जाऊँगा तो अब भी आपको 'हुजूर' ही कहूँगा।"

"अच्छा? मेरी अदालत में आओगे तुम? तुम, और मेरी अदालत में आओगे?" गोयल साहब हँसने लगे, "जनाब साल भर से ज्यादा हो गया कि मेरी अदालत ने आपकी सूरत ही नहीं देखी है। तुम मेरे सामने आज से नहीं, हमेशा से बड़े आदमी थे।" कहते हुए गोयल साहब ने सिगरेट जलायी।

शिष्टता का तकाजा था कि आशीष इस दुखद प्रसंग को न उठाता कि उसने क्यों मुंसिफ वेस्ट की अदालत के मुकदमे लेने छोड़ दिए। फिर तब से अब तक

गंगा-जमुना में पानी बहुत वह गया था। बात को टालना ही ठीक था। उसने हँसकर कहा, "अच्छा आप ही जीते। शकुन्तला जी कहाँ हैं?"

"हॉस्पिटल गई हैं।" गोयल साहब ने सोफे पर फैलकर धुएँ का गुब्बारा छोड़ते हुए कहा।

आशीष के सामने रात का देखा हुआ सपना तेजी से घूम गया। घवड़ा कर बोला, "क्या हुआ उन्हें?"

"मैं क्या जानूँ क्या हुआ?" गोयल साहब हँसकर बोले, "मैं मुंसिफ हूँ, डॉक्टर नहीं हूँ।"

"लेकिन⋯आप⋯यानी⋯मेरा मतलब है⋯," आशीष की समझ में न आया क्या कहे।

गोयल साहब हँसने लगे, "बहुत जल्दी घबरा जाते हो, आशीष बाबू। शकुन्तला को कोई सीरियस बीमारी नहीं है। लेकिन मालूम होता है, तुम जरूर फिक्र के मारे बीमार हो जाओगे। हः हः हः हः⋯अच्छा कोई बात नहीं है। तुम्हारी दवा भी मेरे पास है। अभी लाया, दो मिनट में।"

गोयल साहब दो के बजाय एक ही मिनट में वापस आ गए, लेकिन उनके हाथ में आशीष ने जो कुछ देखा, उससे वह घबड़ा गया। बोला, "गोयल साहब! आप को आखिर हो क्या गया है?"

गोयल साहब ने बोतलें और गिलास तिपाई पर रखते हुए कहा, "क्यों? क्या तोबा कर ली है?"

"तोबा की बात नहीं है, फिर भी हर बात का एक वक्त हुआ करता है!" आशीष ने कहा।

"अरे हटो भी!" गोयल साहब ने सोडे की बोतल खोलते हुए कहा, "संजीवनी का भी कोई वक्त होता है?"

"लेकिन सुनिए तो⋯मुझे शाम को एक फंकशन में शामिल होना बहुत जरूरी है।"

"तो शाम तक तुम्हें कौन रोकता है? और पूरी बोतल न चढ़ा जाना, थोड़ी पीना। लो⋯।"

आशीष ने फिर आना-कानी की, तो गोयल साहब गंभीर होकर बोले, "देखो आशीष बाबू! मैं जानता हूँ कि इस समय कम-से-कम दो-तीन घण्टे तक तुम्हें कोई काम नहीं है। यह भी मैं जानता हूँ कि तुम दो ही पैग में अंटागफील

नहीं हो जाते हो। मैं तुम्हें नशे में धुत नहीं करना चाहता, सिर्फ चखने-चखाने की बात है। हां अगर तुम मेरी दोस्ती को बिल्कुल ही ठुकराना चाहो, तो दूसरी बात है।''

आशीष ने गिलास थाम लिया और सिप करना शुरू किया। इधर-उधर की बातें होने लगीं, यानी गोयल साहब ही बातें करने लगे। आशीष चुप रहा। उसके पास कुछ कहने को था ही नहीं।

आशीष तो सिर्फ साथ देने के लिए सिप कर रहा था, लेकिन गोयल साहब मजे में पीने लगे। पन्द्रह मिनट में ही उन पर सुरूर चढ़ गया। बोले, ''तुमने शकुन्तला के बारे में कुछ नहीं पूछा ?''

''पूछा तो था। आप ही ने कहा था कि आप डॉक्टर नहीं, मुंसिफ हैं। फिर क्या पूछता ?''

''यह भी कोई पूछने में पूछना हुआ ?'' मुंसिफ साहब बोले, ''एक बार पूछ कर रस्म अदा कर दी। अजी साहब पूछने का मतलब होता है, बार-बार पूछना, सर पर चढ़ बैठना, जान खा जाना।''

''अच्छा साहब, खा रहा हूँ आप की जान !'' आशीष हँसते हुए बोला, ''अब बताइए !''

गोयल साहब भी हँसने लगे। बहुत देर तक हँसते रहे। फिर बोले, ''अच्छा आशीष ! यह बताओ कि मैं तुम्हें मुबारकबाद दूँ या तुम मुझे मुबारकबाद दोगे ? देखो, सच-सच बताना।''

''आप को मालूम होता है बहुत चढ़ गई है,'' आशीष बोला, ''बेसर-पैर की बातें कर रहे हैं।''

''बेसर-पैर की नहीं, जनाब, पूरे सर, पैर, हाथ, मुँह--पूरे बदन की बात है। मुझे कभी इतनी नहीं चढ़ती है कि बिल्कुल बेमतलब की बात करूँ। शकुन्तला को हमल है।''

आशीष के हाथ से गिलास छूट पड़ा। मुँह फाड़ कर बोला, ''हैं !!! क्या कहा आपने ?''

गोयल साहब फिर जोरों से हँसने लगे। बोले, ''परेशान क्यों होते हो ! जो बात होती है, उसका नतीजा भी निकलता है। मैं तो यह पूछ रहा था कि मैं तुम्हें मुबारकबाद दूँ या तुम मुझे दोगे।''

आशीष तब तक सँभल चुका था। उसने गोयल साहब के हाथ से गिलास

छीन लिया और खिड़की के बाहर जाकर उसे खाली कर आया। बोतल भी उसने हटा ली ! गोयल साहब बोले, "यह क्यों ?"

"यह इसलिए कि आप को वाकई बहुत चढ़ गई है, तभी ऐसा बेतुका सवाल पूछ रहे हैं।"

"इसमें बेतुका क्या है ?"

"बिल्कुल बेतुका सवाल है। ज्यादा बकवास न कीजिए। बच्चा आप के अलावा किसी का नहीं।"

"अच्छा भाई मेरा ही सही, चिल्ला क्यों रहे हो ? तुम पर तो कोई जिम्मेदारी नहीं डाल रहा ?"

"गोयल साहब ! अगर आप को जरा-सा भी होश हो तो सुन लीजिए, बच्चा आप ही का है। वैसे मैं जिम्मेदारी से नहीं डरता। आप चाहें तो बच्चे की ही नहीं, माँ की जिम्मेदारी भी मुझ पर डाल दें।"

"उसका तो सवाल ही नहीं उठता।....लेकिन तुम इतने परेशान क्यों दिखायी देते हो ?"

"परेशान इसलिए हूँ कि आपके दिल में एक बेतुका खयाल आया था, उसने शकुन्तला को परेशान कर मारा। अब उससे भी ज्यादा बेतुका खयाल आया है, इसका पता उसे चलेगा तो भगवान जाने उसकी क्या हालत होगी। मैं आपके पैरों पड़ता हूँ, यह बात न सोचिए।"

गोयल साहब ने आशीष को तेज नजरों से देखते हुए कहा, "तो मैं मान लूँ कि बच्चा तुम्हारा नहीं हो सकता ? मैं मान लूँ कि तुमने शकुन्तला का बॉडी टच नहीं किया है ?"

"यह मैं नहीं कहूँगा। मैंने उसे 'किस' भी किया है, 'ॲम्ब्रेस' भी किया है लेकिन ऐसी हरकत कभी नहीं की जिसका यह नतीजा हो। उसने कभी मुझे इस हद तक बढ़ने ही नहीं दिया।"

गोयल साहब मुस्कुराने लगे। बोले, "अच्छा माना। लेकिन किसी और का हो तो ?"

"और कौन ऐसा हो सकता है ?"

"मसलन माथुर साहब !"

"मसलन स्वर्ग पति इन्द्र ! मसलन गौतम ऋषि ! मसलन पृथ्वीराज चौहान !" आशीष उनके स्वर की नकल करता हुआ बोला, "गोयल साहब !

आप को हो क्या गया है ? मैं तो आप को बहुत कायदे का आदमी समझता था। नाम भी लिया तो माथुर साहब का !"

"अरे भाई तुम तो हर बात में नाराज होने लगते हो। मैं तो सिर्फ मजाक कर रहा था।"

"यह मजाक की बात नहीं है, गोयल साहब ! इस मामले में मजाक न किया कीजिए।"

"अच्छा नहीं करूँगा मजाक। सीरियसली बात करूँगा...लेकिन...सीरियसनेस से डर लगता है।"

"क्यों ? सीरियसनेस तो जिन्दगी की जरूरत है ! उससे डरने से कैसे काम चल सकता है ?"

"काम चले या न चले, डर लगता ही है। मेरे लिए सीरियसनेस मौत है।" गोयल साहब बोले।

आशीष इस पर चुप रहा, तो वे फूट पड़े। उसका हाथ पकड़कर बोले, "आशीष, तुम मेरा दर्द नहीं समझोगे, तो कौन समझेगा ? फैज की वह नज्म सुनी है—'रकीब से ?' कहता है 'जुज तेरे और को समझाऊँ तो समझा न सकूँ।' तुम्हीं महसूस कर सकते हो कि मेरी क्या हालत होगी। शकुन्तला को तुम मेरी ही तरह जानते हो। बताओ, भला मुमकिन है उसे एक दिन के लिए भी अपने से जुदा करना ? चाहे वह तन-मन से किसी और की हो चुकी हो, फिर भी क्या उसे छोड़ा जा सकता है ? और उसे न छोड़ने पर भी उसे दूसरे का देखकर भी चैन से रहा जा सकता हैं ? मेरे लिए इस चीज के अलावा जिसे तुमने अभी हटा लिया और क्या सहारा बचा है ? मेरे लिए सीरियसनेस क्या मानी रखती है ?"

आशीष ने उनका हाथ थपथपाना शुरू किया, तो वे उससे लिपटकर रो पड़े। आशीष उन्हें सँभालते हुए बोला, "गोयल साहब ! दिल को मजबूत बनाइए। शकुन्तला आप ही की है और आप ही की रहेगी।"

गोयल साहब ने आँसू पोंछ लिए, कायदे से बैठे और बोले, "कैसे कह सकते हो तुम यह ?"

"इसलिए कह सकता हूँ कि मैं उससे मुहब्बत करता हूँ। वह मेरी रग-रग में बसी हुई है। उसके दिल की गहराइयों तक जितना मैं पहुँचा हूँ, उतना कोई नहीं पहुँचा—आप भी नहीं। मैं कहता हूँ कि वह आप ही की है

और आप ही की रहेगी। मैं इस बात की जिम्मेदारी पूरी सीरियसनेस के साथ लेता हूँ।"

"सच कहते हो?···अच्छा फिर इस बात पर एक-एक जाम और पी लिया जाए।"

लेकिन जिस समय आशीष और गोयल साहब यह समझौता पुख्ता कर रहे थे, उसी समय शकुन्तला अस्पताल से लौट आई। दोनों के हाथ में गिलास देखकर बोली, "अच्छा?" और अन्दर चली गई।

● ● ●

२९

शकुन्तला ने पिछली बार माँ बनने का जो षड़यन्त्र किया था, उसके जवाब में प्रकृति ने भी उसके साथ वैसा ही परिहास किया। इस बार उसने सपने में भी नहीं सोचा था कि वह पुनः माँ बन सकती है। न मालूम कैसे वह यह समझ बैठी थी कि अगर आशीष से सम्पर्क नहीं है, तो इस प्रकार की कोई सम्भावना उसके सामने नहीं आ सकती। वह मूर्ख तो थी नहीं कि सोचकर भी यह बात समझ न पाती, लेकिन उसके दिमाग में इन कुछ महीनों में कोई विचार ही इस तरह का नहीं आया था। लेकिन प्रकृति तो मनुष्यों की मनोभावनाओं के अनुसार नहीं चलती है। गोयल साहब उससे बहुत कम बातचीत करते हैं, इसका मतलब यह तो नहीं है कि प्रकृति भी अपना काम बन्द कर दे। और अगर शकुन्तला पहनने-ओढ़ने या बातचीत में बिल्कुल तपस्विनी बन गई हो तो भी प्रकृति इसे कोई महत्त्व देने के लिए तैयार नहीं है। जहाँ तक सन्तति-निरोध प्रयत्नों का सम्बन्ध है, गोयल साहब उनसे पहले ही उदासीन हो चुके थे और इधर साल भर से तो वे शकुन्तला से सम्बद्ध हर बात से उदासीन हो चुके थे, यह दूसरी बात थी कि वे अपने व्यवहार में कोई ऐसी बात नहीं दिखाना चाहते थे, जिससे यह मालूम हो कि वे पति की हैसियत से अपनी जिम्मेदारियों को निभाने में आनाकानी कर रहे हैं।

जिस दिन शकुन्तला को यह मालूम हुआ कि वह गर्भवती है, उस दिन वह बहुत परेशान हुई। आशीष का प्रेम उसके जीवन की हरएक कमी को पूरी कर रहा था। उसे ऐसा मालूम होता था कि इस समय तो उसके जीवन का हरएक खाली कोना भर गया है, आयन्दा भी इस बात की कोई आशंका नहीं है कि किसी तरह का दु:ख, कोई चिन्ता, किसी तरह की आत्मग्लानि, कोई भी अवांछित वस्तु उसके पास भी फटक सकती है। वह पूर्णत: सन्तुष्ट थी।

लेकिन, अब शकुन्तला को गहरी आत्मग्लानि हो रही थी। उसे लग रहा था कि उसने आशीष के साथ बड़ा छल किया है। आशीष अपना सर्वस्व उस पर न्योछावर करने के लिए तैयार है और उसने आशीष को साधारण जीवन-सुख से भी वंचित रखा! यह जानते हुए भी कि आशीष के लिए यह सुख उसकी परम आवश्यकता है। किसलिए यह 'सदाचार' कायम रखा शकुन्तला ने, यह उसकी समझ में नहीं आता था। पातिव्रत्य का तो कोई सवाल ही नहीं उठता था——उसके परपुरुष से प्रेम-सम्बन्ध हो ही गए थे। 'सपनेहु आनि पुरुष मन नाहीं' के बजाय यह 'आनि पुरुष' ही उसके मन-प्राण पर छा गया था। फिर? फिर एक ही बात हो सकती है कि शकुन्तला आशीष के प्रेम को उसके कोमलतम अपार्थिव रूप तक ही सीमित रखना चाहती थी। वह डरती थी कि उसके प्रेम-सम्बन्धों ने अगर पार्थिव–शारीरिक–रूप ले लिया तो शरीर की सारी कलुषताएँ——सारे स्वार्थ–उसे कलुषित कर डालेंगे। लेकिन, अब उसे महसूस हो रहा था कि उसका हवाई किला साबुन के बुलबुले की तरह फूट गया था। उस प्रकार के प्रेम के लिए तो जरूरी था कि वह खुद भी इन शारीरिक परिवर्तनों से बची रहती। लेकिन, इसका तो उसने ध्यान ही नहीं रखा था। और अब यह स्थिति थी कि एक ओर तो आशीष का वही निर्मल प्रेम था और दूसरी ओर उसका शरीर, जिसमें दूसरे आदमी का बीज फल रहा था। क्या वह यही शरीर उसी सन्तोष के साथ अब भी आशीष की बाँहों में दे सकती है? शरीर को उसकी बाँहों में डालना तो दूर की बात रही, क्या अब आशीष के आने पर उससे आँखें भी मिला सकेगी? अगर आशीष की आँखों की मुस्कुराहट ने उससे पूछा कि यह क्या कर बैठी, तो उसके पास क्या जवाब होगा इस सवाल का?

शकुन्तला सोचती कि यदि आशीष को वह पूर्णत: आत्मसमर्पण कर देती तो कितना अच्छा होता! उसके और आशीष के प्रेम की अमिट निशानी उसके पास सदा के लिए रह जाती। और यह बच्चा कैसा होता? बिल्कुल सम्भव था कि इसमें आशीष का आत्म-विश्वास, कलात्मक प्रतिभा, शारीरिक शक्ति, आत्म-

त्याग सभी कुछ होता। वह भी उसकी तरह एकक्षण क्रोध में आग बबूला हो जाता और दूसरे ही क्षण गलकर पानी। उसकी बाँहें भी आशीष की तरह भरी-भरी होतीं, उसकी मांसपेशियाँ भी आशीष की तरह कठोर—लेकिन यह सब सोचने से फायदा ही क्या? यह बच्चा तो उसका नहीं है, उसकी तरह हो ही नहीं सकता। इसमें तो वही गोयल साहब की—लेकिन जाने दो, किसी की बुराई सोचने से फायदा क्या! वह सोचती यह तो ठीक है लेकिन क्या यह सही है कि जो व्यक्ति मेरे हृदय से इतनी दूर है, उसका प्रतिरूप मैं अपने शरीर के अन्दर पालूँ, पैदा होने के बाद उसे सीने से लगाए रहूँ? यह ठीक है कि गोयल साहब भी कोई घृणास्पद जीव नहीं हैं, लेकिन आखिरकार वे वही हैं, जो हैं। आशीष का उनसे क्या मुकाबला हो सकता है?

शकुन्तला के हृदय में एक बार यह तीव्र इच्छा हुई कि वह गर्भपात कर दे। सोचती थी—क्या आशीष के रहते हुए किसी और का बच्चा अपने अन्दर पालना उसके प्रति घोर विश्वासघात नहीं है? जरूर है। यह कलंक जीवन भर कैसे उठाया जाएगा? इसे अभी से ही खत्म करना होगा। गोयल साहब?........ गोयल साहब को भी इसमें क्या आपत्ति होगी? उन्हें कौन मुझसे प्रेम है, जो अपने बच्चे का मोह होगा? वे तो अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति भर कर लिया करते हैं। मेरी जगह घर की नौकरानी हो या कोई वेश्या हो, तो भी गोयल साहब की जरूरत पूरी हो जाएगी। वेश्याओं से तो लोग शारीरिक आनन्द की ही अपेक्षा करते हैं, कोई यह तो नहीं सोचता कि मैं वेश्या को बच्चा भी दे दूँ। गोयल साहब का भी मेरे प्रति भी तो यही रवैया रहा है। ऐसी हालत में उनके पास जाना ही काफी लज्जा की बात है और फिर उनका दिया हुआ बच्चा पालना? इससे बड़ा कलंक क्या होगा? इस कलंक को धो डालना ही अच्छा है।

जैसा पहले कहा जा चुका है, शकुन्तला की आदत ज्यादा देर तक शशोपंज में पड़ने की नहीं थी। वह एक हफ्ते के अन्दर ही डॉक्टर के पास चली गई। लेकिन, डॉक्टर ने उसे डाँटकर भगा दिया। बोला, "आपका दिमाग तो ठिकाने है जनाब? यह भी कोई बात हुई कि पाँच वर्ष बीतने से पहले बच्चा नहीं चाहती? क्यों नहीं चाहती? क्या मुसीबत है ऐसी? घर में रोटियों के लाले पड़े हैं या आपकी तन्दुरुस्ती खराब है और फिर नहीं चाहती थीं तो पहले से फिक्र क्यों नहीं रखी? इतना पढ़ने लिखने के बाद भी देहाती औरतों की तरह बाद में रोती चली आ रही हैं! अब कुछ नहीं हो सकता। अब यह गैर कानून काम मुझसे नहीं होगा........क्या कहा?.. ...'पति की अनुमति दिला दूँ?' जी नहीं! आपके मामले में पति की अनुमति का भी कोई मूल्य नहीं है। वह तब हो सकता

है, जब प्रसव में आपकी जान का कोई खतरा हो। ऐसी कोई बात नहीं है……देखिए, मुझसे जिद्द करने से कोई फायदा नहीं……आपको अपने किए का फल भोगना ही चाहिए……और नहीं तो किसी अधकचरी नर्स के पास चली जाइए, उसे ढेर-सा रुपया देकर गर्भ गिरवा लीजिए और साथ ही कैंसर या टी० बी० जैसा कुछ रोग ले लीजिए।'

शकुन्तला को लेडी डॉक्टर पर इतना गुस्सा आया कि उसका जी चाहने लगा कि इस सफेद बालों वाले सर पर मन भर का पत्थर दे मारे। कमबख्त समझ रही थी कि पति के अलावा किसी और का बच्चा है, इसीलिए गिरवाना चाहती है। शकुन्तला को क्रोध के साथ ही हँसी भी आने लगी। लेकिन मौका न गुस्सा करने का था, न हँसने का। मौका था कुछ करने का और जल्दी ही कुछ करने का।

लेकिन हो भी क्या सकता था? कमबख्त बुढ़िया ठीक ही कहती है—कुछ नहीं हो सकता। नर्सों के पास जाने का सवाल नहीं था। शकुन्तला को हाल में पता चला था कि एक विधवा ऐसे ही चक्कर में पड़ गई, उसकी बच्चेदानी में कैंसर हो गया और वह महीनों तड़पने के बाद मर गई।

इसी उधेड़बुन, बल्कि निराशा की स्थिति में शकुन्तला घर आई, तो देखा कि आशीष और गोयल साहब हाथों में ह्विस्की के गिलास लिए बैठे हैं। वह बगैर कुछ कहे-सुने अन्दर चली गई, उल्टा-सीधा कुछ खाना खाया और अपने पलंग पर लिहाफ ओढ़कर पड़ी रही। गोयल साहब उसकी मिजाज पुर्सी करने गए, तो उसने कह दिया, "तबियत ठीक है। थक गई हूँ, सोना चाहती हूँ।"

गोयल साहब वापस चले आए। शकुन्तला ने उनसे यह जरूर पूछा कि आपका 'मैखाना' अभी चलेगा या उठ गया, तो गोयल साहब ने बताया कि शकुन्तला की सूरत देखते ही आशीष डर के मारे भाग गया। शकुन्तला की यह सलाह उन्होंने जरूर मान ली कि अब उन्हें भी सोकर नशा उतार देना चाहिए।

गोयल साहब वास्तव में अपने पलंग पर खुर्राटे भरने लगे, लेकिन शकुन्तला की सोने की बात महज बहाना थी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि दुनिया में हुआ क्या करता है? आशीष उसका प्रिय ही नहीं आदर्श पुरुष हो चुका था और उसी की यह हालत! इधर दो महीनों तक वह शकुन्तला के पास भी नहीं फटका था। इस मुसीबत के समय में शकुन्तला को उसके बलशाली सम्पर्क का अभाव कितना खटका था, इसे उसके अलावा और कोई नहीं जानता। कितनी रातों को वह घण्टों तक आशीष को याद करके रोती रहती थी, इसका साक्षी

उसके भींगे हुए तकिये के अलावा कोई नहीं था। शकुन्तला सोचती—उस कमबख्त से इतना नहीं होता कि इस समय आकर दो शब्द ढाढ़स बंधाने के लिए कह देता। जब ड्रामे की संचालक बनने की गरज थी, तब तो रोज नहीं तो दूसरे दिन तो खड़े ही रहते थे हजरत। अब क्या हो गया? क्या उसे किसी तरह पता चल गया कि मैं गर्भवती हूँ? लेकिन, उसे बताएगा कौन? और मालूम भी हो गया हो, तो उसे मुँह छुपाने की क्या जरूरत है? बच्चा तो उसका नहीं है। क्या इस कारण वह मुझसे घृणा करने लगा है? लेकिन, किस आधार पर घृणा कर सकता है? क्या उसने स्वयं ही यह स्थिति स्वीकार नहीं कर ली कि मैं उसकी केवल प्रेमिका बनी रहूँ, गोयल साहब की पत्नी? उसने कभी इशारे से भी तो नहीं कहा कि मुझे गोयल साहब से कोई सम्पर्क नहीं रखना चाहिए? पति-पत्नी का सम्बन्ध होता है, तो ऐसी बातें हो ही जाती हैं''''''नहीं, नहीं, यह बेतुकी बात है। आशीष को यह सुनकर बुरा तो लगेगा, स्वाभाविक ही है बुरा लगना, लेकिन स्पष्टतः उसकी दृष्टि में मेरा कोई कसूर नहीं होगा। अगर उसे क्रोध भी आएगा, तो गोयल साहब पर, हालांकि उसका गोयल साहब पर क्रोध भी अनुचित ही होगा। उनका इसमें क्या कसूर? अब आएगा तो उसे सँभाल कर समझा दूँगी।

यह सारी उधेड़बुन कितनी बेतुकी थी, इसका पता शकुन्तला को आज ही चला। जिस पर क्रोध न करने के लिए वह आशीष को 'समझाना' चाहती थी, आशीष उसी के साथ हँसते हुए जाम खनका रहा था! उन दोनों के बीच में जैसे शकुन्तला है ही नहीं, यह दोनों ने मान लिया। अपने-अपने उद्देश्य के लिए शकुन्तला को दोनों ने इस्तेमाल किया और वह मुसीबत में फँस गई, तो दोनों उसे भुलाकर हँसने-बोलने लगे, शराब पीने लगे। शकुन्तला की इस मुसीबत में आशीष का प्रत्यक्ष रूप से कोई दोष भले न हो, परोक्ष रूप से तो है ही। उसके प्रेम में वह मदमाती न होती, तो इस मौके पर होशियारी न रखती!

वह सोचती—यह न आशीष का कसूर है न गोयल साहब का—सारा कसूर मेरा ही है। मैं ही प्रेमान्धता में यह भूल गई कि पुरुष ऊपर से चाहे अलग-अलग दिखाई दें, अन्दर से सभी एक-से होते हैं। सभी की इच्छा यह होती है कि स्त्री को दो क्षणों के लिए खिलौना बनाकर खेलो और फिर अलग हो जाओ, उसे मरने के लिए छोड़ दो और खुद आनन्द करो, शराब पियो, हँसी-दिल्लगी करो। वैसे खेलने के ढंग अलग-अलग हो सकते हैं, लेकिन स्त्री से खेलते सभी पुरुष हैं। उसे दिखाने के लिए आपस में उसके पीछे लड़ भी पड़ेंगे, लेकिन जब खेल से जी भर जाएगा, तो सभी पुरुष एक हो जाएँगे!···हो जाएँ····मुझे

भी किसी की परवा नहीं है ! आशीष जी ! शकुन्तला खिलौना नहीं है, वह तुम्हारी पूरी उपेक्षा कर सकती है।'

इसीलिए जब आशीष तीसरे या चौथे दिन पहुँचा, तो शकुन्तला का व्यवहार उसे अजीब-सा लगा। शकुन्तला ने हमेशा की तरह चाय-पानी से उसकी अभ्यर्थना की, इतने दिनों तक न आने की शिकायत भी की, लेकिन साफ मालूम होता था कि वह सब ऊपरी मन से कर रही है। आशीष ने उसे बधाई दी, तो भी शरमाने-लजाने जैसा कोई भाव उसके चेहरे से प्रकट न हुआ, मामूली तरह से धन्यवाद दे दिया। आशीष की समझ में नहीं आ रहा था कि इस रुखाई का क्या कारण है। उसने गोयल साहब का शक बताया, तो शकुन्तला ने हँसकर सिर्फ इतना कहा, "गोयल साहब अपने को बहुत अक्लमन्द समझते हैं। उन्हें कौन समझा सकता है कि असली बात क्या है।"

आशीष ने कहा कि मैंने उन्हें समझा दिया है, तो शकुन्तला बोली, "बहुत अच्छा किया आपने।"

आशीष चुप हो गया। थोड़ी देर बाद बोला, "क्या बात है ? नाराज हो मुझसे क्या ?"

शकुन्तला चौंककर बोली, "नहीं तो ! यह कैसे समझ लिया आपने ? मैं नाराज नहीं हूँ।"

"फिर चुप क्यों हो ? ठीक तरह से बातें क्यों नहीं कर रही हो ?" आशीष ने पूछा।

"कर तो रही हूँ। और कैसे की जाती हैं बातें ?····हाँ तबियत जरूर ढीली रहती है।"

आशीष समझ गया कि इस समय शकुन्तला को मनाना उसके बस की बात नहीं है। वह जल्दी में भी था। मुंशी हरदयाल फिर किसी मुवक्किल को लाने वाले थे। आशीष ने समझ लिया कि शकुन्तला यह नहीं चाहती कि मैं यहाँ अधिक देर तक बैठूँ। हो सकता है कि उसकी तबियत वाकई खराब हो और वह वास्तव में आराम करना चाहती हो। यह भी हो सकता है कि गर्भवती होने के बाद उसके प्रेम का ज्वार उतर गया हो, वह गोयल साहब के प्रति अपनी जिम्मेदारी ज्यादा महसूस कर रही हो और आशीष से बढ़ने वाले सम्बन्धों पर लज्जा अनुभव कर रही हो। कुछ बुरा मालूम होने पर भी आशीष को इससे सन्तोष ही हुआ।

शकुन्तला की तबियत दरअसल बिल्कुल ठीक थी, हाँ घर में पड़ी-पड़ी ऊब जरूर रही थी। आशीष के जाते ही उसने साड़ी बदली, चेस्टर पहना और

घूमने चल दी। पहले सोचा था कि मिस मेहता के पास जाकर कुछ जी बहलाया जाए। कई महीनें से उनसे मुलाकात नही हो सकी थी। शकुन्तला को भी नाटक से फुर्सत न थी और मिस मेहता भी रंगमंच से उसकी बढ़ती हुई दिलचस्पी और आशीष के साथ उसकी बढ़ती हुई मित्रता की चर्चों के कारण उससे निराश हो चुकी थीं। शकुन्तला को भी मालूम था कि मिस मेहता की उससे दिलचस्पी क्यों खत्म हो गई है। फिर भी सवाल तो समय काटने और जी बहलाने का था। शकुन्तला इस समय किसी स्त्री ही से बात करना चाहती थी चाहे वह स्त्री उसे दो-चार जली-कटी ही क्यों न सुना बैठती।

लेकिन, किसी स्त्री से बात करना उसकी किस्मत ही में न था। मालूम हुआ कि मिस मेहता किसी मीटिंग मे गई हैं और नौ बजे से पहले वापस न आएंगी। शकुन्तला को वहीं से घर लौटना अच्छा न लगा और वह कुल भास्कर आश्रम जानेवाली सड़क पर आगे बढ़ने लगी। हॉस्टल के जीवन में वह हमेशा इसी सड़क पर टहलने के लिए आती थी और इसीलिए उसे अब भी इसी सड़क पर टहलना अच्छा लगता था। यह सड़क उसके छात्र जीवन की स्मृतियाँ साकार कर देती थी और इस सड़क पर वह अपने को पहले जैसी अल्हड़ नवयुवती पाती थी।

किन्तु, आज इस सड़क पर चलने से उसके सामने वही स्थिति आ गई, जिससे वह बचना चाहती थी। वह चाहती थी कि पुरुषो के साये से भी दूर रहे, लेकिन सड़क पर उसे एक पुरुष मिल गया, जिससे उसे बात करनी ही पड़ी। बख्तियार ऐलनगंज से अपने किसी मित्र से मिलकर हॉस्टल वापस जा रहा था। दोनो नें एक दूसरे से कतराने का प्रयत्न किया, लेकिन दोनों का सामना इतने अप्रत्याशित रूप से हुआ था और दोनो एक दूसरे के इतने समीप आ गए थे कि कतराना सम्भव न हुआ।

बख्तियार के मन में शकुन्तला का छह महीने पहले वाला प्रभाव पड़ा था जब वह बराबर मिसेज खन्ना पर व्यंग्य वाण छोड़ रही थी। इस प्रभाव को नवम्बर में ग्रीन रूम वाले दृश्य नें और पक्का कर दिया था। इधर दो महीनें से वह सब बातें भूलकर अपनी पढ़ाई में लगा था—फर्स्ट क्लास में आना वह अपने लिए अनिवार्य समझता था। अगर राजनीतिक कार्यों में रहता तो फेल हो जाने पर भी उसका कोई अपमान न होता, लेकिन कुछ न करते हुए भी सेकण्ड क्लास में पास होना अब उसके लिए डूब मरने की बात हो गई थी।

इसीलिए जूलिया ने जब उसकी उम्मीदों को तोड़ दिया, तो उसने पुरानी बातों को भुलाकर नया जीवन आरम्भ करना ही ठीक समझा। वह आशीष, जूलिया

और शकुन्तला को लगभग भूल चुका था। मिसेज खन्ना के साथ यह बात न थी—वे उसे कभी-कभी दिन में यूनिवर्सिटी में और रात को स्वप्न में दर्शन दे ही दिया करती थीं, फिर भी उसने उन्हें करोड़ों-अरबों मील दूर पर चमकने वाला सितारा समझ लिया था, जिसे देखा तो जा सकता था, लेकिन जिस तक पहुँचने की कल्पना भी नहीं हो सकती थी (यह बताने की जरूरत नहीं है कि १९५१ तक अन्तरिक्ष यात्रा का विचार बेतुकी कल्पना से अधिक महत्त्व न रखता था)।

लेकिन, इस समय अचानक शकुन्तला को देखकर छह महीने पुरानी बातें बख्तियार के मस्तिष्क में बड़ी तेजी से घूम गईं। उसने तय कर लिया कि अगर शकुन्तला ने कुछ छेड़छाड़ की, तो वह भी उसे खरी खरी सुनाएगा, चाहे उसे कितनी ही बदतमीजी पर उतर आना पड़े।

पर शकुन्तला ने इस मामले में उसे पूरी तरह निराश किया। उसके अभिवादन का उत्तर शकुन्तला नें अत्यन्त शालीनतापूर्वक और हलकी मुस्कुराहट के साथ दिया। उसकी आँखों में स्वास्थ्य की चमक जरूर थी, लेकिन शरारत की चमक का कहीं नामोनिशान तक न था। बख्तियार से उसने बात भी की, तो उसकी पढ़ाई और यूनिवर्सिटी की आम चहल-पहल के बारे में। दोनों काफी दूर तक चलते चले आए (बख्तियार को हॉस्टल जाने की याद न रही), लेकिन शकुन्तला ने न मिसेज खन्ना का जिक्र किया, न 'हेमलेट' का। अब बख्तियार को उलझन होने लगी—यह कैसी स्त्री है! छह महीने पहले रहन-सहन में सादगी और व्यवहार में उच्छृङ्खलता और अब रहन-सहन वही शुरू जैसा और व्यवहार ऐसा गम्भीर जैसे उससे अवस्था में दस वर्ष बड़ी हो! उसने प्रस्ताव किया कि करीब वाले छोटे से रेस्तरां में बैठकर चाय पी ली जाए, तो शकुन्तला ने स्वीकार कर लिया।

उस सुनसान जगह का यह छोटा-सा रेस्तरां बिल्कुल खाली था। उसमें कोई अलग केबिन न थी, लेकिन कोई देखने वाला भी नहीं था। बख्तियार से न रहा गया। उसने पूछा, "मिसेज गोयल! अगर आप बुरा न मानें तो कह दूँ कि आप बहुत सीरियस दिखाई दे रही हैं। कोई खास बात है क्या?"

"नहीं, कोई खास बात नहीं है। यूँ ही कभी-कभी चुप रहने को जी चाहता है।"

"लेकिन चुप तो आप नहीं है, सिर्फ बात करने का अन्दाज पहले से बदला हुआ है।"

शकुन्तला हँसकर चुप रह गई। बख्तियार बोला, "ख़ैर मुझे तो आपसे माफी माँगनी ही है।"

"काहे की माफी माँगनी है ?"

"आपको याद होगा कि ग्रीन रूम में एक आदमी झाँककर चला गया था। वह मैं ही था।"

"अच्छा !" शकुन्तला हँसकर बोली, "लेकिन आप चले क्यों गए ? और उसमें माफी कैसी ?" उसने यह कहना ठीक नहीं समझा कि आशीष ने यह बात उसे बहुत दिन पहले ही बता दी थी।

बख्तियार अचकचा गया। क्या इसे आशीष ने नहीं बताया कि उसके बाद मैंने क्या-क्या किया ? तब तो बात करने में जल्दी हो गई। खैर अब कह दिया है, तो पूरी बात बतानी ही चाहिए। और बख्तियार ने अपने पूरे अपराध की स्वीकृति शकुन्तला के सामने कर ली, कुछ भी नहीं छुपाया।

शकुन्तला सारी बातें सुनकर हँसने लगी। फिर बोली, "आप लोग भी बड़े मजे की बातें करने लगते हैं। लेकिन मेरी समझ में अब भी नहीं आया कि मैं आपको किस बात की माफी दूँ।"

"अच्छा न दीजिए माफी," बख्तियार हँस कर बोला, "यह बताइए कि मैं किस तरह का आदमी हूँ ?"

"यह मुझे क्या मालूम ?" शकुन्तला अचकचा कर बोली, "मेरी समझ में तो आप बहुत भले आदमी हैं।"

"आप अब भी यह कह सकती हैं ? सब बातें सुन कर भी ? भले आदमी यही किया करते हैं ?"

"गलतियाँ सभी करते हैं, लेकिन गलतियाँ मंजूर सिर्फ भले आदमी ही कर सकते हैं।"

बख्तियार चुपचाप सिगरेट पीने लगा। कुछ देर बाद बोला, "मिसेज गोयल ! मेरी त्रुटि के लिए मुझे माफ फरमाएँ। आप मुझसे उम्र में काफी छोटी मालूम होती हैं, लेकिन समझ में मुझसे काफी बड़ी हैं....देखिए इस मामले में बहस न कीजिएगा....हाँ, तो मैं कह रहा था कि आप मुझसे समझ में काफी बड़ी हैं। मैं अपने अन्दर काम करने की कुव्वत तो पाता हूँ, लेकिन अक्सर खुद अपने को सँभाल नहीं पाता—रास्ते से भटक जाता हूँ। इसी लिए ऐसी हिमाकतें कर बैठता हूँ, जिन पर मुझे महीनों शर्म आती रहती है। मुझे कोई राह दिखाने वाला, कोई मेरी गलतियाँ दुरुस्त करने वाला नहीं है। ना खुदा के बगैर मेरी

कश्ती डगमगा रही है····खुदा के लिए कहीं मेरी बातों को अर्जे-इश्क की तमहीद न समझ लीजिएगा, इतनी हिमाकत मैं नहीं करूँगा····वैसे मैं यह जानता हूँ कि आप इस पर भी भड़कनें वाली औरत नहीं हैं। गुस्ताखी माफ हो, चाहे इसे शायराना दिमाग की बेतुकी उड़ान समझ लीजिए चाहे पागल की बड़, लेकिन मेरी बातें खामोशी से सुन लीजिए। मुझे यकीन है कि जहाँ तक मर्द-औरत की मुहब्बत का ताल्लुक है, वह भी आप एक से ज्यादा लोगों को भरपूर दे सकती हैं। जमाना इसे बुरा कहता रहे, लेकिन मेरी नजर में यह काबलियत कुदरत का बहुत ही बड़ा इनाम है कि कोई एक से ज्यादा चाहने वाले के जज्बए-मुहब्बत को आसूदा करता रहे। कृष्ण और द्रौपदी इसी वजह से काबिले-कद्र समझी गई हैं। लेकिन मेरी अर्ज इस मामले में नहीं है। मैं खुद को इस इज्जत के लायक नहीं समझता। मैं सिर्फ यह चाहता हूँ कि जब बहकने लगूँ, तो आप एक दोस्त की तरह मेरी भूल मुझे बता दें।''

शकुन्तला हँसने लगी, ''बख्तियार साहब! आप भयानक हद तक शायर हैं। किसी की तारीफ करते हैं तो उसे आसमान ही पर टाँग देते हैं। आपने जितनी मेरी तारीफ की, मैं उसके काबिल बिल्कुल नहीं हूँ। मैं तकल्लुफ से नहीं कह रही--तकल्लुफ करना मैं जानती ही नहीं हूँ—सच कह रही हूँ कि मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि मेरी क्या कमजोरियाँ हैं। लेकिन हाँ, आप कहते हैं तो दोस्त की हैसियत से अपनी साफ-साफ राय आपके कामों के बारे में जरूर दे दिया करूँगी, मुझे इसमें खुशी ही होगी। लेकिन मुझे शिकायत यह है कि आपने मेरे यहाँ झांकना भी छोड़ दिया है। मुझ से जो गलती हुई हो, उसे माफ कीजिए और जब स्टटीज से फुर्सत मिले, तो टहलते-टहलते गरीबखाने पर भी आ जाया कीजिए। अब तो आप दूर भी नहीं रहते, दो कदम ही का फासला है। आप यकीन जानें आपके आने से, आप की सीरियस बातों से मेरा जी बहुत बहल जाता है। शायद आपको नहीं मालूम कि खुद मुझे सायकालॉजीकली आप जैसे आदमियों की कितनी जरूरत है। आइए, अब चलें।''

वापसी में बख्तियार शकुन्तला को उसके घर तक छोड़ने गया। उसे याद था कि उसे पढ़ना है और अधिक थक जाने से पढ़ाई में विघ्न पड़ता है, फिर भी वह इस समय शकुन्तला का अधिक-से-अधिक साथ करने से अपने को न रोक सका। रास्ते में हर तरह की हलकी-फुलकी बातें होती रहीं—यूनिवर्सिटी की, स्पोर्ट्स की, थोड़ी-बहुत राजनीति की भी। बख्तियार फाटक ही से लौट आया, उसने शकुन्तला से माफी माँग ली कि इम्तहान की तैयारी करनी है। शकुन्तला ने भी इस बात को मान लिया।

रात को बिस्तर पर जाकर शकुन्तला को बख्तियार की बातें याद आने लगीं और उनपर हँसी आने लगी—कितना भोला है यह आदमी—लेकिन भोला है इसलिए तो प्यारा लगता है और मिजाज का कितना सुथरा !'

शकुन्तला जल्द ही सो गई। उसे आज इतनी गहरी नींद आई जितनी हफ्तों से नहीं आई थी।

●●●

३०

बाख्तियार का कायदा था कि यूनिवर्सिटी से लौटने के बाद तीसरे पहर दो घंटे और शाम का खाना खाने के बाद आठ बजे से ग्यारह बजे तक नियमित रूप से अपने कोर्स की किताबों को पढ़ा करता था। सुबह के समय वह सिर्फ अखबार देखता या इधर-उधर की चीजें पढ़ता था। जिस समय अन्य छात्र मौज मस्ती में दिन काट रहे थे, उस समय भी बाख्तियार की पढ़ाई का नियम नहीं टूटा था। उसे सिनेमा देखने से चिढ़-सी थी, हिन्दुस्तानी फिल्मों के बारे में तो उसका यह ख़याल था ही कि उनमें कला की हत्या की जाती है, विदेशी फिल्में भी वह वही देखता था, जो किसी प्रसिद्ध उपन्यास पर आधारित होती थी या जिनकी अत्यधिक प्रशंसा सुनी जाती थी। फिर भी इनमें से कम ही फिल्में उसे पसंद आती थीं। इसलिए उसके सिनेमा देखने का औसत महीने में एक दिन से ज्यादा नहीं पड़ता था। स्पोर्ट्स में उसे सिर्फ टेनिस में दिलचस्पी थी, उसके लिए शाम को नियमित रूप से एक घंटा दे दिया करता था। इसी नियमित जीवन के कारण उसका स्वास्थ्य काफी अच्छा था—यानी वह पहलवान भले ही न हो, बीमार कभी नहीं पड़ता था। और साथ ही उसके अध्ययन की प्रगति भी इतनी संतोषप्रद थी कि उसका इरादा था कि फर्स्ट क्लाश लाने के लिए भी वह इम्तहान के दिनों में अन्य परीक्षार्थियों की तरह दिन में बारह-बारह चौदह-चौदह घंटे नहीं पढ़ेगा। उसका यह ख़याल था—और ठीक ही था—कि नियमित और संतुलित रूप से की गई पढ़ाई ही अच्छा नतीजा देती है।

लेकिन शकुन्तला के घर से आकर वह खाना खाने के बाद पढ़ने बैठा तो उसे समय का बिल्कुल अंदाजा नहीं रहा। थोड़ी-सी थकान मालूम होने पर जब उसने पुस्तक पर से निगाहें हटाकर घड़ी को देखा, तो एक बजा था। उसका दिमाग अब भी काफी ताजा था और उसे सोने की कोई जरूरत नहीं मालूम हो रही थी, फिर भी वह बत्ती बुझाकर सोने चला गया।

हमेशा की तरह उसे बिस्तर पर जाते ही नींद आ गई और सुबह भी वह हमेशा की तरह ६ बजे बिस्तर से उठ गया। बहुत देर तक तो उसे महसूस ही न हुआ कि कोई ध्यान देने लायक बात हुई है, लेकिन फिर सोचा, तो उसे ताज्जुब होने लगा कि कम सोने पर भी वह रोज से अधिक ताजगी महसूस कर रहा है। यह ठीक है कि उन पांच घंटों में वह मुर्दों से बाजी लगा कर सोचा था और पहली बार उसकी आंख उठने के समय ही खुली थी, लेकिन फिर भी पाँच घंटे और सात घंटे में कुछ तो फर्क होता है। उस तो ऐसा मालूम हो रहा था, जैसे वह नौ घंटे सोया है।

उसके साथी छात्रों ने भी यह महसूस किया कि बाख्तियार साहब, जो पहले हमेशा मुस्कुराते रहते थे, आज मुस्कुराने के बजाय हर बात पर हँस रहे हैं और हमेशा की तरह मितभाषी नहीं हैं, बल्कि खुलकर हर एक से बातें कर रहे हैं, हर एक से उसका हाल-चाल पूछ रहे हैं और हर एक की कठिनाई को दूर करने की उचित सलाह दे रहे हैं; बल्कि अपनी ओर से भी उन्हें दूर करने के लिए छोटी-मोटी सेवाएँ अर्पित कर रहे हैं। वैसे भी उसके सहपाठी उसकी काफी इज्जत करते थे, इसलिए यह छोटा सा व्यवहार परिवर्तन उन्हें कुछ बहुत अजीब न लगा। साथ ही फरवरी का महीना शुरू हो जाने के कारण सभी छात्र अध्ययन के प्रति अधिक जागरूक हो गए थे, इसलिए उन्हें इतनी फुर्सत भी न थी कि बाख्तियार के व्यवहार का मनोविश्लेषण करते। हाँ, अगर उन्हें यह मालूम होता कि बाख्तियार साहब ने उसी दिन मेस के नौकर हमीद को उसकी माँ का (जो चार महीने से बीमार पड़ी थी) इलाज कराने के लिए एकदम से पचास रुपये दे दिए हैं, तो जरूर इसकी थोड़ी-बहुत चर्चा होती; लेकिन बख्तियार ने हमीद को सख्त ताकीद कर दी थी कि वह यह बात किसी को न बताए और हर महीने पाँच-पाँच रुपए देकर कर्ज निबटा दे।

दिन में यूनिवर्सिटी में भी उसका यही रवैया रहा। आज के लेक्चरों में उसे जितना कुछ मिला, उतना इससे पहले कभी नहीं मिला था; कई कानून सम्बन्धी समस्याएं अपने आप सुलझ गई थीं। उसे महसूस हो रहा था कि उसके जीवन का एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जा रहा है।

क्लास से लौटते समय उसे दूर से मिसेज़ खन्ना जाती हुई दिखायी दीं। उसका दिल फिर हमेशा की तरह असामान्य गति से धड़कने लगा। ऐसे मौक़ों पर वह हमेशा यह करता था कि जान-बूझ कर दूसरा रास्ता पकड़ लेता था, ताकि उनका सामना न हो सके। आज भी पहले उसके क़दम दूसरी तरफ बढ़ने को हुए, लेकिन फिर उसे महसूस हुआ कि उसका इस तरह रास्ता कतरा कर निकलना बहुत ही बेतुकी बात है। वह सोचने लगा—आखिर मैंने मिसेज खन्ना को ऐसी चुड़ैल क्यों समझ रखा है, जिसके साये से भी बचना जरूरी होता है—मिसेज खन्ना तो बहुत शरीफ औरत है। वे किसी का भी बुरा नहीं सोचतीं और खास तौर से मेरा तो हरगिज नहीं। और फिर मैं यह क्यों डरता हूँ कि उनके सामने मैं कोई वाहियात हरकत कर बैठूँगा। औरत अगर खुद ही इशारा न दे, तो आदमी कोई ऐसी-वैसी हरकत कर ही कैसे सकता है; और मिसेज खन्ना के बारे में तो ऐसी बात सोचना भी गुनाह है।

बख्तियार को चेतन रूप से इसका पता न था, लेकिन उसके अवचेतन में बार-बार शकुन्तला उससे कह रही थी, "अब तुम्हें किसी बात से डरने की क्या जरूरत है? तुम्हारे डगमगाते हुए क़दमों को सँभालने के लिए तो मैं मौजूद ही हूँ!"

बख्तियार मिसेज खन्ना की ओर बढ़ गया।

बहुत दिनों बाद दोनों की मुलाकात हुई थी, लेकिन मिसेज खन्ना ने हमेशा की तरह उत्साह न दिखाया। उन्होंने बख्तियार के सलाम का हँसकर जवाब दिया, लेकिन मालूम होता था कि यह हँसी भी शिष्टता निभाने के लिए जबर-दस्ती पैदा की गई है। कुछ ही देर की बातचीत में बख्तियार को इसका कारण मालूम हो गया। खन्ना जी दो महीने से बीमार थे और पन्द्रह दिन से तो चारपाई पर ही पड़े थे।

बख्तियार ने शिकायत की, "आपको मुझे कम-से-कम इसकी इत्तिला तो दे ही देनी थी।"

मिसेज खन्ना बोलीं, "क्या बताऊँ बख्तियार साहब, मेरे तो होश ही ठिकाने नहीं रहते। दो हफ्ते तो यूनिवर्सिटी ही नहीं आई। फिर उन्हीं के जोर देने पर कल से आना शुरू किया है—इस वक्त के लेक्चर इम्पार्टेंट होते हैं। अच्छी यह फाइनल की मुसीबत गले पड़ गई। सोचती हूँ, दो महीने की बात है, इसे भी पूरा कर डालूँ। प्रीवियस होता, तो पढ़ाई जरूर ही छोड़ देती। जी तो लगता ही नहीं है...।"

"खैर स्टडीज तो नहीं छोड़नी चाहिए हालाँकि यह कहना भी ठीक ही है

कि इस वक्त आप का जी खन्ना सा'हब ही में लगा रहता होगा। हाँ, यह तो आप ने बताया ही नहीं फिर उन्हें शिकायत क्या है?"

"कुछ ठीक तरह समझ में नहीं आता। दिसम्बर में एक दिन देर तक घर से बाहर रह गए थे। उसी वक्त से खाँसी जुकाम शुरू हुआ। पहले तो उसकी फिक्र ही नहीं की। मैं कहती भी थी कि डॉक्टर के पास जाओ, तो कह देते थे कि इस तरह जरा-जरा सी बात के पीछे डॉक्टर के पास दौड़ना ठीक नहीं है। फिर भी मैं जोर देती रही, तो आजकल-आजकल करते रहे। बात यह थी कि क्रिसमस का जमाना था और सेल जोरों पर था। उसे सँभालने ही में सारा समय निकल जाता। दोपहर में खाना खाने भी घर नहीं आते थे, वहीं कुछ उल्टा-सीधा खा लिया करते थे। रात को दुकान बन्द होने के बाद भी घण्टों तक पैकिंग वगैरह करवाया करते थे। कमजोरी में स्ट्रेन पड़ने का नतीजा यह हुआ कि जनवरी में बुखार आने लगा। फिर इलाज भी शुरू किया, तो मुहल्ले के एक जान-पहचान वाले डॉक्टर का। मैं बहुत जोर देती रही कि किसी अच्छे डॉक्टर के पास जाओ, लेकिन उन्हें अपने मित्र डॉक्टर ही पर भरोसा था। जब चारपाई पर गिर ही गए, तो मैं जबरदस्ती उन्हें डॉक्टर बनर्जी के पास ले गई। यह चार-पाँच दिन पहले की बात है। डॉक्टर बनर्जी ने एँक्सरे लेने के लिए कहा। अभी एक्स-रे का नतीजा नहीं आया है, कल आएगा।"

मिसेज खन्ना की आँखों में आँसू आते-आते रह गए—उन्होंने बड़ी मुश्किल से उन्हें रोका। उनकी आवाज भर्रा गई और वे बात करते-करते एकदम चुप हो गईं। बख्तियार की समझ में नहीं आया कि उन्हें किस तरह तसल्ली दे। वह सपने में भी यह नहीं सोच सकता था कि मिसेज खन्ना पर ऐसी मुसीबत पड़ जाएगी। थोड़ी देर बाद अपने को सँभाल कर बोला, "खुदा पर भरोसा रखिए, मिसेज खन्ना! सब कुछ ठीक ही होगा। खन्ना जी ठीक हो जाएगे, उन्हें कुछ नहीं होगा।"

यह कहते समय बख्तियार बिल्कुल भूल गया कि वह घोर नास्तिक है और अपनी नास्तिकता की घोषणा मौके बे-मौके हरएक के सामने कर चुका है। मिसेज खन्ना से भी इस मामले पर कई बार उसकी बहस हो चुकी थी और वे एक बार हँसी-हँसी में कह भी चुकी थीं कि आपको इस जिन्दगी में जी भरकर ऐश कर लेना चाहिए; क्योंकि परलोक में जाने पर तो आपका नर्क के फाटक पर जोरदार स्वागत होगा। बख्तियार ने इसका जवाब दिया था, दुनिया के ज्यादा लोग तो मेरे ही साथ होंगे, मेरी तो वहां भी हँसी-खुशी में गुजरेगी। आप लोगों का जरूर अल्लाह ही वाली है। आपके लिए स्वर्ग में खीर के तालाबों और हलवे के ढेरों में डुबकियां लगाने के अलावा कोई व्यस्तता न रहेगी; क्योंकि

इन्सानों का तो वहाँ दूर-दूर तक पता न होगा। न हो तो आप भी थोड़े से गुनाह कर डालिए, थोड़ी सी नास्तिक बन जाइए ताकि कभी-कभी आपको स्वर्ग से ट्रांसफर कर दिया जाए और जी बहलने के लिए कुछ चेंज हो जाए।'' मिसेज खन्ना नास्तिक बनने को किसी कीमत पर भी तैयार न हुईं और बख्तियार खुदा पर ईमान न ला सका।

लेकिन, इस समय बख्तियार को भी याद न रहा कि वह खुदा का नाम ले रहा है और मिसेज खन्ना भी भूल गईं कि वह एक भौतिकवादी से बातें कर रही हैं। उन्होंने विकलता से कहा, ''सच कहते हैं आप? बख्तियार साहब! आपके अन्दर देवता निवास करते हैं, आपके मुँह से निकली हुई बात झूठ नहीं हो सकती। आप कहते हैं कि खन्ना जी ठीक हो जाएँगे, उन्हें कुछ नहीं होगा?''

''आप यकीन रखें मिसेज खन्ना, उन्हें कुछ नहीं होगा। मैं देवताओं की बात तो नहीं जानता लेकिन मेरे दिल में कोई पुकार-पुकारकर कह रहा है कि आपकी माँग का सिन्दूर हमेशा बना रहेगा।''

मिसेज खन्ना आँखों में आँसू भरकर उसे देखती हुई रिक्शे में बैठ गईं। रुखसती का सलाम करने की किसी को याद नहीं रही। बख्तियार तब तक वहीं खड़ा रहा, जब तक मिसेज खन्ना का रिक्शा उसकी आँखों से बिलकुल ओझल नहीं हो गया। फिर वह हॉस्टल आया और कपड़े उतार कर बिस्तर में घुस गया। उसे यह बिलकुल याद नहीं रहा कि यह उसके तीसरे पहर के अध्ययन का समय है।

वह इस समय मिसेज खन्ना की भरी हुई आँखों के समुद्र में डूब-उतरा रहा था। उसके मस्तिष्क में कोई विचार न था—यहाँ तक कि वह खन्ना जी की बीमारी के बारे में भी बिलकुल भूल गया। उसकी आँखों के आगे मिसेज खन्ना की भरी हुई आँखों के अलावा और कुछ न था। वे आँखें कुछ कह नहीं रही थीं, केवल एकटक विकल दृष्टि से उसे देखे जा रही थीं। सारी दुनिया की गति अचानक बन्द हो गई थी, एक ठहराव आ गया था। मिसेज खन्ना की आँखों ने सारी दुनिया को इस तरह बेकार कर दिया था जैसे रात के समय पावर हाउस के अचानक फेल हो जाने से सारे शहर में बेबसी का अँधेरा छा जाए और इस अँधेरे में दिखायी दे रही थीं वही आँखें, जो न हिलती थीं, न हटती थीं।

आध घण्टे तक यही हालत रही। बख्तियार का दिल परेशान होने लगा। शरीर का सारा खून सिमट कर जैसे उसके मस्तिष्क में समा गया था। कनपटियाँ धप-धप कर रही थीं, गला सूख रहा था; लेकिन मिसेज खन्ना की आँखें

थीं कि सामने से हटने का नाम ही न लेती थीं। बख्तियार बुरी तरह घबड़ा उठा। उसने सोचा कि कुछ देर बाहर घूमकर जी बहला लिया जाए। लेकिन, वह यह भी न कर सका। मिसेज खन्ना की आँखों के ठहराव ने जीवन की सारी गति को रोक दी थी।

फिर भी यह स्थिति कब तक रह सकती थी? जिन्दगी का तकाजा तो ठहराव को खत्म करने का होता है। साँस चल रही है, तो हरकत भी होगी। बख्तियार ने अपने को झटका दिया--भाड़ में जाएँ मिसेज खन्ना और मिस्टर खन्ना! मुझे उनसे क्या मतलब? मरते हों, तो मर जाएँ!

बख्तियार ने उठकर स्टोव जलाया और चाय बनायी। चाय पीकर उसे ताजगी महसूस हुई। समय काफी हो गया था, लेकिन अभी शाम नहीं हुई थी। टेनिस कोर्ट में जाने के पहले कम-से-कम एक घंटा पढ़ा जा सकता है। बख्तियार 'इन्टरनेशनल लॉ, खोल कर बैठ गया।

दो पृष्ठ पढ़ने के बाद उसकी यह हालत हो गई कि पुस्तक की पंक्तियाँ उसके दिमाग में कोई निशान बनाए बगैर उसकी आँखों के सामने तेजी से गुजरने लगीं। तारीफ यह थी कि उसे बहुत देर तक इस स्थिति का पता ही नहीं चला। अब उसकी आँखों के सामने मिसेज खन्ना की आँखें नहीं थीं, रोगशय्या पर पड़े हुए खन्ना जी का कल्पना चित्र था। वह सोच रहा था--मिसेज खन्ना के कहने से मालूम होता है कि खन्ना साहब को टी० बी० है। इसीलिए तो वे इतनी परेशान थीं, और तभी तो डॉक्टर ने एक्स-रे लेने के लिए कहा था। अभी तय नहीं है कि टी० बी० है ही, यह तो एक्स-रे का नतीजा मिलने के बाद ही मालूम होगा""लेकिन खन्ना साहब को टी० बी० हो कैसे गया? वे तो अमीर आदमी हैं, उनके लिए न ज्यादा मेहनत का सवाल है, न खुराक की खराबी का, न जाए-रिहाइश की गंदगी या सीलन का···लेकिन यह तो जरूरी नहीं कि टी० बी० इन्हीं वजहों से हो···हजारहा वजहें हो सकती हैं इसकी···खुदा बचाए, बड़ा मूजी मरज होता है यह भी, इंसान को गला-गला कर धीरे-धीरे मारता है···टी० बी० की मौत से तो हैजे या प्लेग की मौत अच्छी, कुछ ही घंटों में फैसला हो जाता है""खन्ना साहब को भी यह कमबख्त सुखा डालेगा""वैसे तो बड़े भारी-भरकम आदमी हैं···टी० बी० बढ़ गया, तो कैसे लगेंगे? कैसा लगेगा उनका सूखा चेहरा और गड्ढों में घुमती हुई गोल-गोल आँखें?""और कुछ दिनों की तकलीफ झेलकर मर भी जाएँगे""फिर क्या होगा?···सारी दौलत यहीं धरी रह जाएगी···लेकिन दौलत भी कोई हमेशा के लिए धरी रहेगी?··· उनके मरने के बाद क्या मिसेज खन्ना उन जैसी काबलियत से दुकान चला

सकेंगी ?‥‥बच्चे तो अभी छोटे हैं, सबसे बड़ी लड़की है उसकी उम्र भी दस ग्यारह साल की होगी, लड़का तो आठ बरस से ज्यादा का न होगा, इसके बाद दो लड़कियाँ और हैं‥‥खन्ना जी के मरने के बाद इनका क्या होगा ?‥‥क्या लड़कियों की शादी तक इतनी जमा पूँजी बची रहेगी कि मिसेज खन्ना अपनी जिम्मेदारियों से सुबुक दोश हो सकें ? लेकिन इसमें नामुमकिन बात क्या है? मिसेज खन्ना होशियार तो हैं ही, सिर्फ अभी तजुर्बा नहीं है वह भी हो ही जाएगा‥‥और कोई दिक्कत रिश्तेदारों ने या किसी और ने पैदा की तो भी मैं तो यहाँ रहूँगा ही‥‥उन्हें किसी तरह की दिक्कत नहीं होनी चाहिए‥‥किसी तरह की दिक्कत ?‥‥यानी‥‥यानी कि उन्हें‥‥अगर हमबिस्तरी की भी जरूरत हुई तो भी मैं‥‥।

बख्तियार ने उछल कर अपने मुँह पर चार-पांच तमाचे मार लिए। उसके मुँह से निकल पड़ा "लाहौल वलाकुव्वत"। इस कलमे को वह मौके-बे-मौके यूँ ही इस्तेमाल किया करता था, लेकिन आज उसे मालूम हुआ कि यह उसके होठों से अपने पूरे और वास्तविक अर्थ में निकला है। इसका मतलब है कि डर केवल भगवान का होना चाहिए और शक्तिवान भी केवल वही है। यह कलमा विश्वासी मुसलमान शैतान को भगाने के लिए पढ़ा करते हैं; क्योंकि ईश्वर पर विश्वास करने वालों के पास शैतान नहीं फटकता। इस समय शैतान ही तो बख्तियार को उंगली दिखा रहा था, नहीं तो उसके दिमाग में इतना गन्दा खयाल ही कैसे आया ? एक आदमी रोग शय्या पर पड़ा हुआ मौत की राह देख रहा है और वह उसकी पत्नी के बारे में यह सोच रहा है ! उसने फिर जोर से कहा, "लाहौल व लाकुव्वत !"

बख्तियार ने पुस्तक बन्द कर दी और कमरे के अन्दर चक्कर लगाने लगा। आत्मग्लानि के मारे उसका बुरा हाल था। उसे महसूस हो रहा था कि उसने किसी निरपराध शिशु की निर्मम हत्या कर डाली है, जैसे उसका सारा शरीर उस निरपराध रक्त में सन गया है, वह खून उसे जला डाल रहा है और पास में पानी की एक बूँद नहीं है। उसके दिमाग में कड़वा, दम घोटने वाला धुआँ भर गया था, आंखें बन्द हो गई थीं। उसे मालूम होता था कि जैसे वह अँधेरे में भटक रहा है, पैरों में ताकत नहीं है, अब गिरा, तब गिरा। उसे रोशनी चाहिए, सहारा चाहिए। रोशनी कहाँ मिलेगी ? उसकी जबान से अनायास ही ईसाइयों का भजन निकल पड़ा, "लीड काइंडली लाइट‥‥।" लेकिन, वह कृपालु प्रकाश है कहाँ ? कहीं नहीं है प्रकाश‥‥नहीं‥‥है क्यों नहीं ?‥‥जरूर है‥‥। उसके कानों में पिछली शाम को सुने हुए शब्द फिर अपनी सुरीली झंकार के साथ गूँजने लगे, "अब तो आप दूर भी नहीं रहते, दो कदम का फासला है।"

बख्तियार अपने पर हँस पड़ा। प्रकाश उसके इतने समीप है और वह प्रकाश के लिए भटक रहा है। बख्तियार ने कपड़े पहने और टेनिस की उपेक्षा करके चैथम लाइंस चल दिया।

चाय पीता हुआ बख्तियार शकुन्तला की आँखों की तरफ देखे जा रहा था। उसके शिशुमन को ये हिलते हुए पालने बड़ा आराम पहुँचा रहे थे। वह इन आँखों के साये में अपने अन्तर्द्वन्द से छुटकारा पा गया था। उसे महसूस हो रहा था कि इन पलकों के साये में सुख और शान्ति का राज्य है, यहाँ उसे किसी तरह का रोग-शोक नहीं हो सकता। लेकिन, कब तक ? कुछ ही देर में वह फिर अपने अकेले कमरे में चला जाएगा जहाँ की तनहाई से अब उसे डर लगने लगा था; क्योंकि 'लाहौल वलाकुव्वत' कहने के बावजूद शैतान उस तनहाई में जमा बैठा था। और यह भी तय है कि वह हमेशा इस बँगले में बैठा नहीं रह सकता। फिर ? फिर शकुन्तला को उसके हाथ में ऐसी मशअल देनी ही चाहिए जिसे वह अपने साथ ले जाए। शकुन्तला को कुछ कहना ही चाहिए।

बख्तियार को फिर अपने पागलपन पर झुँझलाहट होने लगी। मशअल वह माँगेगा तभी तो मिलेगी। शकुन्तला को कुछ मालूम नहीं होगा, तो वह क्या कहेगी ? उसे अपनी कठिनाई बतानी ही होगी। बख्तियार बोला, "मिसेज गोयल ! आपको याद तो होगा ही, कल मैंने कहा था कि कभी-कभी मेरे पांव डगमगाने लगते हैं और मुझे सहारे की जरूरत होती है। आज वही हालत है।"

"हे भगवान !" शकुन्तला हँसती हुई बोली, "कल कहा और आज ही पांव भी डगमगाने लगे। बड़ा मुश्किल है आपको सँभालना। खैर, कुछ बात तो बताइए, क्या हुआ ?"

क्या हुआ, यह कैसे बताए बख्तियार ? यह भी कोई बतानेवाली बात है ? जिस विचार से उसे खुद ही डर लगता है, उसे शकुन्तला के सामने कैसे रखे ? क्या वह बख्तियार को बिल्कुल पागल न समझ बैठेगी ? नहीं, नहीं; यह बिल्कुल बेकार बात है, कोई बतानेवाली बात ही नहीं है। वह सोचने लगा—अच्छा, यह तो माना कि यह न बताऊँ, लेकिन जब बात शुरू कर दी है, कुछ-न-कुछ तो कहना ही पड़ेगा। और कहनी भी कोई ऐसी बात पड़ेगी जिससे बात बन जाए, वरना यूँ भी मुझे पागल समझ लेगी। अच्छी मुसीबत आ गई।

बख्तियार को वास्तव में पछतावा होने लगा कि वह यहाँ क्यों आया और आया भी था, तो उसने यह बात क्यों छेड़ दी।

आखिरकार उसने कहा, "बात यह है कि·····खन्ना जी की तबियत खराब है।"

शकुन्तला खुलकर हँस पड़ी, "और आपका दिमाग खराब है! है न यही बात? तभी ऐसी बहकी-बहकी बातें कर रहे हैं। खन्ना जी बीमार हैं, तो आपके पाँव क्यों डगमगा रहे हैं?"

"नहीं", बख्तियार बौखलाकर बोला, "मेरा मतलब है, वे बहुत बीमार हैं। टी० बी० का अन्देशा है।"

अबकी बार शकुन्तला नहीं हँसी। खन्ना जी उसके भी परिचित थे। यक्ष्मा किसी अजनबी को भी हो जाए तो हँसने की बात नहीं होती। उसने बख्तियार से पूछा, "आप उन्हें देखने गए थे?"

"जी नहीं, मुझे तो आज मिसेज खन्ना इत्तफाकिया तौर पर मिल गई थीं। उन्हीं ने बताया।"

शकुन्तला के और पूछने पर बख्तियार ने मिसेज खन्ना द्वारा मिलने वाली पूरी सूचना दी और यह भी कहा कि उसके बाद से वह परेशान है, लेकिन तय नहीं कर पा रहा है कि उन्हें देखने जाए या न जाए।

शकुन्तला भवें चढ़ाकर बोली, "इसमें सोचने की क्या बात है? आपको जरूर जाना चाहिए।"

"जाना तो चाहिए, लेकिन जिन हालात में मैं उनसे अलहदा हुआ था, उन्हें देखते हुए·······।"

"कहिए····कहिए, रुक क्यों गए?" शकुन्तला ने बख्तियार की झिझक तोड़ी।

"देखिए···बात यह है कि उन्होंने आपके बारे में जो कुछ कहा था, वह मैं नहीं भुला पा रहा हूँ।"

"ओह! यह बात है?" शकुन्तला बोली, "बख्तियार साहब! आप बहुत भोले भाले आदमी मालूम होते हैं। गुस्ताखी माफ हो, लेकिन आपने दिल बच्चों जैसा पाया है चाहे दिमाग जितना अच्छा हो।"

"कुछ भी कह लीजिए। लेकिन जो बात मेरे दिल में थी वह मैंने आपके सामने रख दी।"

"अब आप उस बात को दिल से निकाल डालिए।···देखिए, आप ही ने तो मुझसे कहा था कि आपके मामलों में अपनी साफ-साफ राय दे दिया करूँ? वही कर रही हूँ। आपने मुझसे कहीं ज्यादा पढ़ा-लिखा है, दुनिया भी काफी

देख चुके हैं। लेकिन, आपको एक बात किसी ने अभी तक नहीं बताई शायद। दुनिया में कोई भी नफरत के काबिल नहीं होता, एक गन्दा कीड़ा भी नहीं। कीड़े को जन्म देने में भी नेचर का कोई-न-कोई ऑब्जेक्ट पूरा होता है। फिर खन्ना जी तो इन्सान हैं, हमारी आपकी तरह पढ़े-लिखे। उनकी भी दुनिया में अपनी जगह है और ऐसी जगह है, जिसे हम आप नहीं ले सकते। अच्छा बताइए, आप उनके जैसा बिजिनेस कर सकेंगे? वे मुझे लाख गालियाँ दें, लेकिन अगर ऐसे खर दिमाग न हों, तो मेरे पाउडर-क्रीम का इन्तजाम कौन करे? फिलॉस्फरों या आर्टिस्टों के बस की तो यह बात है नहीं। तो नफरत के काबिल कोई नहीं होता। दूसरी बात यह है कि इन्सान दूसरों से नफरत भी करता है जब अन्दरूनी तौर पर खुद अपने से नफरत करने लगता है। यही हाल मुहब्बत का है—आदमी किसी से मुहब्बत तभी करता है, जब उसे जिन्दगी से मुहब्बत होती है। इसीलिए जिससे नफरत की जाती है, उसका कुछ नहीं बिगड़ता। हाँ नफरत करनेवाला खुद मौत की तरफ जरूर बढ़ने लगता है।"

"लेकिन क्या यह मुमकिन है कि किसी से नफरत न की जाए और हरएक से मुहब्बत की जाए?"

"मुमकिन तो हमेशा जिन्दा रहना भी नहीं है; फिर भी इन्सान अपनी जिन्दगी बचाने के लिए हर कोशिश तो करता ही है। और हाँ, आपके सामने तो इतनी बड़ी मुश्किल भी नहीं है। आपको उन बातों से बुरा मालूम हुआ है जो खन्ना जी ने मेरे लिए कही हैं, लेकिन जब मैं ही उनका बुरा नहीं मान रही, तो आपकी नफरत का तो कोई आधार ही नहीं रह जाता। आप बेकार शशो-पंज में न पड़िए, कल ही उन्हें देखने जाइए। फिर आकर मुझे बताइए कि एक्स-रे की रिपोर्ट में क्या निकला। मैं भी उन्हें देखने चलूँगी।"

बख्तियार मुस्कुराते हुए उठ बैठा। बोला, "शुक्रिया, मिसेज गोयल! मेरा यहाँ आना बेकार नहीं हुआ।"

उसकी समस्या का हल नहीं निकला था, लेकिन उसके विचारों को एक नया मोड़ तो अवश्य मिल गया था। वह सोच रहा था—यह बदनाम औरत कितने बड़े दिलो-दिमाग की मालिक है! यह बातें करने को सभी करते हैं—मैं भी करता हूँ—लेकिन अपने वक्त पर भूल जाते हैं। मौका आने पर खुद अपनी आदत को उसूलों की कसौटी पर कसकर खरा उतरना हरएक के बस की बात नहीं है। मैंने रहबरी के लिए गलत जगह तलाश नहीं की है।"

दूसरे दिन शाम को वह खन्नाजी को देखने गया। मिसेज खन्ना एक्स-रे फोटो लेकर उनकी जांच करवाने डॉक्टर बनर्जी के पास गई थीं। बातों ही

बातों में बख्तियार ने खन्नाजी को शकुन्तला से पिछली शाम की बातचीत भी बता दी। खन्नाजी ने कुछ नहीं कहा, हाँ उनके आँसू का एक कतरा निकल कर तकिए पर सूख गया।

तभी मिसेज खन्ना भी वापस आ गयीं। उनका चेहरा दमक रहा था। डाक्टर बनर्जी ने फोटो देखकर बताया था कि टी० बी० का कोई असर नहीं है। फेफड़े बिल्कुल साफ हैं। सिर्फ आराम की जरूरत है।

●●●

३१

खन्नाजी धीरे-धीरे अच्छे होने लगे। बख्तियार हर हफ्ते दो-एक बार जाकर उनका हालचाल पूछ आता और आकर शकुन्तला को उसकी रिपोर्ट देता। शकुन्तला खुद ही हमेशा खन्नाजी का हालचाल पूछा करती, यद्यपि उसने उनके यहाँ जाने की जरूरत नहीं समझी। महीने भर बाद यह सिलसिला भी धीरे-धीरे खत्म हो गया। बख्तियार के इम्तहान और करीब आ गए थे और वह इस समय अध्ययन के अलावा और कुछ सोचने-समझने की स्थिति में नहीं था। उसका आना-जाना शकुन्तला के यहाँ जरूर बढ़ गया था, वह भी इसलिए कि अध्ययन की एकरसता से थके हुए मस्तिष्क को आराम मिलना वहीं पर सम्भव मालूम होता था। शकुन्तला की आँखों की चमक, उसकी सुरीली आवाज, उसका उन्मुक्त हास और उसके चुभते हुए व्यंग्यात्मक वाक्य बख्तियार की सारी क्लांति दूर कर देते थे और वह वापस आकर फिर पहले जैसी ताजगी के साथ पढ़ना शुरू कर देता था।

शकुन्तला को भी मालूम था कि बख्तियार के अधिक आने-जाने का उद्देश्य क्या है, और इस उद्देश्य की प्राप्ति में वह उसकी भरसक सहायता करती—सोचती कि अगर वह किसी की भलाई के लिए इतना ही कर सके, तो बहुत है; क्योंकि अभी तक तो उसके द्वारा लोगों का अहित ही हुआ था। वह दिनभर चाहे जितनी उदास रहे, शाम को मुस्कानों की वर्षा करने के लिए जरूर तैयार

रहती। वह चुन-चुनकर बख्तियार पर छोड़ने के लिए फिकरे तैयार रखती—कभी-कभी तो एक दिन पहले से सोच लेती कि अब बख्तियार आएगा तो इस बात पर उसका मजाक उड़ाऊँगी—लेकिन साथ ही इस बात का पूरा ख्याल रखती कि कहीं धोखे से भी मुँह से कोई ऐसी बात न निकल जाए, जिससे बख्तियार के दिल को सचमुच चोट लगे।

लेकिन धीरे-धीरे मार्च के महीने में—इस सिलसिले में भी कमी होने लगी। बख्तियार के दिमाग में इस वक्त सिवाय कानून की किताबों के और कुछ न रहता। वह शकुन्तला के पास आता-जाता, लेकिन अक्सर चुप ही रहता, सिर्फ उसकी बातों पर मुस्कुरा दिया करता। उसके मस्तिष्क में कानून की समस्याओं के बादल इस तरह छाये रहते कि उन्हें भेदकर कोई बात केन्द्र तक जा ही नहीं पाती थी। इस अत्यधिक अध्ययन का प्रभाव उसके चेहरे पर स्पष्ट दिखायी देने लगा था। दिन के प्रकाश में उसकी आँखें चौंधियाई-सी रहती थीं, चेहरे से खून गायब होने लगा था और गुलाबी रंगत का स्थान एक रूखी, बेजान-सी सफेदी ने ले ली थी—जैसे चेहरे पर खड़िया की एक हलकी तह चढ़ा दी गई हो। उसके होंठों पर पपड़ियाँ जमने लगी थीं और कमजोरी इतनी बढ़ गई थी कि कभी-कभी वह शकुन्तला के घर से अपने हास्टल तक रिक्शे पर जाने के लिए मजबूर हो जाता। शकुन्तला ने इस बात पर उसे दो-एक बार डाँटा भी कि क्या इम्तहान से पहले ही चारपाई पकड़ लेने का इरादा है। इस पर बख्तियार ने उसे विश्वास दिलाया कि उसके अन्दर इतनी इच्छा-शक्ति है कि इस तरह एक क्या, छह महीने काट सकता है और बीमार होने का नाम भी नहीं लेगा। शकुन्तला इस पर चुप हो गई। ठीक है, अगर बख्तियार अपना भला-बुरा इस हद तक सोच सकता है कि किसी को उसमें दखल देने की जरूरत ही न हो, तो कोई क्या दखल देगा। जितना सीमित सहयोग वह शकुन्तला से चाहता है, उतना ही वह देगी। उसने बख्तियार से अब सिर्फ इधर-उधर की बातें करना शुरू कर दिया, उसकी निजी बातों के बारे में मामूली पूछताछ ही करती। लेकिन, अब मालूम होता था कि बख्तियार यह भी नहीं चाहता कि उसका ध्यान थोड़ी देर के लिए भी इधर-उधर बँटे। इसलिए उसने शायद अव-चेतन रूप ही से शकुन्तला के यहाँ आना कम कर दिया।

शकुन्तला को भी इस उपेक्षा के लिए कुछ बुरा न लगा। यह सही है कि पिछले डेढ़ महीने से वह बख्तियार ही से हँस-बोल सकती थी और उसने भी आना-जाना कम कर दिया, तो शकुन्तला के पास अपने एकान्त के अलावा और कोई साथी नहीं रहा। आशीष भी कभी-कभी आया करता था। लेकिन, अब

उसके और शकुन्तला के बीच न मालम कौन-सी खाईं आ गई थी, जो दिनोंदिन चौड़ी ही होती जाती थी। आशीष हर बार इस इम्प्रेशन को लेकर जाता था कि शकुन्तला उससे बेवजह नाराज है, हालाँकि उसने हमेशा जो कुछ किया है, वह शकुन्तला की भलाई के लिए ही किया है। अब वह इस नतीजे पर पहुँचा था कि शकुन्तला ने कुछ दिनों के लिए उससे महज खिलवाड़ करनी चाही थी और अब जब कि उसका जी भर गया है, तो उसने आशीष को धता बता दिया है। यह कहने की जरूरत नहीं कि आशीष में इतना संयम नहीं था कि शकुन्तला की इस 'निराधार' उपेक्षा की उसपर कोई प्रतिक्रिया न होती। कुछ भी हो, आशीष को किसी हालत में भी यह मंजूर नहीं था कि कोई उसे खिलौना बना कर खेले और जी भर जाने पर एक कोने में फेंक दे। शकुन्तला को वह दिल से चाहता था, लेकिन चाहने का मतलब यह तो नहीं होता कि भली-बुरी हर बात बरदाश्त की जाए। अतः उसे शकुन्तला पर उचित रूप ही में रोष आने लगा था। वह चाहता था कि शकुन्तला से इस उपेक्षा का बदला ले, उसे खरी-खरी सुनाये। लेकिन, सारी मुसीबत यह थी कि शकुन्तला इस बात का मौका ही नहीं देती थी—मामूली शिष्टाचार की सीमा से कभी आगे ही नहीं बढ़ती थी और यह कहने की जरूरत ही नहीं है कि अगर किसी का दिमाग बिल्कुल ही खराब न हो गया हो, तो वह चाय का प्याला देनेवाले के मुँह पर नहीं मार सकता।

आशीष ने जब भी खोद कर बात पूछनी चाही, तो शकुन्तला कावा काट गई और अब आशीष के पास इसके सिवा और कोई चारा न था कि शकुन्तला उससे जितने लियेदियेपन के साथ बात करती थी, वह उससे भी ज्यादा रुखाई दिखाए, यहाँ तक कि गोयल साहब और कभी-कभी आलोक का हाल-चाल पूछने के अलावा खुद शकुन्तला की तबियत का भी हाल न पूछे। वह आशा करता था कि शकुन्तला इस व्यवहार पर नाराजी दिखायेगी, तो उसे भी कुछ कहने-सुनने का मौका मिलेगा और अगर दोनों के बीच में कुछ गलतफहमी होगी, तो वह भी दूर हो जायेगी। लेकिन, उसकी यह चाल भी शकुन्तला ने नाकामयाब कर दी। उसने उसकी इस कृत्रिम उपेक्षा की भी पूरी तरह अवहेलना कर दी। अब आशीष ने समझ लिया कि उसे दिल पर पत्थर रखना ही पड़ेगा। शकुन्तला के यहाँ आने-जाने से कोई फायदा नहीं। रहे गोयल साहब, सो उसे गोयल साहब से कोई ऐसी मुहब्बत नहीं कि उन्हें देखेबगैर उसे चैन न पड़े। उसने गोयल साहब से एक वादा किया था, वह बगैर उसके किसी प्रयत्न के पूरा होता जा रहा है। दरअसल शुरू में आशीष को थोड़ी-बहुत परेशानी इस मामले में भी थी। उसने गोयल साहब से भावुकतावश यह वादा

जरूर कर लिया था कि शकुन्तला केवल उन्हीं की होकर रहेगी, लेकिन वह ठीक तरह समझ नहीं पा रहा था कि अपने शरीर से लिपटी हुई शकुन्तला को अलहदा करने के लिए वह अपनी बाँहों में कहाँ से ताकत लाएगा, किस जबान से उससे कह सकेगा कि तुम मुझे भूल जाओ, किन आँखों से उन रसभरी आँखों की निराशा देख सकेगा। लेकिन, जब इस कशमकश का मौका ही नहीं आया, तो आशीष को मालूम हुआ कि वह अपने ही से झूठा बन गया। गोयल साहब का यह भ्रम कि शकुन्तला आशीष को प्रेम करती है, एक हद तक उचित भी हो सकता है, लेकिन उसे खुद ऐसा भ्रम अपने बारे में क्यों हो गया? खैर जो हो गया वह हो गया, उसपर रोने-पीटने से क्या फायदा; अब तो आगे की बात देखनी है और आशीष ने धीरे-धीरे शकुन्तला के यहाँ आना बिल्कुल बन्द कर दिया।

शकुन्तला ने आशीष की बढ़ती हुई उपेक्षा को नोट न किया हो, ऐसी कोई बात नहीं थी। उसे ऐसा काम ही क्या था, जिसकी व्यस्तता में उसकी तीक्ष्ण दृष्टि आशीष के व्यवहार-परिवर्तन को न देख सकती। और ऐसी व्यस्तता शकुन्तला के लिए सम्भव ही कहाँ थी कि वह आशीष के व्यवहार की ओर से पूर्णतः उदासीन हो जाए। हाँ, यह बात जरूर थी कि अब उसे इस बात से कोई परेशानी नहीं थी। वह आशीष को देखती, तो उसका दिल चाहने लगता कि वह जल्द-से-जल्द सामने से हट जाए। इस आदमी के साथ, जो उसे कुछ दिनों के लिए अपने मनोरंजन का साधन बनाकर पल्ला झाड़ कर अलग हो गया, शकुन्तला को अब क्या दिलचस्पी हो सकती थी? यह ठीक है कि शकुन्तला आशीष में ऐसा प्रेमान्माद देखना नहीं चाहती थी कि वह सारी दुनिया को भूल कर, अपनी आर्थिक व्यवस्था की पूरी उपेक्षा करके शकुन्तला ही के पैरों पर पड़ा रहे। ऐसे पागल आदमी की शकुन्तला स्पष्टतः कोई कद्र नहीं कर सकती थी। इसीलिए जनवरी के महीने में उसकी परेशानी की हालत में आशीष उसके पास नहीं आया, तो उसे कष्ट तो बहुत हुआ, लेकिन आशीष के प्रति उसका रोष न उभरा। उसने सोचा कि आदमी बाहर की दुनिया में व्यस्त रहता ही है, उसे व्यस्त रहना ही चाहिए; औरतों के पल्ले से बँध कर आदमी कैसे रह सकता है। इसलिए आशीष की पेशेवर व्यस्तता को उसने माफ कर दिया था। लेकिन वह उसकी गोयल साहब के साथ शराबखोरी को माफ नहीं कर सकी थी। सोचती थी—यह व्यस्तता सिर्फ उसे दिखाने भर के लिए ढोंग है, वरना जो आदमी अपनी वकालत चमकाना चाहता है, वह काम के दिन दोपहर के समय बोतल खोलेगा? नहीं, आशीष किसी तरह भी काम का आदमी नहीं; न उसे संसार और समाज के प्रति अपने कर्तव्यों का बोध है, न उसी

की चिन्ता जो उसे अपना सब कुछ समझ बैठी है। वह महज एक गैर-जिम्मेदार आवारा आदमी है।

आशीष से पूर्णतः निराश होने के बाद शकुन्तला का जो बहलाने के लिए सिर्फ बख्तियार ही रह गया था। गोयल साहब आशीष द्वारा दिए गए आश्वासन के बाद आशीष के बाद आशीष की तरफ से अपना दिल साफ कर चुके थे और उससे अदालत के समय में और उसके बाद भी मिल लिया करते थे। लेकिन यह विश्वास होने के बाद भी कि शकुन्तला के पेट में उन्हीं का बच्चा है, न मालूम क्यों, वे शकुन्तला के प्रति पहले से अधिक आकृष्ट न हो सके थे। कौन जानता है शकुन्तला के प्रति उनका असंतोष किसी ऐसी बात के आधार पर हो, जिसे वह खुद न समझ पाए हों, वरना उसकी दैहिक पवित्रता के आश्वासन ने भी उनके मन को छूने से इनकार क्यों कर दिया? कुछ भी हो, खुद गोयल साहब को वर्तमान स्थिति से असंतोष न था; क्योंकि जहाँ तक शकुन्तला के प्रति उनके व्यवहार का सम्बन्ध है, वह तो कभी खराब नहीं रहा था। फिर उन्होंने शकुन्तला से वादा भी किया था कि उसकी आजादी में वे बिल्कुल दखल नहीं देंगे और इसी वादे को निभाने में उन्हें पूरा सन्तोष मिल रहा था।

बख्तियार का सीधापन शकुन्तला को बेहद पसंद आया था। बख्तियार अपने दिमाग में कोई उलझन नहीं रहने देना चाहता था, सीधे-सच्चे रास्ते पर दृढ़ता के साथ बढ़ता जा रहा था। वह हर मानी में अच्छा आदमी था, इसीलिए शकुन्तला को पसंद था। लेकिन पसंद होने का मतलब यह तो किसी तरह नहीं समझा जाना चाहिए कि वह शकुन्तला के लिए काफी था। माना आप को मिठाई पसंद है, लेकिन अगर कोई आप को हलवाई के भण्डार में कैद कर दे और आप को मालूम हो जाए कि आप को मिठाई के अलावा और कुछ खाने को नहीं मिल सकता, तो आपका मिष्ठान्न-प्रेम कितनी देर तक कायम रह सकता है? सीधे-सच्चे आदमी बहुत अच्छे होते हैं, लेकिन इसके सिवा उनसे क्या काम लिया जा सकता है कि उनकी हर आने-जाने वाले से प्रशंसा कर दी जाए कि वे बहुत अच्छे आदमी हैं और कभी-कभी उनका दिल बढ़ाने को उनकी पीठ ठोंक दी जाए।

यह भी सही है कि बख्तियार शकुन्तला को अपनी पथ-प्रदर्शिका बनाए था और शकुन्तला को अपने महत्व का जो बोध हुआ, उसने उसके जीवन को पूर्णतः निराश होने से बचा लिया था। लेकिन, क्या महत्व पाने भर से आदमी का काम चल जाता है? मालूम नहीं, पत्थर के देवी-देवताओं के अन्दर अगर धड़कने वाला दिल और सोचने वाला दिमाग होता, तो वे दिन-रात की महज

पूजा-अर्चना से सन्तोष का अनुभव कब तक करते। खैर, वे जो कुछ करते वह करते, इन्सान को प्रतिष्ठा के अलावा भी किसी चीज की जरूरत होती है--किसी ऐसे साथी की भी जरूरत होती है, जो उसकी भावनाओं को, उसकी आवश्यकताओं को समझ सके, उससे मतभेद होने पर लड़-झगड़ सके, उसकी सफलताओं पर सुखी और असफलताओं पर दुखी हो सके, उसे हर बात में सलाह दे और हर बात में उसकी सलाह माँगे, उसे अपनी ही तरह समझे। भक्तगण का क्या है--सुबह-शाम घण्टी बजायी, फूल और नैवेद्य चढ़ाया, आरती उतारी और फिर देवता को बन्द कर दिया। देवताओं को भी इसकी चिन्ता नहीं होती; क्योंकि न उन्हें सर्दी-गर्मी सताती है, न वे साँस ही लेते हैं कि बन्द मन्दिर की घुटन महसूस कर सकें और शकुन्तला को कोई देवी समझें या दानवी, वह कम से कम पत्थर की बनी नहीं थी।

इसीलिए कुछ ही दिनों बाद बख्तियार की आज्ञाकारिता उसे खल गई। कभी-कभी उसकी इच्छा होती कि लड़-झगड़ कर उसे उत्तेजित करे, लेकिन फिर वह रुक जाती। एक तो संघर्षों ही नहीं, विजयों का भी उसे कुछ अच्छा अनुभव नहीं था, दूसरे उसे बख्तियार पर तरस भी आ जाता—बेचारा सीधा-सादा आदमी है। राजनीतिक जीवन छोड़कर जी-जान से पढ़ने में जुटा है, ताकि वकालत करके रोटियाँ जुटाने का सामान पैदा कर सके। इसे परेशान किया, तो यह बरबाद हो जाएगा और फिर इसे बरबाद किया भी, तो क्या मजा आया? कच्चे अमरूद को डाल से तोड़ भले लो, खाने में तो कसैला गूदा और बीज ही मिलेंगे।

इसीलिए जब बख्तियार ने उसके घर आना कम कर दिया, तो उसे दुःख नहीं हुआ। ठीक है, जब उसे कुछ जरूरत होगी, तो वह स्वयं आ जाएगा। वह क्यों फिक्र करे? उसे तो बख्तियार को देना ही देना है, कुछ लेना तो है नहीं उससे और इस समय वह क्या दे और कहाँ तक दे? उसका भी तो खजाना खाली होता मालूम होता है, उसे भी तो आखिर किसी से कुछ लेने की जरूरत है।

चुनांचे ले-दे कर शकुन्तला के लिए एक ही साथी बच रहे थे—और वे थे, श्री सर्वेश कुमार माथुर। कहने में तो बात भद्दी लगती है, लेकिन सच्चाई यही है कि आशीष ने शकुन्तला के सामने मजाक-ही-मजाक में माथुर साहब के लिए जो विशेषण प्रयुक्त किया था, वह बावन तोले पाव रत्ती ठीक था। इस सवा साल के अर्से में वे शकुन्तला के आस-पास उसके वफादार······की तरह घूमते रहे थे। उसने श्रृंगार छोड़कर सादगी का बाना ओढ़ा, तो भी माथुर साहब को नए ही सौंदर्य का अनुभव हुआ और जब सफेद कपड़े फेंक कर फिर रंगीनी पर

आ गई, तो नवीनतम सौंदर्यबोध का; जब वह दर्शन में रुचि लेने लगी, तो माथुर साहब को उसमें आधुनिक बौद्धिक भाव-बोध दिखायी दिया और जब वह दुबारा रंग-मंच पर आई, तो माथुर साहब ने अपनी नाटक समालोचना में (जो शकुन्तला के डबल कॉलम चित्र के नीचे छपी थी) उसे "भावना-संसार की रानी" का खिताब दे डाला। यहाँ तक कि जब उन्हें मालूम हुआ कि शकुन्तला गर्भवती है तब भी वे निराश न हुए, उनके अवचेतन में शकुन्तला की सृजनात्मक क्षमता का विश्वास और जम गया।

कहने की जरूरत नहीं कि जब माथुर साहब शकुन्तला के लिए चाय-पानी दौड़-दौड़ कर लाने के लिए भी तत्पर रहते थे, तो इस समय उसकी महीनों की उदासी देखकर चैन से कैसे बैठ सकते थे। उन्होंने कभी-कभी लक्षणा और व्यंजना में शकुन्तला से इस उदासी का कारण पूछना चाहा, तो वह उनकी बात न समझने का बहाना कर गई और माथुर साहब अपनी 'नई कविता' की व्याख्या करने में असमर्थ रहे।

कुछ भी हो, माथुर साहब को इधर एक बात का सन्तोष था। वह यह कि इधर आशीष ने आना बिल्कुल छोड़ दिया था। वह एक सफल वकील और कलाकार सही, लेकिन माथुर साहब के सांस्कृतिक मानदण्डों पर बिल्कुल पूरा न उतरता था। उसके व्यवहार, चलने और बोलने के तरीके और उसकी छत उड़ा देने वाली हँसी से माथुर साहब को विश्वास हो गया था कि आशीष की रुचि का परिष्कार बिल्कुल नहीं हुआ है। उनकी समझ में यह बिल्कुल नहीं आता था कि शकुन्तला-जैसी सुसंस्कृत महिला आशीष-जैसे उजड्ड की भक्त कैसे हो गई। उन्हें शकुन्तला की इस रुचि पर कभी-कभी रोष आता और वे उससे अलहदा होने का प्रयत्न भी करते, लेकिन उसकी आँखें उन्हें बरबस ही मीलों मोटर साइकिल पर दौड़ा कर चैथम लाइंस के लाल बँगले में पहुँचा देतीं।

माथुर साहब को उनके विरोधीगण मूर्ख भले ही कह लें, लेकिन दरअसल वे बिल्कुल मूर्ख थे भी नहीं। जब तक शकुन्तला आशीष के प्रति आकृष्ट रही, तब तक किसी तरह की खींचतान करना उन्हें बेतुका मालूम हुआ, बल्कि भलाई इसी में जान पड़ी कि आशीष से दिली नफरत करते हुए भी वे शकुन्तला के सामने कभी-कभी उसकी प्रशंसा कर दिया करें। पत्रकार होने के नाते वे अच्छी तरह जानते थे कि राजनीतिक नेताओं को सफलता इसी तरह मिलती है कि वे दिल की बात जबान पर न लाएँ, बल्कि दिल में जो कुछ रखें जबान से ठीक उसका उलटा कहें, चुपचाप अवसर की प्रतीक्षा करते रहें

और अवसर आने पर अतीत और वर्तमान की सारी बातें भूलकर अवसर का लाभ उठा लें।

अतः माथुर साहब को भी सब्र का फल मिला। मसल मशहूर है कि बारह बरस में घूरे के भी दिन फिरते हैं। माथुर साहब कोई घूरे न थे, अच्छे-खासे, पढ़े-लिखे, खाते-पीते इन्सान थे, इसलिए उनके दिन साल भर के अन्दर ही फिरते हुए दिखाई दिए। उन्होंने तय कर लिया कि उन्हें इससे अच्छा कोई मौका नहीं मिलेगा; क्योंकि इस वक्त मैदान में अकेले वही थे।

अतः एक दिन उन्होंने 'प्रस्तावना' आरम्भ कर दी। होली बीत चुकी थी, लेकिन संस्थाएँ अब भी उदास थीं। ऐसी ही एक उदास सन्ध्या को शकुन्तला बँगले के लॉन में चुपचाप अनमनी बैठी थी कि माथुर साहब की मोटर साइकिल ने बँगले के अहाते में प्रवेश किया। आधुनिक साहित्य के प्रेमियो को उदासी, बल्कि अकारण उदासी, से अधिक प्रेरणा देने वाली कोई चीज नहीं होती। इसलिए उक्त प्रेरणा पाकर माथुर साहब के आधुनिक भाव-बोध ने भी सृजनात्मक रूप ग्रहण किया।

उसके पास आकर कुछ देर इधर-उधर की बेमतलब की साहित्यिक बातें (जिन्हें सुने बगैर ही शकुन्तला हूँ-हाँ करती रही) करने के बाद माथुर साहब मूल विषय पर आए। बोले, "आप आजकल कुछ परेशान-सी दिखाई देती हैं शकुन्तला जी! आखिर बात क्या है?"

शकुन्तला के सामने माथुर साहब अभी तक साहित्य और कला को छोड़कर निजी दुःख-सुख की बातें नहीं करते थे, इसलिए इस प्रश्न पर शकुन्तला को कुछ आश्चर्य तो हुआ, लेकिन वह अपनी ही उदासी में फँसी बैठी थी। उसने इस पर अधिक ध्यान नहीं दिया। बोली, "नहीं तो! ऐसी कोई बात नहीं।"

माथुर साहब ने आधे मिनट सोचा कि इसके बाद क्या कहा जाए। फिर बोले, "आप न बताना चाहें तो आपकी खुशी; लेकिन आप किसी बात से परेशान जरूर हैं। यूँ तो यह आप ही का मामला....।"

शकुन्तला अबकी बार चौंकी। माथुर साहब क्या वास्तव में इतने आत्मीय हो उठे हैं? गौर से देखा, तो मालूम हुआ कि माथुर साहब की आँखें वाकई आत्मसमर्पण के लिए दृढ़प्रतिज्ञ हैं। उसकी उदासी दूर हो गई। दिमाग के किसी कोने में फिर सुरसुराहट शुरू हुई। वह हँसकर बोली, "उदास होने में अपना-पराया क्या होता है माथुर साहब? जब मुसीबत पड़ती है, तो उदासी आ ही जाती है। और यूँ कोई खास बात नहीं, लेकिन कभी-कभी अकारण ही संगी-साथी अलग हो जाते हैं, तो बुरा लगता ही है। इस समय तो आप

आ जाते हैं, तभी थोड़ा बहुत जो बहलता है वरना अपने लिए तो बस एकान्त ही एकान्त है।"

माथुर साहब बोले, "मैं तो हर तरह से आपकी सेवा के लिए प्रस्तुत हूँ। आप ही अवसर नहीं देती।"

माथुर साहब जिस तेजी से आगे बढ़ रहे थे, शकुन्तला उसके लिए तैयार नहीं थी। उसने उन्हें छेड़ जरूर दिया था, लेकिन अब वह चाहती थी कि बात आगे न बढ़े। उसका जी इस समय अच्छी तरह खिलवाड़ करने को भी न चाह रहा था। इसलिए उसने चुप रहना ठीक समझा और वह दूसरी तरफ देखने लगी। माथुर साहब ने समझा कि वह अगली बात की प्रतीक्षा कर रही है। बोले, "शकुन्तला जी! मैं उस एक क्षण की प्रतीक्षा में सारी आयु बिता सकता हूँ, जब आप मुझे अपना समझ कर मुझसे कुछ सेवा लें।"........."मैं इस बात को हमेशा दिल में दबाए रहा, लेकिन अब यह कहने को मजबूर हूँ कि मेरे मन और प्राण में आप ही बसी हैं।"

शकुन्तला की रही-बची उदासी और मानसिक आलस्य समाप्त हो गया। वह तेजी से सोचने लगी कि क्या करना चाहिए—क्या इस खेल को आगे बढ़ाया जाए? लेकिन क्या फायदा? कोई खेल देखने वाला तो है ही नहीं। आशीष होता तो कुछ मजा भी आता। इस वक्त तो मामला एकदम से खत्म ही कर देना चाहिए। माथुर साहब नाराज हो जाएँगे तो क्या करेंगे? यही न कि मेरी पब्लिसिटी बन्द कर देंगे, सम्भव है अगले नाटक में (अगर वह हो) मेरी बुराई भी लिख डालें। लेकिन, इससे क्या फर्क पड़ता है? पहले भी मैंने लोकमत की कितनी परवा की है, जो अब करूँगी। नहीं, अब पटाक्षेप हो जाना चाहिए।

बोली, "माथुर साहब! आपको मालूम है कि आशीष ने आपके बारे में क्या कहा था?"

माथुर साहब ने अभिज्ञता प्रकट की, तो वह बोली, "उसने कहा था कि माथुर साहब कुत्ते की तरह दुम हिलाते घूमते हैं। मैंने उसे इस बात पर कड़ी फटकार बतायी थी कि किसी शरीफ आदमी के लिए ऐसी बात क्यों कहते हो। लेकिन मुझे अफसोस है कि आप उसी की बात सच साबित कर रहे हैं।"

माथुर साहब वास्तव में मूर्ख न थे। उन्होंने शकुन्तला को कुछ कहने-सुनने का मौका न दिया। चुपचाप अभिवादन किए बगैर उठ आए। उनकी कहानी सुखान्त के बजाय दुखान्त हो गई थी। लेकिन उन्होंने आधुनिकता इसी में देखी कि उसमें 'ऐक्शन' का प्रवेश न होने पाए।

● ● ●

३२

शकुन्तला ने माथुर साहब को भगा दिया, लेकिन इसका नतीजा उसके लिए भी कुछ अच्छा न निकला। माथुर साहब का व्यवहार चाहे जितना अजीब रहा हो, लेकिन यह कहना गलत है कि उनमें आत्मसम्मान नहीं था। वे उस शाम को चैथम लाइंस से वापस हुए, तो उन्होंने फिर पूर्वोत्तर दिशा की ओर देखना ही छोड़ दिया और नगर के उस अपेक्षाकृत निर्जन भाग में अपने बँगले में बैठी हुई शकुन्तला बिल्कुल अकेली रह गई। अब वह थी और उसकी उलझी हुई विचारधारा। माथुर साहब के अन्तिम दर्शन के बाद दो-चार दिन तक शकुन्तला को एक तरह से राहत ही महसूस हुई; क्योंकि अब उसके विचार में दखल देने वाला कोई नहीं रह गया था। उसे अकेली बैठ कर सोचने में कुछ मजा भी आने लगा था। यूँ सोचने के लिए कोई खास समस्या उसके सामने थी भी नहीं; यूँ ही अपनी संक्षिप्त जीवन-पुस्तक के पन्ने उलटा करती। मस्तिष्क जब बहुत थक जाता है, तो उसे सबसे ज्यादा आराम अतीत की छोटी-छोटी घटनाओं की स्मृति जागृत करने ही में मिलता है, उसी तरह जैसे बीमारी के बाद शक्ति संचय करते हुए रोगी को हलका-फुलका साहित्य ही आराम पहुँचाता है, वह गंभीर साहित्य पढ़ने के योग्य नहीं होता।

फिर भी यह आराम और शक्ति संचय की स्थिति कब तक चल सकती थी? दो-चार दिन बाद ही शकुन्तला को मालूम हो गया कि उसने माथुर साहब के साथ दुर्व्यवहार करके बड़ी भूल की। अगर वह यही बात उन्हें किसी और तरह समझा देती, तो क्या हर्ज था—आखिर खन्ना साहब को भी तो उसने यही समझाया था। माथुर साहब की बुद्धिहीनता कम-से-कम खन्ना जी की हद तक बढ़ी हुई तो हरगिज नहीं थी। वे उस तरह कहने पर बुरा न मानते और कम-से-कम दस-पन्द्रह दिनों में एक बार तो इधर का चक्कर लगा ही लिया करते।

दिन भर अकेले पड़े-पड़े जी घबराने लगता, तो अपने बच्चे से जी बहलाने की कोशिश करती; लेकिन बच्चे और बड़े में यही तो फर्क होता है कि बच्चा खिलौनों से खेलना चाहता है, खुद खिलौना बनने के लिए तैयार नहीं होता, वयस्क आदमी खिलौनों से खेलना अपनी शान के खिलाफ समझता है, इसलिए खुद

खिलौना बन जाता है। शकुन्तला के लिए यह आसान था कि जिस आदमी को एक बार निराश करके हटा दिया, उसे एक ही मुस्कान या करुण दृष्टि से दुबारा आकृष्ट कर ले, लेकिन, आलोक के साथ उसकी यह चाल कामयाव न हुई। वह दो साल का हो गया था, मम्मी-पापा जैसे कुछ शब्द बोल भी लेता था, खाने-पीने के मामले में अपनी रुचि या अरुचि का जोरदार प्रदर्शन भी कर लेता था और किसके पास रहे, किससे दूर भाग जाए, इस मामले में तो बिल्कुल निरंकुश तानाशाह की तरह काम करता था। जिस व्यक्ति के प्रति उसको अपनी रुचि न होती, उसके द्वारा दिए गए हर एक लालच को वह योगी-यती की तरह अस्वीकार कर देता था और किसी की जवरदस्ती तो उसे बिल्कुल वरदाश्त ही नहीं थी। जिस वातावरण में वह पला था, उसका अपना अगर कोई था, तो उसकी आया ही थी। माँ-बाप को 'मम्मी' और 'पापा' कहना उसी ने सिखाया था। इसलिए वह उन्हें उसी तरह इस सम्वोधन से आकृष्ट करने लगा था, जैसे हम सड़क पर खड़े होकर अपने किसी परिचित रामलाल या मनमोहन दास को आवाज दे लेते हैं और अगर उसने हमारी आवाज न सुनी, तो अपनी राह पकड़ लेते हैं। शकुन्तला की घर के बाहर की कार्रवाइयों में व्यस्तता और गोयल साहब की शराबखोरी पर निश्चय ही उसे कोई आपत्ति नहीं थी। यह मामूली जान-पहचान के लोग, जो रोजाना किसी तरह उसकी आँखों के आगे आ जाते थे, अगर कभी-कभी ऐसी हरकतें करने लगते, जो उसकी समझ में नहीं आती थी, तो वह उनकी चिन्ता क्यों करता? दुनिया भर के लोग क्या करते हैं, इसमें उसके छोटे से मास्तिष्क को बिल्कुल दिल-चस्पी नहीं थी। उसके लिए उसकी आया ही काफी थी जो उसकी मित्र, अन्न-पूर्णा आदि सब कुछ थी।

इसीलिए जब शकुन्तला ने आया कि जगह लेनी चाही, तो आलोक एकदम से सत्याग्रह कर बैठा। वह इस स्थिति से बिल्कुल समझौता न कर सकी कि जो दूध का गिलास उसकी अपनी आया देती थी, उसे यह 'मम्मी' नाम की स्त्री दे। उसने दूध पीने से इन्कार कर दिया, हालाँकि भूख के मारे उसका बुरा हाल था। वह जमीन पर लोटने लगा। शकुन्तला ने उसे पुचकारा, दुलराया, लेकिन उस पर कोई असर न हुआ। हम सभी लोगों की तरह शकुन्तला भी इस गलतफहमी में थी कि बच्चे तो बच्चे ही हैं, जरा-सा दुलारने-पुचकारने से मान जाते हैं। वह यह नहीं जानती थी कि ममता और प्रेम की वास्तविक गहराई को बच्चों का अविकसित मस्तिष्क जितना परख लेता है, उतना वयस्कों का तर्क-बुद्धि के धुएँ से घुटा हुआ मस्तिष्क कभी नहीं देख पाता। महीनों की उपेक्षा का बदला शकु-न्तला दो मिनट के दुलार में ही चुकाना चाहती थी और आलोक को इतना घाटे

का सौदा मंजूर नहीं था। वह महीनों और दिनों का हिसाब याद नहीं रख सकता था, लेकिन उसे यह मालूम था कि हमेशा उसके साथ रहने वाली आया की जगह अगर कोई दूसरा व्यक्ति ले सकता है, तो धीरे-धीरे ही ले सकता है, एकदम से नहीं और शकुन्तला हर काम को चटपट कर डालने की आदी थी। जब उसके मातृस्नेह को आलोक ने क्रूरता पूर्वक ठुकरा दिया, तो उसे स्वभावत: ही क्रोध आया। उसके स्नेह की डोरी से जब बाहर वाले लोग बँधे चले आते हैं, तो उसी के इस मांसपिण्ड को उससे इतना विद्रोह करने का क्या अधिकार है? परेशानियों से उसका दिमाग वैसे भी उलझा हुआ था। वह उचित-अनुचित में भेद न कर सकी और उसने आलोक को कस कर एक तमाचा जड़ दिया। आलोक बिल-बिला उठा।

पास में खड़ी आया भी उचित-अनुचित का ध्यान भूल गई। उसने आगे बढ़कर शकुन्तला को धक्का दिया और बिलखते हुए आलोक को गोद में उठा लिया। शकुन्तला की तरफ लाल-लाल आँखें निकालकर बोली, "बहू जी, आप पागल हो गई हैं क्या? देखो तो फूल से बच्चे का गाल सुजा दिया! आपको यही करना हो तो दूसरी आया रख लीजिए, मैं अपने बच्चे को इस तरह पिटते नहीं देख सकती।" फिर आलोक को गोद में हिलाती हुई बोली, "नाईं···नाईं, मेरे लाल, रोते नहीं हैं। मम्मी बड़ी बुरी हैं, हम उन्हें मारेंगे। ले बेटा, दूध पी ले। कैसा अच्छा है मेरा राजा मुन्ना! कैसी बात मानता है!"

आलोक सुबकियाँ लेते हुए दूध पीने लगा। शकुन्तला चुपचाप वहाँ से हट आई और अपने कमरे में आकर पलंग पर लेट रही। वह माँ जरूर बन गई थी, लेकिन मातृत्व के राज्य का संचालन उसे न आता था, वह उसे दूसरे के हाथों में देने को विवश थी।

खैर माँ न रही, पत्नी तो वह अच्छी तरह बन ही सकती थी। गोयल साहब ने तो उसकी जगह किसी और को नहीं दी थी। जिस स्थान को उसने खुद ठुकरा दिया था, उसे तो वह फिर पा ही सकती थी। उसने गोयल साहब पर पहले से ज्यादा ध्यान देना शुरू किया—उनसे हँसकर बातें करने लगी, उनके पहनने-ओढ़ने, खाने-पीने पर ज्यादा ध्यान देने लगी। गोयल साहब का व्यवहार तो पहले ही से शकुन्तला के साथ कोई बुरा नहीं था, इस बात से उन्हें और भी सन्तोष हुआ। पति-पत्नी का परस्पर वार्तालाप लम्बा और हास-परिहास युक्त होने लगा।

लेकिन गोयल साहब के साथ अपनी सफलता की जब उसने मामूली परीक्षा करनी चाही, तो उसे निराशा ही हाथ लगी। शकुन्तला ने कहा, "आपकी

तन्दुरुस्ती खराब हो रही है, शराब छोड़ दीजिए।" इस पर गोयल साहब ने पहले तो हँसकर बात उड़ानी चाही, लेकिन शकुन्तला जब पीछे पड़ी, तो उन्होंने साफ इन्कार कर दिया। कहा, "तुम क्या जानो, रानी! यह जहर मेरे मुँह न लगता तो तुम्हारा सुहाग भी अभी तक उजड़ गया होता। तुम अपने लिए जो कुछ भी चाहो कह दो, मुझे इन्कार नहीं है। लेकिन····।"

शकुन्तला मन-मसोस कर रह गई। अश्रु-ग्रंथियाँ निष्क्रिय हो गई थीं और मस्तिष्क में इतनी शक्ति ही न थी कि किसी पर क्रोध करती। उसका भाग्य ही ऐसा मालूम होता था कि सभी कुछ उसके हाथ में आ-आकर निकल जाए। पुत्र को आया ने छीन लिया था, पति को शराब ने; प्रेमी केवल वकालत का होकर रह गया था और मित्र वकालत की परीक्षा का। किसी स्त्री से मुकाबला हो तो शकुन्तला को कोई परेशानी न थी, लेकिन जब सौतें खूसट आया या बादामी रंग के ज्वलनशील द्रव्य या वकालत और अध्ययन जैसी भाववाचक संज्ञाओं का रूप लेकर आएँ, तो बेचारी शकुन्तला क्या करे।

निश्चय ही करने को कुछ नहीं था। वह दिन भर पड़ी-पड़ी अपनी पुस्तकों से उलझी रहती, लेकिन पुस्तकों में संचित ज्ञान की बेजान लाशें ही उसे छपे हुए अक्षरों के रूप में दिखाई देतीं। वह सोचती—यह उपन्यास नाम की चीज है···दावा करती है कि जीवन का निग्दर्शन कराती है। क्या बात है! अरे लेखक महोदय, तुमने खुद भी जीवन देखा है जो दूसरों को दिखाओगे? तुम निष्क्रिय आराम कुर्सी पर पड़े हुए कल्पना-संसार में विचरण करने वाले पुरुष! तुम क्या समझो कि नारी की भावनाएँ क्या होती हैं?

शकुन्तला उपन्यास बन्द कर देती, कोई दर्शन की किताब उठाती और सोचती—इन अफलातून साहब ने क्या प्रवचन किया है?····वाह वाह! आसमान की खबरें लाने वालों, कभी जमीन पर भी चले हो? है तुम्हारे पाँवों में इतनी ताकत कि इस ऊबड़-खाबड़ कँकरीली, पथरीली जमीन पर चल सको? नहीं, बच्चो! यह तुम्हारे बस का काम नहीं है। तुम अपने दिमाग को कसरत करा-कराकर पहलवान बनाओ और अखाड़े में जोर करके वाहवाही लूटो, इनाम जीतो और खुश रहो।

दर्शन सम्बन्धी पुस्तक भी बन्द हो जातीं। उसका चेहरा तकिये में गड़ जाता और उसकी घनी काली केश राशि, कशीदाकारी के फूलों पर बिखर जाती और डेढ़-डेढ़ घण्टे तक बिखरी रहती।

दिन भर इसी तरह बिताने के बाद शाम को गर्मी कम होने पर शकुन्तला अपनी चिरपरिचित सड़क पर अपनी उदासी का उसकी उदासी से आदान-प्रदान

करने चली जाती। यूनिवर्सिटी भी सुनसान हो रही थी, अधिकतर परीक्षाएँ समाप्त हो रही थीं। या तो कानून के छात्र रह गए थे, जो अपनी परीक्षा की प्रतीक्षा कर रहे थे या फिर बी० ए० के प्रथम वर्ष के छात्र। शकुन्तला बख्तियार के बारे में सोचती जा रही थी कि वह इस समय भी पुस्तकों में आँखें गड़ाए पड़ा होगा और यह सोच-सोचकर उसे हँसी आ रही थी कि परीक्षाएँ भी अच्छे-खासे आदमी की क्या सूरत बना डालती है। तभी एक छात्र महोदय पास ही से लहराकर गाते हुए निकले :—

उसी दिन को तो कत्ले आशिकाँ से मना करते थे,
अकेले फिर रहे हो यूसुफे-बेकारवाँ होकर!

छात्र महोदय लगातार इस एक शेर को गाए चले जा रहे थे। शकुन्तला ने उनकी ओर देखा। क्या कोई नए स्ट्रीट रोमियो पैदा हुए हैं, जिनकी मस्ती इन परीक्षा के दिनों में भी कायम है? लेकिन नहीं, छात्र महोदय उसकी ओर देख भी नहीं रहे थे। साफ मालूम होता था कि कोई बी० ए० के छात्र हैं, जो एक विषय उर्दू भी लिए हुए हैं और पाठ्यक्रम में नए पढ़े हुए पुराने उस्ताद 'वजीर' लखनवी के इस शेर की मस्ती को अपने हृदय में सँजोकर रखने में असमर्थ हैं। शकुन्तला उनसे निरपेक्ष होकर आगे बढ़ी, लेकिन छात्र महोदय तोते की तरह शेर दुहराए ही चले जा रहे थे। शकुन्तला की इच्छा हुई कि उन्हें पुकार कर कहे कि अगर कोई दूसरा शेर याद हो तो उसे गाएँ, इस तरह बोर न करें। लेकिन, वह चुप रही।

घर आकर खाना खाया, लॉन में पलँग डलवा कर पड़ रही और मच्छरदानी के महीन वितान से झलकते हुए सितारे देखने लगी। अचानक उसे मालूम हुआ कि सितारों से भी वही आवाज आ रही है, जो छात्र की थी। उसने अब इन शब्दों के अर्थ पर गौर करना शुरू किया....और उठकर बैठ गई।

ठीक ही तो है। अगर वह इस समय अकेली रह गई है, तो इसमें किस्मत का क्या दोष है। उसने एक-एक करके सभी के मामले को देखा। आलोक उसकी गोद में नहीं आना चाहता। क्यों? इसीलिए कि उसने आलोक को गोद में लिया ही नहीं। पति का प्रेम वह दुबारा प्राप्त नहीं कर सकती। क्यों? इसीलिए तो कि पति की भावनाओं की अपेक्षा उसे हमेशा अपनी प्रतिष्ठा और अपनी ही भावनाओं का ध्यान रहा। बख्तियार ने उससे मित्रता का सम्बन्ध तोड़ लिया। क्यों? इसलिए कि उसने मिसेज खन्ना के मामले में उसकी भावनाओं को बिल्कुल कुचल दिया था। यह ठीक है कि वह फिर उसके पास आया था, लेकिन अब वह मित्र की हैसियत से कहाँ आया था और इस बार भी अगर वह सरसरी

तौर पर बख्तियार की बातें सुनकर चलती-फिरती राय दे देने की अपेक्षा अधिक अपनत्व का प्रदर्शन करती, तो भी क्या बख्तियार इस तरह पढ़ाई में उसे बिल्कुल भूल जाता ? नहीं, बख्तियार के मामले में भी अधिकतर दोष शकुन्तला ही का है। और आशीष ? आशीष की याद आते ही शकुन्तला के दिल पर चोट-सी लगी। उसने शकुन्तला के प्रेम की नाकद्री की थी। वह सोचती—लेकिन·······लेकिन यह भी तो हो सकता है कि उस दिन कोई खास बात हो······आशीष को मैंने गैरजिम्मेदार आवारा आदमी समझ रखा है। क्यों ? क्या सिर्फ एक ही कार्य से आदमी का पूरा चरित्र आँका जा सकता है ? अगर कोई नया आदमी हो, तो एक हद तक यह बात भी ठीक हो सकती है। लेकिन, आशीष तो मेरे लिए नया नहीं है। वह अजनबी है, तो परिचित कौन है ? अपने घनिष्ठतम के बारे में भी कहीं ऐसी मनोवृत्ति अपनायी जाती है कि एक बात देखी और हमेशा के लिए बात-चीत बन्द ? अगर मैं उससे पूछ लेती कि वह यह तमाशा क्यों कर रहा था, तो क्या वह मेरी शंका का समाधान न कर देता ? उस बेचारे ने तो खुद ही कई बार बात छेड़ी, मैं ही हमेशा कावा काट गई। हद है मूर्खता की ! मैं शिकायत करती हूँ कि आशीष ने मेरी उपेक्षा की। इससे ज्यादा बेतुकी बात और क्या होगी ? वस्तुत: मैंने ही उसकी उपेक्षा की है। उसके दिल पर क्या बीत रही होगी ? क्या वह यह न समझ रहा होगा कि शकुन्तला जैसी कृतघ्न स्त्री दुनिया में और कोई नहीं ? और फिर उसका दोष भी क्या था ? उसके लिए या गोयल साहब के लिए मद्यपान कौन-सी नई बात है, जिस पर मैं इतना भड़क उठी ? क्यों मैंने उसे आवारा और गैर-जिम्मेदार समझ लिया ? गैर-जिम्मेदार लोग 'हेमलेट' का संचालन कर सकते हैं ? आवारा लोगों के बस की बात है कि वकालत को दिन-दूना रात-चौगुना चमकाते जाएँ ? नहीं, नहीं, आशीष का बिल्कुल कसूर नहीं है। सारा कसूर मेरा है····सारा कसूर मेरा है।

उसकी इच्छा हुई कि उसी समय उठ कर चल दे, आशीष के पैरों पर गिर पड़े और अपनी अगली-पिछली सारी गलतियों के लिए उससे माफी माँग ले। बँगले में सब सोए पड़े थे। वह फाटक पर आकर रुक गई। रात भयानक दिखाई दे रही थी। कदम बढ़ाने की हिम्मत न हुई। तभी बँगले का चौकीदार पास आ गया। बोला, "क्या बात है सरकार ? आप यहाँ कैसे ?"

कोई बात तो बनानी ही थी। जल्दी से वह बोली, "तुम कहाँ थे, चौकीदार ? मैंने अभी एक अजीब-सी आवाज सुनी है। समझ में नहीं आया कि क्या बात है इसीलिए यहाँ आ गई।"

"तो सरकार मुझे आवाज दे लेतीं, मैं तो रात भर यहाँ चक्कर लगाता हूँ। कैसी थी वह आवाज ?"

शकुन्तला क्या बताती कि आवाज कैसी थी ? तभी एक अजीब तरह की आवाज आई—हँसी, खाँसी और चीख के बीच की। शकुन्तला ने कहा, "यही आवाज थी।" चौकीदार घबराया। उसकी वास्तव में आँख लग गई थी। उसे भी बात बनाना जरूरी मालूम हुआ। हँस कर बोला, "अरे सरकार, यह तो मैंने भी सुनी थी। लकड़बग्घा बोल रहा है। आप बिल्कुल न घबड़ाएँ सरकार ! बँगले की चहारदीवारी काफी ऊँची है। लकड़बग्घा इसे फाँद कर आ ही नहीं सकता। फाटक बन्द ही रहता है और फिर सरकार मैं काहे के लिए यहाँ बैठा हूँ ? मैं तो मुस्तैद रहता ही हूँ।"

बातचीत से गोयल साहब की आँखें खुल गईं। उन्होंने पूछा, "क्या बात है चौकीदार ? कोई चोर है क्या ?"

"नहीं, हुजूर। उधर हरिजन आश्रम की तरफ लकड़बग्घा बोल रहा है। बहू जी उसी से डर गई थीं।"

"हाँ, लकड़बग्घों के हमले आजकल बहुत हो रहे हैं। कल से तुम्हारे लिए बन्दूक का इन्तजाम करा देंगे। चला तो लेते हो ? कहो तो एक चौकीदार और रख लिया जाए।" गोयल साहब बोले।

"नहीं सरकार, क्या होगा चौकीदार का ? हाँ, बन्दूक मिल जाए तो फिर क्या बात है !"

गोयल साहब फिर सो गए। चौकीदार फौजी मुस्तैदी से घूमने और "हः हा" करने लगा। शकुन्तला फिर अपनी मच्छरदानी के अन्दर लेट रही। सोचने लगी—अच्छा हुआ, चौकीदार आ गया, वरना मैं पागलपन में शायद बाहर चली ही जाती। देखने वाले क्या कहते कि आधी रात को यह औरत कहाँ जा रही है ? कोई पुलिस वाला पकड़ लेता, तो ? खैर पुलिस से तो कोई दिक्कत न होती, मुंसिफ साहब का नाम काफी था; लेकिन कोई लकड़बग्घा मिल जाता तो ? वह तो हमला कर ही देता, उसे मुंसिफ साहब के उहदे की क्या परवा हो सकती है ?

शकुन्तला डर के मारे पलँग पर ही काँपने लगी। हाल ही में पत्रों में एक चित्र छपा था, जिसमें एक बालिका का मुर्दा सर और एक बाँह ही दिखाई दे रही थी; क्योंकि लकड़बग्घे साहब उसका शेष शरीर खा गए थे। वह फिर सोचने लगी—चौकीदार कह रहा था कि यह लकड़बग्घा हरिजन आश्रम की तरफ बोल रहा था। उस दिन हमलोग भी तो उसी तरफ गये थे जब आशीष ने मुझे···। अगर उस समय ही दो-चार लकड़बग्घे आ जाते तो ? माना आशीष

पहलवान है, लेकिन उस समय तो कोई बात न बनती। वे खूँख्वार जानवर हम दोनों को खा जाते···दोनों को····।

शकुन्तला को पता न चला, कब उसकी आँख लग गई।

रात की जगाई के कारण दूसरे रोज शकुन्तला की तबियत खराब हो गई। खांसी और जुकाम भी शुरू हो गया, लेकिन उसने परवा नहीं की। दिन में भी वह अपनी नींद पूरी न कर सकी। सिर्फ पढ़ती रही। फिर भी उसने डॉक्टर के पास जाने की कोई जरूरत नहीं समझी। नतीजा यह हुआ कि दो रोज बाद बुखार बढ़ गया और सीने में दर्द शुरू हो गया। डॉक्टर ने देखा, तो झुँझला कर बोला, "मालूम नहीं आप लेडीज अपनी हेल्थ की तरफ से इतनी केयरलेस क्यों रहती हैं ? पहले ही दिन मेरे पास आ जातीं, तो यह नौबत क्यों आती···· कमाल है साहब ! सीने में कंजेशन है और आप बाहर सर्दी ही में सोती रहीं···· और वह भी प्रेगनेंसी की हालत में ! खैर, अभी तो कोई बात नहीं है, मैं दो दिन में ठीक कर दूँगा। लेकिन, दो दिन और देर हो जाती तो मेरे हाथ से भी मामला निकल जाता····न्यूमोनिया के केस में भला इतनी बेपरवाई बरतनी चाहिए ?"

डॉक्टर ने बकते-झकते इंजेक्शन लगा दिया, सीने पर प्लास्टर भी चढ़ा दिया गया। लेकिन जैसा डॉक्टर ने कहा था, केस वाकई हाथ से नहीं निकल चुका था। एक हफ्ते के बाद ही अपने पलँग पर बैठी हुई शकुन्तला डबल रोटी के साथ परवल का जूस ले रही थी।

बीमारी की खबर सुनकर मिस मेहता भी देखने को आईं। यूँ कभी-कभी वे आने भी लगी थीं (क्योंकि शकुन्तला एक महीने पहले उनसे मिल ली थी और उन्हें उसके गर्भ का भी पता चल गया था और यह भी मालूम हो गया था कि शकुन्तला अब अपने पुरुष मित्रों से कम ही मिलती है)। यही नहीं, बीमारी की हालत में शकुन्तला को उनकी वजह से बड़ा ढाढ़स बँधा रहा। आशोष को तो इस बीमारी की खबर ही नहीं लगी थी (गोयल साहब को भी यह खयाल न आया कि उसे खबर दे दें)। उसकी इस समय की अनुपस्थिति शकुन्तला को न मालूम कितना रुलाती अगर मिस मेहता के मातृ-तुल्य स्नेह का उसे सहारा न होता।

इस समय मिस मेहता ही का व्यवहार मातृ-तुल्य नहीं था, शकुन्तला भी ऐसा ही व्यवहार करती जैसे कोई लड़की अपनी माँ के साथ करती है। उसे काफी मचलने और ठुनकने के बाद मिस मेहता ही के हाथों दवा या पथ्य लेने में सन्तोष होता और मिस मेहता की दबी हुई मातृत्व भावना को भी यह 'जिद्दी

लड़की' जितना सन्तोष देती, उतना उसके संरक्षण में हॉस्टल में रहने वाली कोई छात्रा न दे पाती। छात्राएँ तो उसकी केवल आज्ञाकारिणी छात्राएँ थीं, और स्पष्ट है कि माँ का मातृत्व सिर्फ लड़ने-झगड़ने वाली लड़कियाँ ही सन्तुष्ट करती हैं।

एक दिन वह दवा न पीने के लिए जिद कर रही थी, तो मिस मेहता ने उसके गाल पर चपत मारकर कहा, "तुम बहुत मनमानी करती हो, शकुन्तला। तुम आवेश में न अपना भला-बुरा देखती हो, न दूसरे का—बड़े-बड़े लोगों को लतिया देती हो। लेकिन मुझ पर तुम्हारी जबरदस्ती न चलेगी।"

शकुन्तला ने दवा पी ली, लेकिन पूछ बैठी, "मैंने किसे लतियाया है, मिस मेहता?"

मिस मेहता दरअसल इस बात को महीनों से अपने दिल में छुपाये थीं, लेकिन जबान पर लाना शिष्टता के विरुद्ध समझती थीं। उन्होंने बात टालनी चाही, लेकिन अपनी पुरानी आदत के अनुसार शकुन्तला उनके पीछे पड़ गई, तो मिस मेहता को कहना पड़ा, "भई तुमने पाण्डेय जी के साथ जो व्यवहार किया, उसे मैं ठीक नहीं समझती। कुछ भी हो, वे गुरुजनों में से हैं।"

शकुन्तला इस पर चुप हो गई। सोच रही थी कि वाकई यह कितनी अजीब बात है कि पारसाल मैंने सभी को माफ कर दिया, सभी से अच्छे सम्बन्ध स्थापित कर लिए—यहाँ तक कि खन्ना जी जैसे गोबर आदमी और मिसेज खन्ना जैसी नितान्त अपरिचिता के पास भी जा पहुँची। लेकिन, पाण्डेय जी का ध्यान भी न आया। उनके पास तो मुझे सबसे पहले जाना चाहिए था। एक तरह देखा जाए, तो मेरी नाट्यकला के आदि गुरु वे ही थे।

उसका मौन देखकर मिस मेहता जल्दी से बोलीं, "तुम मेरी बात को इतनी सीरियसली क्यों ले रही हो शकुन्तला। मैं टीचर हूँ, इसलिए मेरे लिए स्वाभाविक है कि मैं टीचर का पक्ष लूँ। वैसे तुम्हारी यह बात भी जस्टीफाइड हो सकती है कि तुम्हें उनसे कुछ शिकायतें हैं।"

"नहीं, मिस मेहता! आपका एक-एक शब्द नपा-तुला और बिल्कुल ठीक है। मैं वाकई बहुत उग्र हूँ, गुस्से में आ जाती हूँ, तो उचित-अनुचित का ध्यान बिल्कुल भी नहीं रख पाती। कुछ ही दिन पहले मैंने बेकसूर ही आलोक को मार दिया, हालाँकि बाद में बहुत पछताती रही। सभी लोगों को मुझसे उचित शिकायत होनी चाहिए हालाँकि ताज्जुब यह है कि मेरी सारी ज्यादतियों के बावजूद लोग मुझे उतनी सजा नहीं देते, जितनी मुझे मिलनी चाहिए। पाण्डेय

जी के साथ मेरे व्यवहार को किसी भी तरह उचित नहीं कहा जा सकता। हाँ, अपने पक्ष में मैं सिर्फ यह कह सकती हूँ कि बाद में मुझे अपनी हर भूल पर पश्चाताप होता है, चाहे मैं खुले रूप में उसे स्वीकार करने का साहस न कर सकूँ। लेकिन पाण्डेय जी से मैं जरूर माफी माँग लूँगी।"

"तो ऐसी जल्दी क्या है उसकी ? पहले अच्छी तो हो जाओ।" मिस मेहता हँसकर बोलीं।

दरअसल मिस मेहता को खुद अफसोस था कि उन्होंने बीमारी की हालत में शकुन्तला का दिल दुखाने वाली बात क्यों कह दी, लेकिन कमान से निकला हुआ तीर वापस तो नहीं आ सकता। उन्होंने हर तरह से शकुन्तला को तसल्ली दी, "तुम दिल छोटा न करो, पाण्डेय जी बड़े गम्भीर आदमी हैं। वे ऐसी बातों की परवाह नहीं करते। तुम्हारी तरफ से अब भी उनका खयाल बहुत अच्छा है।"

फिर भी एक हफ्ते बाद शकुन्तला पाण्डेय जी के घर चली गई और उसने हाथ जोड़कर अपनी सारी कटूक्तियों के लिए उनसे क्षमा-याचना कर ली। पाण्डेय जी की आँखों में आँसू भर आए और यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि ये आँसू हमेशा जैसे नहीं थे, उनमें वास्तविक भावोद्रेक था।

● ● ●

३३

बख्तियार इम्तहान देकर घर चला गया। इलाहाबाद से चलते समय उसने शकुन्तला से मिलना चाहा था, लेकिन कुछ ऐसा इत्तफाक पड़ा कि चलने के कुछ ही पहले उसे शकुन्तला के यहाँ जाने का मौका मिला और वहाँ जाकर मालूम हुआ कि वह वहीं गई हुई है। पन्द्रह मिनट तक उसकी प्रतीक्षा करने के बाद वह चला आया, क्योंकि उसे शाम चार बजे की गाड़ी पकड़नी थी और कुछ सामान आदि भी बाँधने थे। इतनी जल्दी इलाहाबाद छोड़ने का कारण सिर्फ यह था कि उसके घर से चिट्ठी आई थी कि उसकी माँ की

तबियत खराब है। इम्तहान के आखिरी पर्चे भी उसने परेशानी की हालत में दिए थे और आखिरी पर्चा करके लौटते ही उसने सामान बाँधना शुरू कर दिया था।

ठीक चार साल बाद बख्तियार अपने गाँव में आया था। यह ठीक है कि अब ताल्लुकेदारी का दबदबा पहले जैसा न रहा था; क्योंकि उत्तर प्रदेश सरकार ने विधान मण्डल में जमींदारी उन्मूलन विधेयक पास करवा लिया था। इसके खिलाफ हाईकोर्ट में दायर किए गए मुकदमे भी खारिज हो चुके थे और राष्ट्रपति की स्वीकृति इस पर मिलने ही वाली थी। अतः ताल्लुकेदारी तो अब दो दिन की मेहमान थी। लेकिन सौ-सवा सौ बरसों से जमी हुई खानदानी साख कोई एक दिन में जाने वाली चीज नहीं होती। बख्तियार के पिता मिर्जा तसद्दुक हुसैन अब भी अपने इलाके के नेता थे। जब तक उनका लठैतों का दल बना था, तब तक उनके दबदबे में कोई फर्क नहीं आ सकता था। ताल्लुकेदारी जाती है तो चली जाए, ताल्लुकेदारों को दर-दर का भिखारी तो नहीं बनाया जा सकता। पहले ही कहा जा चुका है कि मिर्जा साहब ने पिछले चार वर्षों ही में काफी बेदखलियाँ करवा कर भूमिधरी अधिकार प्राप्त कर लिये थे और चाहे भविष्य अतीत की भाँति सुखद न हो, किन्तु बिल्कुल अन्धकारमय भी नहीं था। मिर्जा साहब इस समय भी अपने इलाके के सबसे बड़े आदमी थे और हाल ही में चुनी गई पंचायत के सभापति भी हो गए थे। अतः गाँव ही नहीं, आस-पास के सारे इलाके का नेतृत्व भी उनके हाथ में था। यह बात जरूर थी कि कुछ दिन पहले तक वे कमिश्नर और डिप्टी कमिश्नर को छोड़ कर और किसी से मिलने न जाते थे और अब उन्होंने केवल श्री रफी अहमद किदवाई से कई पीढ़ियों के सम्बन्धों की खोज करके अपना रिश्ता निकाल लिया था, बल्कि घर के बाहर खादी पहनना भी शुरू कर दिया था। वे बख्तियार के सोशलिस्ट पार्टी में शामिल होने पर नाराज तो जरूर हुए थे, लेकिन इधर हाल ही में उन्हें पता चला कि किदवाई साहब बख्तियार को उनके पुत्र की हैसियत से नहीं, बल्कि उसके अपने राजनीतिक कार्यों के कारण जानते हैं, तो उनका क्रोध बिल्कुल उतर गया था। उन्होंने मान लिया कि नए जमाने की सारी बातें उनकी समझ में नहीं आ सकतीं—भला ऐसा अंधेर भी कभी सुना गया था कि कोई मिनिस्टर या गवर्नर जैसा आला हाकिम गाली देने वाले का नाम भी इज्जत के साथ ले। जमाने की बलिहारी है!

इसी लिए मिर्जा साहब ने तय किया था कि अब उनके बस का काम तो है नहीं, बख्तियार ही के हाथ में सब कुछ दे देना चाहिए तभी खानदान की

पुरानी धाक कायम रह सकती है। लेकिन, उन्होंने सोचा कि इस काम के लिए भी बख्तियार की जड़ें मजबूत करना भी जरूरी है। इसलिए उन्होंने अपने ढंग से तय किया कि बख्तियार को इलाके के प्रतिष्ठित लोगों से मिलवा देना चाहिए, ताकि अगले वर्ष होने वाले चुनावों में उसे भी असेम्बली के लिए खड़ा किया जा सके।

उन्होंने इन गर्मियों की छुट्टियों में हर तरह का बहाना निकाल कर अपने यहाँ दावतें करनी शुरू कर दीं। आए दिन दर्जनों मुर्ग हलाल किए जाते और पुलाव की देगों से उठने वाली महक से मिर्जा साहब की कोठी गमगमाती रहती। और तो और, मियाँ पीरू का भी सम्मान गाँव में काफी बढ़ गया था; क्योंकि वे 'छोटे मियाँ' के साथ इलाहाबाद में दो साल रहे थे, जब कि वहाँ छोटे मियाँ का 'डंका बजता था' और उसमें किस कमबख्त को गुमान हो सकता था कि जब छोटे मियाँ इलेक्सन जीतकर 'मिनिस्टर' हो जाएगें तो मियाँ पीरू की भी पाँचों घी में और सर कढ़ाई में होगा। पीरू साहब का भी अब बाकायदा दरबार लगने लगा था, जिसमें वह अपने तीस बरस पुराने हुक्के की कश लगाते हुए अपने खुशामद करने वालों पर मेहरबानी करके उन्हें जमीनें दिलवाने का वादा किया करते।

सारी दिक्कत यह थी कि इस सारे तमतराक में इसके हीरो ही को कुछ दिलचस्पी नहीं दिखायी देती थी। मिर्जा साहब से पीरू ने कहा था कि छोटे मियाँ सिवा खादी के किसी कपड़े को हाथ भी नहीं लगाते (और इसीलिए मिर्जा साहब ने अपने पुराने दर्जी से खादी के एक दर्जन कपड़ों के सैट सिला कर और धुला कर तैयार रखे थे—न मालूम इस समय लड़के के पास ठीक ढंग के कपड़े हों या नहीं), लेकिन बख्तियार साहब ट्रेन से उतर कर गाँव जाने के लिए जब अपनी बहल पर बैठे, तो उन्हें मक्खनजीन की ताजा धुली पैण्ट के कारण पालथी मार कर बैठने में काफी तकलीफ हुई। खैर, इतनी छोटी-सी बात का तो मिर्जा साहब खयाल ही क्या करते, लेकिन उन्हें यह देख कर ताज्जुब और परेशानी जरूर हुई कि बख्तियार अपने भविष्य-निर्माण में जरा-सी भी रुचि नहीं ले रहा है। वे उम्मीद करते थे कि दावतों में आए हुए सरपंचों, तहसीलदारों, थानेदारों और जमींदारों आदि से बख्तियार घुले-मिलेगा, उन्हें अपनी विद्वत्ता से प्रभावित करेगा, उनकी समस्याओं के प्रति काफी दिलचस्पी दिखा कर और सहानुभूति प्रदर्शित करके उन्हें अपना समर्थक बनाएगा और चुनाव लड़ने के लिए अभी से गोटी बिठाएगा। लेकिन, किस्मत को क्या कहा जाए। कुत्ते की दुम बारह बरस तक नली में रखो, तब भी टेढ़ी ही निकलेगी। नालायक औलाद हमेशा

नालायक ही रहती है, चाहे बाप उसके लिए अपनी जान निकाल कर ही क्यों न रख दे। जब मिर्जा साहब खादी से भड़कते थे, तो हजरत ने नेतागीरी के लिए घर ही छोड़ दिया और जब बाप खुद उन्हें नेता बनाना चाहता है, तो साहबजादे के निराले ही नखरे हो गये हैं। मिर्जा साहब सोचते—दुनिया इनसे बात करने को मरती है और यह हैं कि सीधे मुँह बात ही नहीं करते, अलैक-सलैक करने के बाद अपने कमरे में घुस जाते हैं, कहते हैं, "जाहिल से क्या बात करूँ ?" क्या कहा जाए इस लड़के के दिमाग को ? जब सर तुड़वाने की बात थी, तो आगे आ गये और जब आदमी बनने का मौका आया, तो कल के साथी आज जाहिल हो गए ! पूछिए करते क्या रहते हैं ? झख मारते रहते हैं। कमरे में पड़े रहेंगे या मीलों तक अकेले घूमने चले जाएंगे। भला यह भी कोई काम का आदमी बनने के ढंग हैं ? और कुछ नहीं सूझेगा तो बाग में चले जाएँगे और किसी कोने में बैठ कर कागज-पॅसिल लेकर शायरी की लीद करेंगे। लानत भेजो शायरी पर, मियाँ ! देखते नहीं दुनिया किधर जा रही है ? अब भी कोई नवाबी दरबार लगे हैं कि शायरी ही के बूते मुसाहिबी मिल जाएगी ? आजकल तो नस्र का जमाना है, पोजीशन गजल पढ़ने से नहीं बनती, तकरीरें करने से बनती है। अकबर मरहूम क्या खूब फरमा गये हैं: "कसीदे से ये चलता है न यह दोहे से चलता है, समझ लो खूबकारे-सल्तनत लोहे से चलता है।" खैर तलवार चलाने का जमाना तो अब नहीं है, लेकिन शायरी करके कोई क्या हासिल करेगा, सिवा इसके कि गजलों के पर्चों पर शहद लगाए और चाटे। भला बताइए साहब, गोविन्द बल्लभ पन्त को शायरी से मरऊब किया जा सकता है ?

मिर्जा साहब की तबियत होने लगी कि अपने पुस्तकालय की आलमारियों में रखे हुए सैकड़ों शायरों के दीवानों की होली जला डालें। इन सड़ते हुए कागज के टुकड़ों ने लड़के का दिमाग फेर दिया। अरे भाई, फुर्सत के वक्त जी बहलाने के लिए शायरी अच्छी चीज है, लेकिन इसका यह मतलब तो नहीं कि इसके पीछे जिन्दगी चौपट कर ली जाए। फिर भी मिर्जा साहब दाँत पीस कर ही रह जाते, पुस्तकें जलाने के लिए दिल में हिम्मत पैदा न कर सकते, यहाँ तक कि बख्तियार की गजलों को हाथ लगाते वक्त भी उनके हाथ काँप जाते।

जहाँ तक बड़ी बेगम साहिबा (बख्तियार की माँ) का सम्बन्ध है, उन्हें इस बात से कोई खास परेशानी नहीं मालूम होती थी कि बख्तियार की तबियत एलेक्शन लड़ने की नहीं है। उन्होंने कभी-कभी बातचीत में चुनाव जैसी किसी चीज का नाम जरूर सुना था, लेकिन उनके लिए वह नए जमाने का कुछ ऐसा फालतू शौक था जैसे पुराने जमाने में रईस लोग तवाइफें रखते थे। जैसे तवाइफों का घरेलू जिन्दगी पर कोई खास असर नहीं पड़ता, उसी तरह एलेक्शन

भी महज बाहरी शौक की चीज है——लड़ लिया तो भी ठीक है, नहीं लड़ा, तो भी कोई हर्ज नहीं। उनकी समझ में यह मिर्जा साहब की बुढ़ापे की झक थी कि ख्वाहमख्वाह इस बात पर बख्तियार से नाराज थे। बुढ़ऊ को तो बिगड़ने का कोई बहाना चाहिए। पहले लड़का इधर-उधर दौड़ता था, तो इस बात पर बिगड़ते रहते थे, अब नहीं दौड़ता तो इस पर बिगड़े रहते हैं। सोचती——अल्लाह की मार पड़े इस अक्ल पर, नौज ऐसा भी क्या बुढ़ापा कि सबकी जिन्दगी अजीरन कर दे। बरसों बाद तो बच्चे की सूरत देखने को मिली है, तो बुढ़ऊ के मारे नाक में दम है। मालूम होता है दीदे पट्टम हो गये हैं, जो यह देखते ही नहीं कि इस मुई पढ़ाई ने बेटे का खून चूस लिया है. तुतही की तरह मुँह निकल आया है। आराम करना चाहता है तो, किसी के पेट में क्यों दर्द होता है। आराम नहीं करेगा, तो क्या बीमार पड़ेगा और बाप के नाम को रोएगा ?

इसीलिए बड़ी बेगम और मिर्जा साहब में कुछ ही दिनों के अन्दर दो चार मर्तबा चोंचें चल गईं। मिर्जा साहब का कहना था कि बेगम के लाड़-दुलार ने ही बख्तियार को हाथ से बेहाथ कर दिया, नहीं तो इस खानदान में कभी ऐसा हुआ ही नहीं कि लड़के ने बाप के इशारे पर फौरन सर न झुका दिया हो। बेगम साहबा को अपने खानदान के प्रति की गई यह वक्रोक्ति अच्छी नहीं लगी। उन्होंने पीक थूकी और चौंडा हिला-हिला और हाथ चला-चलाकर वाकई मिर्जा साहब को सात पुश्त की याद दिला दी और समझा दिया कि उनके वालिद साहब का रसूख न होता, तो यह टके की जायदाद कब की गायब हो गई होती।

और जब जब भी मिर्जा साहब के सामने यह परिस्थिति आई, तो उन्होंने यह कहकर बात खत्म कर दी कि औरतें जाहिल होती है, बगैर समझे-बूझे हर कायदे की बात में टाँग अड़ा दिया करती हैं।

स्पष्ट है कि समस्या का हल इस तरह नहीं होता कि लड़-झगड़कर मुँह थुथा कर अलग हो जाया जाए। मिर्जा साहब को तो यह परेशानी थी ही कि बख्तियार अपना राजनीतिक और सार्वजनिक जीवन खुद ही नष्ट करने पर तुला है, बेगम साहिबा को भी इसकी फिक्र नहीं थी कि उनका लाड़ला गुम सुम-सा रहता है। लेकिन, बहुत कुछ सोचने-समझने पर उनके ध्यान में जो बात आई वह यह थी कि लगभग तीस वर्ष की अवस्था होने पर भी विवाह न होना ही इस अन्यमनस्कता का कारण हो सकता है। उन्होंने एक दिन मिर्जा साहब को देखकर कहा कि वे बख्तियार के लिए किसी के यहाँ पैगाम भेजने में लापरवाही क्यों ब्रत रहे हैं।

मिर्जा साहब बख्तियार के उल्लेख से कुछ बहुत खुश नहीं होते थे। भुँझला कर बोले, "कहाँ भेजूँ पैगाम ? कोई इस नालायक की सूरत भी देखना चाहता है कि दामाद ही बनाएगा ?"

बेगम साहिबा ने इस समय क्रोध करना अनुचित समझा। संयत स्वर में बोलीं, "नाराज न हो जाया करो हर बात पर। ऐसी कौन-सी बात है बख्तियार में ? कोई आवारा नहीं, लफंगा नहीं।"

"भई, वह तो सब ठीक है। देखने-सुनने, तालीम बगैरा सब में बख्तियार की टक्कर के लड़के कम ही निकलेंगे। लेकिन, मेरी किस्मत फोड़ने को हिमाकतें भी तो करता रहता है। खुलेआम तो एलान कर दिया है हजरत ने कि मैं दहरिया (भौतिकवादी, नास्तिक) हूँ; अब भला कौन शरीफ खानदान वाला इनके हाथ में अपनी लड़की देगा ? क्या जरूरत पड़ी थी ऐसा बेतुका एलान करने की ? अरे भई नमाज नहीं पढ़ते, रोजा नहीं रखते, तो न सही, बहुत से लोग नहीं रखते। तुम दहरिये हो तो वह भी दिल-ही-दिल में बने रहो; कौन तुम्हारा दिल टटोलने जाता है ? लेकिन नहीं, गधापन कैसे जाहिर होता ? इसी का नतीजा है कि अच्छे मियाँ जो खुद ही सकीना को मेरे घर में देना चाहते थे, कई बार इशारा भी कर चुके थे, मड़क गए। उन्होंने इधर की तरफ थूकना भी छोड़ दिया और पारसाल सकीना के हाथ पीले भी हो गए। बेगम ! तुम क्या समझती हो कि मुझे घर का सूनापन अच्छा मालूम होता है, मेरे दिल में दुल्हन की पाजेब की छमछम सुनने की आरजू नहीं है ? लेकिन क्या करूँ, तुम्हारे बेटे के हाथों मजबूर हूँ।"

अच्छे मियाँ मिर्जा साहब के चचेरे भाई थे। उसी गाँव में रहते थे। अच्छा-खासा खाता-पीता घराना था और दोनों खानदानों में खूब पटती थी। सकीना को बचपन में बेगम साहबा ने गोद में खिलाया था और दोनों बेगमों ने तय कर लिया था कि बख्तियार और सकीना की जोड़ी कोई छुड़ा नहीं सकता। लेकिन बड़े होने पर जब बख्तियार ने यह गुल खिलाया, तो माँ-बाप दोनों ने सर पीट लिया। बेगम साहिबा निकलती हुई आह को दबाकर धीरे से बोलीं, "गुड्डन नवाब के यहाँ बात चलाई जाए तो कैसा रहेगा ? वह भी तो खानदानी आदमी हैं। लड़की भी पढ़ी-लिखी है।"

मिर्जा साहब के सम्बन्ध नवाब साहब से अच्छे न थे। दो पुश्तों से दोनों खानदानों में तनातनी चली आ रही थी। मुकदमेबाजी होती, फिर फौजदारी होती, फिर मुकदमेबाजी होती। इसी तरह यह सिलसिला चलता रहता। मिर्जा साहब को यह बात अच्छी तो न लगी कि वह गुड्डन नवाब के यहाँ हाथ फैलाते

हुए जाएँ, लेकिन समझदार आदमी थे। जब शान शौकत की नींव ही उखड़ने वाली है और गुड्डन मियाँ और वह खुद दोनों ही हल की मूठ थामने वाले किसान बनने वाले हैं, तो अकड़फूँ से क्या फायदा ? इसलिए उन्होंने साफ-साफ तो यह न कहा कि मुझे उनके यहाँ रिश्ता पसन्द नहीं है, लेकिन परेशान होकर बोले, "गुड्डन मियाँ हमारे यहाँ रिश्ता पसन्द करेंगे ? उनसे हमारे....।"

"छोड़ो भी, उन बातों को कहाँ तक याद करोगे ? मुझे तो उनकी मामा (नौकरानी) ने बताया कि गुड्डन साहब की बीबी को बख्तियार बहुत पसन्द है। वह तो कहती थी कि लड़की वाले हैं, खुद अपने मुँह से किस तरह कह सकते हैं, लेकिन रिश्ता चाहते यही हैं।"

"बात तो ठीक है, लड़की भी अच्छी है और गुड्न को दहरिएपन पर भी एतराज नहीं होगा, काफी सुलझे हुए आदमी हैं और जब खुद उनका लड़का कम्युनिस्ट है, तो बख्तियार को क्या कहेंगे ?"

"तो फिर पैगाम भिजवाओ न ? देर किस बात की है, जब तुम्हें भी रिश्ता मंजूर है !"

"नहीं भाई, इतनी जल्दी का काम मुझे मंजूर नहीं। पहले बख्तियार की टोह ले लो। ऐन वक्त पर उसने कहीं इन्कार कर दिया, तो फिर मेरे लिए कुएँ में डूबने के अलावा कोई रास्ता नहीं रहेगा।"

"वह क्यों इन्कार करेगा ? तुम भी कैसी बच्चों की सी बातें करते हो ?" बेगम साहिबा ने कहा।

लेकिन, मिर्जा साहब अपनी बात पर अड़े रहे। और, उनकी बात भी ठीक निकली। एक मित्र के द्वारा बख्तियार से पुछवाया गया, तो उसने कह दिया कि जब तक वह वकालत में पाँच सौ रुपए महीना पैदा नहीं कर लेता, तब तक शादी करने का नाम भी नहीं लेगा। अजीब बेतुकी बात थी। इसमें कुछ नहीं तो चार-पाँच साल तो लग ही जाते, तब तक क्या गुड्डन साहब उसके लिए लड़की को क्वांरी ही रखेंगे ? घर में क्या इतनी मुसीबत आ गई है कि इकलौते बेटे की बहू के लिए खाने-पहनने के लिए न जुटेगा ?

बख्तियार को हर तरह समझाने की कोशिश की गई। यहाँ तक वादा किया गया कि वह जब से चाहे अपनी पत्नी को अपने पास रखे। और रुपए-पैसों की क्या बात है, इतनी जमीन-जायदाद किसलिए है ? मिर्जा साहब उबल-उबलकर रह गए, बेगम साहिबा ने रो-रोकर गंगा-जमुना बहा दी, लेकिन बख्तियार आखिर अपने बाप का ही लड़का था। उसके मुँह से एक बार 'ना' निकली, तो फिर वह 'हाँ' में परिवर्तित न हुई। उसने ज्यादा किचकिच बढ़ती देखी, तो

धमकी दी कि वह अभी इलाहाबाद चला जाएगा और फिर न कभी गाँव की तरफ झांकेगा, न यहाँ का एक भी पैसा कबूल करेगा, चाहे उसे इलाहाबाद में भूख के मारे दम ही क्यों न तोड़ देना पड़े। मिर्जा साहब का उबाल ठंडा पड़ गया और बेगम साहिबा की आंखों की गंगा-जमुना ही सूख गई।

मां-बाप तो एक बार फिर अपनी किस्मत को रोकर बैठ रहे, लेकिन इस साधारण से पारिवारिक झंझा ने बख्तियार की शान्ति को बिल्कुल मटियामेट कर दिया। उसे अभी तक न शकुन्तला की याद आई थी, न मिसेज खन्ना की। लेकिन, अब वह दोनों को बुरी तरह याद करने लगा। अगर शकुन्तला यहाँ होती, तो वह उससे सलाह लेता कि क्या करना चाहिए। अक्ल की बात तो यही है कि उसे शादी की मंजूरी दे देनी चाहिए थी। मिसेज खन्ना क्या कभी उसकी अपनी हो सकती हैं? हरगिज नहीं। वह तो सिर्फ अपने मन मन्दिर में उनकी मूर्ति बिठाकर उसे पूज सकता है। इससे ज्यादा उसकी किस्मत में क्या है? उसने सोचा—लेकिन, इससे ज्यादा कुछ होने की जरूरत भी क्या है? क्या यह जरूरी है कि जिसे चाहो, उसे घर में भी बिठा रखो? क्या औरत के जिस्म से जिस्म रगड़े बगैर जिन्दा नहीं रहा जा सकता? उसके पेट के अन्दर बोझ भर देना ही क्या आदमी को इत्मिनान देता है? अगर ऐसा ही है तो आए दिन मियाँ-बीवियों के झगड़े क्यों होते रहते हैं? गलत बात है, यह सिर्फ हैवानी जज्बा है, जिसके तहत इंसान एक लताफत के मुजस्सिमे में कसाफत भर देता है, एक कली को कुचल कर खाक में मिला देता है। जिनका किरदार इस हैवानियत से ऊँचा उठ चुका है, उन्हें इसकी कोई जरूरत नहीं है। मुझे तो हमबिस्तरी की इतनी शदीद जरूरत कभी महसूस नहीं हुई कि रहा न जाए। फिर मैं क्यों खुद अपने दिल से, अपनी मुहब्बत से झूठा बनूँ?....लोग बड़े बेवकूफ हैं, समझते-बूझते कुछ नहीं, ख्वाहमख्वाह पीछे पड़े रहते हैं। कहते हैं कि तुम्हीं दुनिया में निराले आदमी हो, वरना औरत की जरूरत सभी को होती है। सभी को कैसे होती है? आशीष क्या सिर्फ शकुन्तला की मुहब्बत में इतमीनान और आसूदगी की जिन्दगी नहीं काट रहा! वह तो मुझसे भी ज्यादा खुशो-खुर्रम नजर आता है। क्या वह इंसान नहीं है? गलत बात है, वह उसी तरह इसान है जैसे और सब हैं। सिर्फ बात यह है कि वह जिन्दा रहने का राज जानता है, जिन्दगी की असली जरूरियात को और लोगों से ज्यादा जानता है। जिन्दगी में बिखरी हुई लताफत को उठा लेता और गन्दगी और कूड़े कर्कट को यूँ ही छोड़ देता है। इसका नतीजा भी जाहिर है—उसे किसी बात की कमी नहीं महसूस होती। तन्दुरुस्ती ऐसी कि हजारों में एक, दिमाग ऐसा कि वकालत के मैदान में छा कर रह गया—कोई ताज्जुब नहीं, अगर दस-पन्द्रह बरस

बाद हाईकोर्ट का जज भी हो जाए—आर्ट और ड्रामे की दुनिया में इलाहाबाद जैसे कल्चरल शहर में उसका सानी नहीं मिलता। फिर ? कैसे आशीष ने बगैर औरत के यह सब कर लिया ?

बख्तियार जैसे-जैसे इस समस्या पर गौर करता, उसके दिल में आशीष की तस्वीर और गहरी खुदती जाती। ठीक है, आशीष किसी तरह से आदर्श किस्म का नेता नहीं था। वह राजेन्द्रप्रसाद या जवाहरलाल नहीं था जिनकी जिन्दगी की मिसाल छोटे बच्चों के सामने रखी जाती। राजनीतिक नेताओं की जिन्दगी की मिसाल तो बच्चों ही के लिए ठीक है ताकि वे सीधे-सच्चे एक रास्ते पर नाक की सीध में बढ़ते चले जाएँ। बख्तियार ने तो राजनीतिक नेताओं को बहुत करीब से देखा था, यह देखा था कि किस तरह वे लोग अपने खोखलेपन को भरने की अपेक्षा उसे दबा-ढँका रखने में माहिर होते हैं। यह तो कोई जीना नहीं हुआ। ठीक है, लोग उनका नाम जानते हैं, उनकी जय बोली जाती है, उनकी बात सुनी जाती है, लेकिन सिर्फ यही तो जिन्दगी नहीं है। तकरीरें तो लोग सड़क के किनारे गठिया की दवा बेचनेवालों की भी सुनते हैं और तीस-तीस फीट ऊँची रस्सी पर चलते हुए नटों और बाजीगरों को भी सभी लोग मुँह उठाकर देख लेते हैं। लेकिन, इससे यह तो नहीं मालूम होता कि वे लोग जिन्दगी के हर मोड़ को, उसकी अँधेरी राह में छुपे हुए हर गढ़े को भी देख लेते हैं और किसी की रहबरी कर सकते हैं। जिन्दगी की दुश्वार राहों में तो उसी का सहारा पकड़ना ठीक होता है, जो खुद ऊबड़-खाबड़ राहों पर चल चुका होता है और फिर भी इतनी ताकत कायम रख सकता है कि नए से नए रास्ते पर भी इत्मीनान और मजबूती के साथ कदम बढ़ाते चलता चला जाए।

बख्तियार को महसूस होने लगा कि उसने अपनी जिन्दगी में जो बड़ी से बड़ी भूलें की हैं, उनमें एक यह भी है कि उसने आशीष से अकारण झगड़ा कर लिया। उसे अपनी मूर्खता पर क्रोध भी आता और हँसी भी आती। आखिर जब खुद शकुन्तला को उसके बर्ताव पर एतराज नहीं था—और यह भी याद रखना चाहिए कि शकुन्तला कोई मामूली औरत नहीं है, उसके दिलो-दिमाग को बड़े-बड़े लोग नहीं पहुँच सकते—तो बख्तियार ही क्यों डॉनक्विक्जोट बन कर उसके सुधार के लिए लठ लेकर पीछे पड़ गया। लाहौल व लाकुव्वत ! इससे ज्यादा बेतुकापन और क्या होगा।

बख्तियार कई दिनों तक उधेड़बुन में पड़ा रहा। फिर उसने आशीष को एक लम्बा-सा खत लिखा, जिसमें सिर्फ काफी हाउस की घटना के लिए ही

माफी नहीं माँगी थी, बल्कि यह स्वीकृति भी थी कि उसने जूलिया को किस तरह अपने गन्दे षड्यन्त्र में शामिल करना चाहा था। सब कुछ लिखने के बाद लिखा था कि वह आशीष से निवेदन करता है कि आशीष उन बातों को भूल कर उसे अपना मित्र समझे और उसे जिन दिक्कतों का सामना करना पड़ रहा है, उनमें उसकी मदद करे।

पाँचवें दिन आशीष का जवाब आ गया कि उसने उसे हमेशा अपना मित्र समझा है और वह उसकी हर मुश्किल में मदद करने को तैयार है, लेकिन वह बताए तो सही कि क्या मुश्किल है। बख्तियार ने लिखा कि मिलने ही पर बात की जा सकती है और हास्टल खुलने में चूँकि पन्द्रह दिन की देर है, इसलिए आशीष के घर वह एक हफ्ते के लिए ठहरना चाहता है। आशीष ने इसे खुशी से मंज़ूर कर लिया और बख्तियार जुलाई की शुरू ही की तारीखों में इलाहाबाद जा पहुँचा।

● ● ●

३४

बख्तियार ने पहले सोचा था कि इलाहाबाद जाकर वह आशीष के सामने अपने दिल की सारी बातें खोल कर रख देगा। पूछेगा कि हालाँकि दुनिया की नजरों में इससे ज्यादा बेतुकी बात कोई नहीं हो सकती कि कोई नौजवान किसी विवाहिता के पीछे, जिसने कभी उसे अपना प्रेमी स्वीकार नहीं किया, अपनी शादी से इन्कार कर दे, लेकिन क्या आशीष भी और दुनिया वालों की तरह इस बात को बेतुकी समझता है? क्या वह इस बात को मंजूर करता है कि दैहिक आवश्यकताओं के सामने मन की भावनाओं का अस्तित्व ही कुछ नहीं है? और इस मामले में तो दैहिक आवश्यकताओं की भी कोई बात नहीं है; क्योंकि बख्तियार को अभी तक अकेले सोने में कोई परेशानी नहीं होती। यहाँ तो यह प्रश्न है कि एक ओर मन की कोमलतम भावनाएँ हैं, जिनके सहारे बख्तियार का सारा व्यक्तित्व, सारी सुरुचि, सारी उदारता, सारी ईमानदारी—टिकी हुई

है और दूसरी ओर संसार और समाज की मान्यताएँ हैं—उसी समाज की, जो चोरी से की गई या धोखे की टट्टी में की गई हर बुरी-से-बुरी बात को माफ कर देता है और स्पष्ट रूप से स्वीकार की हुई हर बात की सजा जरूर देता है। क्या आशीष का भी खयाल है कि धोखेबाजी और झूठ के पृष्ठपोषक समाज की टेढ़ी-मेढ़ी मान्यताओं को प्राथमिकता देनी चाहिए और अपने हृदय और अंतरात्मा की आवाज को सिर्फ इसलिए दबा देना चाहिए कि उसके तर्क दुनिया की समझ में नहीं आते? क्या यह सिद्धान्त मान लेना चाहिए कि उचित-अनुचित, नैतिक-अनैतिक, सच-झूठ इन बातों को इनकी अपनी कसौटी पर नहीं कसा जा सकता, बल्कि जिस बात के पक्ष में वोट अधिक पड़ें, वही ठीक होती है, जैसा हजरते—'जौक' कह गये हैं: "बजा कहे जिसे आलम उसे बजा समझो!"

लेकिन, इलाहाबाद आकर आशीष के पास ठहरा, तो वह ऐसा कोई प्रश्न न कर सका। गाँव का वातावरण उसके व्यक्तित्व को बिल्कुल नहीं छूता था, इसलिए वहाँ पर रह कर उसे अपनी भावनाओं का संसार ही सबसे अधिक ठोस और जानदार जान पड़ता था। इलाहाबाद की सड़कें, गलियाँ, इमारतें, लोगों के चलने-फिरने, उठने-बैठने और बातें करने के तौर-तरीके, यहाँ के अभिजात और मध्यवर्गीय समाज आदि बख्तियार के व्यक्तित्व का एक भाग बन चुके थे। जिस बाहरी दुनिया को गाँव में रह कर वह ठोकर मारने के लिए तैयार था, वह इलाहाबाद में आकर मुमकिन नहीं था। यहाँ का औसत आदमी चाहे उससे मानसिक स्तर में नीचा हो, लेकिन इतना नीचा हरगिज नहीं था कि उसकी रुचि और मान्यताओं की बिल्कुल उपेक्षा कर दी जाती। उसे यह महसूस होता था कि अगर इलाहाबाद वालों को भी उसने बिल्कुल नगण्य और उपेक्षणीय मान लिया, तो उसका अपना व्यक्तित्व भी बिखर जायेगा और उसके कण हवा में मिलकर गायब हो जाएँगे। मूर्ति कितनी ही भव्य हो, बगैर किसी आधार के तो अपनी शोभा नहीं दिखा सकती। व्यक्तित्व कितना ही ऊँचा क्यों न हो, उसकी ऊँचाई किसी निचले सामाजिक आधार के बगैर नहीं देखी जा सकती। यह हो सकता है—बल्कि हमेशा होता है—कि हर मूर्ति का अपना-अपना उपयुक्त आधार हो और उसी पर वह फबे भी, लेकिन आधारहीनता से तो काम नहीं चलता, मूर्ति हवा में तो टँगी नहीं रह सकती। गाँव का समाज उसके व्यक्तित्व को उठाकर दिखाने में असमर्थ था, इसलिए उसकी मूर्ति ने उसकी उपेक्षा करके अँधेरे कमरे में पड़े रहना स्वीकार कर लिया। लेकिन, शहर आकर यह बात न रही। प्रयाग स्टेशन पर गाड़ी रुकते ही उसको ऐसा महसूस हुआ कि वह किसी बेगानी जगह से अपनी जगह आ गया है, जहाँ की हर चल और अचल वस्तु उसे पुकार-पुकार कर कह रही है कि तुम अभी तक कहाँ थे, हम

तो तुम्हारी प्रतीक्षा में आंखें बिछाये हुए हैं। स्पष्ट है कि ऐसे स्नेह के आवाहन पर यह रुख तो नहीं अपनाया जा सकता कि भाड़ में जाओ, हमें तुम्हारी फिक्र नहीं है। अपने-अपने ही होते हैं, उनकी भली-बुरी भी सहनी ही होती है, उनकी उपेक्षा सम्भव ही नहीं है।

इसीलिए ट्रेन से उतरते ही बख्तियार को ऐसा मालूम हुआ कि अभी दो महीने तक उसके मस्तिष्क में कुछ विकृति-सी हो गई होगी। तभी तो वह इतना परेशान था! मिसेज खन्ना के बगैर जिन्दगी काटना कोई मुसीबत नहीं है। यह भी ठीक है कि दूर के रिश्ते के गुड्डन नवाब—जिनका नाम वह सिर्फ मुकदमेबाजी के सिलसिले में सुनता आया है—या उनकी लड़की—जिसकी सूरत देखना तो दूर की बात है, जिसका नाम भी उसे नहीं मालूम—किसी से भी उसकी दिलचस्पी नहीं हो सकती। उसने शादी से इन्कार करके अच्छा ही किया। लेकिन, इस मामले में मिसेज खन्ना कहाँ से आ गई? बख्तियार को शादी करने की कोई जरूरत महसूस नहीं होती और वह इस वक्त बेकार का झंझट मोल लेना नहीं चाहता। इसलिए वह शादी नहीं करेगा। चलिए, बात खत्म हुई। लेकिन, इसमें समस्या क्या है? काहे के लिए उसने इतना तूमार बांधा था और आशीष को लिख दिया कि मेरी गहरी मानसिक समस्याएँ हैं। कौन-सी समस्या है? उसने स्वयं से प्रश्न किया—अब अगर आशीष पूछेगा कि आपको क्या दिक्कत थी, तो उसे क्या जवाब दूँगा? क्या उससे कहूँगा कि मैं मिसेज खन्ना से मुहब्बत करता हूँ, मेरी माँ मेरी शादी करना चाहती हैं, बताओ क्या करूँ? या उससे यह पूछूँगा कि तुम महज शकुन्तला की मुहब्बत के सहारे किस तरह जिन्दगी काट रहे हो? इन सवालों पर क्या वह मुझे बिल्कुल पागल न समझ लेगा और दिल-ही-दिल में इस बात पर अफसोस न करेगा कि मैंने अजीब झक्की आदमी को मेहमान बनाया। वह समझे या न समझे, मैं जरूर खुद को दीवाना समझने लगूँगा। लाहौल व लाकुव्वत। मुझे हो क्या गया था?

लेकिन, आशीष ने उससे कोई सवाल नहीं किया। उसने इस बात का इन्तजार जरूर किया कि बख्तियार अपनी बात कहे, दो-तीन बार चलती-फिरती बातें बन्द करके बख्तियार को इसका मौका भी दिया। लेकिन, जब बख्तियार ने इन मौकों का कोई फायदा न उठाया, तो आशीष समझ गया कि वह किसी वजह से दिल की बात दिल ही में रखना चाहता है। उसे खुद तो कोई ऐसी बेचैनी थी नहीं कि उसके दिल का भेद खोद-खोद कर पूछे। साथ ही, इसमें भी कोई तुक नहीं थी कि वह उससे कह दे कि जब तुम्हें किसी समस्या को

सुलझवाना ही नहीं था, तो क्यों पहले से चले आए और क्यों हफ्ते भर से मेरी रोटी तोड़ रहे हो ?

बख्तियार ने अपनी इस कमी को अपने खुले व्यवहार से काफी दूर कर लिया। गाँव की सूनी फिजा से शहर की तहजीब में आकर उसे वैसे भी खुशी थी और दो महीने से बन्द पड़ा हुआ कमल खिल उठा था। वह हर एक से घुल-मिल कर बातें करता। आशीष की माँ छुआछूत और धर्म-कर्म की बड़ी पाबंद थीं, लेकिन बख्तियार के लिए इससे कोई दिक्कत पैदा नहीं हुई। आशीष के मुसलमान, इसाई दोस्त अक्सर आते ही रहते और चारु बाबू को भी कभी-कभी गैर-हिन्दू मित्रों को आमन्त्रित करना ही पड़ता। इसलिए मेहमानों की जाति-पाँति तोड़कर रसोई ही अलग बना दी गई थी, जिसके बर्तन ही अलग नहीं थे, बल्कि जिसका इंचार्ज नौकर ही अलग था। थोड़ी-सी दिक्कत यह जरूर हुई कि बख्तियार ने इस बात की जिद पकड़ ली कि वह बिल्कुल बंगाली तर्ज का खाना खायेगा, दो प्याजा और शामी कबाब खाने के लिए तो वह बंगाली के घर नहीं ठहरा था, उसका काम ठेठ बंगाली मच्छी-भात के बगैर कदापि नहीं चल सकता। इस समस्या का समाधान इस तरह किया गया था कि बाहरी रसोई घर की इंचार्ज एक सप्ताह के लिए बंदना बना दी गई थी, जिसे बख्तियार के साथ खाने में भी आपत्ति न थी।

बख्तियार के इस परिवार के साथ घनिष्ठता बढ़ाने के प्रयत्न सिर्फ खाने-पीने तक ही सीमित न रहे। उसने इस बात की बिल्कुल परवा न की कि बंदना अब बिल्कुल बालिका नहीं रही है, जवानी की हद में पाँव रख चुकी है और अपने भाई के मित्रों से यह अपेक्षा रखती है कि उसे बिल्कुल लड़की न समझें, बल्कि महिला समझ कर उसका सम्मान करें। बात गलत भी न थी, वह इस साल इण्टर का इम्तहान दे चुकी थी और यूनिवर्सिटी में दाखिला लेने वाली थी। लेकिन, बख्तियार ने उसके नए महत्व को स्वीकार न किया और उसे तीसरे ही दिन से 'नकटी', 'बिल्लोरानी' 'चूहे खानी' आदि की उपाधियाँ देना शुरू कर दिया। नतीजा यह हुआ कि दो दिन तक हँसने और परेशान होने के बाद बंदना भी खुल गई और उसने 'बख्तियार भाई साहब' के चलने-फिरने और बोलने के तरीकों का मजाक उड़ाना शुरू कर दिया। आशीष की माँ बख्तियार को छू नहीं सकती थीं, लेकिन अपने पुत्र के मित्रों में उन्हें सबसे अधिक पसन्द वही आता था। बख्तियार को अपनी माँ से बहुत मुहब्बत थी और वह बेटा बनना खूब जानता था। उसने 'माताजी' से उनके घर के रीत-रिवाज पूछना, उनकी गहने-जेवर जमीन-जायदाद आदि की बातों में घण्टों तक दिलचस्पी लेना, उन्हें

छोटी-मोटी बातों पर छेड़ना और छू लेने की धमकी देना शुरू किया, तो श्रीमती मुखर्जी बिल्कुल गल गईं और उन्होंने कहना शुरू कर दिया था कि बख्तियार बेकार इस साल हॉस्टल में रहने की बात सोच रहा है, इस कोठी में क्या उसके लिए एक कमरा नहीं निकाला जा सकता और क्या उसके खाने की वजह से घर का दिवाला बैठ जाएगा। उन्हें कुछ-कुछ ऐसा आभास होता था, जैसे भगवान ने उनकी दूसरे बेटे की साध अनायास ही पूरी कर दी है।

चारु बाबू बहुत गंभीर और कम बोलने वाले आदमी थे। वे अपने पुत्र के किसी मित्र में कोई दिलचस्पी न लेते थे। और लेते भी क्या? अधिकतर वॉल्टर जैसे लोग ही तो सिनेमा के गाने अलापते हुए आया करते थे, भला वे उनसे क्या बात करते? लेकिन, बख्तियार को इससे कोई परेशानी न हुई। चारु बाबू तो सिर्फ मुँह ही फुलाये रहते थे, मिर्जा साहब तो हमेशा नाक-भौं चढ़ाए दिखाई देते थे। बख्तियार जानता था कि पढ़े-लिखे बूढ़ों की यह ऊपरी रुखाई ही उनके हृदय की कोमलता को बाहर की आँधियों से बचाने का रक्षा-कवच होती है। उसने चारु बाबू के पूजा-पाठ, भजन-कीर्तन और घर में नंगे बदन रहने की उपेक्षा करके सुबह-शाम जबरदस्ती उनके पास बैठना, उनके सामने कानून की गुत्थियाँ सुलझाने के लिए पेश करना और हाईकोर्ट के तौर-तरीकों तथा जजों के व्यक्तिगत स्वभाव और प्रमुख वकीलों की योग्यता के बारे में लगातार प्रश्न करना शुरू किया, तो तीन दिन के अन्दर चारु बाबू की बर्फ भी पिघल गई और वे सुबह-शाम उसके बारे में पूछने लगे कि उसने नाश्ता कर लिया है या नहीं या खाना खा लिया है या नहीं। यहाँ तक कि एक दिन उन्हें मालूम हुआ कि बख्तियार के कमरे का पंखा कुछ खराब हो गया है, तो औजार लेकर खुद कनेक्सन ठीक करने पहुँच गए। उनका दावा था कि उन्हें बिजली की मिकेनिज्म काफी आती है, लेकिन उनके घर वाले उनकी इस योग्यता को मानने के लिए तैयार न थे और हमेशा बिजली की कुछ अन्दरूनी फिटिंग की खराबी होने पर भी पॉवर हाउस को फोन कर दिया जाता और उन्हें अपनी कारीगरी दिखाने का मौका कम ही मिलता। इस समय भी आशीष ने झुँझला कर कहा, "आपनि कि मोरबेन?" और उनके हाथ से औजार छीन लिये। (ए० सी० करेण्ट के साथ मजाक नहीं किया जा सकता) और पास में बैठे हुए वॉल्टर ने, जो इस मामले में भी उस्ताद था, दम के दम में पंखा ठीक कर दिया। लेकिन बख्तियार ने इस बात का खयाल रखा कि उस दिन काफी देर तक चारु बाबू से बिजली की मिकेनिज्म के बारे में सवाल पूछता रहे।

और तो और, घर के नौकर-चाकरों से भी बख्तियार की दोस्ती हो गई

थी। उसे यह मालूम था कि हरखू के कितने बच्चे हैं और चौकीदार कितने वर्षों से अपने गाँव नहीं जा सका और सन् अड़तालिस की बाढ़ में उसकी फसलों का कितना नुकसान हुआ था। यहाँ तक कि मिसेज मुखर्जी की बूढ़ी परिचारिका से उसने कुछ बंगला सीखने की भी कोशिश शुरू कर दी थी। और हाँ, मुंशी हरदयाल से उसने पक्का वादा ले लिया था कि डेढ़ साल बाद जब वह वकालत शुरू करेगा, तो वे उसके लिए फौरन ही एक होशियार और काबिले-एतबार मुंशी मुहय्या कर देंगे। जहाँ तक घर में पले हुए तीन कुत्तों का सम्बन्ध था उनमें से हरएक औसतन दस-बारह मर्तबा उसकी कमर पर अगली टाँगें रखकर खड़ा हो जाता था, कुत्तों का थूक साफ करने के लिए बख्तियार को अनगिनत बार हाथ धोने पड़ते और वन्दना उसे कुत्ता मंडल का प्रेसीडेंट कहने लगी थी।

जब सारे घरवालों, नौकरों, यहाँ तक कि कुत्तों से भी बख्तियार के प्रेम सम्बन्ध स्थापित हो चुके थे, तो आशीष की तो बात ही क्या थी। दूसरे ही रोज से छेड़छाड़, हँसी-मजाक शुरू हो गया था। आशीष के मुकदमों की सारी फाइलें बख्तियार ने चाट डाली थी (दोपहर में काफी समय मिलता था न!) और शाम के खाने के बाद दोनों का डेढ़-दो मील तक टहलने का नियम हो गया था, जिसके दौरान बख्तियार ने नाट्यकला और संगीत (शास्त्रीय संगीत सुनने में उसे भी थोड़ी-सी दिलचस्पी थी) सम्बन्धी जितनी बातें आशीष बता सकता था, सब पूछ डाली थीं। लेकिन, इस सारे अर्से में अगर दोनों की समान रुचि की कोई चीज बातचीत से छूट गई थी, तो वह शकुन्तला थी। दोनों को मालूम था कि दोनों ही उसके बारे में कुछ बात करना चाहते हैं, लेकिन कुछ थोड़ी-सी झिझक और बोझिल खामोशी के कुछ क्षणों के बाद बात फिर मंचसज्जा के शिल्प पर आ गिरती थी।

फिर भी बख्तियार ने इस बात को ठीक न समझा कि इस घर में रहते हुए वह शकुन्तला से मिलने जाए, हालाँकि उसका जी कई बार हुआ। वह यह जानने के लिए बेचैन था कि उसकी तबियत इन गर्म के काफी चढ़े हुए दिनों में कैसी रहती है। खैरियत थी कि उसे यह नहीं मालूम था कि अप्रैल के आखिर में—जब वह गाँव नहीं गया था, तभी शकुन्तला को न्यूमोनिया हो चुका है। आशीष को यह बात शकुन्तला के रोगमुक्त होने के बाद मालूम हो गई थी, लेकिन उसने तो शकुन्तला के बारे में बख्तियार से कोई बात की ही नहीं थी। शकुन्तला की बीमारी की बात आशीष के मुँह तक आ-आकर रह जाती थी, लेकिन वह यह सोचता कि मालूम नहीं, बख्तियार इस मामले में दिलचस्पी

दिखाए या नहीं। और अगर शकुन्तला की बीमारी के बारे में बख्तियार ने दिलचस्पी न दिखायी, तो आशीष को निश्चय ही ऐसा लगेगा जैसे कि उसने उसके सामने अपने हलकेपन की नुमाइश कर दी है। आशीष दुनिया के अधिकतर लोगों की राय की उपेक्षा कर सकता था, लेकिन उसके सामने हलका जाहिर करना उसे किसी कीमत पर मंजूर नहीं हो सकता था।

इसीलिए बख्तियार को यह उस समय मालूम हुआ, जब हॉस्टल आने के दूसरे दिन वह चैथम लाइंस गया। इस समय शकुन्तला का स्वास्थ्य काफी अच्छा था और वह बख्तियार से अपनी स्वाभाविक हास-परिहास की मुद्रा में बात कर रही थी। बख्तियार ने जब शुरू में उससे उसके स्वास्थ्य के बारे में पूछा, तो उसने यही कहा कि बिल्कुल ठीक हूँ, यह तो काफी देर बाद बातचीत के दौरान पता चला कि शकुन्तला को न्यूमोनिया भी हो चुका है। उसने शिकायत की कि वह यहीं पर था, फिर भी शकुन्तला ने इत्तिला क्यों नहीं भिजवायी, तो शकुन्तला ने कहा कि जो आदमी इम्तहान में लगा हुआ हो, उसे वह डिस्टर्ब कभी नहीं कर सकती।

लेकिन बख्तियार को तसल्ली न हुई। बोला, "इम्तहान की तैयारी कोई ऐसी बात नहीं थी, जिसकी वजह से बीमारी की इत्तिला न दी जा सकती। मेरी माँ ने तो अपनी बीमारी का खत ऐन इम्तहान के मौके पर भिजवाया था। यह कहिए कि आपने मुझे इत्तिला देने की जरूरत नहीं समझी।"

"भई बड़ी मुश्किल है", शकुन्तला ने कहा, "इस तरह पकड़-धकड़ की जाएगी, तो किसी के पास कोई जवाब नहीं होगा। अच्छा, माना मेरी गलती थी। अब मैं आपसे पूछती हूँ कि आपको एक हफ्ते पहले आना था तो गरीबखाने पर आने के बजाय आशीष के घर क्यों ठहरे? वह जगह तो आपके लिए बिल्कुल नई थी और जहाँ तक मेरा ख्याल है, मिसेज मुखर्जी ने आपका वहाँ ठहरना अच्छा भी नहीं समझा होगा। जैसा मैं उन्हें जानती हूँ, वे बहुत आर्थोडाक्स हैं।"

"अब वाकई मेरे पास कोई जवाब नहीं है। बस यही समझिए कि यहाँ का ख्याल ही नहीं आया, इसलिए वहाँ चला गया। लेकिन जहाँ तक मेरा ख्याल है, मिसेज मुखर्जी को मेरी वजह से कोई दिक्कत नहीं हुई। उन्होंने तो कई बार जोर देकर कहा—बल्कि एक बार तो पीछे पड़ गईं कि मैं हॉस्टल मेंन जाऊँ, उन्हीं की कोठी में रहूँ।"

"तो आपको कुछ मोहिनी विद्या आती होगी, वरना वह खूसट बंगालिन

बुढ़िया किसी को पुट्ठे पर हाथ नहीं रखने देती। यूँ जबान की मीठी बनी रहती हैं, लेकिन चुपके से जड़ काट देती है।"

बख्तियार को आशीष की माँ के लिए इन विशेषणों का प्रयोग कुछ अच्छा तो न मालूम हुआ, लेकिन उसने कुछ कहा नहीं—यानी यह नहीं पूछा कि आपकी उसने किस मामले में जड़ काट दी है। वह हँसकर रह गया। शकुन्तला ने उसके हिन्दू घराने में रहने के अनुभव पूछे, तो वह विस्तार से बताने लगा। कहा कि, उसके साथ सभी का बर्ताव अच्छा रहा और बन्दना की वजह से तो इतना घरेलू माहौल बन गया था कि पता ही न चला, कब हफ्ता बीत गया।

शकुन्तला चुप हो गई, लेकिन बख्तियार जोश में आया, तो आशीष के घर वालों की प्रशंसा करता ही चला गया। बन्दना की तो उसने बेहद तारीफ कर दी। उसके उठने-बैठने, पहनने-ओढ़ने का सलीका, उसकी समझदारी और वाक्पटुता, पाक-शास्त्र में उसकी कुशलता आदि सभी का उसने विशद रूप से वर्णन किया। शकुन्तला को माथुर साहब याद आ गए, जिनका एक बार प्रवचन आरम्भ होने पर उसे हर दो-तीन मिनट बाद जम्हाई लेनी पड़ती थी।

खैर, किसी तरह यह प्रवचन भी समाप्त हुआ और बख्तियार अपने हॉस्टल चला आया। उसे बन्दना ने बहुत प्रभावित किया था। वह बातचीत की रौ में शकुन्तला को अपना इरादा बताना भूल गया था, लेकिन उसका पक्का इरादा था कि रक्षाबन्धन के दिन वह आशीष के घर जरूर जाएगा, बन्दना से राखी बँधवाएगा और उसे एक बढ़िया सी साड़ी भेंट करेगा। आशीष के घर वालों को भी तो मालूम होना चाहिए कि वह सिर्फ बातों का बहादुर नहीं है, बल्कि ऐसी हैसियत भी रखता है कि आशीष के घर उसके ठहरने का औचित्य सिद्ध हो सके। हिन्दू त्योहारों में उसे बड़ा रस आने लगा था। इस वर्ष परीक्षा की तैयारी के कारण वह पारसाल की तरह होली नहीं मना सका था, लेकिन जब एक रेडीमेड बहन मिल गई थी, तो रक्षाबन्धन के दिन राखी न बँधवाने का उसे कोई कारण न दिखाई दिया। हिन्दू साथियों की कलाइयों पर रक्षाबन्धन के दिन बँधे हुए लाल-पीले डोरे और भाई दूज के दिन माथे पर चमकता हुआ लाल टीका। बख्तियार को शुरू से बहुत अच्छा लगता था। उसकी साध भगवान ने पूरी कर दी थी और उसने बन्दना से भाई-बहन के सम्बन्ध स्थापित करने और उन्हें बनाए रखने का दृढ़ निश्चय कर लिया था।

इधर चार-पाँच महीनों से शकुन्तला पर जबरदस्ती थोपे गए एकान्त ने उसे

हर समय सोचते रहने की आदत डाल दी थी और जाहिर है कि जब आदमी हर समय सोचता रहेगा तो उसमें कभी-कभी क्यों, अक्सर ही—बेतुके विचार भी आएँगे ही। अतः इस समय भी शकुन्तला की आज की रात के तीन-चार घंटे बेतुकी उधेर-बुन में गुजर गए।

वह सोचती रही—यह दुनिया भी खूब है····आदमी एक ही पल में क्या-से-क्या हो जाता है····इसी बख्तियार ने पाँच महीने पहले मुझसे भीख माँगी थी कि पाँव डगमगाने लगे, तो मैं उसे सँभाल लूँ····लेकिन हजरत इस समय तो शौक से मुँह के बल गिरे हैं तो मैं क्या सँभालूँ···जाहिर है कि ड्रामे में बन्दना को देखकर इनकी शायरी की रग फड़की होगी और इन गर्मियों की छुट्टियों में इन्होंने पद्य की अपेक्षा गद्य के सृजन का निश्चय कर लिया होगा····तभी तो चुपके-चुपके आशीष से पत्र-व्यवहार किया और जाकर उसके घर पर अड्डा जमा लिया····क्या करूँ ? क्या जाकर मिसेज मुखर्जी को चेतावनी दे आऊँ कि उन्होंने बख्तियार से हेल-मेल बढ़ाकर अच्छा नहीं किया ?···लेकिन यह तो मूर्खता की बात होगी···मिसेज मुखर्जी पहले ही मुझे कौन अच्छी नजरों से देखती हैं कि इस समय मेरी बात का विश्वास कर लेंगी ? कहीं इस मौके का फायदा उठाकर उन्होंने मुझे ही जली-कटी सुना डाली तो ?···वन्दना अभी तक मेरा सम्मान करती रही है, दिल में चाहे कुछ समझे, ऊपरी बर्ताव तो बहुत ही अच्छा रहा है····वह क्या सारे सम्मान को ताक पर रख कर लट छिटकाकर मेरे ही पीछे पड़ जाएगी····वैसे तो 'भाभी जी, भाभी जी' करते नहीं थकती है, लेकिन इस समय भी क्या यही करेगी ?···यह तो स्पष्ट है कि उसकी भी शरारत शामिल है, गोरा चिट्टा खूबसूरत आदमी मिले, तो किस छोकरी का जी थोड़े से रोमांस के लिए न ललचाएगा ?····तभी तो बख्तियार को रात दिन छेड़ती थी···ये बंगाली लड़कियाँ भी एक ही जहर की पुड़िया होती हैं····बन्दना के भी पर निकल रहे हैं, निकलने ही चाहिए, नई उमर है और नई उमर में लोग जमीन पर पाँव रखकर चलना जानते ही नहीं····इसीलिए तो उड़ानें भर रही है····।

शकुन्तला तड़प कर एकदम करवट बदलने के लिए मजबूर हो गई। फिर सोचने लगी—इसी नई उमर की वजह से तो बख्तियार साहब भी फिसल पड़े उस पर, वरना क्या खास बात है ? नई उमर हर नौजवान को अपनी तरफ खींचती ही है। हरएक को ? नहीं, आशीष जैसे कुछ लोगों की नजर ज्यादा गहरी होती है और वे वीणा जैसी लड़कियों को ठुकरा भी सकते हैं, लेकिन हर आदमी तो आशीष नहीं हो सकता···अब तो आशीष ने आना छोड़ दिया है,

लेकिन कभी तो उसने मुझमें कुछ देखा था····मैं प्रौढ़ता की ओर जा रही हूँ, एक बच्चे के बाद दूसरे के आने की भी तैयारी है···लेकिन क्या मुझमें वाकई कोई आकर्षण नहीं रहा ?···जरूर ऐसी ही बात होगी, तभी तो किसी समय मँडराने वाले सभी भौंरे एकदम से उड़ गए···लेकिन, बख्तियार ने तो शायद कभी भी मुझे····इस समय भी तो मेरी बीमारी की तुलना अपनी माँ की बीमारी से कर दी···गधा है बिल्कुल, यह भी नहीं जानता किस औरत से कैसे बात करनी चाहिए··· भाड़ में जाने दो बख्तियार को भी और आशीष को भी···· बख्तियार मुँह के बल गिरना चाहता है, तो शौक से गिरे, मैं उसे क्यों रोकूँ···लेकिन····लेकिन मुझे उसका यहाँ आना भी बन्द कर देना चाहिए, नहीं तो भविष्य में कोई तमाशा हुआ, तो मैं बेकार ही लपेट में आ जाऊँगी।

यह निश्चय करने के बाद शकुन्तला आराम की नींद सो गई। और चूँकि वह अपने निश्चय को तुरन्त ही कार्यान्वित कर डालने की पक्षपाती थी, इसलिए उसने बख्तियार सम्बन्धी अपना निश्चय भी कार्यान्वित कर डाला। दो-चार बार वह आया, तो उसकी समझ ही में न आया कि शकुन्तला उससे इतने बेगानेपन से क्यों बात करती है और अगर वह कोई अपनी बात उसके सामने रखना चाहता है, तो उसमें दिलचस्पी लेने से इन्कार क्यों कर देती है। कुछ भी हो, इस तरह सम्बन्ध तो बने नहीं रह सकते। फलतः बख्तियार ने भी आना छोड़ दिया।

● ● ●

३५

बख्तियार ने शकुन्तला के यहाँ जाना भी छोड़ दिया और मुखर्जी परिवार से उसके सम्बन्ध पहले से अधिक घनिष्ठ भी हो गए, लेकिन न मालूम कैसा असंतोष उसके दिल में घर कर गया था। जाहिरा उसे किसी बात की कमी नहीं थी। मिर्जा साहब के पत्रों से मालूम होता था कि उन्होंने उसके सार्वजनिक जीवन न बनाने और शादी न करने के 'अपराधों' को पूरी तरह क्षमा

कर दिया है। वे लाख गुस्सैल सही, इकलौते लड़के पर कब तक गुस्सा किया जा सकता है? एक बार वर्षों तक उससे सम्बन्ध-विच्छेद करने के बाद जो बेटे से मिलाप हुआ, तो उनके रोष में इतना दम न रह गया था कि अब फिर उसे पूरी तरह नालायक समझ कर उसकी तरफ से बेपरवाह हो जायें। मिर्जा साहब को अब इसका कोई औचित्य भी न दिखायी देता था। अगर बख्तियार सिर्फ पढ़ाई पर ध्यान लगा कर वकालत करना चाहता है, तो इसमें क्या बुराई है? वकालत तो बहुत सम्मान की चीज होती है, बल्कि एक तरह से देखा जाए, तो वकालत राजनीतिक जीवन का सबसे अच्छा आधार होती है। सफल वकील को सभी राजनीतिक दल अपने नेता वर्ग में स्थान देने के लिए हमेशा तैयार रहते हैं और उसे इस बात की पूरी सुविधा होती है कि जब जिस दल में जाने में फायदा देखे, उसमें चला जाए। अतः मिर्जा साहब को बख्तियार पर कोई रोष न रहा था। शादी के लिए उन्हें जरूर कुछ तरद्दुद थी, लेकिन वस्तुतः उन्हें इसमें भी एक प्रकार से संतोष ही मिला था। पत्नी पीछे पड़ गई थी, इसलिए वे गुड्डन नवाब से बात चलाने के लिए तैयार जरूर हो गए थे, लेकिन तीस-पैंतीस वर्ष की प्रतिद्वंद्विता और मुकदमेबाजी की छाप उनके दिल पर बहुत गहरी पड़ी थी और उन्हें यह बिल्कुल पसन्द न था कि नवाब गुड्डन के आगे हाथ फैलाएँ।

यह तो रही मिर्जा तसद्दुक हुसैन की बात। खुद बख्तियार को अपने जीवन में कोई कमी मालूम नहीं होती थी। उसने इम्तहान में फर्स्ट क्लास पाना चाहा था, सो सिर्फ फर्स्ट क्लास ही नहीं आया, बल्कि प्रीवियस में फर्स्ट पोजीशन भी आ गया और छात्रों तथा अध्यापकों की दृष्टि में उसका सम्मान और भी बढ़ गया। शायरी के मैदान में बढ़ने की उसने कोई खास कोशिश नहीं की थी (क्योंकि वह कोई ऐसी बात नहीं करना चाहता था, जिससे उसके अध्ययन में व्याघात उत्पन्न हो) और स्वांतः सुखाय ही कविता किया करता था। लेकिन, इन्हीं कविताओं का संग्रह उसके पास काफी बड़ा हो गया था और जिन साहित्यिक मित्रों को उसने कुछ कविताएँ सुनायी थीं, वे उन्हें पुस्तकाकार देखने के लिए बहुत उत्सुक हो चले थे। संस्कृतनिष्ठ हिन्दी का आन्दोलन बड़े जोरों में चल रहा था और उर्दू के प्रकाशक-गण भविष्य को अंधकारमय देखकर घबड़ाए हुए थे। वे या तो किसी तरह अपना व्यापार पाकिस्तान को उठा ले जाने की फिक्र में थे या फिर जासूसी उपन्यासों के प्रकाशन की (जिनके लिए पाठकों की कभी कमी नहीं रहती) योजनाएँ बना रहे थे। गम्भीर साहित्य के प्रकाशन में किसी को कोई लाभ दिखायी नहीं दे रहा था, खास तौर पर

काव्य-पुस्तकों के लिए तो कोई गुंजाइश ही नहीं दिखाई देती थी। इस गई-बीती हालत में भी एक उत्साही मित्र ने एक तरफ तो एक प्रकाशक को पटा लिया था और दूसरी ओर बख्तियार के इतने पीछे पड़ गए थे कि उसने कविताओं के संशोधन का बहाना छोड़ कर पाण्डुलिपि मित्र महोदय के हवाले करने ही में खैरियत समझी। आशा थी कि अक्तूबर-नवम्बर तक उसका काव्य-संग्रह मार्केट में आ जाएगा। बगैर हाथ-पाँव हिलाये साहित्य के मैदान में अगर इतनी सफलता मिल जाए, तो इसे सिवा इसके क्या कहा जा सकता है कि खुदा छप्पर फाड़ कर देता है।

व्यक्तिगत जीवन में भी बख्तियार को कोई कमी न महसूस होती थी। रात को उसे हमेशा की तरह आराम की नींद आती थी और स्वास्थ्य भी हमेशा की तरह कील-कांटे से दुरुस्त था। रही मानसिक संतोष की बात, वह भी कुछ कम नहीं थो। यूनिवर्सिटी में उसे हाथों-हाथ लिया जाता था, यहाँ तक कि सारे राष्ट्रीयतावादी और वाम पक्षीय गुटों ने (जिनमें कम्युनिस्ट भी शामिल थे) उस पर यूनियन के अध्यक्ष-पद के लिए जोर डाला था और बख्तियार का अध्ययन की व्यस्तता का बहाना मंजूर करने से उसके साथियों ने बिल्कुल इन्कार कर दिया था, क्योंकि एक मात्र उसी का व्यक्तित्व ऐसा था, जिसके गिर्द सभी प्रगतिशील तत्त्व एकत्र हो सकते थे, अन्यथा यह डर था कि जनसंघीय उम्मीदवार रामसेवक त्रिपाठी का बोलबाला हो जाएगा। बख्तियार ने हार कर मंजूरी दे दी थी, लेकिन यह साफ कह दिया था कि वह खुद ज्यादा दौड़-धूप नहीं कर सकेगा। समर्थकों को इसकी कोई जरूरत भी नहीं महसूस होती थी, क्योंकि वह पहले ही से इतना मशहूर हो चुका था कि उसका नाम ही वोट खींचने के लिए काफी था। बख्तियार को इस बार चुनाव में सफलता मिलने की पूरी आशा थी—जब कि उसे सफलता की कोई ऐसी चिन्ता भी न थी। लेकिन, उसके पद के लिए मतदान की नौबत ही न आई। रामसेवक त्रिपाठी ने साफ देख लिया कि प्रगतिशील दलों का जोर बहुत बढ़ गया है, उन्होंने अड़ियलपन में कोई फायदा नहीं देखा और बख्तियार के कमरे में चुपचाप आकर उससे कुछ साँठ-गाँठ करा ली। नजीजा यह हुआ कि नामजदगी की तारीख निकलने के बाद उन्होंने अपना नाम वापस ले लिया और बख्तियार सर्वसम्मति से यूनियन का अध्यक्ष निर्वाचित हो गया। त्रिपाठी जी के निर्णय से उनके साथी आग हो गए, उन्हें गद्दार कहा गया, यहाँ तक कि मार-पीट की धमकी भी दी गई, लेकिन, उन्होंने इसकी चिन्ता न की, क्योंकि अगली छमाही में प्रगतिशील दलों ने उन्हें ही अपनी ओर से अध्यक्ष-पद के लिए खड़ा करने का आश्वासन दिया था।

हमने बात बख्तियार के व्यक्तिगत जीवन की शुरू की थी, लेकिन वह फिर फिसलकर उसके सार्वजनिक जीवन पर आ रही। बख्तियार के व्यक्तिगत जीवन में वाकई कोई कमी न थी। वह अपने माँ-बाप का इकलौता लड़का था और बाप की लड़ने-भिड़ने और अंधाधुंध मुकदमेबाजी की आदत की वजह से रिश्तेदारी में भी उनका मेल-मिलाप लगभग शून्य ही था। इसलिए बख्तियार को भाई-बहन की कमी कभी-कभी खटक जाती थी। इस साल आशीष और बंदना में उसे भाई-बहन दोनों मिल गए। आशीष उससे एक साल बड़ा था और बन्दना लगभग नौ साल छोटी। और क्या चाहिए था? रक्षाबंधन पर बख्तियार ने राखी बँधवाने पर बन्दना को साठ रुपए की साड़ी दी, तो मुखर्जी परिवार का रहा बचा अलगाव भी खत्म हो गया और बन्दना यूनिवर्सिटी में नए दाखिले की सारी झिझक छोड़ कर जी-जान से बख्तियार के लिए कनवैसिंग करने लगी।

दोनों के परस्पर सम्बन्धों का इससे कोई सीधा लगाव तो नहीं, लेकिने बात मजेदार जरूर है, इसलिए बताए बगैर जी भी नहीं मानता। एक हिन्दू लड़की के हाथ से राखी बँधवाना बख्तियार के लिए चुनाव के मामले में भी बड़ी उपयोगी सिद्ध हुआ। उसके समर्थकों ने इसी बात के आधार पर रामसेवक त्रिपाठी की चूलें हिलाकर रख दी थी; क्योंकि पिछले साल त्रिपाठी जी एक लड़की के मामले में बदनाम हो चुके थे और बख्तियार के समर्थकों ने अपने प्रचार का एक नारा यह भी बनाया था कि त्रिपाठी जी के समर्थन का मतलब है, लुच्चों का राज्य और बख्तियार के चुने जाने का मतलब है, छात्राओं की सम्मान-सुरक्षा की गारंटी।

इतने सुख-संतोष के बावजूद बख्तियार को कभी-कभी अपनी जिन्दगी में एक अजीब खालीपन और बेबसी का अनुभव होने लगता। जितनी देर वह चुनाव सम्बन्धी कामों में उलझा रहता, उतनी देर कुछ पता न चलता, लेकिन जैसे ही उसे अपने कमरे की तनहाई मिलती, उसके मन में एक अजीब बेबसी भरी खीझ-सी समा जाती, जिसका उसे कोई कारण न मालूम होता था। उसे ऐसा लगता, जैसे उसके मुँह में एक अजीब फीका स्वाद भर गया है, जो उसकी नस-नस में समाया जा रहा है, जिससे वह छुटकारा पाना चाहता है। लेकिन, जिससे छुटकारा पाने की कोई राह उसे नहीं मिलती। उसे महसूस होता कि उसकी परीक्षा में सफलता, उसका अध्यक्ष पद पर निर्वाचन, छात्रों द्वारा लगातार मिलने वाले अभिवादन, छात्राओं की उससे सस्मित और बोझिल बात-चीत, कमरे की सुरुचि- सम्पन्न सजावट, मेस का सुस्वाद भोजन, रेशमी बुशशर्टें, मक्खनजीन की पतलूनें, फूलदार शेड वाला टेबुल लैम्प, कील पर शान से टँगा हुआ टेनिस

का रैकिट, आलमारियों के गौरव को बढ़ाती हुई मोटी-मोटी पुस्तकों की पाँच-छः पंक्तियाँ—सभी कुछ बिल्कुल निरर्थक चीजें हैं। क्या रखा है, इस तथा-कथित शान-शौकत में? वह सोचने लगा—'क्या यह सब ठाठ एक हद तक भी उस कमी को पूरा कर सकते हैं, जो हर वक्त मेरे दिल में, मेरे दिमाग में घर किए रहती है? आशीष के घर जाता हूँ, तो बन्दना लगातार बक-बक किए जाती है, अपनी पढ़ाई-लिखाई के मसले सामने रखती है, अपने प्रोफेसरों की शिकायतें करती है और इस बात के लिए लड़ती रहती है कि मैं उसे अपने नाम से लाइब्रेरी से किताबें निकलवा कर क्यों नहीं देता?……यह बात नहीं कि यह सब मुझे अच्छा नहीं लगता। कोई छोटी लड़की लड़-लड़ कर अपना हक जताए, तो अच्छा तो लगता ही है, न लगे तो भाई लोग बहनों को क्यों प्यार किया करें?……लेकिन, किसी चीज का अच्छा लगना एक बात है और उसका इत्मीनान बख्श होना बिल्कुल दूसरी बात। बन्दना की बक-बक से भी तबियत उलझने लगती है, जी चाहता है कह दूँ अच्छा भाई, किताबें लो और कहीं और जाकर मरो, मेरी खोपड़ी न चाटो। अपनी बहन होती तो कह भी देता……. लेकिन उसका भी क्या कसूर? वह बेचारी तो यही सोचकर ऐसी बातें करती होगी कि मुझे यह अच्छा लगता है, अलावा उसे ऐसी क्या कमी है कि महदूद जरूरतें पूरी न हो सकें?……उसका कोई कसूर नहीं……कसूर किसी का भी नहीं है, इसी से तो किसी से कुछ कहा-सुना नहीं जा सकता, वरना मालूम तो ऐसा होता है कि किसी से कुछ लड़ाई-झगड़ा हो, तो भी जरा जी बहले……तो क्या किसी से जबरदस्ती लड़ाई मोल ले ली जाए?……यह भी नामुमकिन मालूम होता है, अक्ल रास्ता रोक देती है……उफ्फोह! लोगों की मुहब्बत—बेजान मुहब्बत—भी क्या जी का जंजाल है!'

और यह सब उसी अर्से में हुआ, जब बख्तियार चुनाव की तैयारी में लगा रहा। इस अर्से में शकुन्तला का ख्याल उसे दो-एक बार आया, लेकिन उसके साथ उसे उस पर गुस्सा भी आया—मालूम नहीं यह औरत अपने को समझती क्या है? किस बल पर ऐंठी रहती है? मैंने इसके साथ क्या खराब बर्ताव किया था? पारसाल इसने इतनी बेहूदगी की थी, इस पर भी छः महीने पहले मैं इसके पास गया और उसके बाद भी बराबर यह खयाल रखा कि उसकी शान के खिलाफ कोई बात जबान से न निकले, उस पर भी यह नखरे! आखिर क्यों? क्या मुझे भी उसने अपने आशिकों में समझ लिया है……नहीं, ऐसी बात तो कभी उसकी बात-चीत से जाहिर नहीं हुई……फिर? फिर सिवा इसके क्या हो सकता है कि मिजाज में सनक है……कभी खन्ना-जैसे आदमी की खुशामद

करेंगी, कभी उसकी बीबी से लड़ने के लिए बेवजह उसके घर पहुँच जाएँगी, कभी मुझ पर मेहरबान हो जाएँगी, कभी बेवजह मुझसे भी मुँह फुला लेंगी·········भाड़ में जाएँ·········जिसे यह सब नखरे उठाने की फुर्सत हो, वही उनके नखरे उठाए; मुझे दुनिया में और भी काम हैं।

बख्तियार शकुन्तला के बारे में बार-बार यही सोचता। यह स्पष्ट था कि उसे शकुन्तला से अलग होने का कोई अफसोस नहीं था। लेकिन, फिर परेशानी क्या थी, यही उसकी समझ में नहीं आ रहा था। क्यों उसे जीवन में रस नहीं मिल रहा था?

फिर भी इस अन्यमनस्कता पर बख्तियार ने कोई अधिक ध्यान नहीं दिया। जिन्दगी की इमारत की ऊपरी सजावट चाहे रंगों के सिवाय कुछ न हो, उसकी नींव और ढांचा तो बदरंग और खुरदरी ईंटों ही का बना होता है। खाने में कोई लुत्फ नहीं मिलता, तो न मिले, खाए बगैर तो गुजारा नहीं है, लोगों से बात करने में जी उझलता है, तो उलझा करे, बात किए बगैर काम भी नहीं चलता; कमरे में रहने से दहशत होती है, तो क्या किया जाए, दरख्त के साये में जिन्दगी काटने का तो खयाल भी पैदा नहीं हो सकता और बख्तियार ने हर एक समझदार आदमी की तरह अपने मन के इस बेतुकेपन पर कोई अधिक ध्यान नहीं दिया और अपने कर्त्तव्यों को पूरे जोश-खरोश के साथ निभाने लगा।

स्वतन्त्रता-दिवस के रोज बड़ी धूम थी। यूनियन हॉल के सामने हजारों लड़के-लड़कियाँ जमा थीं। कई आमन्त्रित अतिथि भी आए थे। वाइस चांसलर साहब ने झण्डा फहराया और दस मिनट तक कुछ ऐसी बातें कहकर, जिनका मतलब शायद खुद उनकी समझ में भी ठीक तरह से न आया हो, अलग हो गए। इसके बाद यूनियन के अध्यक्ष की हैसियत से बोलने के लिए बख्तियार खड़ा हुआ। एक तो अलीगढ़ यूनिवर्सिटी का ग्रेजुएट जहाँ के छात्र अपनी भाषण कला की योग्यता के लिए प्रसिद्ध हैं, फिर तीन वर्ष के राजनीतिक जीवन में पचासों सभाओं के संचालन का अनुभव, तिस पर भी काव्य-कला का आधार—सुनने वालों की हथेलियाँ ताली बजाते-बजाते दुखने लगीं। यूनियन के अध्यक्ष अधिकतर हमेशा अच्छे भाषण-कर्ता होते थे, लेकिन स्वतन्त्रता-दिवस पर बख्तियार की वक्तृता सुनकर छात्रों को ऐसा लगा कि बख्तियार के अलावा जो कोई भी बोलने को खड़ा होता है, वह भाषण नहीं करता, बेगारी मजदूर की तरह स्पीच का बोझा ही देता है। छात्रों की इतनी बड़ी सभा में भाषण करने का बख्तियार का पहला मौका था, लेकिन उसने आध घण्टे के अन्दर वह धाक जमा दी कि सभी की जुबान पर उसी का नाम था।

समारोह के बाद बधाइयों और प्रशंसाओं का धन्यवाद देते-देते बख्तियार परेशान हो गया। उसके पास सिवा इसके कोई चारा ही न रह गया कि लड़कों को एक हलका-सा 'थैंक यू' दे दे और लड़कियों के सामने जरा-सा सर झुका दे। दोनों बातों में उसकी जीभ और गर्दन मशीन की तरह काम करने लगी थी और इन शारीरिक विक्षेपणों का उसके विचारों या भावनाओं से कोई साम्य नहीं रह गया था। लेकिन, कुछ देर बाद उसे एक ऐसी बधाई मिली, जिस पर वह यह मिथ्या वैभव प्रेमी वाली मनोवृत्ति बनाए न रख सका।

यह बधाई मिली थी मिसेज लीला खन्ना की तरफ से, जो यूनिवर्सिटी छोड़ने पर भी (इस साल वे एम० ए० पास कर चुकी थीं और चूँकि थर्ड क्लास से आई थीं, इसलिए उनके लिए रिसर्च स्कॉलर बन कर यूनिवर्सिटी से सम्बन्ध बनाए रखने का कोई बहाना नहीं रह गया था) यूनिवर्सिटी का मोह न छोड़ सकी थीं और अपने पति के साथ यह समारोह देखने चली आई थीं। बख्तियार की पीठ ठोंक कर खन्ना जी तो कार लेकर दुकान को चले गये और लीलाजी वहीं बात करती रह गईं।

उन्होंने कहा, "बख्तियार साहब! आप के कमाल तो अब और भी खुलते जा रहे हैं। इतने दिनों आप हमारे किरायेदार रहे, लेकिन मुझे आप की 'ऑरेटरी' का पता ही न चला। यूँ तो मुझे मालूम था कि आप लीडर आदमी हैं, कुछ-न-कुछ बोलते ही होंगे। लेकिन हर मानी में इतनी अच्छी—इतनी सधी हुई और साथ ही जोरदार स्पीच देंगे, यह तो मैं सोच ही नहीं सकती थी। जी चाहता है, आप बराबर बोले ही चले जाएँ।"

"या इलाही! मेरी जबान भी जड़ से उखड़ जाएगी," बख्तियार ने ठहाका लगाते हुए कहा, "लेकिन आपके यहाँ भी मैं खामोश कहाँ बैठता था? हमेशा ही तो मौके-बेमौके मेरी तकरीर हुआ करती थी।"

"वह दूसरी बात थी। और वह भी जब थी तब थी। अब तो मेरे घर में आपकी बातें भी नहीं सुनायी देतीं। ठीक है, अब आप सही मानों में बड़े आदमी हो गये हैं। यूनियन की लीडरशिप बाहर की लीडरशिप से ज्यादा बिजी रखती है तभी तो आप उधर झांकने भी नहीं आते।" मिसेज खन्ना बोलीं।

"अब आप मजाक भी उड़ाने लगीं। आप को शायद मालूम नहीं है, मैं यूनियन का चुनाव भी लड़ना नहीं चाहता था। साथी लोगों ने जबरदस्ती खड़ा कर दिया।" बख्तियार ने सफाई-सी दी।

"अरे खड़ा करके यूनानीमसली चुन भी लिया। उसको मुबारकबाद देना तो मैं भूल ही गई थी। खैर, अब आप को फुर्सत हो, तो कभी मेरे यहाँ भी

चले आइए। और कुछ नहीं तो इसी बात का खयाल कीजिए कि चार साल तक यूनिवर्सिटी की चहल-पहल देखने के बाद अब अकेला घर मुझे कैसा लगता होगा ? बच्चे भी तो स्कूल चले जाते हैं।" मिसेज खन्ना ने हँस कर कहा।

बख्तियार उनसे वादा करके कि उनके घर जल्द ही आएगा, अपने कमरे में लौट आया। लेकिन, अब उसे उस खालीपन का बोध न हुआ, जो पिछले एक महीने से हो रहा था। वह सोचने लगा—तो क्या दरअसल मुझे मिसेज खन्ना से ही मिलने की ख्वाईश थी ? नहीं जी, इस हिमाकत से तो मैंने तभी छुटकारा पा लिया था, जब गाँव से आकर आशीष के यहाँ ठहरा था। कोई और ही बात होगी। कोई और बात क्या होगी ? सीधी-सी बात है कि मुझे आज की शानदार कामयाबी की खुशी है।

उसने सोचा था कि खन्ना जी के यहाँ जाने की कोई जल्दी तो है नहीं। मिसेज खन्ना से उसने 'जल्द' आने का वादा जरूर किया था, लेकिन इस जल्द की कोई निश्चित सीमा तो होती नहीं, वह एक महीने बाद भी उनके घर जा सकता है। एक महीने बाद की बात तो खैर मजाक है, लेकिन इतवार से पहले उनके यहाँ जाने की तो कोई जरूरत मालूम नहीं होती। इतवार ही को ठीक रहेगा। उस दिन अपने को भी फुर्सत होती है और खन्ना जी भी घर होते हैं। कुछ देर गप रहेगी।

लेकिन दूसरे ही दिन उसे मालूम होने लगा कि इतवार काफी दूर यानी तीन दिन के बाद है। मिसेज खन्ना ने अपने अकेलेपन की शिकायत की थी। इतवार को तो वे अकेली नहीं रहती हैं, सारा घर उनके पास रहता है। इतवार को जाने की क्या तुक है, यह सोच कर वह उसी शाम को चला गया।

मिसेज खन्ना को भी आशा न थी कि बख्तियार इतनी जल्दी अपना वादा पूरा करेगा। लेकिन वे सभ्य और सुसंस्कृत महिला थीं। उन्होंने अपने चेहरे पर कोई आश्चर्य का भाव प्रकट न होने दिया और यही जाहिर किया, जैसे उन्हें भी बख्तियार की प्रतीक्षा थी। बख्तियार को एक ओर तो इससे अतीव सन्तोष हुआ और दूसरी ओर उसे घबड़ाहट-सी भी होने लगी—यह भी मेरा इन्तजार कर रही थीं ! अब क्या होगा ?

लेकिन, मिसेज खन्ना ने अपने गैर रस्मी और खुले बर्ताव से उसकी यह घबड़ाहट दूर कर दी। चाय के साथ नमकीन बिस्कुटों के अलावा और कोई चीज नहीं थी, यह देख कर बख्तियार को काफी ढाढ़स बँधा। बात-चीत स्वभावतः ही यूनिवर्सिटी की कार्रवाइयों और यूनियन की भावी योजनाओं से शुरू हुई। कुछ-कुछ व्यक्तिगत आराम-तकलीफ की बातें हुईं, जिनका साधारण

शिष्टाचार से अधिक कोई महत्त्व नहीं था। बख्तियार को सारा वातावरण बहुत ही अच्छा लग रहा था और उसे मालूम हो रहा था कि डेढ़ बरस पहले का जमाना लौट आया है।

फिर भी कभी-कभी मौसम बहुत सुहाना होने पर भी पाँच मिनट के अन्दर धुआँधार बादल छा जाते हैं और पानी ही नहीं, ओले भी पड़ जाते हैं। कुछ ऐसी ही बात इस समय हो गई। बख्तियार का शकुन्तला के बारे में बात करने का कोई इरादा नहीं था। वह उसकी बात वैसे ही भूलने लगा था और फिर उसे मालूम था कि मिसेज खन्ना शकुन्तला से बहुत खुश नहीं हैं। फिर भी खन्ना साहब की बीमारी का जिक्र चला, तो उसने न चाहते हुए भी शकुन्तला का जिक्र कर दिया और कह दिया कि उस समय शकुन्तला ने न सिर्फ बख्तियार की हिचक दूर करके उसे खन्ना जी को देखने के लिए भेजा था बल्कि खुद भी यहाँ आकर उन्हें देखने के लिए तैयार थी।

किन्तु, मिसेज खन्ना पर स्पष्टतः शकुन्तला की उदार मनोवृत्ति का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे अपने को रोक भी न सकीं। बोलीं, "बड़ी खैरियत हुई कि मनहूस कदम मेरे घर में पड़ने से बच गए।"

बख्तियार को अफसोस होने लगा कि क्यों वह इस जाहिल औरत के पास आकर झख मार रहा है। इसका दिमाग तो ठस है, एक बात घुस गई तो दूसरी के लिए गुंजाइश ही नहीं। वह चुप रहा। लेकिन, मिसेज खन्ना ने उसे चुप न रहने दिया। उनके दिल में साल भर की भड़ास भरी थी और उसके निकालने का मौका आज ही मिला था। बख्तियार को चुप देख कर व्यंग्य पूर्वक बोलीं, "मालूम होता है, आप को बुरा लगा है।"

"आप को किसी से नफरत करने का जितना हक है उतना ही मुझे किसी से नफरत न करने का है। मैं आप दोनों की इज्जत करता हूँ और हमेशा करता रहूँगा।" बख्तियार ने बात खत्म करनी चाही।

मिसेज खन्ना को न जाने क्या हो गया था। बोलीं, "आप मुझे गालियाँ दे लीजिए, लेकिन उस हरजाई की बराबरी पर मुझे न रखिए। मैं अपने पति को छोड़कर दूसरों के पीछे नहीं दौड़ती फिरती।"

हद हो गई बेहूदगी की! बख्तियार अब बर्दाश्त न कर सका। रुखाई के साथ बोला, "तो कौन सी तीर मार लेती हैं? सभी औरतें ऐसा करती हैं। लेकिन आप अपने खाविंद की बड़ी वफादार हैं तो इस बात में आपके खाविंद ही को दिलचस्पी हो सकती है, और लोगों को इससे क्या मतलब?"

मिसेज खन्ना का चेहरा लाल हो गया, आँखों में आँसू आते-आते रह गए।

बोलीं, "मैं न कोई खास बात करना चाहती हूँ, न अपने पति से लड़ाई-झगड़ा करके दूसरे लोगों का ध्यान अपनी तरफ खींचना चाहती हूँ ''अगर किसी को मुझसे कोई ऐसी उम्मीद है, तो वह गलती पर है।''

बख्तियार का मिजाज भी बहुत गर्म हो गया और वह उचित-मनुचित भूल गया। बोला, ''आपसे किसी को कोई उम्मीद नहीं है। कम-से-कम मैं यहाँ कभी कोई उम्मीद लेकर नहीं आया। रही शकुन्तला की बात, सो उसे आप समझ ही नहीं सकतीं। आप उससे मुहब्बत करें या नफरत, कोई फर्क नहीं पड़ता। आपके लिए यही ठीक है कि रामायन पढ़िए और खन्ना जी के पाँव दबाइए। हाँ, आयन्दा से इस बात का खयाल रखिए कि किसी गैर मर्द को चाय पर न बुलाएँ। ख्वाहमख्वाह दुनिया की उँगलियाँ उठने लगती हैं। गुड बाई।''

●●●

३६

नवम्बर का महीना था और शाम की सुहानी हलकी सर्दी। सिविल लाइंस की अपेक्षाकृत सुनसान सड़कों पर बख्तियार और आशीष टहल रहे थे। डेढ़ महीने बाद दोनों की मुलाकात अचानक कॉफी हाउस में हो गई थी। इस अर्से में दोनों अपने-अपने कार्यों में इतने व्यस्त रहे थे कि अलहदगी की कोई खास वजह न होने पर भी मिल न सके थे। बख्तियार ने नोट किया कि आशीष का चेहरा हमेशा से कुछ अधिक गम्भीर है। वह साथियों की बातचीत में हिस्सा लेना चाहता है, लेकिन ठीक तरह ले नहीं पाता। बीच-बीच में उसका दिमाग कहीं और उड़ जाता है। बख्तियार ने उसकी अन्य मनस्कता पर उसे एक-आध बार टोका, तो वह बेबसी की सी मुस्कुराहट चेहरे पर लाकर रह गया। बख्तियार को यह जानने में देर न लगी कि कोई बात आशीष के मन को मथे डाल रही है। उसने प्रस्ताव किया कि कॉफी हाउस में काफी भीड़-भाड़ है और घुटन-सी पैदा हो रही है, इसलिए थोड़ी देर बाहर की हवा में टहल आया जाए। मालूम होता था, आशीष को इसमें भी दिलचस्पी नहीं है कि उसे खुली हवा

चाहिए या नहीं। लेकिन उसने इस प्रस्ताव पर कोई आपत्ति भी नहीं की और सिगरेट की नई डिब्बी खरीदने के बाद स्ट्रैचो रोड से होते हुए दोनों ऐलगिन रोड पर आ गए।

बख्तियार ने पूछा, "क्या बात है ? तुम्हारी तबियत तो ठीक है ?"

अब तक वे दोनों एक दूसरे के लिए 'तुम' हो चुके थे। बख्तियार में तहजीब के अंकुर बहुत गहरी जड़ें लिए हुए थे, लेकिन आशीष ने उन्हें बिल्कुल उखाड़ दिया था; क्योंकि 'तुम' कहे बगैर वह किसी से खुल नहीं सकता था।

"नहीं, तबियत तो बिल्कुल ठीक है। कोई खास बात नहीं।" आशीष इसके अलावा और क्या कहता ?

"फिर यह मुहर्रमी सूरत क्यों बना रखी है ? क्यों अपनी और मेरी दोनों की शाम खराब कर रहे हो ?"

आशीष ने फिर भी न बताया तो बख्तियार ने जोर न दिया, समझ गया कि कोई ऐसी बात होगी, जिसे यह बताना नहीं चाहता। लेकिन, वह उसका मूड ठीक करने के लिए उसे खुली सड़क पर लाया था तो उसकी मनहूसी का साझीदार होने में भी कोई तुक नहीं थी। उसने इधर-उधर की बातें करके आशीष का जी बहलाना चाहा। वह जानता था कि आशीष किसी भी मूड में हो, नाट्यकला सम्बन्धी बात की उपेक्षा नहीं कर सकता। उसने कहा, "इस बार सांस्कृतिक केन्द्र सोया पड़ा है, कोई ड्रामा नहीं कर रहा ?"

आशीष फिर भी चुप रहा, तो बख्तियार झुंझलाकर बोला, "अब क्या बगैर मार खाए न बोलोगे ?"

आशीष हँस पड़ा। बोला, "सांस्कृतिक केन्द्र अब सिर्फ नाम के लिए रह गया है। एक ही तो पर्सनलिटी थी, जिसके बल पर केन्द्र कायम था। वही यहाँ नहीं रही, तो केन्द्र क्या कर सकेगा ?"

बख्तियार के कान खड़े हुए, "क्या मतलब है ? क्या मिसेज''''मिसेज गोयल यहाँ नहीं हैं ?"

"तुम्हें नहीं मालूम क्या ? गोयल साहब का पिछले महीने आगरे को तबादला हो गया है।"

बख्तियार को आशीष के साथ सहानुभूति प्रकट करने की बिल्कुल याद नहीं रही। उसे ऐसा मालूम होने लगा कि उसके चारों ओर के बँगले धीरे-धीरे गोलाई में घूमने लगे हैं। यह मानने के लिए वह हरगिज तैयार नहीं था कि

शकुन्तला से उसे उसी तरह का प्रेम था जैसा आशीष को था। इधर चार महीनों से उसने शकुन्तला के पास जाना क्या, उसके बारे में बात करना भी छोड़ दिया था। मिसेज खन्ना से झगड़ा हुआ था, उसके बाद भी उसने शकुन्तला के पास जाकर अपनी भड़ास निकालने की कोई जरूरत न समझी थी। मिसेज खन्ना से जो बात हुई थी वह एक सैद्धान्तिक बात थी और अपने दृष्टिकोण को प्रभावशाली ढंग से सामने रखकर और मिसेज खन्ना की जबान बन्द करके उसे बड़ा सन्तोष मिला था। संयोग से हॉस्टल वापस आते ही कन्वोकेशन के मौके पर प्रस्तावित छात्र-प्रदर्शनों की समस्या ने उसे उलझा लिया था। वह किसी अति उग्र कार्रवाई के खिलाफ था, खास तौर पर जब कि वह अशोभनीय ही हो। 'हाय, हाय' और 'मुर्दाबाद' के नारे ही लगवाना हो, तो छात्र आन्दोलन की क्या जरूरत है, सोशलिस्ट पार्टी के तत्वावधान में निकलने वाले रिक्शेवालों के जुलूस क्या बुरे हैं। उसे अपने उग्र स्वभाव के समर्थकों को समझाने में बहुत दिक्कत पड़ी। दो सप्ताह तक घर पर अध्ययन करना तो दूर की बात रही, वह क्लास के लेक्चर भी अटैण्ड न कर सका था। अन्त में जब उसने इस्तीफे की धमकी दी और प्रगतिशील दल में फूट पड़ने की आशंका पैदा हो गई तब जाकर बख्तियार के साथी माने थे। इसके बाद उसे अपनी पढ़ाई की कमी पूरी करने की फिक्र पड़ गई। वैसे भी यूनियन का अध्यक्ष होने के नाते उसे रोजाना कुछ समय छात्रों की शिकायतें सुनने या दफ्तर की फाइलें आदि देखने में लगाना ही पड़ता था।

और जब इन झंझटों से थोड़ी-बहुत छुट्टी भी मिली, तो उसे शकुन्तला के पास जाने की कोई जरूरत महसूस नहीं हुई। उसे शकुन्तला पर कोई नाराजगी न थी—शकुन्तला के व्यवहार में कोई बात ऐसी थी ही नहीं, जिससे उसे नाराजी का मौका पैदा होता। मालूम नहीं क्यों शकुन्तला कुछ उखड़ी-उखड़ी सी रहने लगी थी और बख्तियार को महसूस होने लगा था कि वह मेहमानों के साथ ड्राइंग रूम में बैठने की अपेक्षा पलंग पर आराम करना ज्यादा पसन्द करती है। बख्तियार को इससे कुछ बुरा जरूर लगा था, लेकिन बाद में उसने ठंडे दिल से गौर किया, तो उसे अपनी खीझ पर हँसी आई। शकुन्तला को सात महीने चढ़ गए थे और अगर वह आराम करना चाहती है तो ठीक ही है, उसके मित्रों का भी कर्तव्य है कि ऐसी हालत में उसे ज्यादा परेशान न करें। वह अपनी तरफ से कोई बदतहजीबी नहीं दिखा रही थी तो उसपर नाराज होना बिल्कुल बेजा बात थी। बख्तियार को विश्वास था कि जो वादा शकुन्तला ने किया है, वह उसे जरूर पूरा करेगी, उसको उसकी मुश्किल में जरूर रास्ता बताएगी।

लेकिन बख्तियार को कोई मुश्किल पड़ी ही न थी, जो उसे शकुन्तला याद आती।

सुराही पर नजर तो तभी जाती है, जब प्यास लगती है लेकिन जब यह सूचना मिलती है कि पानी नहीं है, तो प्यास भी अचानक ही उमड़ आती है। बख्तियार को ऐसा महसूस होने लगा, जैसे कि वह बड़े भारी मानसिक द्वन्द्व में गिरफ्तार है और इससे निकलने का उसके पास कोई रास्ता नहीं रह गया है, जैसे अँधेरी रात में तूफान के थपेड़ों में उसकी नाव झटके खा रही है और यकायक लाइट हाउस की रोशनी गुल हो गई। अब क्या होगा? कौन उसे सहारा देगा? कौन उसके सरपर हाथ फेरेगा? कौन उसे कोमल हाथों से उठाकर खड़ा करेगा?

आशीष? लेकिन आशीष की तो खुद ही यह हालत हो रही है कि मुँह से ठीक तरह से बात नहीं निकल रही है। आशीष की सारी ताकत क्या उसकी अपनी थी? पावर हाउस ही फेल हो गया तो सौ नहीं हजार कैण्डिल पावर का बल्ब लगा लीजिए, नतीजा क्या निकलेगा? अँधेरा कैसे दूर होगा? रोशनी कहाँ मिलेगी?

बख्तियार ने सिगरेट सुलगायी। आधी सिगरेट खत्म होने तक चुपचाप चलता रहा। फिर बोला, "मुझे तो बिल्कुल पता ही नहीं चला। एक महीने पहले वह चली गई और मुझे मालूम भी नहीं हुआ!'

"जाते वक्त उसने कई बार तुम्हारे बारे में पूछा था। यह मालूम करके कि तुम बिजी हो उसने डिस्टर्ब नहीं किया।"

"लेकिन, यह तो कोई बात नहीं हुई। मैं लाख बिजी सही, एक बार जाने के लिए भी वक्त नहीं निकाल सकता था?"

"तो भई मैं क्या करूँ, तुम खत लिखकर शिकायत कर लेना।" आशीष ने हँसकर कहा।

"अच्छा···वे तो प्रेगनेंट थीं। डिलीवरी तो मेरा ख्याल है जाने के पहले ही हो गई होगी।"

"हाँ, सितम्बर के महीने में उसको लड़की पैदा हुई थी····मुझे भी डिलीवरी के बाद मालूम हुआ, तभी मैं गया था। असल में बात यह है कि सितम्बर का महीना तो जचगी के चक्कर में निकल गया और फिर अक्तूबर में अचानक ही तबादले का हुक्म आ गया। मुंसिफ साहब लखनऊ भी दौड़े गए कि कुछ नहीं तो दो-चार महीने के लिए ही तबादला रुक जाए, ताकि सर्दियों का मौसम

निकल जाए और जच्चा-बच्चा दोनों सफर के लायक हो सकें, लेकिन उन्हें कामयाबी नहीं मिली।" आशीष ने पूरा हाल बताया।

फिर थोड़ी देर तक खामोशी रही। बख्तियार ने पूछा, "मेरे बारे में और कुछ उन्होंने कहा था ?"

"मई बातें बहुत हुई थीं, सब तो याद नहीं रह सकतीं। हां, तुम्हारे बारे में जो कुछ कहा था, उसका मतलब यह था कि तुम बहुत सीधे-सच्चे आदमी हो और साथ ही तुम में काम करने की ताकत भी है। इसलिए तुम्हारी सेण्टीमेंटल नेचर तुम्हारी सक्सेस में आड़े नहीं आ सकती।" आशीष का जवाब था।

"कुछ मेरे चाल चलन के बारे में बेइत्मीनानी जाहिर नहीं की थी ?" बख्तियार का दूसरा प्रश्न था।

"बता तो दिया कि वह तुम्हें सीधा-सच्चा आदमी समझती थी; और चाल चलन क्या होता है ?"

"मेरा भी खयाल है कि वह मेरा चाल चलन अच्छा ही समझती थीं.... लेकिन कभी-कभी मालूम नहीं, उनका रवैया इतने लिए-दिएपन का हो जाता था कि कुछ समझ में नहीं आता था।"

आशीष कुछ देर चुप रहा, फिर बोला, "बख्तियार ! मेरा खयाल है कि तुम मेरी बात का कोइ गलत मतलब न लोगे। शकुन्तला को कुछ दिनों तक यह गलतफहमी रही थी कि तुम मेरे घर अच्छी नीयत से नहीं जाते और वन्दना के मुताल्लिक तुम्हारी नीयत साफ नहीं है। शायद इसी से....।"

बख्तियार को महसूस हुआ जैसे आशीष ने उसके सीने में घूंसा मार दिया है। उसकी समझ ही मे न आया कि क्या कहे। शकुन्तला ने जो कुछ सोचा, उसे लेकर वह चली गई, खुद आशीष का इस मामले में क्या ख्याल है, क्यों उसने यह बात इतनी बुरी तरह छेड़ दी है ? ठण्डे स्वर में बोला, "तुम भी यही सोचते हो ?"

"मैं कैसे सोच सकता हूँ ? मैं तुम्हें इतना तो जानता ही हूँ कि तुम बुरी नीयत लेकर राखी नहीं बंधा सकते।"

"थैंक यू फॉर द कॉनफीडेंस आशीष....अच्छा अब और कुछ बात की जाए, तो कैसा रहेगा।"

"शकुन्तला पर तुम्हारी नाराजी बेजा है, बख्तियार ! जब किसी को किसी की बहुत फिक्र होती है, तो उसके बारे में बेहूदा बातें भी दिमाग में आ जाती हैं। शकुन्तला वाकई तुम्हारी खैरख्वाह थी। उसने ऐसी बात सोच डाली, तो

इसीलिए कि वह तुम्हें किसी तरह गिरते देखना नहीं चाहती थी। उसने मुझसे यह सब कहा भी इसलिए कि तुम्हारे दिल में अगर उसकी तरफ से कोई मैल हो, तो धुल जाए।"

"ऐसा ही होगा। वैसे वे अगर मुझे अच्छी तरह नहीं समझती थीं, तो बन्दना को तो समझती थीं ?"

आशीष बिगड़ पड़ा, "तुम बेकार बात बढ़ा रहे हो। मुझसे जिरह करके क्या पाओगे ? मैं तुमसे पूछता हूँ कि बन्दना कानी-खुतरी है या तुम्हें डॉक्टरों ने नामर्द करार दे दिया है ? तुम्हारे खयालात कोई दूसरी सिम्त भा ले सकते थे। अब यह दूसरी बात है कि तुम्हें महबूबा से ज्यादा बहन की जरूरत थी और तुमने बन्दना को उसी रूप में कबूल किया। लेकिन दूर पर बैठा हुआ आदमी क्या समझे कि तुम क्या चाहते हो ? अगर तुम शकुन्तला से साफ-साफ कह देते कि तुम रक्षाबन्धन के दिन बन्दना से राखी बँधवाओगे, तो वह यह सब क्यों सोच डालती ? जिस दिन उसे मालूम हुआ कि तुमने बन्दना से राखी बँधवाई है, उसी दिन उसकी गलतफहमी दूर हो गई। इसीलिए वह चाहती थी कि तुम्हारे दिल में उसकी तरफ से जो कुछ भी मैल हो, वह धुल जाए। नहीं तो तुम अपने को कहाँ का बादशाह समझते हो कि वह तुम्हें यूँ ही खुश करना चाहती ?"

इस डाँट का असर अच्छा पड़ा। उसकी समझ में एकदम आ गया कि उसने क्या गलती की थी। उसने हँसकर कहा, "यार, तुम तो जरा-जरा सी बात पर बिगड़ जाते हो ! मैं यह मानता हूँ कि यह मेरी गलती थी कि उनसे साफ-साफ बात नहीं की। लेकिन तुम्हें यह भी मानना पड़ेगा कि इस बात में कुछ उनकी भी ज्यादती थी। अगर मैं बताना भूल गया था, तो उनको तो यह हक था कि डाँटकर भी यह बात पूछ लेतीं।"

आशीष कुछ देर चुप रहा। फिर बोला, "अगर शकुन्तला मे ऐब न होता, तो शायद वह जमीन की औरत न रहती, स्वर्ग की देवी हो जाती। उसमें यही तो खराबी थी कि मामूली-मामूली बातें, जिन्हें और लोग छुपाते हैं, वह तड़ से कह देती थी। इसकी वजह से लोग उसकी साफ गोई पर एतबार कर लेते थे। लेकिन, जिस बात से उसके दिल को वाकई चोट लगती थी, उसे वह दिल ही में घोंट जाती थी। इसी की वजह से उसने खुद भी महीनों परेशानी उठाई और दूसरों को भी थोड़ा-बहुत परेशान किया।" कहते-कहते आशीष की आवाज मर्राने लगी।

"यह बात तो बिल्कुल ठीक है''''कुछ दिनों तक तुमसे भी ताल्लुकात कशीदा रहे थे शायद।"

"जो था वह था अब उसका जिक्र करने से क्या फायदा?" आशीष ने कहा।

"लेकिन बात क्या थी? तुमसे क्या नाराजी हो गई थी?" बख्तियार कौतूहल न दबा सका।

"समझ का फेर है। हुआ यह कि पिछली सर्दियों में मैं जरा बिजी रहा, उधर जाने का मौका न मिला। इसी अर्से में उसके हमल रह गया, इससे परेशान हुई। मैं एक दिन गया तो सिर्फ गोयल साहब मिले, शकुन्तला अस्पताल गई थी। गोयल साहब मुझे अपना राइवल समझते हुए भी मुझसे खुल गए और अपनी परेशानी जाहिर कर दी। मैंने उनसे वादा किया कि तुम्हारी वाइफ सिर्फ तुम्हारी रहेगी। हम लोग इस वादे को 'सैलीब्रेट' कर रहे थे, तभी वह वापस आ गई और यह देखकर जल गई कि मैं गोयल साहब के साथ पी रहा हूँ। वह अपने खाविंद को दिल से कभी माफ नहीं कर सकी थी, यहाँ तक कि किसी और को भी गोयल साहब से हमदर्दी होती थी तो शकुन्तला को बुरा लगता था। मालूम नहीं 'लाइक्स' और 'डिस लाइक्स' कितनी स्ट्रांग थीं। इस पर नाराज हुई भी, तो इस तरह कि गुमसुम होकर बैठ गई। चलते वक्त जब्त न हुआ तो सारी बातें खोलकर मुझे बता गई।"

बख्तियार ने और खोदकर न पूछा कि चलते वक्त और क्या हुआ था? प्रेमी युगल के विछोह के समय क्या होता है, इसकी सभी कल्पना कर सकते हैं, फिर बख्तियार तो कवि था। हाँ, उसने यह जरूर पूछा, "खैर यह तो सब पिछली बातें हैं। अब तुम्हारा क्या हाल है?"

"हाल क्या होगा," आशीष ने हँसकर कहा, रघुपति सहाय 'फिराक' का एक शेर सुनो:

"शामे-फिराक, कुछ न पूछ, आई और आके टल गई,
जी था कि फिर बहल गया, जाँ थी कि फिर सँभल गई।"

"जी तो बहल ही जाता है, लेकिन इसमें शक नहीं कि बड़ी कड़ी मुसीबतें झेलनी पड़ती हैं।" बख्तियार ने कहा।

आशीष के लिए अब सम्भव न रहा कि दिल की बात दिल ही में रखता। उसे एक ही तो हमदर्द मिला था, जो उसकी बात अच्छी तरह समझ सकता था, अन्यथा और लोग या तो पर स्त्री से प्रेम करने की बात पर मुँह बिगाड़

लेते या फिर ठोस व्यावसायिक ढंग से इस बात में दिलचस्पी लेने लगते कि इस कहानी के नायक नायिका का शारीरिक रूप से मिलन हुआ या नहीं। उसने सविस्तार अपने और शकुन्तला के सम्बन्धों का पूरा इतिहास बता दिया। बख्तियार को अधिकतर बातें मालूम थीं, लेकिन वह धैर्यपूर्वक सुनता रहा। अन्त में बोला, "चलते वक्त तो फूट-फूटकर रोने लगी होंगी ?"

"नहीं भई; वह हरमानी में गैर मामूली औरत है। चलते वक्त अधिकतर मुझे ही धीरज बँधाती रही, हालांकि मैंने भी कोई ड्रामा नहीं किया था। सख्ती से यह ताकीद कर गई कि बेकार सपनों के पीछे जिन्दगी बरबाद न करना और वकालत के काम में कोई ढील न पड़ने पाए। उसका मैंने जरूर ख्याल रखा है।"

बख्तियार को खुशी थी कि उसने आशीष से सारा हाल खोद-खोदकर पूछा और उसका जी हलका कर दिया। अब आशीष की आवाज न तो भर्रा रही थी, न रोती हुई सी हँसी निकल रही थी। लेकिन अब बात को दूसरा रुख देना जरूरी था, अन्यथा यह भी हो सकता था कि शकुन्तला का ख्याल आशीष की आज रात की नींद हराम कर दे। उसने कहा, "अच्छा भाई, अब मिसेज गोयल को कब तक याद करोगे···हाँ, यह तो बताओ कि जनाब वॉल्टर साहब की बेगम यानी साबिका, मिस जूलिया रॉबिसन और हालिया मिसेज जूलिया मैसी के मिजाजे-अकदस कैसे हैं ?"

आशीष हँसने लगा, बोला, "दूसरी औरतों को आपरेशन टेबिल पर लिटाने वाली अब खुद उस पर लेटने की तैयारी कर रही है। हफ्ते दो हफ्ते ही में उसके बच्चा होनेवाला है।"

"अच्छा ! बहुत जल्दी कर दी इस मामले में जूलिया ने।" बख्तियार ताज्जुब से बोला।

"भई, जूलिया की उम्र काफी हो चुकी थी। जल्द-से-जल्द माँ बनना ही चाहती होगी।"

"उसमें तो खैर कोई हर्ज नहीं, लेकिन किंग वॉल्टर ने कुछ खजाने जमा कर लिए हैं या नहीं ?"

'जमा करेगा अपना सर ! काम में जी ही नहीं लगता, अब भी इधर-उधर घूमता रहता है। हाँ, गनीमत यही है कि एक बार कस कर डाँट पिला दो, तो फिर दिन भर मुस्तैदी के साथ काम करता है। और जब काम करता है तो कमबख्त भूत की तरह जुट जाता है, न दिन देखता है, न रात, न गर्मी देखता है, न सर्दी। लेकिन जहाँ तक रुपये-पैसे का ताल्लुक है, अब भी बस अल्लाह

का नाम है। बहाना यह तराशते हैं कि बहनोई सब रुपए छीन लेता है। कल ही रो-पीट कर मुझसे दो सौ रुपए ले गए हैं। मैं भूल गया, सोचा था जाकर जूलिया से कह दूँ कि रुपए छीनकर अपने पास रख ले, नहीं तो घर में स्कॉच ह्विस्की आ जाएगी।''

वॉल्टर की दो-एक और बातों से दोनों का मनोविनोद हुआ। फिर बख्तियार ने कहा, ''आशीष ! एक बात बताओ। जूलिया की शादी तुमने वॉल्टर से करा दी, तो तुम्हें बुरा बिल्कुल नहीं लगा ?''

''बुरा लगने की तो कोई बात ही नहीं थी। सभी लोग जानते हैं कि जो कुछ हुआ, सभी के लिए बहुत अच्छा हुआ। यूँ तो जो चीज अच्छी लगती है, उसे चाहे हम खुद न ले सकें, दूसरे के हाथ में जाते देखते हुए कुछ चोट सी दिल पर लगती ही है, लेकिन दिल ही क्या अगर उस पर चोटें न पड़ें।''

बख्तियार झूम उठा, ''वाह ! क्या बात कह दी हैं तुमने ! दिल ही क्या अगर उस पर चोटें न पड़ें।''

फिर बोला, ''जूलिया को कैसा लगा था ? मेरा खयाल है कि उसे भी तुमसे मुहब्बत थी।''

''थी क्या, अब भी है'', आशीष बोला, ''मुहब्बत तो हजारों लोगों से होती है, लेकिन उसके तरह-तरह के पहलू सामने आते हैं। कभी वह तूफान का रूप ले लेती है, कभी हलकी हवा बनकर बहती है। कभी तूफान हलकी हवा बन जाता है, कभी हलकी हवा ही तूफान का रूप ले लेती है। दुनिया तूफान से डरती है, इसलिए उसको हलकी हवा की बिरादरी से बाहर करने की कोशिश करती है—पाक और नापाक मुहब्बत में भेद किए जाते हैं। किसी को बहन कह दो तो वाह-वाह होती है, महबूबा कह दो तो लोग जूते लेकर खड़े हो जाते हैं। लेकिन जाहिर है कि यह बेतुकी बात है। बहन की मुहब्बत काफी बढ़ जाए टोला-मुहाला महबूबा की मुहब्बत हो जाएगी। मैं जूलिया के बारे में सिर्फ यह कह सकता हूँ कि उसके जो भी सेण्टीमेंट्स मेरे बारे में रहे हैं, उन्होंने कभी तूफानी रूप नहीं लिया। इस मामले में हम दोनों का 'ऐटीच्यूड' एक ही था—यानी यह कि हलकी हवा ही बहनी चाहिए, तूफान नहीं उठना चाहिए। मेरा खयाल है, वह भी पूरी तरह 'सैटिस्फाइड' है।''

''क्या हवा की रफ्तार पर हम अपनी ख्वाहिश से काबू पा सकते हैं ?'' बख्तियार का सवाल था।

''यह कहना तो जिन्दगी की हकीकतों को झुठलाना होगा। मैं तो सिर्फ

जूलिया के बारे में एक 'स्टेटमेंट ऑफ फैक्ट' दे रहा था। इसीलिए मैंने बहन वगैरह का सस्ता लफज इस्तेमाल नहीं किया।"

बख्तियार चाहता तो बात यहीं पर खत्म हो जाती, लेकिन उसने बात को एक नया मोड़ दिया, जिसके लिए वह मजबूर था। उसने आशीष से खोद-खोद कर बात पूछ ली थी और उसका जी हलका कर दिया, लेकिन इसमें उसके दिल का बोझ और बढ़ा जान पड़ने लगा, जैसे तराजू के एक पलड़े को बिल्कुल खाली कर लिया जाए, तो दूसरा जरूर जमीन छूने लगेगा। बख्तियार ने भी अपना अधिकार समझा कि आशीष उसका बोझ हलका करे। उसने पिछले डेढ़ वर्षों से अपने हृदय में मिसेज खन्ना के बारे में पैदा होनेवाली और पनपने वाली भावनाओं को खोलकर सामने रख दिया। आशीष गौर से सुनता रहा, जैसे कोई मुवक्किल उससे अपना मामला बयान कर रहा है। लेकिन, जब बख्तियार ने अपनी अन्तिम भेंट और झगड़े का उल्लेख किया, तो वह ठठाकर हँस पड़ा।

"इसमें हँसने की क्या बात थी?" बख्तियार ने नाराजी भरे ताज्जुब से पूछा।

"बात यह है कि शकुन्तला ठीक कहती थी। तुम बिल्कुल भोले-भाले बच्चे हो," आशीष बोला।

"बहुत अच्छा चचा जान, लेकिन यह तो फरमाइए कि मैंने क्या बचपना किया है।"

"नाराज न होना भाई, लेकिन तुम्हें इस मामले में अभी बहुत कुछ सीखना है। तुम शायर जरूर हो, मगर अभी मुहब्बत की गहराइयों तक नहीं पहुँचे। तुम्हारी उर्दू शायरी के लगभग सारे उस्तादों ने झख मारी है, जो अक्ल को इश्क का दुश्मन करार दिया है। अक्ल के बगैर इश्क सिर्फ अपने एक पाँव पर लँगड़ाकर चल सकता है। मुहब्बत के सौदे में दो पार्टियाँ होती हैं और दोनों ही को लेन-देन के लिए पूरी तरह तैयार होना चाहिए और जहाँ ऐसा न हो सके, वहाँ बात शुरू ही नहीं करनी चाहिए, नहीं तो बेकार की उलझन होती हैं। खुद को तो जो परेशानी होती है, वह होती है, लेकिन अनाड़ी आशिक दूसरे को भी बेकार परेशान कर डालता है। तुम जानते थे कि मिसेज खन्ना रिवायात में बँधी हुई औरत हैं, उन्हें तोड़ने की हिम्मत उनमें कभी नहीं आ सकती। साथ ही तुम जानते थे कि खन्ना साहब से 'सबकांशसली' वे 'सैटिस्फाइड' नहीं हैं। तो तुम्हें यह अहसास होते ही कि वे तुम्हारे लिए होनेवाले 'अट्रैक्शन' को कोई तसल्ली देनेवाला रूप दे रही हैं, उनसे अलग हो जाना चाहिए था। तुमने कहा

'आप रामायन पढ़िए और खन्ना जी के पाँव दबाइए।' यह ठीक ही है, वे इससे ज्यादा कुछ करने की हिम्मत ही नहीं रखतीं। मुझे शिकायत यह है कि इस फैक्ट को झुँझलाकर उनके मुँह पर मारने के बजाय तुमने शुरू ही से क्यों नहीं महसूस कर लिया। औरत में जितनी हिम्मत होती है, उतनी ही तो बात बढ़ सकती है।"

बख्तियार ने मान लिया कि यह उससे भूल हुई है। अब उसकी समझ में आया कि हालांकि देखने-सुनने में वह आशीष से बीस ही है, लेकिन शकुन्तला क्यों उसे बच्चा समझती रही और आशीष पर क्यों जी-जान से न्यौछावर होती रही। वह सिर्फ अपनी ही भावनाओं के बहाव में बहता रहा है, जब कि आशीष के अन्दर यह ताकत है कि अपनी और दूसरे की भावनाओं में पूरा तालमेल बिठा सके। उसने कहा, "आशीष, आज की शाम की अहमियत मेरी जिन्दगी में बहुत ज्यादा है। मुझे तुम जैसा रहकर पाने पर फख्र है—शायरी नहीं कर रहा हूँ, सच बात कह रहा हूँ। अब एक बात और पूछना चाहता हूँ, जिसके लिए मैंने जून में तुम्हें लिखा था।"

"मैं तो इन्तजार कर रहा था इसका। तुम्हीं चुप रहे, तो फिर मैं भी चुप रह गया। क्या बात है?"

बख्तियार ने उसे अपने अन्तर्द्वंद्व की कहानी सुनाई कि कैसे उसने शादी का प्रस्ताव नामंजूर कर दिया, क्योंकि उसका ख्याल था कि वह भी आशीष की तरह किसी के ख्याल में जिन्दगी काट सकता है।

आशीष ने मुस्कुराकर पूछा, "गुड्डन नवाब ने अपनी लड़की की शादी अब तक कर तो नहीं दी होगी?"

"नहीं, मेरी माँ का कल ही खत आया है। फिर रोना-पीटना शुरू किया है उन्होंने। समझ में नहीं आता क्या करूँ?"

"बोड़मनाथ जी! कीजिए यह कि माँ को फौरन मंजूरी लिख भेजिए। अपनी तसल्ली के लिए यह भी सुन लीजिए कि कल मैंने भी अपनी माँ को एक जगह शादी के लिए मंजूरी दे दी है। हम दोनों ही ने पंख फैलाकर उड़ने के लिए अपने-अपने समाजों के घोंसले छोड़ दिए थे। लेकिन, अब कुछ आराम की भी जरूरत है—साथ ही यह डर भी नहीं कि घोंसला हमें कैद कर लेगा, हमारे पाँवों में काफी ताकत आ गई है। रही जज्बात की बात, सो जज्बात तो कायम रहते हैं लेकिन जिन्दगी का तार नहीं टूटता। 'फिराक' ने कहा है:

"कुछ आदमी को है मजबूरियाँ भी दुनिया में
अरे वो दर्दे-मुहब्बत सही, तो क्या मर जायें?"

बख्तियार हँसने लगा, "यह अच्छी रही। 'मन तुरा हाजीबिगोयम तो मरा हाजीबिगो।' अच्छा, तय रही कि हम दोनों और लोगों की तरह ही आँखें बन्द करके शादी कर लेंगे। लेकिन यह हुआ क्या इतनी हाय-हाय के बाद ?"

"होना क्या है ? जिन्दगी में कहीं कुछ होता भी है ? सिर्फ मालूम होता है कि न जाने क्या हो जाएगा। हवा चलती है, तो रेगिस्तान में बालू की लहरें बन जाती हैं, जैसे कोई नदी बह रही हो लेकिन बहाव कहाँ होता है ?"

बिल्कुल ठीक बात है। किस्मत से एक चाय की दुकान भी सामने आ गई है। आने वालियों के नाम पर एक-एक प्याला पी लिया जाए।" बख्तियार ने प्रस्ताव किया।

"और एक-एक प्याला जाने वालियों के नाम पर भी।" आशीष ने कहा। और दोनों ही छोटी-सी दुकान की गन्दी-सी मेज पर बैठकर टूटे प्यालों में दी जानेवाली चाय का इन्तजार करने लगे।

● ● ●

मुद्रक—चन्द्रप्रभा प्रिंटिंग प्रेस, सुधाकर रोड, खजुरी, वाराणसी-कैण्ट।



भार्गव ऑफसेट्स भच्छोदरी, वाराणसी